स्वयं सहायता समूहों की पड़ताल

- सशक्तीकरण
- गरीबी उन्मूलन
- शिक्षा

एक गुणात्मक अध्ययन

निरंतर
जेण्डर और शिक्षा संदर्भ समूह,
नई दिल्ली

लेखिका
जया शर्मा (निरंतर)
सोमा के. पार्थसारथी

विशेष सहयोग
अर्चना द्विवेदी (निरंतर)

आभार

हम उन सभी स्वयं सहायता समूह और फ़ेडरेशन के सदस्यों का तहेदिल से शुक्रिया अदा करते हैं जिन्होंने अपनी जिंदगी और काम से इतना कीमती वक्त निकाला और अपने विचार, अपने अनुभव हमारे साथ बांटे समुदाय के स्तर पर काम करने वाले उन स्टाफ़ सदस्यों का भी धन्यवाद जो फील्ड में हमारे साथ गए और जिन्होंने हमारी कई यात्राओं के लिए इंतज़ाम किए। हम विभिन्न कार्यक्रमों के नेतृत्त्वकारी साथियों का भी आभार प्रकट करते हैं। उन्होंने बड़ी साफगोई और खुलेपन से अपने कामों के बारे में हमें बताया तभी यह अध्ययन सम्भव हो पाया। स्वयं सहायता समूह और फ़ेडरेशन के सदस्यों के साथ संवाद में शोध दल के स्थानीय सदस्यों ऊषा रानी (हैदराबाद) और शीतल घेलानी (बड़ोदा) का अनुभव व काबिलियत हमारे लिए अत्यन्त मददगार साबित हुए। इन दोनों को बहुत बहुत धन्यवाद। उन साथियों के भी हम आभारी हैं जिन्होंने इस रिपोर्ट के लंबे ड्राफ्ट को पढ़ा और अपनी राय दी। सी.पी. सुजया की विशेष धन्यवाद। रुनू ने इस रिपोर्ट को 'देखने लायक' बना दिया और 'पुल आउट्स' को संभव बनाया। उनकी डिजाइनिंग के लिए धन्यवाद। गौतम भान के प्रति आभार प्रकट करने के लिए तो हमारे पास शब्द ही नहीं हैं। यह उनकी बेजोड़ संपादन क्षमता का ही फल है कि वह 500 पन्ने के बेतरतीब गट्ठर में से इस रिपोर्ट जैसी चीज को बाहर निकाल लाए और वह भी इतने शानदार ढंग से। धन्यवाद गौतम। अन्त में, अंग्रेज़ी से हिन्दी में इस रिपोर्ट का अनुवाद करने के लिए बहुत शुक्रगुज़ार हूं। सहजता से अनुवाद कर पाना अपने आप में एक कला है।

विषयवस्तु

भूमिका		4
कार्यक्रमों का विवरण		19
पद्धति		25
अध्याय 1	स्वयं सहायता समूह, सशक्तीकरण एवं गरीबी : वास्तविकता	33
अध्याय 2	स्वयं सहायता समूह, शिक्षा एवं साक्षरता : हस्तक्षेपों का आकलन	91
अध्याय 3	माइक्रो क्रेडिट का तर्क	146
निष्कर्ष		178
परिशिष्ट 1	द्वितीयक दस्तावेज़ों की समीक्षा	199
परिशिष्ट 2	स्वयं सहायता समूहों और माइक्रो क्रेडिट के विषय में निरंतर द्वारा आयोजित गतिविधियां	221
परिशिष्ट 3	साक्षरता संबंधी हस्तक्षेप	222

भूमिका

हमारे देश में स्वयं सहायता समूह (एस.एच.जी) दिन दूनी, रात चौगुनी तेज़ी से फैलते जा रहे हैं। इन समूहों को प्रोत्साहित करने वाली ताकतों में सरकार, बैंक, माइक्रो क्रेडिट संस्थान (माइक्रो फाइनेंस इंस्टीट्यूशंस – एम.एफ.आई), स्वयंसेवी संस्थाएं (एन.जी.ओ), प्राइवेट कम्पनियां और विकास एवं वित्त के क्षेत्र में सक्रिय बड़ी–बड़ी अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएं शामिल हैं। स्वयं सहायता समूह माइक्रो क्रेडिट आधारित ऐसे समूह हैं जिनमें औरतों को कर्ज़ा लेने और चुकाने के लिए समूह के तौर पर इकट्ठा किया जाता है। इस परिघटना का आकार सकते में डाल देता है। अकेले स्वर्ण जयंती ग्रामीण स्वरोजगार योजना (एस.जी.एस.वाई) के तहत ही देश भर में लगभग 20 लाख स्वयं सहायता समूह चलाए जा रहे हैं। ऋण हेतु स्वयं सहायता समूहों को बैंकों से जोड़ने के लिए के माध्यम से लगभग 1.6 करोड़ गरीब परिवारों को औपचारिक बैंकिंग व्यवस्था तक पहुंच मिली है। देश भर में स्वयं सहायता समूहों की संख्या कितनी है, इसके बारे में कोई निश्चित आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी उपरोक्त तथ्यों से इस बात का अंदाजा ज़रूर हो जाता है कि यह परिघटना कितनी व्यापक है।

स्वयं सहायता समूहों में हमारी दिलचस्पी का एक और बुनियादी कारण रहा है। इन समूहों में से 90 प्रतिशत केवल महिलाओं के समूह हैं। स्वयं सहायता समूहों को बढ़ावा देने वालों का दावा है कि वे इन औरतों की जिंदगी को आमूल रूप से बदल देने वाले हैं। स्वयं सहायता समूहों का इस्तेमाल करने वालों में जो भारी विविधता है और जितने बड़े पैमाने पर ये कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, उसके कारण यह परिघटना देश की करोड़ों गरीब औरतों की जिंदगी को दिनोंदिन और ज़्यादा प्रभावित करती जा रही है।

स्वयं सहायता समूहों के बारे में तमाम तरह के दावे किए जाते हैं। मसलन, कि इन समूहों के ज़रिए उन लोगों को ऋण उपलब्ध कराया जा रहा है जिन्हें पहले उसकी कोई उम्मीद नहीं थी। सबसे विशेष दावा यह है कि इन योजनाओं से गरीबी उन्मूलन हो रहा है और महिलाओं का सशक्तीकरण हो रहा है।

स्वयं सहायता समूहों को एकजुटता के ऐसे मंचों के रूप में पेश किया जाता है जिनके ज़रिए औरतें भेदभाव भरे तौर–तरीकों को आड़े हाथों ले सकती हैं,

स्वयं सहायता समूहों से जुड़ी औरतों के ज़मीनी हालात कैसे हैं? क्या उनके बीच लाभों का समान बंटवारा होता है? बुनियादी सेवाएं मुहैया करवाने वाले एजेन्सी के रूप में राज्य की भूमिका पर एस.एच.जी. परिघटना से क्या असर पड़ा है?

अपनी उद्यमशीलता को साकार करने के लिए कर्ज़ा हासिल कर सकती हैं, घर की ज़रूरतों के लिए कर्ज़ा उठा सकती हैं और सरकारी सेवाओं तक पहुंच की मांग व अभिशासन व्यवस्था में अपनी जगह का दावा कर सकती हैं।

कुछ ख़ास स्वयंसेवी संस्थाएं और सरकारी कार्यक्रमों में कुछ ख़ास जिले ऐसे हैं जहां ये दावे साकार होते दिखायी देते हैं। वहां स्वयं सहायता समूह सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक सशक्तीकरण के अपने दावों को पूरा करने की तरफ कदम उठाते दिखते हैं। समर्पित कार्यकर्त्ताओं और सांगठनिक नेतृत्त्व की कोशिशों से स्वयं सहायता समूह विकास की रणनीतियों में एक महत्त्वपूर्ण उपकरण के रूप में इस्तेमाल किए जा रहे है। दरअसल, स्वयं सहायता समूहों का आकर्षण ऐसे प्रयोगों की सफलता गाथाओं में निहित है। एस.एच.जी मॉडल का आकर्षण इस बात में है कि उसके ठोस फायदे तत्काल मिलते दिखाई पड़ने लगते हैं : औरतें समूह में एकजुट होती हैं और सामूहिक रूप से आवाज़ उठा सकती हैं; जिन्हें अब तक सूदखोरों और महाजनों के अलावा और कहीं से कर्ज़ा नहीं मिल पाता था या बहुत कम विकल्प थे। उनके पास छोटे मोटे कर्ज़े की फौरन और पहले से ज़्यादा संभावना आ गई है; और उन औरतों की कहानियां तो प्रेरित करती ही हैं जिन्होंने ऐसे कर्ज़े लेकर छोटे मोटे काम धंधे शुरू किए हैं और आत्मनिर्भरता की राह पर कदम उठाने शुरू कर दिए हैं। इस प्रयोग में आकर्षक संभावनाओं की भरमार है: जेंडर न्याय और सशक्तीकरण; राजनीतिक एवं सामाजिक सहभागिता का मौका; गरीबों के लिए कर्ज और उसमें ठोस, फ़ौरी इज़ाफा; तथा निजी पहल पर शुरू की गई उत्पादक आर्थिक गतिविधियों में गरीबों का समावेश। इस प्रयोग में बहुत कुछ दांव पर लगा हुआ है और इन समूहों से लोगों की उम्मीदें बहुत ज़्यादा हैं। शायद इसी कारण हमें इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि हम इस परिघटना को अच्छी तरह जानते बूझते हों और उस पर नज़र रखते हों।

अभी तक स्वयंसेवी संस्थाओं और अन्य संगठनों के भीतर भी स्वयं सहायता समूहों के बारे में संवाद और बहस लगभग न के बराबर ही रहा है। विकास और जेंडर के विषयों पर काम करने वालों का मानना है कि इस प्रयोग के बारे में प्रचलित न्यूनतावादी दृष्टिकोण के कारण बहस की गुंजाइश ही नहीं रहती। उनका कहना है कि माइक्रो क्रेडिट योजनाओं के ज़रिए गरीब औरतों को कम ही मिल रहा है; 'कुछ न होने से कुछ होना बेहतर है'। यह भय इस धारणा पर आधारित है कि एस.एच.जी समूहों की आलोचना से कहीं पूरा प्रयोग ही पटरी से न उतर जाए।

इन संशयों के बावजूद, महिला सशक्तीकरण के लिए काम करने वाले हमारे जैसे लोगों का मानना है कि जिस परिघटना से इतनी सारी औरतों की जिंदगी

जुड़ी हुई है; जो परिघटना उनकी जिंदगी को इस कदर बुनियादी तौर पर बदल देने का दावा करती है उसका आकलन किया जाना ज़रूरी है। ऋण तक सबको पहुंच मिले यह प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है। जिन्हें यह अधिकार नहीं मिलता उनकी मदद करना निश्चय ही एक उपलब्धि की बात है। लेकिन, औरतों की जिंदगी में स्वयं सहायता समूहों के असर को मापने के लिए सिर्फ इस बात को कसौटी नहीं बनाया जा सकता कि अब उन्हें ऋण मिलने लगा है। न ही उस प्रक्रिया को अनदेखा किया जा सकता है जिसके ज़रिए यह ऋण उपलब्ध कराया जा रहा है। ऐसे में कुछ बुनियादी सवाल खड़ा करना ज़रूरी है।

जो औरतें इन समूहों से जुड़ी हुई हैं उनकी जिंदगी के ज़मीनी हालात कैसे हैं? क्या स्वयं सहायता समूहों की सदस्यता और कर्ज़ों से औरतों का सशक्तीकरण हुआ है? अगर हां, तो किस तरह और किस हद तक? क्या उनकी आर्थिक कमजोरी कम हुई है? क्या लाभों का बराबर बंटवारा हो रहा है? या क्या कुछ महिलाओं को औरों के मुकाबले ज़्यादा आसानी से व ज़्यादा मात्रा में कर्ज़े मिल रहे हैं? लाभों के बंटवारे को निर्धारित करने वाले कारक कौन–से हैं? इन कार्यक्रमों की सफलता या विफलता किस बात से तय होती है? इन कार्यक्रमों के होने से बुनियादी सेवाएं उपलब्ध कराने वाले के तौर पर राज्य की भूमिका पर क्या असर पड़ता है?

इस अध्ययन में हम इन सवालों की ही पड़ताल करेंगे। हम हर सवाल को विभिन्न स्तरों पर देखेंगे: औरतों के व्यक्तिगत स्तर पर, स्वयं सहायता समूह के स्तर पर, परिवार के स्तर पर, बाज़ार के स्तर पर और संस्थानों व सरकार के साथ संबंधों के स्तर पर। हमारी नज़र सिर्फ इस बात तक सीमित नहीं है कि स्वयं सहायता समूहों के आने से औरतों की जिंदगी के भौतिक हालात में क्या असर पड़ा है। हम माइक्रो क्रेडिट, जेंडर और विकास के क्षेत्र में बदलते विमर्श को भी समझना चाहते हैं इस बात को ध्यान में रखते हुए कि यह नया विमर्श और व्यवहार ज़मीनी हालात को कितने गहरे तौर पर प्रभावित करता है। इसके लिए हमने एक अनूठी और हमारी राय में, एक प्रभावी कसौटी शिक्षा का इस्तेमाल किया है। हमारा विश्वास है कि शिक्षा का मतलब केवल औपचारिक स्कूली शिक्षा या लिखने–पढ़ने की काबिलियत से कहीं ज़्यादा होता है। हम शिक्षा को एक व्यापक फलक पर देखते हैं। हम उसे सीखने की एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित करते हैं जिसमें साक्षरता, सूचनाओं तक पहुंच और आलोचनात्मक ढंग से सोचने बूझने की प्रक्रियाएं भी शामिल होती हैं जिनसे 'सीखने वालों' को अपनी जिंदगी के हालात और अपने इर्द गिर्द ही वृहत्तर संरचनाओं व विचारधाराओं के बीच निहित संबंधों को समझने की सलाहियत मिलती है। जैसा कि हमने इस अध्याय में आगे कहा है, शिक्षा उन सारी परिधियों गरीबी उन्मूलन, सशक्तीकरण, सामाजिक न्याय और विकास से जुड़ी हुई है जिनको स्वयं सहायता समूहों का यह मॉडल प्रभावित करने की बात कर रहा है। इसीलिए, हमारी राय में यह एक सटीक और महत्त्वपूर्ण पैमाना

शिक्षा को हम सीखने की एक ऐसी प्रक्रिया मानते हैं जिसमें साक्षरता, सूचनाओं तक पहुंच और आलोचनात्मक मूल्यांकन की ऐसी क्षमता शामिल है जिसके जरिए भोगी हुए सच्चाइयों और व्यापक संरचनाओं के बीच संबंधों को समझा जा सकता है।

है जिसके ज़रिए स्वयं सहायता समूहों की परिघटना का आकलन और विश्लेषण किया जा सकता है।

संक्षेप में, इस अध्ययन का मकसद यह है कि शिक्षा के ज़रिए:

- स्वयं सहायता समूहों में शामिल होने के बाद औरतों की जिंदगी में जो बदलाव आए हैं, ख़ासतौर से सशक्तीकरण और गरीबी उन्मूलन के लिहाज़ से, उनके बारे में औरतों की राय को सामने लाया जाए और समझा जाए।
- इस बात का अध्ययन किया जाए कि एक मंच के रूप में स्वयं सहायता समूह जेंडर, न्याय और समता के मुद्दों पर काम करने के लिहाज़ से कितने कारगर रहे हैं।
- इस बात का आकलन किया जाए कि प्रायोजक एजेंसियों ने सशक्तीकरण और गरीबी उन्मूलन के लिए किस तरह का वातावरण उपलब्ध कराया है।

जैसा कि पद्धति वाले भाग में आगे बताया गया है, यह अध्ययन चुनिंदा स्वयं सहायता समूह कार्यक्रमों की एक सघन गुणात्मक जांच पर आधारित है। साथ ही यह रिपोर्ट स्वयं सहायता समूहों के एक व्यापक मात्रात्मक सर्वेक्षण (जिसे इस अध्ययन में निरंतर सर्वे कहा गया है) का भी सहारा लेती है।

स्वयं सहायता समूह और माइक्रो क्रेडिट का उदय : एक संक्षिप्त इतिहास

हमारे देश में औरतों के समूह बनाने की परिघटना कोई नई नहीं है। गरीबों के लिए ऋण की व्यवस्था कोई नई बात नहीं है। लेकिन बचत के आधार पर महिला समूहों को ऋण उपलब्ध कराने की व्यवस्था तुलनात्मक रूप से नई है। नब्बे के दशक के शुरुआती सालों में यह विचार विकास के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण रणनीति के रूप में सामने आया।

सोच में बदलाव

सशक्तीकरण तथा अधिकारों के लिए दबाव हेतु मंच के रूप में महिला समूह न्याय के लिए चले संघर्षों में कई दशकों से केंद्रीय तत्त्व रहे हैं। ये समूह चाहे वर्गीय संघर्षों में बने हों, चाहे स्वायत्त महिला आंदोलन का परिणाम हों, चाहे दलित या जनजातीय समुदायों के संघर्षों से उपजे हों या विकास के क्षेत्र में सक्रिय स्वयंसेवी संस्थाओं ने बनाएं हों – एकजुटता व सामूहिक प्रयास के सिद्धांत पर आधारित रहे हैं। असमानता और सत्ता संबंधों की संरचनाओं व प्रक्रियाओं से संबंधित आलोचनात्मक सोच विचार महिला संगठनों के उदय का केंद्रीय तत्त्व रहा है।

सेवा और वर्किंग वीमेंस फोरम (W.W.F.) जैसे संगठनों द्वारा शुरू किए गए प्रयासों के ज़रिए इस परिदृश्य में ऋण का तत्त्व सत्तर के दशक में सामने आता है। आर्थिक रूप से हाशिए पर स्थित औरतों के संघर्षों में ऋण के लिए एक ऐसे अधिकार के तौर पर आवाज़ उठायी जाती थी जिसके ज़रिए औरतें अपनी हैसियत बेहतर बना सकती हैं। माइक्रो क्रेडिट आधारित स्वयं सहायता समूहों का चलन पहली बार देश के दक्षिणी राज्यों में मायराडा जैसी स्वयंसेवी संस्थाओं ने शुरू किया था। यह समुदायों को विकास के लिए संगठित करने का एक तरीका था और इसमें गरीबों पर मुख्य ज़ोर दिया जाता था। इसके बाद बहुत सारी स्वयंसेवी संस्थाओं और संगठनों ने भी देश भर में ऋण डिलीवरी और ऋण हेतु बैंकों से जुड़ाव के लिए इसे मॉडल के तौर पर अपनाना शुरू कर दिया।

समूह निर्माण के इन प्रयासों की सफलता को देखते हुए सरकार भी इस रणनीति को अपनाने लगी। सरकारी विकास रणनीतियों में महिलाओं के ऋण–केंद्रित समूह बनाए जाने लगे। इस बदलाव के पीछे कई कारण थे।

जब सेवा और (W.W.F.) जैसे संगठनों के अनुभवों से यह साबित हो गया कि मर्दों के मुकाबले औरतें कर्ज़ा चुकाने में कहीं ज़्यादा बेहतर हैं तो सरकार और राष्ट्रीयकृत बैंकों को भी औरतों को कर्ज़ा देने की अहमियत समझ में आने लगी। माइक्रो क्रेडिट आधारित स्वयं सहायता समूहों के पक्ष में यह एक महत्त्वपूर्ण तर्क था। समूह बन जाने पर यह सुनिश्चित हो जाता था कि अन्य सदस्यों के दबाव में औरतें कर्ज़ा ज़रूर चुका देंगी। अगर ऋण वापसी की दर अच्छी हो तो कर्ज़ा देने वाले ज़मानत या रेहन की शर्त छोड़ने को भी तैयार थे। यहां इस बात पर ध्यान देना ज़रूरी है कि स्वयं सहायता समूहों की स्थापना के पीछे वित्तीय सिद्धांत यह था कि सामूहिक ज़िम्मेदारी के चलते कर्ज़ देनेवालों का जोखिम और विनिमय लागतें कम हो जाएंगी। कहने का मतलब यह है कि औरतों को बचत करनी थी और समूह के रूप में बचत करनी थी। यह बात अब तक चली आ रही सरकारी ऋण रणनीति के बिल्कुल विपरीत थी।

अब तक ऋण व्यक्तिगत स्तर पर पुरुषों को दिए जाते थे। इस व्यवस्था में न केवल बहुत सारे कर्ज़े

सूक्ष्म बचत, माइक्रो क्रेडिट, माइक्रो फाईनेन्स और स्वयं सहायता समूह

सूक्ष्म बचत का आशय छोटी बचत से होता है। गरीब परिवार अपने दैनिक खर्चे में से कुछ पैसा निकाल कर या अपने भोजन अथवा घरेलू उपभोग में कटौती करके इस तरह की बचत करते हैं। गरीब औरतों और परिवारों द्वारा की जाने वाली इन छोटी बचतों की परिघटना को ही बाद में माइक्रो क्रेडिट की अवधारणा में ढाल दिया गया। बाहरी वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराने के लिहाज़ से बैंक आदि वित्तीय संस्थानों से इस परिघटना का सीधा संबंध होता है।

माइक्रो क्रेडिट की व्यवस्था बहुत सारे रूप ग्रहण कर सकती है। भारत में सबसे आम रूप स्वयं सहायता समूह का रहा है। स्वयं सहायता समूहों में औरतों के समूहों को छोटे–छोटे कर्ज़े दिए जाते हैं। इस कर्ज़े को लौटाने की ज़िम्मेदारी पूरे समूह पर होती है। गरीब औरतों के छोटे समूहों को कर्ज़ देने की प्रक्रिया को सशक्तीकरण करने वाली अवधारणा भी माना जाता है। अब तक के नतीजों से पता चलता है कि इस मॉडल में कर्ज़ वापसी का स्तर बहुत ऊंचा रहा है। ऐसा शायद इसलिए है क्योंकि पूरे समूह की ज़िम्मेदारी होने के कारण औरतों पर कर्ज़ा चुकाने के लिए एक सामूहिक दबाव बना रहता है। कर्ज़ वापसी की इस ऊंची दर से वित्तीय संस्थानों को भी आश्वासन मिलता है और वे रेहन तथा भारी विनिमय लागतों के बिना काम करने को तैयार हो जाते हैं। विनिमय लागतों में इसलिए भी कमी आई है क्योंकि बैंकों ने पैसे की सार–संभाल और वितरण की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर करने की बजाय यह काम भी समूहों के ज़िम्मे ही छोड़ दिया है। इसलिए स्वयंसेवी संस्थाएं या अन्य मध्यस्थ संगठन ऋण वितरण और ऋण संग्रह का असली काम तो करते ही हैं, खाते भी संभालते हैं।

हाल के सालों में माइक्रो फाइनेन्स का खाका माइक्रो क्रेडिट व्यवस्था से आगे जा चुका है। अब उसमें स्वास्थ्य एवं जोखिम बीमा, सुरक्षा, आवास, वित्त तथा अन्य आर्थिक उत्पादों का भी समावेश कर लिया गया है। अब माइक्रो फाइनैन्स की व्यवस्था गरीबों पर केंद्रित आर्थिक प्रयासों के विस्तार और गहराई की कहानी बन गया है।

वापस नहीं आ पाते थे बल्कि बहुत सारा पैसा सही जगह पहुंच भी नहीं पाता था। मिसाल के तौर पर, एक अध्ययन से पता चला कि गरीबी रेखा से नीचे जी रहे परिवारों में से एक भी ऐसा परिवार नहीं था जिसे आई.आर.डी.पी. (एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम) जैसे सुज्ञात सरकारी सहायता कार्यक्रम से इस रेखा से ऊपर आने में मदद मिली हो। इसीलिए औरतों को कर्ज़ा देने की नीति अपनाई गई।

ऋण का तत्त्व तस्वीर में आने से पहले भी सरकार महिलाओं को समूहों में संगठित करने का प्रयास कर रही थी। समुदाय–विकास प्रयासों में महिला मंडल आदि का गठन किया जाता था। लेकिन 1975 में गठित की गई कमेटी ऑन दि स्टेटस ऑफ वीमेन इन इंडिया की रिपोर्ट से पता चला कि इस पद्धति से महिलाओं को फायदा नहीं हुआ। साठ के दशक से बाद का व्यापक आर्थिक संदर्भ ऐसा था कि औद्योगिक एवं कृषि नीतियों के कारण गरीबों की हालत लगातार बिगड़ती जा रही थी। घर की अर्थव्यवस्था चलाने वाली औरत थी इसलिए उसकी हालत सबसे ज़्यादा खराब थी। इस बिगड़ती हालत से, विमर्श के स्तर पर वीमेन इन डिवेलपमेंट (विकास में महिलाएं – W.I.D.) पद्धति को बढ़ावा मिला। इस नयी सोच में औरतों पर विशेष ध्यान देने और विकास के विमर्श में औरतों को शामिल करने पर ख़ास ज़ोर दिया गया। यह रणनीति सत्तर के दशक में आजमायी जाने लगी थी। इसी के तहत ड्वाक्रा (D.W.C.R.A.) और स्टेप (STEP) जैसे कार्यक्रम शुरू किए गए। इन दोनों कार्यक्रमों में स्वयं सहायता समूहों का गठन किया जाता था। इन कार्यक्रमों में इस बात को मान्यता दी गई कि औरतों को भी कर्ज़े की ज़रूरत होती है। लेकिन इस अभाव को दूर करने की उनकी पद्धति काफी समग्रतावादी थी। उन कार्यक्रमों में ऋण के साथ साथ जागरूकता निर्माण, क्षमता

व्यक्तिगत रूप से पुरुषों को केंद्र में रखकर बनाई गई पुरानी ऋण नीति में पैसा भी वापस नहीं आता था और लाभान्वितों को मदद भी नहीं मिलती थी।

विकास और बाज़ार से जुड़ाव जैसे अन्य प्रावधानों का भी इंतज़ाम किया गया था। सामूहिक आर्थिक उद्यमों को भी बढ़ावा दिया जाता था। लेकिन, जैसा कि हम इस रिपोर्ट में आगे देखेंगे, समग्रतावादी ऋण पद्धति पर यह शुरुआती ज़ोर ज़्यादा समय तक कायम नहीं रह पाया।

वित्तीय संस्थानों की ज़रूरतें

1969 से बैंकों का राष्ट्रीयकरण शुरू हुआ। भारतीय रिज़र्व बैंक सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ग्रामीण इलाकों में बैंकों की शाखाएं खोलने पर ज़ोर देने लगा। विभिन्न प्रकार के नीतिगत निर्देशों का पालन किया जाने लगा। ग्रामीण शाखाओं को तेज़ी से फैलाने और प्राथमिकता वाले क्षेत्रों (जिनमें कृषि भी शामिल है) को अनिवार्य रूप से कर्ज़ा देने की नीति बनायी गई। हाशियाई समुदायों और गरीब परिवारों की मदद के लिए सब्सिडी आधारित विशाल ऋण कार्यक्रम शुरू किए गए और ब्याज दरों पर नियंत्रण के लिए कदम उठाए गए। इन नीतियों को 35 साल से ज़्यादा समय तक चलाया गया।

इन्हीं कोशिशों से ऐसे ग्रामीण इलाकों में 5,000 से ज़्यादा नई शाखाएं खोली गईं जहां अब तक बैंक नहीं थे। इस तरह ग्रामीण शाखाओं में सात गुना इज़ाफा हुआ। नब्बे के दशक की शुरुआत में इस रणनीति को त्याग दिया गया हालांकि ग्रामीण इलाकों में किसानों और कृषि क्षेत्रा को पहले के

सरकारी स्वयं सहायता समूहों का फैलाव

योजना आयोग के मध्यावधि आकलनों से पता चलता है कि महिला एवं बाल विभाग के अंतर्गत 10 लाख से ज़्यादा स्वयं सहायता समूह चल रहे हैं। ग्रामीण विकास विभाग के अंतर्गत चलने वाले समूहों की संख्या 17.41 लाख है जो एस.जी.एस.वाई. (स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोज़गार योजना) के अंतर्गत बनाए गए हैं। नाबार्ड के अंतर्गत पिछले 12 साल में 15.2 लाख स्वयं सहायता समूहों (अन्य एजेंसियों के ज़रिए) को प्रायोजित किया गया है।

मुकाबले बेहतर कर्ज़े मिल रहे थे (कुल कर्ज़ों में इस क्षेत्र का हिस्सा 40% से ज़्यादा हो चुका था)। इस रणनीति को यह कहकर त्याग दिया गया कि इसमें बैंकों को बहुत ज़्यादा लागत उठानी पड़ती है जिसका कोई फायदा नहीं होता। यह फैसला इस तथ्य के बावजूद लिया गया था कि इन प्रयासों के सामाजिक परिणाम महत्त्वपूर्ण थे और इन आपूर्ति केंद्रित प्रयासों से लोगों की पहुंच बढ़ रही थी। नब्बे के दशक में बैंकिंग क्षेत्र की कुशलता बढ़ाने के लिए शुरू किए गए बैंकिंग सुधारों के लागू होने से ग्रामीण ऋण व्यवस्था पर सीधा नकारात्मक असर पड़ा। बैंकों की शाखाओं में ग्रामीण शाखाओं का हिस्सा 1969 में 17.6% था जो मार्च 1990 में बढ़कर 58.2% तक पहुंच गया था। 1998 तक वह घटते घटते 50% से भी नीचे चला गया। मार्च 1994 से मार्च 2000 के बीच 2,723 ग्रामीण बैंक शाखाओं को बंद किया जा चुका था। ग्रामीण इलाकों में ऋण जमा अनुपात 1990 में लगभग 66% था जो 2002 में लगभग 56% रह गया था।

यही वह संदर्भ था जिसमें बैंक शाखाओं वाले मॉडल की जगह माइक्रो क्रेडिट मॉडल को बढ़ावा दिया जाने लगा ताकि बैंक कम–से–कम ओवरहेड लागतों के सहारे ग्रामीण इलाकों में पैठ बना सकें। उदारीकरण के युग में माइक्रो क्रेडिट क्षेत्र में निजी व्यावसायिक बैंकों की घुसपैठ और बढ़ी। नाना प्रकार से काम करने वाले अनगिनत माइक्रो क्रेडिट संस्थान सक्रिय हो गए। उनकी ब्याज दरों पर कोई अंकुश नहीं रहा और वे अपने ढंग की वसूली पद्धतियां अपनाने लगे।

सरकार ने भी स्वयं सहायता समूहों को व्यावसायिक बैंकों के साथ लेन देन के योग्य बनाने के लिए नीतिगत स्तर पर माइक्रो क्रेडिट को बढ़ावा दिया। ग्रामीण इलाकों में नाबार्ड की सहायता से चलने वाले सरकारी और सहकारी (कोऑपरेटिव) बैंकों ने भी ज़्यादा–से–ज़्यादा बचतों को कब्ज़े में लेने और अपने ग्राहकों का दायरा बढ़ाने के लिए एस.एच.जी. को एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में अपनाया है। व्यावसायिक कम्पनियां भी स्वयं सहायता समूहों के ज़रिए ग्रामीण इलाकों के विशाल उपभोक्ता बाज़ार में पैठ बनाने लगी हैं। I.C.I.C.I. देश के सबसे बड़े निजी बैंकों में शुमार होता है। उसका माइक्रो फाईनेन्स कार्यक्रम तेज गति से आगे बढ़ रहा है। 2001 में उसके माइक्रो फाईनेन्स ग्राहकों की संख्या केवल 10,000 थी। सहयोगी माइक्रो फाईनेन्स संस्थानों के ज़रिए अब उसके ऐसे ग्राहकों की संख्या 12 लाख तक पहुंच

नब्बे के दशक में बैंकिंग क्षेत्र की कुशलता बढ़ाने के लिए शुरू किए गए बैंकिंग सुधारों से ग्रामीण ऋण व्यवस्था पर सीधा और नकारात्मक असर पड़ा है।

चुकी है। 2001 में उसके बकाया पोर्टफोलियो का मूल्य 0.20 अरब रुपये था जो अब 9.98 अरब रुपए तक पहुंच चुका है।

वैश्विक संदर्भ

इस बात को दर्ज करना ज़रूरी है कि माइक्रो क्रेडिट आधारित एस.एच.जी. मॉडल भारत की ही खासियत है। हालांकि भारत में एस.एच.जी. परिघटना को बढ़ावा देने में कई अन्य कारकों का भी हाथ रहा है लेकिन उनका उदय स्वयंसेवी संस्थानों की इस सोच पर आधारित रहा है कि सामूहिक सशक्तीकरण के लिए कर्ज़ा एक अनिवार्य तत्त्व होता है। यद्यपि भारतीय एस.एच.जी. मॉडल विख्यात ग्रामीण बैंक मॉडल से पुराना है लेकिन बंग्लादेशी माइक्रो क्रेडिट महापरियोजना के अनुभवों से हमारे कार्यक्रमों पर भी भारी असर पड़ा है। लेकिन यह भी सच है कि ग्रामीण बैंक वाले मॉडल में भी काफी बदलाव आ रहे हैं। उसमें भी सामाजिक न्याय का एजेंडा शामिल रहा है लेकिन अब यह मॉडल भी वित्तीय कुशलता पर ही आश्रित होता जा रहा है। ग्रामीण बैंक मॉडल के एक समूह में ऋण बचत गतिविधियों में सक्रिय महिलाओं की संख्या 5 तक भी हो सकती है जिसका मतलब है कि यह मॉडल भी कर्ज़ा बांटने के वित्तीय एजेंडा पर ही ज़्यादा केंद्रित है।

फडिंग एजेंसीयों का भी ध्यान इस मॉडल की तरफ आकर्षित हुआ क्योंकि इसमें वित्तीय प्रबंधन पर ज़ोर था। यह मॉडल इस वजह से भी आकर्षक था क्योंकि फडिंग एजेंसी संसाधनों के घटते जाने के संदर्भ में अपने हाथ खींचने की ज़रूरत महसूस कर रहे थे। इस प्रकार माइक्रो क्रेडिट मॉडल में वित्तीय टिकाऊपन पर सबसे ज़्यादा ध्यान दिया गया। प्रभावी वित्तीय प्रबंधन पूरी प्रक्रिया का मूल बिंदु बन गए। बाकी कारकों को अनदेखा कर दिया गया। माइक्रो क्रेडिट आधारित महिला समूहों के बड़े पैमाने पर उदय को इस वैश्विक संदर्भ में भी देखा जाना चाहिए।

विकास की रणनीति के रूप में माइक्रो क्रेडिट को वैश्विक स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों द्वारा विकास के क्षेत्र में अस्सी के दशक तक प्रयासों की संभावित विफलता की वजह से भी बढ़ावा मिला। इस शंका को देखते हुए एक ऐसी रणनीति की सख्त ज़रूरत थी जो ज़मीनी हालात को फौरन प्रभावित कर सके। फलस्वरूप, माइक्रो क्रेडिट आधारित महिला समूहों को प्रोत्साहित किया जाने लगा। इसी प्रोत्साहन का परिणाम है कि आज माइक्रो क्रेडिट दुनिया का सबसे बड़ा वित्तीय ऋण कार्यक्रम बन चुका है। इसे गरीबी उन्मूलन और महिला सशक्तीकरण के लिए सबसे उल्लेखनीय रणनीति माना जा रहा है। विविध सामाजिक–राजनीतिक एवं भौगोलिक हालात वाले विभिन्न देशों में इसे अपनाया गया है। विकासशील देशों की सरकारों, फडिंग एजेन्सीयों और बैंकिंग संस्थानों ने माइक्रो फाईनेन्स को एक वांछित विकास रणनीति के रूप में अपनाया है।

कर्ज़े पर फोकस नवउदारवादी फ्रेमवर्क का हिस्सा है। इस फ्रेमवर्क के तहत ही यह दावा किया जाता है कि विकास से जुड़ी समस्यायों का हल करने के लिए ऋण की उपलब्धता और उसके साथ सूक्ष्म उद्यम के द्वारा किया जा सकता है। इस बात को विकास के उस ऋण आधारित व्यापक मॉडल के आइने में देखा जाना चाहिए जिसके चलते संपन्न देश विकासशील देशों के लिए कर्ज़ की उपलब्धता को पिछड़ेपन से उबरने की केंद्रीय रणनीति मानने लगे हैं। बहुत सारे जानकारों का मानना है कि ऋण पर इस तरह के फोकस से संपन्न एवं गरीब देशों के बीच असमान आर्थिक एवं राजनीतिक संबंधों के कारण पैदा होने

वाले पिछड़ेपन जैसी बुनियादी समस्याओं से ध्यान बंटाने में मदद मिलती है।

स्वयं सहायता समूहों के साथ हमारे ताल्लुक को इस में समझा जाना चाहिए। रिपोर्ट के अगले भाग में उस प्रक्रिया का ब्यौरा दिया गया है जिसके ज़रिए स्वयं सहायता समूहों के साथ हमारा अपना जुड़ाव शुरू हुआ और कैसे व क्यों हमने एस.एच.जी. फ्रेमवर्क की पड़ताल के लिए शिक्षा को ही महत्त्वपूर्ण माना।

शिक्षा और सीखने की प्रक्रियाएं: अध्ययन का संदर्भ

स्वयं सहायता समूहों और महिलाओं के लिए उसकी प्रासंगिकता की दुनिया में निरंतर का सफर जेंडर और शिक्षा के क्षेत्र में उसके कामों से उपजा है। निरंतर जेंडर और शिक्षा पर काम करने वाला एक नारीवादी केंद्र है। हम शिक्षा को एक व्यापक तरह से समझते हैं। हमारी नज़र में ये सीखने की ऐसी प्रक्रिया हैं जिसमें साक्षरता, सूचनाओं तक पहुंच और आलोचनात्मक सोच–विचार की ऐसी प्रक्रियाएं शामिल हैं जिनके ज़रिए औरतों को अपने जीवन की हकीकत और अपने इर्द–गिर्द की व्यापक संरचनाओं व विचारधाराओं के बीच मौजूद संबंधों को समझने की क्षमता मिलती है। निरंतर ने फील्ड स्तर पर अपने प्रयासों के ज़रिए ऐसे शैक्षणिक अवसर मुहैया कराने का काम किया है। इसके लिए दृष्टिकोण और क्षमताओं का विकास करते हुए अन्य शैक्षणिक प्रयासों का और प्रभावी बनाने पर ज़ोर दिया गया है और पढ़ने व सीखने की सामग्री तैयार की गई है। हमने अन्य संगठनों के साथ जेंडर और शिक्षा के महत्त्व पर संवाद, अनुसंधान के ज़रिए शिक्षा के अवसरों व विषयवस्तु का विश्लेषण किया है तथा सरकार के स्तर पर नीतिगत एडवोकेसी की है।

हमने स्वयं सहायता समूहों की पड़ताल इसलिए भी शुरू की क्योंकि हम राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एन.पी.ई.), 1986 के संदर्भ में संपूर्ण साक्षरता अभियान (टी.एल.सी.) के फलस्वरूप महिला शिक्षा के लिए अवसरों में आ रहे बदलावों को समझना चाहते थे। एन.पी.ई. इस मान्यता पर आधारित है कि शिक्षा में सशक्तीकरण की संभावनाएं होती हैं। एन.पी.ई. में कहा गया है कि "शिक्षा को औरतों की परिस्थितियों में मूलभूत परिवर्तन के वाहक के तौर पर इस्तेमाल किया जाएगा...। राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था महिलाओं के सशक्तीकरण में सकारात्मक, हस्तक्षेपवादी भूमिका अदा करेगी।" जेंडर आधारित दृष्टि से इस नीति को एक प्रगतिशील नीति के रूप में मान्यता दी जाती रही है। खेद का विषय है कि इसके बावजूद महिलाओं को शिक्षा तक पहुंच मुहैया कराने के बारे में तमाम शब्दाडम्बर और दावों व आश्वासनों के बावजूद यह सरकार की प्राथमिकता का विषय नहीं है। यह बात बहुत सारे अध्ययनों से साबित हो चुकी है कि सशक्तीकरण में शिक्षा की अहम भूमिका है। इसके बावजूद नीति निर्माता इन अंतर्संबंधों को विरले ही कभी रेखांकित करते हैं। फलस्वरूप, महिलाओं के लिए शैक्षणिक अवसरों की उपेक्षा होने लगती है। यह बात उचित प्रयासों के कमी और पर्याप्त संसाधनों के अभाव में भी दिखाई देती है। महिला शिक्षा की उपेक्षा का भाव सबके लिए शिक्षा (एजुकेशन फॉर ऑल – ई.एफ.ए.) योजनाओं और कार्यक्रमों में भी दिखाई देता है जिनमें वयस्क औरतों की शिक्षा की संभावनाओं को सिरे से नजरअंदाज़ कर दिया गया है। यह मौकों को गवांते जाने की कहानी रही है।

महिला शिक्षा की यह उपेक्षा वैश्वीकरण के संदर्भ में और भी ज़्यादा खटकती है। वैश्वीकरण के परिवेश में महिलाओं के लिए ज़रूरी है कि वे व्यापक परिस्थिति

को समझें, विकास की मार और बदलते सामाजिक आर्थिक परिदृश्य का मज़बूती से सामना करने के लिए नई दक्षता विकसित करें। इसके लिए वयस्क, गैर औपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों की ज़रूरत और भी ज़्यादा हो जाती है। लेकिन महिलाओं और शिक्षा से संबंधित ऐसे कार्यक्रम उंगलियों पर गिने जा सकते हैं और जो हैं वे भी सीखने वालों की ज़रूरतों के प्रति संवेदनशील नहीं हैं। फलस्वरूप प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में यथास्थिति और ठहराव का जो संकट पैदा हुआ है उससे सीखने वालों के तौर पर महिलाएं गंभीर रूप से प्रभावित हुई हैं। हालांकि महिला सामाख्या और टी.एल.सी. के अनुभवों से पता चलता है कि इन कार्यक्रमों में हिस्सा लेने वाली महिलाओं की जागरूकता और आत्मविश्वास में इज़ाफा हुआ है लेकिन सरकार प्रौढ़ शिक्षा के असरदार मौके बंद करने पर ही आमादा है। शैक्षणिक नियोजन में वयस्क औरतों की ज़रूरतों की उपेक्षा बढ़ती जा रही है। प्राथमिक शिक्षा पर ज़ोर और महिला शिक्षा के प्रति सरकार की प्रतिबद्धता में कमी इस बात का संकेत है कि फ़ौरी समाधानों की चाह बढ़ती जा रही है और संरचनागत समस्याओं को दूर करने के लिए प्रयास नहीं किए जा रहे हैं। यह नवउदारवादी व्यवस्था की खासियत बन चुकी है।

नवसाक्षर महिलाओं के पास अपनी साक्षरता संबंधी दक्षता को टिकाए रखने और उसका इस्तेमाल करने के अवसर नहीं हैं। नतीजा यह हुआ है कि वे दोबारा निरक्षर हो चुकी हैं। इस ज़रूरत पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है कि औरतों ने हाल ही में जो आत्मविश्वास व निपुणता हासिल की है उसको बनाए रखने या मजबूत करने के लिए क्या किया जाए। जो औरतें काम के भारी बोझ के बावजूद साक्षरता अभियानों में हिस्सा ली हैं उनकी सारी मेहनत और समय बेकार जा चुका है। इस प्रकार, इन अभियानों में हिस्सा लेने वाली असंख्य महिलाओं को शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया गया है।

ग्रामीण महिलाओं के लिए उपलब्ध शिक्षा व साक्षरता के अवसरों की ज़मीनी हकीकत कैसी है, इस बात को और अच्छी तरह समझने के लिए निरंतर ने देश भर में महिलाओं के लिए शैक्षणिक कार्यक्रम चलाने वाले 6 संगठनों का अध्ययन किया। इस अध्ययन में हमने पाया कि महिलाएं लिखना पढ़ना चाहती हैं और शैक्षणिक अवसरों का लाभ उठाना चाहती हैं लेकिन सांगठनिक एजेंडा और दृष्टिकोण अकसर उनकी अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं होते। अध्ययन में जिन महिलाओं से बात की गई उनमें से बहुत सारी स्वयं सहायता समूहों और उनकी फेडरेशनों से जुड़ी हुई थीं। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया कि जैसे जैसे औरतों के लिए सीखने के अवसर घटते जा रहे थे, वैसे वैसे स्वयं सहायता समूहों पर फोकस बढ़ता जा रहा था। बचत एवं ऋण समूहों का गठन सरकारी सतत् शिक्षा कार्यक्रमों की प्राथमिक रणनीति बन गयी थी। इसके पीछे धारणा यह थी कि महज़ माइक्रो क्रेडिट समूहों के गठन से ही महिलाएं सक्रिय प्रतिक्रिया देने लगेंगी और इसी आधार पर औरतों के समूहों को टिकाए रखना संभव हो जाएगा। माइक्रो क्रेडिट की रणनीति में साक्षरता और शैक्षणिक मौकों को शामिल करने का कोई प्रयास नहीं किया गया।

साक्षरता अभियानों में बड़ी तादाद में आने वाली औरतों का समय और ऊर्जा निष्फल हो चुकी है। उन्हें शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया गया है।

जारी किए गए ऋण के आधार पर आय पूरक गतिविधियां पैदा करने के लिए भी ख़ास कोशिशें नहीं की गईं। चाहे किसी समूह को सरकारी कार्यक्रम के तहत बनाया गया हो, या किसी स्वयंसेवी संस्था ने बनाया हो, स्वयं सहायता समूहों के एजेंडा से शिक्षा मोटे तौर पर नदारद थी।

स्वयं सहायता समूहों की जिस परिघटना ने योजनाकारों, नीति निर्माताओं और विकास एजेंसियों को मंत्रमुग्ध किया हुआ है उसमें औरतों के सशक्तीकरण और गरीबी उन्मूलन की संभावना कितनी है यह समझने के लिए हमने शिक्षा के नज़रिए से इन समूहों का गहन अध्ययन शुरू किया।

स्वयं सहायता समूहों के अध्ययन के लिए शिक्षा सही कसौटी क्यों है?

हमारी राय में शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण मानक है जिसके ज़रिए गरीब औरतों की जिंदगी में स्वयं सहायता समूहों के निहितार्थों को आंका जा सकता है और महिला सशक्तीकरण के विमर्श में आ रहे आमूल बदलाव को समझा जा सकता है। इस बारे में हमारे तर्क इस प्रकार हैं :

एक साधन के तौर पर औरतें

माइक्रो क्रेडिट पद्धति पर करीब करीब केवल इसलिए ध्यान केंद्रित किया गया है क्योंकि यह माना जाता है कि औरतें कर्ज़ा चुकाने में सबसे कुशल दिखायी देती हैं और उनके ज़रिए परिवार व घर को सीधे सीधे प्रभावित किया जा सकता है। पूरा ज़ोर इस बात पर है कि औरतों पर ध्यान केंद्रित करने से संस्थानों, परिवारों और अर्थव्यवस्था को कितना फायदा होगा। माइक्रो क्रेडिट के केंद्र में खुद औरतों की ज़रूरतें नहीं हैं। ऐसे में इस बात की जांच करना महत्त्वपूर्ण है कि माइक्रो क्रेडिट आधारित स्वयं सहायता समूहों में औरतों के सशक्तीकरण पर केंद्रित शिक्षा के एजेंडा को किस हद तक और किस तरह शामिल किया जाता है या उसका कितना निषेध किया जाता है क्योंकि इस तरह की शिक्षा सबसे पहले और सबसे ज़्यादा खुद औरतों, उनके अधिकारों और उनकी दीर्घकालिक ज़रूरतों के बारे में ही होती है। ऐसा लगता है कि माइक्रो क्रेडिट पर केंद्रित पद्धति में बहुत सारी ताकतों को गरीब औरतों की बचत व संसाधनों पर आधारित प्रणालियों से भारी लाभ मिलते हैं। ऐसी सूरत में महिला सशक्तीकरण के लिए काम करने का दावा करने वाले संगठनों द्वारा महिलाओं को उपलब्ध कराए जा रहे शैक्षणिक अवसर इस बात का पैमाना बन जाते हैं कि ये कार्यक्रम ऋण के अलावा औरतों के लिए और किस तरह का व कितना निवेश कर सकते हैं।

क्या बदलाव की गुंजाइश है?

मसला सिर्फ यह नहीं है कि स्वयं सहायता समूहों की महिला सदस्यों को सीखने के अवसर मिल पा रहे हैं या नहीं। शिक्षा के तहत समानता व न्याय की ओर कदम बढ़ाए जा सकते हैं। परंतु इसे एक ऐसे मंच के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है जिसके ज़रिए शिक्षा देने वाले अपने एजेंडा का ही नाना रूपों में प्रसार करने लगें। उनका एजेंडा न्याय संगत मूलभूत बदलाव लानेवाला भी हो सकता है और निहायत रूढ़िवादी भी। सीखने के मंच नए मूल्यों की रचना का स्रोत भी हो सकते हैं और स्थापित मूल्य मान्यताओं को मजबूत करने या उन्हें चुनौती देने का ज़रिया भी। इसीलिए शैक्षणिक हस्तक्षेपों की विषयवस्तु के विश्लेषण से यह पता लगाना आसान हो जाता है कि संबंधित स्वयं सहायता कार्यक्रम किस सोच की बुनियाद पर खड़ा है।

'पहुंच' से परे जाना

सशक्तीकरण करने वाली शिक्षा माइक्रो क्रेडिट के विश्लेषण को 'पहुंच' (या पैठ) की परिधि से आगे ले जाने में भी मदद देती है। पहुंच पर ज़रूरत से ज़्यादा फोकस इस लिहाज़ से और समस्याप्रद रहा है कि उसमें विकास के विभिन्न आयामों को किस तरह अभिव्यक्त किया जा रहा है। मुख्यधारा की शिक्षा, विशेष तौर पर सरकार द्वारा दी जाने वाली शिक्षा पर केंद्रित विमर्श में पहुंच पर बहुत ज़ोर दिया जाता है (जैसे, स्कूलों में लड़कियों के दाखिले पर ज़ोर)। माइक्रो क्रेडिट के क्षेत्र में भी ज़्यादा ज़ोर इसी बात पर दिखाई देता है कि लोगों को ऋण तक 'पहुंच' मिले। ऐसे में दूसरे सवालों को हाशिए पर खिसका देना और आसान हो जाता है। मसलन, इस बात को सहज ही नजरअंदाज कर दिया जाता है कि इस 'पहुंच' से सशक्तीकरण या गरीबी उन्मूलन में किस हद तक मदद मिल रही है। औरतों के नए संस्थानों की स्थापना पर भी काफी ज़ोर दिखाई देता है। ऐसे एस.एच.जी. फेडरेशन बनाने का आग्रह स्पष्ट दिखाई देता है जो आत्मनिर्भर ढंग से चल सकें। यहां भी फोकस इसी बात पर है कि औरतों को इस तरह की संस्थागत परिधियों तक पहुंच मिले। यहां प्रक्रिया का सवाल अनदेखा रह जाता है। मिसाल के तौर पर, यह बात नजरअंदाज़ हो जाती है कि इन संस्थानों की क्या रूपरेखा सोची जा रही है और उनका स्वामित्व किस हद तक औरतों के हाथ में दिया जाता है। माइक्रो क्रेडिट में ऐसे आयामों पर विशेष ध्यान दिया जाता है जिनको ठोस और गणनात्मक आधार पर आंका जा सकता है। इसीलिए पहुंच और स्वामित्व के फर्क को सहज ही किनारे खिसका दिया जाता है और पहुंच को ही सशक्तीकरण का संकेत मान लिया जाता है। इस बात की जांच नहीं की जाती कि इस पहुंच की शर्तों को तय करने में औरतें कितनी कामयाब हो पा रही हैं। स्वयं सहायता समूहों को शिक्षा की कसौटी पर कसने का सबसे बड़ा फायदा यही है कि परिणाम संकेतकों को चुपचाप स्वीकार कर लेने की बजाय इसमें प्रक्रिया पर ज़्यादा ध्यान दिया जाता है।

क्या स्वयं सहायता समूह वाकई सशक्तीकरण की ओर ले जाते हैं?

पितृसत्ता और गरीबी गहरी और जटिल वास्तविकताएं हैं। ऐसे में यह ज़रूरी हो जाता है कि जो हाशिए पर हैं उन्हें अपने अधिकारों की समझ हासिल करने का मौका मिले और उन्हें साकार करने के साधन व शक्ति प्राप्त हों। शिक्षा की कसौटी के ज़रिए हम इस बात को आंक सकते हैं कि क्या पितृसत्ता और गरीबी की संरचनाओं को समझने के लिए औरतों को सक्षम बनाने की प्रक्रियाएं शुरू हुई हैं या नहीं। महिला सशक्तीकरण की तरफ ले जाने वाले शैक्षणिक अवसर किस स्तर तक उपलब्ध कराए जा रहे हैं, यह इस बात का एक ठोस पैमाना हो सकता है कि माइक्रो क्रेडिट आधारित प्रयास वास्तव में औरतों के सशक्तीकरण में कितने प्रभावी रहे हैं। शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण पैमाना है जिसके ज़रिए महिला सशक्तीकरण एवं गरीबी उन्मूलन के क्षेत्र में चल रहे प्रयासों की गंभीरता का एजेंडा उजागर होता है।

शिक्षा के माध्यम से माइक्रो क्रेडिट की पड़ताल का मतलब यह है कि औरतों को पूरी सोच के केंद्र में रखा जाए। स्वयं सहायता समूहों को शिक्षा के नज़रिए से परखने का एक आशय यह है कि माइक्रो क्रेडिट कार्यक्रमों को प्रायोजित करने वालों की समझ को खंगाला जाए यानी स्वयं सहायता समूहों के घोषित उद्देश्यों सशक्तीकरण और गरीबी उन्मूलन की दिशा में औरतों की क्षमता बढ़ाने के लिए किए जा रहे

शैक्षणिक प्रयासों की सीमा व स्वरूप के निहितार्थों को समझा जाए।

शिक्षा और सशक्तीकरणः क्या संबंध है दोनों का?

सशक्तीकरण के लिए शिक्षा निस्संदेह आवश्यक होती है लेकिन दोनों का आपसी संबंध काफी जटिल है। यह सीधा संबंध नहीं है। इस बात की तह में जाने से पहले यहां हम इन शब्दों के बारे में अपनी समझ को परिभाषित कर लें तो बेहतर होगा। शिक्षा के बारे में अपनी समझ हम पहले ज़ाहिर कर चुके हैं। इस अध्ययन के लिहाज़ से शिक्षा को हम एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में देखते हैं जो एक श्रेणी के तौर पर 'औरतों' को सत्ता संबंधों को बदलने की क्षमता देती है। साथ ही, इससे निम्नलिखित क्षमताएं भी आती हैं :

- बदलाव को परिभाषित करना (अपने लिए भी और अपने इर्द–गिर्द के लोगों के लिए भी)
- बदलाव के साथ तारतम्य बिठाना
- अन्याय व असमानता को समझना और चुनौती देना
- औरतों की स्थिति से जुड़े मूलभूत लक्ष्यों की दिशा में बढ़ना।

स्वयं सहायता समूहों से जुड़ी औरतों के जीवन में माइक्रो क्रेडिट के महत्त्व को समझने के लिए हम मान कर चल रहे हैं कि पितृसत्ता, जाति व वर्ग, और संसाधनों व विचारों तक पहुंच, प्रबंधन व नियंत्रण की उनकी जद्दोज़हद के कारण गरीब औरतों के सामने गम्भीर चुनौतियां हैं। इसीलिए हमारे विश्लेषण का दायरा हमें स्वयं सहायता समूहों की परिधि से हटाकर औरतों की इस क्षमता पर विचार करने को प्रेरित करता है कि वे संसाधनों को कितना नियंत्रित करती हैं। यह भी देखना ज़रूरी हो जाता है कि वे परिवार, समाज, राज्य व बाज़ार के साथ जो रिश्ते हैं उनमें अपने हितों को किस हद तक बढ़ा पाती हैं।

स्वयं सहायता समूहों के भीतर सशक्तीकरण केंद्रित शिक्षा के एजेंडा की पड़ताल करना बहुत ज़रूरी है क्योंकि यह शिक्षा सबसे पहले खुद औरतों के बारे में ही होती है न किसी अन्य एजेन्डे के बारे में। यह इस बात का पैमाना भी है कि संबंधित कार्यक्रम में औरतों के लिए कितना निवेश किया जा रहा है।

सशक्तीकरण से जुड़ी प्रक्रियाओं में शिक्षा की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है। जो कायदे–कानून और संरचनाएं औरतों को निचली स्थिति में डालते हैं उन्हें समझने और उनके पार जाने में शैक्षणिक अवसरों की औरतों को निश्चय ही ज़रूरत है। एक शक्तिशाली समूह बनाने के लिए विश्वास और एकजुटता के सिद्धांतों को आत्मसात करने, समानता व न्याय के सिद्धांतों पर आधारित एक दृष्टि रचने, अपने अधिकारों को समझने और परिवार व राज्य जैसे संस्थानों से उन अधिकारों की मांग करने के लिए उन्हें सीखने के अवसर चाहिए। सीखने और सशक्तीकरण के घेरे एक–दूसरे में उलझे हुए और परस्पर आश्रित होते हैं। शिक्षा हमें सशक्तीकरण की ओर ले जाती है और सशक्तीकरण सीखने की परिधियों को विस्तार व गहराई प्रदान करता है ये दोनों एक–दूसरे को पुष्ट करने वाली प्रक्रियाएं होती हैं।

हाल के समय में ऐसे काफी अध्ययन हुए हैं उनमें 'प्रक्रियाओं' को सटीक 'संकेतकों' में सूत्रबद्ध करने का प्रयास किया गया है ताकि सशक्तीकरण को मापा जा सके। किंतु इस अध्ययन में हम प्रक्रिया को सिर्फ़

सशक्तीकरण के आयाम

स्वयं सहायता समूहों के संदर्भ में हम सशक्तीकरण की अपनी समझ स्पष्ट कर देना चाहते हैं :

- सत्ता को चुनौती देना एक प्रक्रिया की बात है। सत्ता कोई ठोस वस्तु नहीं है जिसे 'हासिल' या हस्तांतरित किया जा सके। उसे चुनौती देने की प्रक्रिया को किसी परिणाम के रूप में सीमित करना या आंकना संभव नहीं है।
- चौतरफा और गहरे जड़ों की विचारधाराओं व भौतिक परिस्थितियों को चुनौती देने की ज़रूरत को देखते हुए सशक्तीकरण का आशय सामूहिक कार्रवाई से होता है।
- सशक्तीकरण का ताल्लुक सिर्फ व्यक्तिगत 'पसंद–नापसंद' से नहीं है; इसमें उन संरचनागत कारकों को भी संबोधित करना चाहिए जो असमानता को बढ़ावा देते हैं।
- सशक्तीकरण से जुड़ी प्रक्रियाओं में शामिल है आंतरिक स्तर सहित विभिन्न स्तरों पर सामाजिक रूप से गढ़े कायदे–कानूनों को चुनौती देना और स्थापित मूल्यों से हटकर जीने की सूरत में बाहरी ताकतों का सामना करना।
- हम सशक्तीकरण को 'सामाजिक सशक्तीकरण' और 'आर्थिक सशक्तीकरण' जैसी श्रेणियों में बांटने के खिलाफ हैं। हम सभी की ज़िंदगी के भौतिक और अभौतिक, सारे आयाम इस कदर एक–दूसरे में उलझे हुए हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता।
- 'जुड़ाव' (ऐन्गेजमेंट) को 'सहभागिता' से भिन्न माना जाना चाहिए। बहुत बार सहभागिता को ही सशक्तीकरण का पर्याय मान लिया जाता है। जुड़ाव का मतलब है व्यक्ति की सहभागिता के स्वरूप और प्रक्रिया से जुड़े फैसलों में हिस्सेदारी मिलना।
- औरतें सिर्फ पीड़ित ही नहीं हैं, वे अपने हालात को तय करने के रास्ते ढूंढ सकती हैं, इस बात को ध्यान में रखते हुए वाहकता (एजेंसी) की सोच भी महत्त्वपूर्ण है।

'प्रक्रिया' के रूप में यथावत प्रयोग करना चाहते हैं। हम उसके सारे सूक्ष्म आयामों, धाराओं और संपर्कों के साथ उसे देखना चाहते हैं और प्रत्येक संदर्भ के सामाजिक–सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिवेश में खुद औरतों के वक्तव्यों और नज़रियों के आधार पर उसकी व्याख्या व विश्लेषण करना चाहते हैं।

रिपोर्ट की संरचना

संदर्भ और अवधारणात्मक फ्रेमवर्क को स्पष्ट करने के बाद अब हम उन स्वयं सहायता समूहों के कार्यक्रमों का विवरण देंगे जिनका हमने अध्ययन किया है। पद्धति पर केंद्रित अगले भाग में अध्ययन की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। शेष रिपोर्ट की संरचना अध्ययन के नीचे से ऊपर की दिशा में केंद्रित पद्धति को झलकाती है। यह पद्धति स्वयं सहायता समूह से जुड़े बदलाव के बारे में औरतों के नज़रिए से शुरू होकर प्रायोजक एजेंसियों के नज़रिए की ओर बढ़ती है। प्रत्येक अध्याय के शुरू में उस अध्याय की विषयसूची दी गई है। पहले अध्याय में सशक्तीकरण व गरीबी उन्मूलन की संभावना के बारे में औरतों द्वारा बताई गई ज़मीनी हकीकत पर विचार किया गया है। दूसरे अध्याय में इस बात की पड़ताल की गई है कि साक्षरता पर फोकस के साथ–साथ स्वयं सहायता समूह के सदस्यों के लिए उपलब्ध शैक्षणिक अवसरों

की स्थिति कैसी है। इस अध्याय में साक्षरता और सत्ता के अंतर्संबंधों को औरतों के नज़रिए तथा साक्षरता तक पहुंच (या उसके अभाव) के परिणाम समझने का प्रयास किया गया है। इसके पश्चात् यह अध्याय साक्षरता से आगे जाकर औरतों को उपलब्ध कराए जा रहे शैक्षणिक अवसरों तथा उनके अभाव को समझने की दिशा में बढ़ता है। तीसरे अध्याय में ज़मीनी हालात से जुड़े आंकड़ों और प्रायोजक एजेंसियों के दृष्टिकोणों के बीच निहित संबंधों का विश्लेषण किया गया है। इस विश्लेषण से जो पैटर्न उभरता है वह इस बात को स्पष्ट करता है कि माइक्रो क्रेडिट के तर्क से हमारा क्या आशय है। माइक्रो क्रेडिट का तर्क माइक्रो क्रेडिट तथा महिला विकास के मौजूदा विमर्श में एक महत्त्वपूर्ण अभिवृद्धि है। हमें इस तर्क पर ज़ोर देना इसलिए ज़रूरी लगा क्योंकि आज माइक्रो क्रेडिट को ही निर्विवाद महत्त्व और स्वीकार्यता मिली हुई है। आखिरी अध्याय में ऐसे शैक्षणिक अवसरों की सूची दी गई है जो महिला सशक्तीकरण और गरीबी उन्मूलन की प्रक्रियाओं को सुगम बनाने के लिए स्वयं सहायता समूहों की सदस्याओं को मिलने चाहिए। इसके साथ ही स्वयंसेवी संस्थाओं तथा अन्य प्रायोजक एजेंसियों पर केंद्रित कुछ महत्त्वपूर्ण सिफारिशें और सरकार से कुछ मांगों की सूची पेश की गई है। अध्ययन के दौरान हमने जिन दस्तावेज़ों को पढ़ा, उनको परिशिष्ट 1 में शामिल किया गया है।

कार्यक्रमों का विवरण

यह रिपोर्ट मोटे तौर पर गुजरात और आंध्र प्रदेश में चलाए जा रहे 6 स्वयं सहायता समूह कार्यक्रमों के सघन गुणात्मक अध्ययन पर आधारित है। नीचे हमने अध्ययन के लिए चुने गए इन कार्यक्रमों का संक्षिप्त ब्यौरा दिया है। ये ऐसे कार्यक्रम हैं जिन्हें देश भर में स्वयं सहायता समूह कार्यक्रमों की विभिन्न श्रेणियों का प्रतिनिधि माना जा सकता है। इस बारे में पद्धति वाले भाग में और जानकारी दी गई है। इस क्रम में स्वर्ण जयंती ग्रामीण स्वरोजगार योजना (S.G.S.Y.) और ड्वाक्रा (D.W.C.R.A.) ऐसे कार्यक्रम हैं जिन्हें भारत सरकार के महत्त्वपूर्ण विभागों द्वारा प्रोत्साहित किया जा रहा है। स्वशक्ति और वेलुगू विश्व बैंक द्वारा प्रायोजित नए तरह के कार्यक्रम हैं जिन्हें राज्य सरकारों के ज़रिए चुनिंदा राज्यों में क्रियान्वित किया गया है। पीस और आनंदी स्वयंसेवी संस्थाएं हैं जिनका साक्षरता से भी रिश्ता रहा है। प्रत्येक श्रेणी के प्रतिनिधि कार्यक्रमों को चुनने की हमारी सोच इस बात पर केंद्रित थी कि हमारे अध्ययन से जो पैटर्न उभरें वे किसी खास इलाके या किसी विशेष कार्यक्रम के विशिष्ट स्वरूप के कारण सीमित न हों।

स्वर्ण जयंती ग्रामीण स्वरोजगार योजना (एस.जी.एस.वाई.)

एस.जी.एस.वाई. भारत सरकार का कार्यक्रम है। गरीबी उन्मूलन एवं ग्रामीण रोज़गार मंत्रालय के अंतर्गत आने वाले ग्रामीण विकास विभाग की देखरेख में इस कार्यक्रम को राज्य स्तरीय ग्रामीण विकास विभागों के ज़रिए लागू किया जा रहा है। एस.जी.एस.वाई. गरीबी उन्मूलन के क्षेत्र में सबसे बड़ा सरकारी प्रयास है। यह कार्यक्रम गरीबी उन्मूलन के लिए सब्सिडीयुक्त ऋण डिलीवरी के ज़रिए संपदाओं के निर्माण पर केंद्रित है। इस कार्यक्रम को पिछले दशक में शुरू किया गया था। इसका उद्देश्य "सहायता प्राप्त गरीब परिवारों (स्वरोज़गारियों) को स्वयं सहायता समूहों में संगठित करते हुए क्षमता निर्माण, प्रशिक्षण तथा बैंक ऋण एवं सरकारी सब्सिडी के ज़रिए आय संवर्धक संपदाओं के निर्माण के लिए संगठित करते हुए गरीबी की रेखा से ऊपर लाना" था। इस कार्यक्रम को राज्यों में ज़िला स्तर पर डी.आर.डी.ए. (ज़िला ग्रामीण विकास अभिकरण) के माध्यम से ग्रामीण विकास विभाग लागू करते हैं। प्रत्येक ज़िले में एक निश्चित बैंक को सरकार की तरफ से इन समूहों को ऋण और सब्सिडी उपलब्ध कराने का दायित्व सौंपा जाता है।[1]

ऋण एजेंटों के रूप में काम करने वाले कार्यक्रम अधिकारी अकसर अन्य सरकारी कार्यक्रमों के तहत अपनी जिम्मेदारियों और एस.जी.एस.वाई. के तहत अपने कामों को साथ–साथ निभाते हैं। गुजरात जैसे जिन राज्यों में कृषि विस्तार क्षेत्र को ग्रामीण विकास एवं गरीबी उन्मूलन जैसे प्रयासों से जोड़ दिया गया है वहां यह बात ज़्यादा स्पष्ट दिखाई देती है। इस

1. इस योजना के तहत 18.6 लाख समूह आते हैं। 2005–06 तक उसके लाभान्वितों में औरतों की संख्या 50% थी। इस योजना के लिए 8223.2 करोड़ रुपए आवंटित किए गए थे जिनमें से 6620 करोड़ रुपए 63.03 लाख स्वरोजगारियों को केंद्र की ओर से आवंटित किए गए थे। अगर इस राशि को बांटा जाए तो यह प्रतिस्वरोज़गारी 130 रुपए बैठती है।

कार्यक्रम का ज़ोर घोषित तौर से गरीबी उन्मूलन पर केंद्रित है लेकिन हाल ही में गोलबंदी और क्षमता विकास के तत्त्वों का भी इस कार्यक्रम में समावेश किया गया है। 2002 के संशोधित दिशानिर्देशों के अनुसार, विभाग की ओर से स्वयंसेवी संगठनों को भी स्वयं सहायता समूहों को संगठित करने और उसके बाद क्षमता विकास अवसर उपलब्ध कराने का ज़िम्मा सौंपा जा सकता है। इस योजना के तहत बनाए गए समूहों की संख्या नाबार्ड योजना के तहत बनाए गए समूहों की संख्या से बहुत ज़्यादा है। इस प्रकार, एस. जी.एस.वाई. पूरे देश में स्वयं सहायता समूह आधारित सबसे तेज़ी से बढ़ता कार्यक्रम है।

ड्वाक्रा

अध्ययन के लिए चुने गए कार्यक्रमों में ड्वाक्रा दूसरा सबसे बड़ा सरकारी कार्यक्रम था। यह कार्यक्रम ग्रामीण विकास मंत्रालय के तहत चलता है। औरतों पर केंद्रित और एस.जी.एस.वाई. से भी एक दशक पुराना यह कार्यक्रम इस संदर्भ में शुरू किया गया था जिसमें पहले वाले एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.) से औरतों को प्रायः कोई फायदा नहीं हुआ है क्योंकि उसमें 'घर के मुखिया' पर ही ध्यान केंद्रित किया जाता था और यह मुखिया हमेशा 'घर का सबसे बड़ा पुरुष' ही होता था। इस समस्या को ध्यान में रखते हुए ड्वाक्रा योजना खासतौर से गरीबी की रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाली ग्रामीण महिलाओं पर केंद्रित है। ड्वाक्रा का उद्देश्य था "गरीबी की रेखा से नीचे (बी.पी.एल.) जीवनयापन करने वाली ग्रामीण औरतों का सशक्तीकरण करने के लिए उन्हें संगठित करना ताकि स्वरोज़गार के ज़रिए टिकाऊ आयवर्द्धक गतिविधियों की रचना की जा सके...।" इस कार्यक्रम की एक खासियत यह थी कि इसमें सामूहिक गतिविधि पर ज़ोर दिया गया था। सोच यह थी कि औरतों के सशक्तीकरण के लिए लंबे दौर में एक ऐसी पहल की जाए जिससे जागरूकता और आत्मनिर्भरता के मूल्यों को बढ़ावा मिले।[2]

इस योजना में गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों की 10–15 औरतों के समूह को आयवर्द्धक गतिविधियां शुरू करने के लिए रिवॉल्विंग फंड दिया जाता है। समूह की संगठनकर्ता एक संयोजक की भूमिका निभाती है। उसे ही लाभदायक गतिविधियां शुरू करने के लिए विभिन्न एजेंसियों से संपर्क करके समूह को सहायता व क्षमता विकास अवसर उपलब्ध कराने की ज़िम्मेदारी उठानी होती है। मार्केटिंग और डिज़ाइन के स्तर पर दी जाने वाली सहायता के साथ–साथ बुनियादी ढांचे के स्तर पर भी मदद देने का प्रावधान किया गया है। अन्य आई.आर.डी.पी. कार्यक्रमों के विपरीत ड्वाक्रा की एक ख़ास बात यह है कि इसमें आय वृद्धि के साथ–साथ स्वास्थ्य, शिक्षा, पीने के पानी, साफ–सफाई, पोषण आदि तक पहुंच पर भी विशेष ज़ोर दिया गया है।

इस कार्यक्रम पर मिश्रित प्रतिक्रियाएं रही हैं और इसमें बहुत सारी खामियां हैं। फिर भी, भारत सरकार की ऐतिहासिक योजना के तौर पर इसने गरीबी उन्मूलन तथा औरतों की स्थिति में सुधार के लिए महिलाओं के समूहों को केंद्र में रखने की सोच की अगुवाई की। ड्वाक्रा के तहत सबसे ज़्यादा समूह आंध्र प्रदेश में बने हैं। एस.जी.एस.वाई. शुरू होने के बाद बहुत सारे राज्यों में ड्वाक्रा को बंद कर दिया गया था लेकिन आंध्र प्रदेश[3] और गुजरात में यह अभी भी जारी है।

स्वशक्ति

यह भारत सरकार के महिला एवं बाल विकास विभाग का कार्यक्रम है। इसे गुजरात तथा आठ अन्य राज्यों

2. http://www.drd.nic.in/jry2/esdwcra.htm

3. हमारे अध्ययन के बाद ड्वाक्रा समूहों को वेलुगू कार्यक्रम में मिला दिया गया है। वेलुगू कार्यक्रम को अब "इंदिरा क्रांति प्रथम" के नाम से जाना जाता है।

में लागू किया जा रहा है। भले ही इसे सरकार के ज़रिए लागू किया जा रहा है लेकिन यह विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय कृषि विकास कोष (इंटरनेशनल फंड फॉर एग्रीकल्चरल डिवेलपमेंट) द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम है।

महिला सशक्तीकरण के लिए इससे पहले चलाए गए कार्यक्रमों के मुकाबले स्वशक्ति कहीं ज़्यादा रचनात्मक कार्यक्रम है। इसमें दावा किया गया है कि यह कार्यक्रम विभिन्न प्रकार के अवसरों और संसाधनों को परिभाषित करते हुए औरतों की बेहतरी की एक समग्र सोच पर आधारित है। क्षमता विकास इसका एक केंद्रीय तत्त्व और रणनीति है। इसमें स्वयं सहायता समूहों के अंतर्गत सशक्तीकरण की संभावना पर विशेष ध्यान दिया गया है। यह कार्यक्रम माइक्रो क्रेडिट तथा आर्थिक अवसरों को औरतों के लिए अन्य संसाधनों तक पहुंच तथा सशक्तीकरण व विकास के नए अवसर उपलब्ध कराने के साधन के तौर पर इस्तेमाल करता है। यह कार्यक्रम इस सोच पर आधारित है कि महिला सशक्तीकरण और आर्थिक सशक्तीकरण से इलाके के घरों के जीवन–स्तर और गरीबी पर स्वाभाविक रूप से असर पड़ेगा। इस परियोजना में क्षमता विकास अवसर उपलब्ध कराने और महिलाओं के उद्यमों को बढ़ावा देने के लिए उद्यम परामर्श केंद्रों के साथ जुड़ाव के माध्यम से इन्फ्रास्ट्रक्चर और बाज़ार के साथ संपर्क मुहैया कराने पर ज़ोर दिया जाता है। ऐसे संपर्कों का विकास चुनिंदा स्वयं सेवी संस्थाओं के माध्यम से संपन्न होता है।

परियोजना को लागू करने के लिए राज्य स्तर पर एक परियोजना कार्यालय का गठन किया गया है। कार्यक्रम के तहत आने वाले ज़िलों के लिए कोऑर्डिनेटर (समन्वयक) नियुक्त किए गए हैं। परियोजना क्रियान्वयन दल की सहायता से ज़िला कोऑर्डिनेटर ज़िला स्तर पर चुनी गई स्वयंसेवी संस्थाओं के ज़रिए कार्यक्रम के क्रियान्वयन पर नज़र रखता है। इस कार्यक्रम में उन स्वयंसेवी संस्थाओं को ही चुना जाता है जिनके पास अन्य वैधानिक शर्तों के साथ–साथ औरतों के बीच काम करने का कम से कम पिछले तीन साल का अनुभव हो। संस्था के चुनाव के लिए यह बात महत्त्वपूर्ण नहीं है कि इस अनुभव का स्वरूप क्या था और संगठन की सोच क्या है। राज्य परियोजना कार्यालय स्वयं सहायता समूहों की परियोजना टोलियों के लिए शैक्षणिक अवसर उपलब्ध कराता है। इन टोलियों में एक परियोजना कोऑर्डिनेटर, एक प्रशिक्षक टोली (दो व्यक्ति) और स्थानीय कार्यकर्त्ता शामिल होते हैं। प्रत्येक सहभागी संगठन को कम से कम 40 समूह बनाने होते हैं। चार साल की परियोजना अवधि पूरी होने से पहले समूहों की फेडरेशन बनानी होती है। यह फेडरेशन उसी स्वयंसेवी संस्था द्वारा बनाई गई अन्य फेडरेशनों या संगठनों से स्वतंत्र होनी चाहिए।

वेलुगू डी.पी.आई.पी.[4]

डी.पी.आई.पी. (डिस्ट्रिक्ट पौवर्टी इनिश्येटिव प्रोगेरैम) कार्यक्रम आंध्र प्रदेश, गुजरात और राजस्थान, इन तीन राज्यों में चल रहा है। यह कार्यक्रम विश्व बैंक की सहायता से राज्य सरकारों की देखरेख में लागू किया जाता है। आंध्र प्रदेश में डी.पी.आई.पी. कार्यक्रम को वेलुगू के नाम से जाना जाता है। डी.पी.आई.पी. ग्रामीण विकास विभाग के अंतर्गत आता है। स्वशक्ति की तरह इस कार्यक्रम को भी परियोजना अवधि के लिए गठित किए गए स्वायत्त एजेन्सी के ज़रिए क्रियान्वित किया जाता है। वेलुगू कार्यक्रम में इस एजेन्सी को (एस.ई.आर.पी.–सोसायटी फॉर एलिमिनेशन ऑफ पौवर्टी) के नाम से जाना जाता है।

4. यह नाम बदलकर अब इन्दिरा क्रान्ति पथम कर दिया गया है।

वेलुगू के उद्देश्यों को बहुत स्पष्ट और व्यवस्थित ढंग से सूत्रबद्ध किया गया है। 'गरीबों' को योजना का मुख्य पात्र माना गया है और उनके अधिकारों को विमर्श के केंद्र में रखा गया है। इसी आधार पर स्थानीय स्तर के जनसंगठनों के निर्माण को महत्त्व दिया गया है। कार्यक्रम दस्तावेज़ों के अनुसार, "मूलभूत फोकस शक्तिशाली स्वप्रबंधित संस्थानों की रचना/प्रोत्साहन, गरीबों के बीच से ही कार्यकर्त्ताओं और पेशेवरों के विकास तथा उनकी क्षमताओं में सुधार के ज़रिए गरीबों के लिए सामाजिक पूंजी की रचना पर रहेगा जिससे वे अपने संसाधनों का प्रबंधन कर सकें और लोक सेवाओं तक पहुंच प्राप्त कर सकें।"

जेंडर के सवाल पर इस कार्यक्रम की घोषित प्रतिबद्धता कार्यक्रम के बहुत सारे संस्थागत प्रावधानों में झलकती है। कार्यकर्त्ताओं के लिए जेंडर संबंधी निर्देश दिए गए हैं। कार्यक्रम के विभिन्न तत्त्वों की रूपरेखा में जेंडर संबंधी चिंताओं का समावेश किया गया है। वेलुगू में शैक्षणिक प्रक्रियाओं के महत्त्व को भी मान्यता दी गई है। परियोजना दस्तावेज़ों के मुताबिक "गरीबों ने यह दर्शाना शुरू कर दिया है कि अगर उन्हें पर्याप्त ज्ञान, निपुणता और संसाधन मिलें तो वे अपनी नियति खुद तय कर सकते हैं।"

प्रबंध निदेशक की अगुवाई में चलने वाली राज्य स्तरीय टीम विभिन्न आयामों के नियोजन, निगरानी और उपलब्धता पर नज़र रखती है। ज़िला स्तरीय टीम का नेता ज़िला कलैक्टर होता है। कार्यक्रम को लागू करने का ज़िम्मा इसी टीम के ऊपर होता है। ज़िला टीम में कोऑर्डिनेटर्स और परियोजना प्रबंधनकर्मी शामिल होते हैं। इनमें परियोजना प्रबंधक, आर्थिक विकास कार्यक्रम कोऑर्डिनेटर, जेंडर कोऑर्डिनेटर और सलाहकार होते हैं जो परियोजना की खास गतिविधियों पर सलाह देते हैं। मंडल[5] स्तर पर प्रबंधक होता है जो कोऑर्डिनेटर्स के साथ मिलकर क्लस्टर कोऑर्डिनेटर्स के काम की देखरेख करता है। गांवों के स्तर पर सामुदायिक कार्यकर्त्ता और पेशेवर सक्रिय होते हैं। उन्हें समुदाय में से ही चुना जाता है। यह कार्यक्रम राज्य के 22 ज़िलों में चालू है। स्थानीय स्तर पर इस कार्यक्रम ने जो संस्थागत संरचना विकसित की है उसमें गांवों के स्तर पर स्वयं सहायता समूहों को ग्राम संगठनों के रूप में संगठित किया गया है और मंडल सामाख्याओं में संगठित किया गया है।[6]

आनंदी

आनंदी गुजरात में काम करने वाली एक स्वयंसेवी संस्था है। देवगढ़ बरिया, राजकोट, अहमदाबाद और बड़ौदा में इसके चार कार्यालय हैं। इस संगठन का काम समुदाय आधारित रहा है जिसमें समाज के आर्थिक रूप से हाशियाई तबकों की ग्रामीण औरतों के बीच काम किया जाता है। इसी आधार पर आनंदी अन्य स्थानीय स्वयंसेवी संस्थाओं के साथ काम करने वाले एक संसाधन समूह की भूमिका निभाता है और सरकार के स्तर पर एडवोकेसी का काम भी करता है।

ज़िला दाहोद स्थित बरिया ब्लॉक में यह कार्यक्रम 10 साल से भी पहले शुरू हुआ था। यहां के कार्यक्रम में औरतों को संगठित करके विकास से जुड़े मुद्दों और आजीविका से संबंधित चिंताओं को संबोधित करने के लिए औरतों द्वारा निर्धारित प्राथमिकताओं के आधार पर एक समग्र रणनीति अपनाई जा रही है। माना जाता है कि औरतों की प्राथमिकताओं पर इस फोकस के फलस्वरूप समुदाय धीरे–धीरे औरतों की ज़रूरतों और पसंद–नापसंद को महत्त्व देने लगा है जिससे सशक्तीकरण की दिशा में प्रगति हो रही है।

5. आंध्र प्रदेश में 'मंडल' अभिशासन की एक इकाई है। यह अन्य राज्यों में पाए जाने वाले ब्लॉक से छोटी इकाई होती है।
6. http://www.velugu.org/what_velugu/what_velugu html

गांवों में औरतों को एकजुट करने और न्याय व विकास के लिए पहलकदमी के लिए समूह बनाए गए हैं। इन्हीं समूहों में से कुछ महिलाएं बचत एवं ऋण कार्यक्रम से भी जुड़ी हुई हैं। गांवों के स्तर पर बचत कार्यक्रम का संचालन और प्रबंधन औरतें ही संभालती हैं जिन्हें आनंदी से मदद मिलती है। औरतों के क्षमतावर्धन के ज़रिए संगठन उनकी ज़रूरतों को पहचानने का प्रयास करता है। बाद में उन्हीं ज़रूरतों और प्राथमिकताओं के आधार पर इनपुट उपलब्ध कराए जाते हैं। समूह अपने मुद्दों और समस्याओं को क्लस्टर के स्तर तक ले जाते हैं। क्लस्टर एक प्रातिनिधिक निकाय है जिसमें प्रत्येक समूह के निर्वाचित सदस्य होते हैं। इसकी बैठकों में अन्य महिलाएं भी हिस्सा ले सकती हैं और लेती हैं। क्लस्टर के स्तर पर सामूहिक कार्रवाई से सबंधित चर्चा, समस्याओं पर एक–दूसरे की मदद और पहलकदमी के बड़े मुद्दों पर चर्चा होती है।

सारे क्लस्टरों की औरतों के सामूहिक संगठन के रूप में 2001 में फेडरेशन का गठन किया गया था। इसका नाम देवगढ़ बरिया महिला संगठन रखा गया है। यह एक प्रतिनिधि संगठन है जिसमें क्लस्टरों की निर्वाचित सदस्याएं शामिल होती हैं। कानूनी अधिकार और न्याय, स्वास्थ्य एवं सेवा, वानिकी एवं वन अधिकार, शिक्षा एवं आर्थिक सुरक्षा जैसे विषयों पर होने वाले कामों का समन्वय करने के लिए फेडरेशन के भीतर कमेटियां बनाई गई हैं। कमेटी के अलावा कुछ सदस्याओं को फेडरेशन नेताओं के रूप में भी चुना जाता है। वे क्लस्टर व फेडरेशन के स्तर पर फेडरेशन का काम देखती हैं।

चार निदेशक सामूहिक रूप से आनंदी का नेतृत्त्व संभालते हैं। प्रत्येक कार्यालय में एक निदेशक होता/होती है। टीम के वरिष्ठ सदस्य संगठन के भीतर मुद्दा आधारित इकाइयों ज़िम्मेदारी संभालते हैं। इसमें कार्यक्रम कोऑर्डिनेटर, परियोजना कोऑर्डिनेटर, सहायक परियोजना कोऑर्डिनेटर और समुदाय संगठनकर्ता विभिन्न इकाइयों के तहत काम करते हैं। इन इकाइयों में प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन, गैर–कृषि एवं अकृषि आजीविका अवसर (बचत व ऋण सहित), स्वास्थ्य, औरतों के खिलाफ हिंसा की रोकथाम, अभिशासन, मीडिया, शोध एवं एडवोकेसी विभिन्न इकाइयां हैं। टीम सदस्य दो या उससे ज़्यादा इकाइयों से संबद्ध होते हैं।

पीस

यह स्वयंसेवी संस्था 1986 से आंध्र प्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र में नालगोंडा और मेडक ज़िलों में काम कर रही है। यह संस्था ग्रामीण गरीबों की स्थिति में सुधार के उद्देश्य को समर्पित है। बाल अधिकार, शिक्षा, ग्रामीण गरीबों में जागरूकता, साक्षरता, बचत व आजीविका सुधार के ज़रिए महिलाओं का सशक्तीकरण और टिकाऊ खेती आदि पीस की कोशिशों के मुख्य विषय रहे हैं।

पीस ने चिट फंड के ज़रिए ऋण और बचत गतिविधियां शुरू की थीं। इसके बाद यह प्रयास एक नियमित गांव आधारित बचत एवं ऋण मॉडल में बदल गया क्योंकि चिट फंड प्रणाली में जो पैसा इकट्ठा हो रहा था वह काफी नहीं था। गांवों के स्तर पर बचत एवं ऋण स्थापित किए गए। इसके बाद पारस्परिक सहायता–प्राप्त सहकारी सोसायटी (म्युचली एडेड कोऑपरेटिव सोसायटीज़, एम.ए.सी.एस.) बनाई गई। इसके तहत प्रत्येक संघ से इकट्ठा होने वाले पैसे को एक जगह जमा कर लिया जाता था। गांवों में संसाधनों को एक जगह इकट्ठा करने की व्यवस्था इसलिए ज़रूरी थी क्योंकि ऋण संबंधी आवश्यकताओं

को संतुलित करना ज़रूरी था। गरीब समुदायों में कर्ज़ की मांग बहुत ज़्यादा या नियमित नहीं होती इसलिए यह एक महत्त्वपूर्ण कदम था। एम.ए.सी.एस. के मॉडल को अपनाने के बाद पिछड़ी जातियों की औरतों के बीच काम होने लगा क्योंकि अब ज़्यादा सदस्यों की ज़रूरत थी। इससे पहले केवल दलितों के बीच काम किया जाता था।

इसके बाद संगठन ने केयर से संपर्क किया। यह वित्तीय सहायता प्रदान करने वाली फंडिंग एजेंसी है। केयर के संपर्क में आने के बाद पीस भी कैश प्रोग्राम का अंग बन गया। कैश एक गरीबी केंद्रित परियोजना है जिसकी अवधि सात साल है। यह 1999 में शुरू की गई थी। यह परियोजना आंध्र प्रदेश, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल, इन तीन राज्यों में चल रही है। आंध्र प्रदेश में तेलंगाना के सात ज़िलों में सक्रिय है। यह रणनीति सहभागी स्वयंसेवी संस्थाओं को आगे बढ़ाने और उनका क्षमता विकास करने पर केंद्रित है ताकि टिकाऊ ढंग से वित्तीय सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए शक्तिशाली संस्थागत शिखर संरचना विकसित की जा सके।

कैश के अंतर्गत सहभागियों को माइक्रो क्रेडिट संस्थान (माइक्रो फाइनेंस इंस्टीट्यूशन – M.F.I.) विकसित करने के लिए सहायता दी जाती है। अब पीस भी एक एम.एफ.आई. बनने की ओर अग्रसर है। फंडिंग एजेंसियों ने पीस को एम.ए.सी.एस. मॉडल से एस.एच.जी. मॉडल की तरफ बढ़ाने में सक्रिय भूमिका अदा की है। यह अधिकाधिक वित्तीय कुशलता सुनिश्चित करने की कोशिश थी जिसके लिए गांव आधारित बड़े समूहों को छोटे और आसानी से संभाले जा सकने वाले स्वयं सहायता समूहों में तोड़ना ज़रूरी था। हाल ही में केयर ने इस बात पर भी ज़ोर दिया है कि एक निश्चित श्रम विभाजन की पद्धति अपनाई जाए जिसमें कुछ कार्यकर्त्ता वित्तीय मामलों पर ध्यान दें जबकि नए संगठनकर्ताओं को सामाजिक मुद्दों को संभालने के लिए तैनात किया जाए। अब ग्राम आधारित फेडेरेशन भी बनने लगे हैं जिनमें गांव के विभिन्न स्वयं सहायता समूहों के प्रतिनिधि शामिल होते हैं।

पीस वेल्ड कार्यक्रम का भी हिस्सा है। साक्षरता एवं आजीविका विकास के माध्यम से महिला सशक्तीकरण (वीमेंस एम्पावरमेंट थ्रू लिटरेसी एण्ड लाइवलीहुड डिवेलपमेंट–वेल्ड) कार्यक्रम साक्षरता को बचत और समूह गठन व प्रबंधन की अवधारणा के साथ जोड़ने का प्रयास करता है। वेल्ड का गठन वर्ल्ड एजुकेशन ने सोसायटी फॉर पार्टिसिपेटरी रिसर्च इन एशिया (प्रिया) के साथ मिलकर एक प्रायोगिक परियोजना के रूप में किया था। इसके लिए फोर्ड फाउंडेशन नामक फंडिंग एजेन्सी से आर्थिक सहायता ली गई थी और उसे आंध्र प्रदेश व मध्य प्रदेश में लागू किया गया था। वर्ल्ड एजुकेशन भारत में ऐसे संगठनों को तकनीकी सहायता प्रदान करता है जो माइक्रो क्रेडिट कार्यक्रमों में हिस्सा लेने वाली औरतों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए वेल्ड कार्यक्रम को अपनाने या इस्तेमाल करने के लिए तैयार हैं।

पद्धति

नीचे हम इस गुणात्मक अध्ययन में अपनाई गई पद्धति की रूपरेखा प्रस्तुत कर रहे हैं। जैसा कि भूमिका वाले भाग में उल्लेख किया गया था, यह रिपोर्ट निरंतर द्वारा किए गए स्वयं सहायता समूहों के अध्ययन पर भी आधारित है। उस अध्ययन में देश के 16 राज्यों में सक्रिय 2,750 स्वयं सहायता समूहों की स्थिति को समझने के लिए प्रश्नावली की पद्धति का इस्तेमाल किया गया था। प्रस्तुत रिपोर्ट में उस अध्ययन को निरंतर सर्वेक्षण के नाम से संबोधित किया गया है। मौजूदा अध्ययन में राज्य स्तरीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर दोनों अध्ययनों के दौरान अन्य संगठनों के साथ की गई कई चर्चाओं का भी प्रयोग किया गया है (देखें परिशिष्ट 2)।

दोनों अध्ययनों में नीचे से उपर की दिशा में केंद्रित पद्धति अपनाई गई। हमारे सबसे सघन वार्तालाप और संपर्क प्रत्येक कार्यक्रम में किसी एक स्वयं सहायता समूह की सदस्यों के साथ रहे हैं। इसके बाद हमने गांव/इलाके के अन्य स्वयं सहायता समूहों और गांव व ब्लॉक/मंडल स्तर पर बनी फेडरेशनों के सदस्यों से भी बातचीत की। प्रायोजक एजेंसियों की ओर से गांवों के स्तर पर काम करने वाले कार्यकत्ताओं से लेकर उनके वरिष्ठतम नेतृत्त्व तक विभिन्न स्तरों पर बातचीत की गई। यह पूरी स्थिति को समग्रता में समझने की विस्तृत प्रक्रिया का हिस्सा था।

राज्यों का चयन

देश भर में स्वयं सहायता समूहों तथा स्वयं सहायता समूहों पर आधारित कार्यक्रमों की संख्या में तेज़ इज़ाफे के कारण राज्यों के चयन में सावधानी बरतना ज़रूरी था। हमें इस बात का भी ख्याल रखना था कि जिन राज्यों को चुना जाए वे पूरे देश में स्वयं सहायता समूहों और माइक्रो क्रेडिट के क्षेत्र में मिले अनुभवों की व्यापकता व गहराई को प्रतिबिंबित करते हों। इस आधार पर आखिरकार हमने आंध्र प्रदेश और गुजरात को चुना।

आंध्र प्रदेश को चुनने में तो भ्रम की कोई गुंजाइश ही नहीं थी क्योंकि वहां स्वयं सहायता समूहों की संख्या बहुत ज़्यादा रही है। साथ ही हमें यह भी मालूम था कि राज्य के महिला संगठन यहां के स्वयं सहायता समूहों के राजनीतिकरण पर बार–बार चिंता व्यक्त करते रहे हैं। अध्ययन के दौरान हम इस मुद्दे की भी विस्तार से पड़ताल करना चाहते थे। आंध्र प्रदेश में सरकारी कार्यक्रमों के ज़रिए प्रौढ शिक्षा के क्षेत्र में बहुत प्रभावी माने जाने वाले कार्यक्रम सामने आए हैं जिनमें स्वयं सहायता समूहों को लक्ष्य समूह के रूप में चुना गया था और कार्यक्रमों को उन्हीं के इर्द–गिर्द विकसित किया गया था।

महिला एवं अन्य सामाजिक आंदोलनों में गुजरात की आवाज़ भी काफी मज़बूत रही है। ये आंदोलन ऋण पर सीमित अर्थों में ध्यान केंद्रित करते हुए विकास की

एकतरफा पद्धति अपनाए जाने के बारे में सवाल उठाते रहे हैं। उन्होंने बार–बार आगाह किया है कि विकास के लिए औरतों पर जिस रूप में ज़ोर दिया जा रहा है उससे आंदोलन की शक्ल–सूरत बदल भी सकती है– और विभिन्न मुद्दों पर उसकी सांगठनिक संभावनाएं प्रभावित हो सकती हैं। जब अनुसंधान शुरू हुआ उस समय कई प्राकृतिक एवं मानव निर्मित आपदाओं के कारण बहुत सारे फंडिंग एजेंसी गुजरात में सक्रिय थे। इस भारी पैमाने पर अनुदानों व राहत प्रयासों की आमद के कारण स्वयं सहायता समूह आधारित कार्यक्रमों में भी रातोंरात इज़ाफा हुआ। इन्हीं कारणें की वजह से अध्ययन में गुजरात राज्य को शामिल किया गया।

हमने दोनों राज्यों के व्यापक दौरे किए और अपनी सूची के आधार पर कई संगठनों से बातचीत की। संस्था प्रमुखों और वरिष्ठ कर्मचारियों के साथ बातचीत की गई ताकि उनकी समझ और अनुभवों को बेहतर ढंग से समझा जा सके। इसी आधार पर अंततः दोनों राज्यों के 6 कार्यक्रमों को चुना गया।

कार्यक्रमों का चुनाव

अध्ययन में शामिल किए जाने वाले कार्यक्रमों का चुनाव देश में स्वयं सहायता समूहों में तेज़ इज़ाफे के पैटर्न पर आधारित था। स्वयं सहायता समूह आधारित ज़्यादातर कार्यक्रम या तो केंद्रीय मंत्रालयों द्वारा या स्वयंसेवी फंडिंग संस्थाओं तथा बहुपक्षीय एवं द्विपक्षीय एजेंसियों द्वारा प्रायोजित किए जा रहे हैं। इसी आधार पर निम्नलिखित तीन श्रेणियों के कार्यक्रमों में से दो–दो कार्यक्रम चुने गएः

- ऐसे सरकारी कार्यक्रम जिन्हें भारत सरकार के प्रमुख विभागों द्वारा लागू किया जा रहा है और जिनमें स्वयं सहायता समूहों के निर्माण को कार्यक्रम की रणनीति में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इस श्रेणी में से ड्वाक्रा और एस.जी.एस.वाई. को चुना गया।
- बड़े बहुराष्ट्रीय फंडिंग एजेंसियों द्वारा प्रायोजित और केंद्र या राज्य सरकार द्वारा क्रियान्वित ऐसे रचनात्मक कार्यक्रम जिन्हें विशेष क्षेत्रों में नए किस्म की परियोजनाओं के रूप में प्रायोगिक स्तर पर लागू किया जा रहा है। ऐसे कार्यक्रमों को इसलिए चुना गया क्योंकि उन्हें पथप्रदर्शक प्रयोग माना जाता है और उनमें साक्षरता व शिक्षा के बारे में एक स्पष्ट प्रावधान भी रहा है। इस श्रेणी में स्वशक्ति और वेलुगू को चुना गया।
- स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा चलाए जा रहे ऐसे कार्यक्रम जो कम से कम इतने समय से चल रहे हैं कि स्वयं सहायता समूहों के बारे में उनकी सोच आसानी से प्रतिबिंबित होती हो। हमने ऐसी स्वयंसेवी संस्थाओं को चुना जिनके पास साक्षरता अवसर उपलबध कराने का अनुभव था। इस श्रेणी से आनंदी और पीस को चुना गया।

समूहों का चयन

प्रमुख कार्यक्रमों का चयन कर लेने के बाद अगला काम था अध्ययन और विश्लेषण के लिए निश्चित स्वयं सहायता समूहों की पहचान करना। समूह चयन के आधार इस प्रकार परिभाषित थे :

- कोई ऐसा एस.एच.जी. जिसे उससे जुड़े कार्यक्रम अपने काम का प्रतिनिधिक मानते हों। 'सर्वाधिक आदर्श' या 'शोकेस' समूहों को हमने नहीं चुना क्योंकि वे पर्याप्त रूप से प्रातिनिधिक नहीं होते। फलस्वरूप, हमने कार्यक्रम से जुड़े कार्यकर्त्ताओं से चार–पांच प्रतिनिधिक समूहों के नाम पूछे और उनमें से किसी एक का बेतरतीब (रेंडम) आधार पर चयन किया।

- चुना गया समूह कम से कम दो साल से एस.एच.जी.–संबंधित कार्यक्रमों में सक्रिय हो।
- उसे कार्यक्रम से संबंधित सभी या अधिकांश इनपुट मिल चुके हों।
- यह समूह शहरी इलाके से कम से कम 10 किलोमीटर दूर हो और ऐसे गांव में नहीं होना चाहिए जहां कोई और स्वयंसेवी संस्था काम कर रही है या जहां अन्य बड़े एस.एच.जी.–संबंधित कार्यक्रम लागू किए जा रहे हैं। यह प्रावधान इसलिए किया गया ताकि समूह पर बाहरी प्रभावों के असर से बचा जा सके।

राज्य स्तर के अधिकारियों से संपर्क किया गया और उन्हें अध्ययन के उद्देश्य से अवगत कराया गया। इस प्रक्रिया में दो–तीन बार उनसे मिलना पड़ा। इस प्रक्रिया में संबंधित अधिकारियों को अध्ययन के सभी चरणों की जानकारी दी गई और इस प्रक्रिया के प्रति उनकी प्रतिबद्धता सुनिश्चित की गई। स्वयंसेवी संस्थाओं के मामले में चयन प्रक्रिया में संस्था के स्थानीय स्तर के कार्यकर्त्ताओं के साथ मिलकर शुरू से ही चयन प्रक्रिया चलाई गई। सभी कार्यक्रमों में समूहों की सूची बनाई गई जिसमें से हमने एक–एक समूह को रेंडम आधार पर चुना। चयन प्रक्रिया और समूहों से संबंधित जानकारियां नीचे दी गई हैं।

एस.जी.एस.वाई.

यह समूह साबरकांठा ज़िले के मोदासा ब्लॉक में स्थित तिंतोई गांव में सक्रिय है। तिंतोई एक बड़ा गांव है। यहां एस.जी.एस.वाई. कार्यक्रम के पांच स्वयं सहायता समूह सक्रिय हैं। हमने उस समूह को चुना जो कार्यक्रम के तहत मिले सभी इनपुट्स का लाभ ले चुका है।[1] इस समूह का गठन तीन साल पहले किया गया था। समूह में 18 सदस्याएं हैं जिसमें से तीन साक्षर थीं। सभी सदस्य दलित समुदाय की थीं।

स्वशक्ति

भरूच ज़िले में बहुत सारे ऐसे संगठन हैं जो स्वयं सहायता समूहों के साथ काम कर चुके हैं और उनके साथ–साथ स्वशक्ति कार्यक्रम को भी लागू कर रहे हैं। नतीजतन, उनके समूहों में स्वशक्ति कार्यक्रम की पद्धति के मुकाबले स्वयंसेवी संस्था वाली पद्धति दिखाई देने की संभावना ज़्यादा थी। दूसरी तरफ इनेरका संस्था के पास महिला समूहों के बीच काम करने का सीमित अनुभव था। एस.एच.जी. पद्धति के लिहाज़ से भी वह एक नया संगठन था। इनरेका स्वशक्ति से जुड़े सहभागी संगठन का एक सटीक उदाहरण था। इनमें से ज़्यादातर सहभागी संगठनों ने स्वयं सहायता समूहों को बनाने का काम स्वशक्ति से जुड़ने के बाद ही शुरू किया था। यह समूह दो साल पहले बना था और उसमें 21 सदस्याएं हैं। उनमें से पांच साक्षर थीं। सभी सदस्य आदिवासी समुदाय की थीं।

पीस

पीस द्वारा प्रायोजित समूह को उन समूहों में से चुना गया जिनमें वेल्ड कार्यक्रम में हिस्सा लेने वाले सदस्यों को शामिल किया गया था। हमने जिस समूह को चुना वह गांव दौलापुर, जगदेवपुर मंडल, मेडक ज़िले का था और उसमें पिछड़ी जातियों की 14 सदस्य थीं। समूह में एक नवसाक्षर और शेष असाक्षर सदस्य थीं।

वेलुगू

शुरुआत में हमें जिन समूहों के नाम सुझाए गए उनमें से बहुत सारे ऐसे थे जिनकी सदस्य पहले ड्वाक्रा के अंतर्गत बनाए गए समूह की सदस्य रह चुकी थीं। इसका मतलब था कि ये समूह केवल वेलुगू के

1. ये आंकड़े विभाग की वेबसाइट पर 1999 में एस.जी.एस.वाई. की शुरूआत से अब तक हुई भौतिक एवं वित्तीय प्रगति से संबंधित टेबल से लिए गए है। (http://rural.nic.in/sgsy/summary.asp)

इनपुट्स का प्रतिनिधित्व नहीं करते बल्कि उनमें ड्वाक्रा और वेलुगू दोनों के इनपुट्स एक साथ दिखाई पड़ते हैं। इस भ्रम से बचने के लिए हमने एक ऐसे समूह को चुना जिसकी सदस्य ड्वाक्रा के किसी समूह में नहीं रही हैं। यह समूह तीन साल पहले बना था, उसकी 16 सदस्य हैं और जिनमें से दो पढ़ी–लिखी हैं। यह समूह चित्तूर ज़िले में गंगावरम ब्लॉक के बोमनपल्ली गांव में था। इस समूह की ज़्यादातर सदस्य दलित थीं। कुछ सदस्याएं अनुसूचित जनजाति की भी थीं।

आनंदी

आनंदी के देवगढ़ बरिया कार्यक्षेत्र से सागटाला गांव को चुना गया। संगठन के कर्मचारियों ने चार समूहों का नाम बताया था जिनमें से हमने एक को चुना। संगठन के लोगों का कहना था कि इन समूहों को इसलिए चुना जा सकता है क्योंकि वे ऐसे दूरदराज इलाकों में स्थित हैं जहां आनंदी की सोच के निश्चित प्रभावों को सबसे अच्छी तरह समझा जा सकता है। जिस समूह को चुना गया वह आठ साल पहले बना था और उसमें 14 सदस्य हैं। सभी अनुसूचित जनजाति की हैं। सदस्याओं में से चार स्कूली शिक्षा प्राप्त हैं और 9 नवसाक्षर हैं। यह समूह दाहोद ज़िले के बरिया ब्लॉक में सागटाला गांव में स्थित है।

ड्वाक्रा

ड्वाक्रा द्वारा प्रायोजित स्वयं सहायता समूहों में से किसी एक समूह को चुनने की प्रक्रिया तुलनात्मक रूप से भिन्न थी। इस पर विस्तार से बात करना ज़रूरी है। पश्चिमी गोदावरी ज़िले को इसलिए चुना गया क्योंकि यहां हम प्रौढ़ शिक्षा और साक्षरता के बीच आपसी संबंधों को देख सकते थे। यहां सरकारी साक्षरता कार्यक्रम को एक लक्ष्य समूह के साथ जोड़कर ड्वाक्रा से जुड़े स्वयं सहायता समूहों के रूप में एक नया प्रयास शुरू किया गया था।[2]

इस ज़िले में एक सही समूह की तलाश बहुत बड़ी चुनौती थी। हम ऐसा समूह ढूंढ रहे थे जो साक्षरता के लिए किए गए प्रयासों का हिस्सा रहा हो। परंतु ऐसे समूह की तलाश करना बहुत मुश्किल था जो साक्षरता की प्रक्रिया से गुज़र चुका हो और जिसमें नवसाक्षर महिलाएं बातचीत में नर्वस महसूस न करें क्योंकि ऐसी बहुत सारी महिलाएं दोबारा असाक्षरता की स्थिति में पहुंच चुकी थीं। आखिरकार हमने एक ऐसे समूह का चयन किया जिसमें नवसाक्षर सदस्य थीं। लेकिन यह समूह एक बिखराव की स्थिति में था। यह समूह कम से कम दो साल से सक्रिय रहने कि हमारी शर्त पर खरा नहीं उतरता लेकिन हमने इसलिए उसे चुना क्योंकि हमारा मानना था कि जो समूह खुद को कायम नहीं रख पाया वह भी हमारे सवालों को समझने में एक अलग तरह का ज़रिया बन सकता है। इस समूह के साथ दो अलग–अलग यात्राओं में सघन साक्षात्कार लिए गए। दोनों साक्षात्कारों में लगभग पूरा ज़ोर इस बात पर रहा कि समूह में किस तरह के विवाद खड़े हुए थे और उनके कारण व परिणाम क्या रहे। यह समूह सात साल पहले बना था, उसमें 15 सदस्य थीं और सभी दलित समुदाय की थीं।[3]

अनुसंधान की रूपरेखा

नीचे दिए गए चित्र के आधार पर समझा जा सकता है कि हम किन अंतर्संबंधों को समझने का प्रयास कर रहे थे। यह चित्र विभिन्न परिधियों में औरतों के अनुभवों को मापने के हमारे प्रयास को रेखांकित करता है। इन परिधियों में हमने निम्नलिखित पर ध्यान दिया:

2. http://www.drd.nic.in/jry2/esdwcra.htm
3. हमारे अध्ययन के बाद ड्वाक्रा समूहों को वेलुगू कार्यक्रम में मिला दिया गया है।

- समूह के भीतर संबंध : हमने समूह के भीतर कई तरह के आयामों पर ध्यान दिया। जैसे –
  - ♦ लीडर व अन्य सदस्यों के बीच तथा साक्षरता, जाति व उम्र पर आधारित आंतरिक सत्ता संबंध।
  - ♦ ऋण जारी करने की आंतरिक प्रक्रिया जिसे देखना मात्रा के लिहाज़ से नहीं बल्कि लेन–देन के स्वरूप को समझने के लिए ज़रूरी था; वर्तमान में महिलाओं के ज्ञान और तौर–तरीकों स्तर और उसकी सीमाएं। इसमें ऐसे उदाहरण भी शामिल थे जब उन्होंने अपने आसपास कोई बदलाव किया हो। समता की दृष्टि से ऋण जारी करने संबंधी फैसलों और व्यवहारों का भी विश्लेषण किया गया।

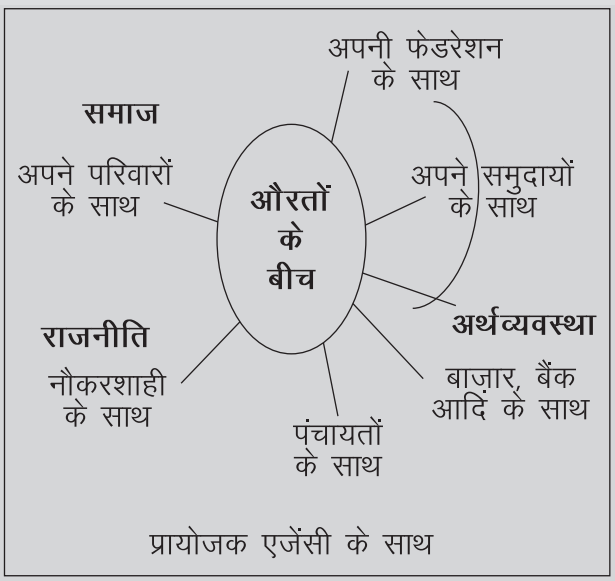

  - ♦ हस्तक्षेप के एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में क्षमता निर्माण का आकलन किया गया।
- परिवार के भीतर : ऋण तक पहुंच और समूह से जुड़े होने के कारण परिवार के साथ समूह सदस्यों के संबंधों में जो बदलाव आए हैं उनका विश्लेषण किया जाए। मिसाल के तौर पर, इस बात पर ध्यान दिया जाए कि घर के भीतर कामों का बंटवारा किस तरह होता है, कर्ज़ा वापस करने के लिए जिम्मेदारियों का बंटवारा कैसे होता है, लिए गए कर्ज़ और उसके इस्तेमाल पर औरत का कितना अधिकार है, स्वामित्व के मुद्दे और यह देखना कि समूह की चर्चाओं में ये मुद्दे किस हद तक उठ पाते हैं।
- प्रायोजक एजेंसियों के साथ संबंध : हमने प्रायोजक एजेंसी के साथ रिश्ते में स्वायत्तता के आयाम को आंकने का प्रयास किया।
- संस्थागत एवं सामुदायिक अंतर्क्रियाएं : हमने न्याय एवं अभिशासन संबंधी मुद्दों पर सामूहिक कार्रवाइयों में औरतों की हिस्सेदारी तथा पंचायत जैसी स्थानीय संस्थाओं को प्रभावित कर पाने की उनकी क्षमता का आंकलन किया।
- बाज़ार/स्थानीय अर्थव्यवस्था से संबंध : हमने इस बात को समझने का प्रयास किया कि बैंक अधिकारियों के साथ सौदेबाजी और बातचीत में औरतों की क्षमता कैसी है। हमने आयवर्धक गतिविधियों में औरतों की सक्रियता को नजदीक से देखा और यह समझने का प्रयास किया कि वे जिन समस्याओं से जूझ रही हैं उनसे इन गतिविधियों का क्या संबंध है।

पद्धतियां

हर कार्यक्रम का कम से कम तीन बार दौरा किया गया। जैसा कि पीछे उल्लेख किया गया है, हमारी अंतर्दृष्टि और निष्कर्ष महिलाओं के साथ हमारी मुलाकातों और साक्षात्कारों के आधार पर ही सामने आए हैं। अपनी यात्राओं में हमने प्रायोजक एजेंसियों

के बाद महिलाओं से और महिलाओं के बाद प्रायोजक एजेंसियों से बात की। ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर जाने की यह पद्धति लाभदायक साबित हुई है। इस तरह हमें नेतृत्त्व के साथ अपनी वार्ताओं के आधार पर उन सवालों की रूपरेखा तय करने में मदद मिली जो हमें समूह के साथ उठाने थे। समूहों से मिले फीडबैक ने एजेंसियों के साथ बातचीत को भी प्रभावित किया। महिलाओं के समूहों से बातचीत के लिए हम कोई तयशुदा प्रश्नावली इस्तेमाल करना नहीं चाहते थे। हम चाहते थे कि उनकी सहज प्रतिक्रियाएं सामने आएं। पूर्वनिर्धारित प्रश्नावली संभावित प्रतिक्रियाओं की सीमा तय कर देती है। इसीलिए महिलाओं के दृष्टिकोणों के ज़्यादा व्यापक और सटीक प्रतिनिधित्व के लिए मार्गदर्शक प्रश्नों के आधार पर सामूहिक चर्चाओं का इस्तेमाल किया गया। प्रायोजक संस्थानों के शुरुआती दौरों से हमें दृष्टिकोणों और प्रतिक्रियाओं में व्यापक भिन्नताओं को समझने में मदद मिली। उनसे हमें स्वयं सहायता समूह रणनीति के प्रमुख आयामों तथा वैचारिक रुझानों से परे संगठनों के स्तर पर उनकी समरूपता को समझने में भी आसानी हुई। सांगठनिक नेतृत्त्व की राय जानने के लिए हमने कार्यक्रम की सोच के बारे में एक प्रश्नावली का सहारा लिया।

स्वयं सहायता समूह के सदस्यों और प्रायोजक एजेंसियों के कार्यकर्त्ताओं के साथ बातचीत करते हुए हमने कई तकनीकों का इस्तेमाल किया :

- मार्गदर्शक प्रश्नों का इस्तेमाल करते हुए लक्ष्य केंद्रित समूह चर्चा
- अनुकरण (सिम्युलेशन)
- गतिविज्ञान (ऑबज़रवेशन) और घटनाओं का प्रेक्षण
- द्वितीयक आंकड़े
- खुली, अनियोजित बातचीत

प्रत्येक कार्यक्रम के संबंध में निम्नलिखित (व्यक्ति या समूह) के साथ साक्षात्कार लिए गए :

- चुना गया प्राथमिक स्वयं सहायता समूह
- अतिरिक्त/तुलनात्मक जानकारी के लिए अन्य स्वयं सहायता समूह
- गांव आधारित फेडरेशंस (यदि हों तो)
- ब्लॉक/मंडल स्तर की फेडरेशंस
- प्रायोजक एजेंसी की ओर से गांव और क्लस्टर के स्तर पर काम करने वाले कार्यकर्त्ता
- प्रायोजक एजेंसियों के परियोजना कोऑर्डिनेटर
- ज़िला एवं राज्य स्तर पर कार्यक्रम के वरिष्ठ अधिकारी या स्वयंसेवी संस्था के प्रमुख
- ज़िला एवं राज्य स्तरीय प्रौढ़ शिक्षा अधिकारी निगरानी एजेंसियां

प्रत्येक समूह से मिली जानकारियों को टेप रिकॉर्डर में रिकॉर्ड किया गया था जिससे चर्चा के दौरान होने वाली किसी भी तरह की बारीक से बारीक चीज़ या विषयवस्तु छूट न जाए। औरतें क्या कह रही हैं, इस बात को पूरी तरह पकड़ने के लिए ऐसा करना ज़रूरी था। इसके लिए हमने उनसे पहले ही इजाज़त ले ली थी। मार्गदर्शक प्रश्नों के साथ–साथ निश्चित अनुकरण (सिम्युलेशन) एक्सरसाइज़ों का भी इस्तेमाल किया गया ताकि ऐसी प्रतिक्रियाएं भी सामने आ सकें जो केवल चर्चा में भी सामने नहीं आ पातीं। मिसाल के तौर पर, हमने सदस्यों से एस.एच.जी. बैठक का आयोजन करके दिखाने का अनुरोध किया। समूह के भीतर विभिन्न सदस्यों के बीच बनते–बिगड़ते संबंधों को देखना सूचनाप्रद अनुभव था। खासतौर से नेताओं और सदस्याओं के बीच तथा समूह व प्रायोजक एजेंसी के कार्यकर्त्ताओं के बीच बनने वाले संबंध महत्त्वपूर्ण थे।

इन सभी परियोजनाओं से दस्तावेज़ इकट्ठा किए गए और उनका विश्लेषण करते हुए उनकी वैचारिक

पोज़ीशन, संदर्भ, लक्ष्य, उद्देश्यों और कार्यात्मक रणनीतियों को समझा गया। प्राथमिकताओं और दृष्टिकोणों के साक्ष्य उपलब्ध कराने के लिहाज़ से ये महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ थे। ये दस्तावेज़ परिणामों को इनपुट्स और प्रक्रियाओं के साथ जोड़ते दिखाई नहीं देते थे। इनमें अधिक से अधिक ऐसी सहयोगी सामग्री ही थी जिसके आधार पर और ज़्यादा जांच की जा सकती थी। विषय केंद्रित सामूहिक चर्चाओं के अलावा हमने समूह की बैठकों के दौरान और विभिन्न कार्यक्रमों के मौके पर महिलाओं के आपसी संबंधों को भी नजदीक से देखा ताकि एक–दूसरे के साथ उनके संबंधों को, संगठन की टीम और परिवारों के साथ संबंधों को जाना जा सके। गांव में ठहरने की वजह से हमें अनौपचारिक चर्चा का भी काफी मौका मिला। इससे हमारी समझ में खासा इज़ाफा हुआ।

एस.एच.जी.–संबंधित पद्धति से जुड़ी चुनौतियां और सबक

जिन छः समूहों का हमने अध्ययन किया उनमें से पांच के लिए हम समुदाय की सदस्यों या कार्यकर्त्ताओं के साथ गांव में ही ठहरे थे। एक बार में हम चार–पांच दिन तक वहीं रहते थे। जब परियोजनाकर्मियों ने समूह सदस्याओं को बताया कि हम लोग गांव में ही ठहरने वाले हैं तो उन्हें विश्वास–सा नहीं हुआ क्योंकि अब तक जो लोग वहां आते थे वे प्रायः वहां नहीं ठहरते थे। उनके घर में उन्हीं के साथ रहने, कई दिन साथ खाने–पीने से हमें ऐसी अंतर्दृष्टि और जानकारियां मिलीं जो हमें किसी और ढंग से नहीं मिल सकती थीं।

हमारी कोशिश थी कि हर दौरे पर कम से कम तीन बैठकें ज़रूर आयोजित हों। अगर किसी बैठक में औरतें बहुत कम होती थीं तो बैठक को रद्द करके दोबारा बैठक बुलाई गई। इस तरह की बैठकों में औरतों के साथ व्यक्तिगत बातचीत का अच्छा मौका मिलता था। हर बैठक के बाद घर–घर से एक प्याली चाय का न्यौता भी आ जाता था।

हर बैठक के साथ औरतों की संख्या बढ़ती गई। रात में होने वाली बैठकें ज़्यादा सहज माहौल में होती थीं। दिन के मुकाबले रात की बैठकों में ज़्यादा सदस्य रहती थीं। दिन की बैठकों का समय सीमित होता था इसलिए उनकी रूपरेखा भी पहले से तय करनी पड़ती थी। रात में औरतें दिन भर की थकी होती थीं इसलिए जल्दी ही सुस्त मुद्रा में चली जाती थीं हालांकि उनका ध्यान और उत्सुकता बनी रहती थी। रात की बैठकों से उनकी बेटियों को और भी मज़ा आता था क्योंकि उन्हें भी बैठक में आने की छूट मिल जाती थी। उनके पीछे घर में लड़कों को काम जो करना पड़ता था! इन बैठकों में कई मज़ेदार क्षण भी आए। औरतें बताती थीं कि किस तरह अभिमान और गंभीरता से उन्होंने घर पर यह ऐलान कर दिया है कि अब वे अहम सवालों पर चर्चा करने बैठक में जा रही हैं इसलिए उनके पीछे पुरुष ही घर का काम संभालें! अगर इस तरह की चर्चा औरतों के हिसाब से सही समय पर आयोजित की जाए तो यह सुनिश्चित करने में मदद मिलती है कि उनके घर के पुरुष दखल नहीं देंगे और बैठक में किसी तरह का खलल नहीं डालेंगे।

अपेक्षाओं को संभालना

क्योंकि हमारे सवाल ऐसे बहुत सारे मसलों पर केंद्रित थे जिन्हें ये समूह संबोधित कर सकते हैं इसलिए कुछ सवालों पर महिलाएं हमसे जानकारी या इनपुट भी चाहती थीं। इस प्रक्रिया में समस्या यह थी कि फेसिलिटेटर बनने की बजाय शोधकर्ता की भूमिका कैसे कायम रखी जाए। हमारी लगातार उपस्थिति और

उनकी बैठकों, घरों, खेतों में उनके साथ समय बिताने की हमारी इच्छा के कारण गहराते ताल्लुकात के साथ औरतों की अपेक्षाएं भी बढ़ती जा रही थीं। इस दुविधा से निपटने के लिए हमने तय किया कि इन बातों पर आखिरी बैठक में या हर बैठक के आखिर में बात की जाएगी। अगर उनके सवालों पर चर्चा का आश्वासन होता था तो अगली बैठक में औरतें ज़्यादा उत्सुकता से पहुंचती थीं। जहां औरतों को ज़्यादा इनपुट नहीं मिल पा रहे हैं वहां इस तरह की अपेक्षाएं और ज़्यादा होती थीं। ड्वाक्रा समूह के मामले में तो हमारी उपस्थिति से समूह को अपने मुद्दे हल करने का अच्छा मौका ही मिल गया था। उनकी तीन साल से बैठक जो नहीं हुई थी।

फील्ड शोधकर्ताओं को शामिल करना

चुने गए प्रत्येक राज्य से हमने ऐसे फील्ड शोधकर्ताओं को अपने साथ जोड़ लिया था जो सिर्फ अनुवादक की बजाय ज़्यादा मददगार साबित हो सकें और विभिन्न वार्तालापों की बारीक बातों को पकड़ने में मदद दे सकें। उन्हें इस आधार पर चुना गया था कि वे अपने इलाके में विकास के हालात को जानते हैं और जेंडर से जुड़े सवालों पर उनकी अच्छी समझ है। ऐसे साथियों ने एस.एच.जी. समूहों के साथ होने वाले विमर्श में गुणात्मक योगदान दिया। उन्होंने लोगों के दृष्टिकोणों और ज्ञान की व्याख्या में मदद दी। इस अनुभव से यह स्पष्ट हो गया कि ऐसे मौकों पर संदर्भ की समझ रखने वाला और स्थानीय परिवेश के साथ सेतु के रूप में काम कर सकने वाला व्यक्ति कितना महत्त्वपूर्ण होता है।

फील्ड वर्क और तैयारी के दौरान की सारी खोजबीन हमने खुद की थी। इससे औरतों के अनुभवों की तह में जाने के हमारे अनुभवों और क्षमताओं को हम अध्ययन में उतार पाए। जेंडर और विकास के विषय में अपनी समझ के आधार पर हम औरतों के जवाबों में छिपे अंतर्विरोधों को भी पहचान पा रहे थे और हमें यह भी पता था कि कहां और गहरी पड़ताल की ज़रूरत है।

नाम गोपनीय रखना

जिन्होंने हमसे बात की उनकी पहचान और नाम गुप्त रखने के लिए हमने गांवों, ज़िले और कार्यक्रम के नाम तो दिए हैं लेकिन संबंधित समूहों के नाम नहीं दिए हैं। जहां साक्षात्कारों का हवाला दिया गया है वहां सभी नाम बदल दिए गए हैं।

स्वयं सहायता समूह, सशक्तीकरण और गरीबी उन्मूलन : ज़मीनी हकीकत

समूह
- जेंडर संबंधी मुद्दों के साथ जुड़ाव का स्तर
- विकास से जुड़े 'सुरक्षित' मुद्दे उठाना
- औरतों की पहल, सहायता के बिना
- पहल की सीमाएं
- वित्तीय एजेंडा और सामूहिकता के बीच तनाव
- स्वयं सहायता समूहों में नेतृत्व और साक्षरता
- अन्य असमताएं : जाति, वर्ग और धर्म के आयाम

परिवार
- संसाधनों पर नियंत्रण
- बचत और कर्ज़ वापसी का लैंगिक भार
- काम का बोझ
- 'अच्छी औरत' का निर्माण
- 'अच्छी औरत' – 'अच्छी कर्ज़दार'
- सभ्य दिखने वाली औरत

बाज़ार और स्थानीय अर्थव्यवस्था
- ऋण तक पहुंच
- आजीविका के लिए सही गतिविधि का 'चुनाव'
- उद्यमी की बजाय मज़दूरों के रूप में औरतें
- नियोजन में हिस्सेदारी का अभाव
- अपर्याप्त सहायता
- अपर्याप्त ऋण एवं सामूहिक उद्यमशीलता का अभाव

संस्थानों के साथ संपर्क
- समूहों की मांगों के प्रति उत्तरदायित्व का अभाव
- स्वयं सहायता समूह और पंचायतें
- स्वयं सहायता समूह के स्वरूप का चुनाव
- दोहरी सदस्यता
- फेडरेशंस बनाने और चलाने की योग्यता

जैसा कि पद्धति वाले हिस्से में बताया गया था, अध्ययन के लिए नीचे से ऊपर की दिशा में केंद्रित तरीका अपनाया गया और हमारे सबसे सघन संवाद समूह के स्तर पर एस.एच.जी. सदस्याओं के साथ ही रहे। इस रिपोर्ट के पहले अध्याय में पाठकों को औरतों की आवाज़ों और इस बारे में उनके दृष्टिकोणों से अवगत कराने का प्रयास किया गया है कि स्वयं सहायता समूहों ने उनके जीवन पर किस तरह का असर डाला है।

औरतों की राय को समझने के लिए शिक्षा और सशक्तीकरण की जिन कसौटियों का हम इस्तेमाल कर रहे हैं उनकी रूपरेखा प्रस्तावना में भी दी गई थी लेकिन यहां उन्हें दोहराना ज़रूरी है। हमने शिक्षा को एक ऐसे व्यापक फलक पर परिभाषित किया था जिसके अनुसार "यह सीखने की ऐसी प्रक्रिया है जिसमें साक्षरता, सूचनाओं तक पहुंच और आलोचनात्मक सोच–विचार की ऐसी प्रक्रियाएं शामिल हैं जिनके ज़रिए औरतों को अपने जीवन की हकीकत और अपने इर्द–गिर्द की व्यापक संरचनाओं व विचारधाराओं के बीच मौजूद संबंधों को समझने की क्षमता मिलती है।" हम सशक्तीकरण को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में देखते हैं जिसके ज़रिए 'औरतों ' को एक श्रेणी के रूप में सत्ता संबंधों को बदलने की ताकत मिलती है।

इसमें निम्नलिखित क्षमताएं निहित हैं –

- बदलाव को परिभाषित करना (अपने लिए और अपने आसपास के लिए)
- बदलावों को प्रभावित करना
- असमानता और अन्याय को समझना और चुनौती देना
- औरतों की स्थिति को संबोधित करने वाले मूलभूत लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कदम उठाना।

ये प्रक्रियाएं किस हद तक संभव हो पा रही हैं, यह समझने के लिए हम इस बात पर ध्यान देते हैं कि विभिन्न परिधियों – यानी स्वयं सहायता समूहों के भीतर, परिवार के 'निजी' दायरे में, बाज़ार/स्थानीय अर्थव्यवस्था में, और प्रोत्साहक एजेंसियों तथा सरकारी संस्थानों के साथ संवाद – में आने वाले बदलावों के बारे में औरतें क्या कहती हैं।

इन सभी परिधियों में हम न्याय और समता से जुड़े मुद्दों को उनके तमाम अंतर्संबंधों को साथ में 'आर्थिक' और 'सामाजिक' के बीच बंटवारा किए बिना देखते हैं, हम उन्हें वैसे ही देखना चाहते हैं जिस तरह वे औरतों की ज़िंदगी में सामने आते हैं।

निरंतर सर्वेक्षण में पाया गया कि गुजरात और उत्तर प्रदेश के एस.जी.एस.वाई. कार्यक्रम से जुड़े कम–से–कम 35% समूह निष्क्रिय थे।

समूह : समता व न्याय के आयाम

हम जिन परिधियों की जांच कर रहे हैं उनमें सबसे पहला खुद समूह ही है। समूह के भीतर हम यहां से बात शुरू करते हैं कि अपने समूहों के एजेंडा के बारे में औरतों का क्या कहना था, समूह किन मुद्दों से जुड़े हुए हैं, किन मुद्दों को नहीं उठाते और किस हद तक इन मुद्दों को आगे ले जा पाते हैं। जेंडर आधारित न्याय के मुद्दों पर फ़ोकस करते हुए हमने इस बात को भी समझने का प्रयास किया कि स्वयं सहायता समूहों में विभिन्न जातियों, धर्मों और वर्गों का कितना समावेश रहा है।

समूह की पड़ताल शुरू करने से पहले यहां इस बात को रेखांकित करना ज़रूरी है कि कई बार 'समूह' मौजूद ही नहीं होता। निरंतर सर्वेक्षण में पाया गया था कि गुजरात व उत्तर प्रदेश में एस.जी.एस.वाई. कार्यक्रम

के तहत चलने वाले कम से कम 35% समूह निष्क्रिय थे। इसका मतलब है कि 6 माह से उनकी कोई बैठक नहीं हुई थी। आंध्र प्रदेश के वेलुगू और ड्वाक्रा कार्यक्रम में कम से कम 20% समूह निष्क्रिय थे।

जेंडर से जुड़े मुद्दों पर सक्रियता

समूह के साथ साक्षात्कारों में इस बात की ओर स्पष्ट संकेत किया गया था जिन 6 कार्यक्रमों का अध्ययन किया गया उनमें से 5 कार्यक्रमों में स्वयं सहायता समूहों की जेंडर संबंधी मुद्दों पर बहुत कम सक्रियता रही है। जहां हमें ऐसी उल्लेखनीय घटनाएं दिखायी दीं, जिनमें महिलाओं ने घरेलू हिंसा जैसे मुद्दों को उठाया था वहां भी यह मूल रूप से उनकी अपनी पहल होती थी। इस तरह की कोशिशें प्रोत्साहक एजेंसी की ओर से इनपुट्स न मिलने की सूरत में आगे नहीं पहुंच पाती थीं। इस बारे में हम इस अध्याय के एक अन्य हिस्से में चर्चा करेंगे। यहां शुरू में ही इस बात को दर्ज़ कर लेना ज़रूरी है कि लैंगिक अन्याय की बहुत सारी घटनाएं घरेलू हिंसा से संबंधित थीं। हालांकि जेंडर आधारित अन्याय के बहुत सारे पहलू हैं लेकिन हमारा मानना है कि औरतों ने घरेलू हिंसा के बारे में ही ज़्यादा क्यों बोला, इसका ताल्लुक इस बात से है कि उन्हें खुद इस तरह की घटनाओं में हस्तक्षेप की ज़रूरत महसूस होती थी। जेंडर संबंधी अन्याय के जो आयाम इतने स्पष्ट नहीं हैं या जो सामाजिक मान्यताओं के अनुरूप होने के कारण अकसर महत्त्वपूर्ण दिखायी नहीं देते, हो सकता है उन्हें ऐसे मसलों के रूप में न देखा जा सके जिन पर खुलेआम चुनौती दी जा सकती है।

कार्यक्रम कार्यकर्त्ता जेंडर संबंधी मुद्दों पर चर्चा और औरतों की सूचना संबंधी आवश्यकताओं को ज़रूरी नहीं मानते हैं। उनकी नज़र में एस.एच.जी. का मकसद केवल गरीबी उन्मूलन पर काम करना है।

एस.जी.एस.वाई. से संबंधित स्वयं सहायता समूहों के मामले में न तो साक्षात्कारों से और न ही रिकार्डों से समता व न्याय से जुड़े मुद्दों के साथ कोई जुड़ाव दिखायी दिया। खेतिहर मज़दूर होने के नाते सदस्याओं ने बताया कि वे अपने काम के बोझ और थकान के बारे में ही बात कर पाती हैं। उन्होंने आमदनी के वैकल्पिक साधनों में सुधार की ज़रूरत भी बतायी। यहां तक कि इस तरह के मुद्दों पर एस.जी. एस.वाई. से जुड़े कार्यकर्त्ताओं द्वारा फ़ेसिलिटेट की गई चर्चाओं में भी इन समस्याओं के जेंडर आधारित या वर्गीय आयामों पर विचार नहीं किया गया। बात मुख्य रूप से यहीं तक सीमित रही कि औरतें अपनी समस्या कह देती थीं क्योंकि उन्हें लगता था कि उनकी समस्याओं पर बात होनी चाहिए। लेकिन जब घरेलू हिंसा और यौन उत्पीड़न जैसे मुद्दों पर सीधे सवाल किया गया तो साक्षात्कारों में औरतों ने बताया कि उनके समुदाय में "ऐसी चीज़ें" नहीं होतीं। स्वयं सहायता समूहों के क्रियाकलाप में इस तरह के मुद्दों की अनुपस्थिति और दूसरी तरफ बैठकों में 'अनुशासन' का महत्त्व तथा एस. जी.एस.वाई. के मूल बिंदु – बचत व सब्सिडी आधारित ऋण पर ज़ोर – यह सब एक साथ चलता था। परियोजना से जुड़े कार्यकर्त्ताओं को जेंडर से जुड़े मुद्दों पर चर्चा करना बेमानी लगता है। उन्हें लगता है कि ये गरीबी को ध्यान में रखकर बनाए गए समूह हैं। दूसरी तरफ औरतें भी ऐसी अपेक्षाएं नहीं रखतीं। उन्हें लगता है कि यह कार्यक्रम सिर्फ़ वित्तीय कार्यक्रम है। बचत पर फ़ोकस का एक परिणाम यह होता है कि समूह महिला अधिकारों के उल्लंघन की स्थिति में भी

माइक्रो क्रेडिट अवधारणा में सामाजिक न्याय का संघर्ष

माइक्रो क्रेडिट की परिधि में सामाजिक न्याय के मुद्दों को अभिव्यक्त करने की मुश्किलों को पीस की कहानी से समझा जा सकता है। पीस ने माइक्रो क्रेडिट और सामाजिक न्याय से जुड़े मुद्दों को एक साथ आगे बढ़ाने का प्रयास किया है।

पीस के मामले में समता और न्याय से जुड़े मुद्दे संगठन द्वारा अतीत में शुरू किए गए 'संगम' (गांव स्तरीय संगठन) के एजेंडा का अभिन्न अंग थे। माइक्रो क्रेडिट पर फोकस के चलते हाल ही में बनाए गए छोटे स्वयं सहायता समूह अभी भी ये मुद्दे उठा रहे हैं लेकिन अब उन्हें संस्था की तरफ से ज़्यादा मदद नहीं मिलती। जो मुद्दे उठाए जा रहे हैं उनमें भी बदलाव आया है। बड़े गांव स्तरीय संगठन वाले चरण में शराब विरोधी अभियान और समान वेतन जैसे मुद्दे उठाए जाते थे। अब जो मुद्दे उठाए जा रहे हैं उनमें सरकार से सेवाओं की मांग पर ज़्यादा ज़ोर रहता है। पहले के मुकाबले अब घरेलू हिंसा के मुद्दे ज़्यादा उठाए जाते हैं। लेकिन यौन हिंसा जैसे मुद्दों को तो बहुत ही कम उठाया जा रहा है। ऐसे मुद्दों के लिए प्रोत्साहक संगठन की ओर से सहायता की भी ज़्यादा ज़रूरत रहती है।

पीस की सदस्याओं के साथ बातचीत में यह बात उभर कर सामने आयी है कि पुराने चरण में वे शराब विरोधी संघर्ष में भी सक्रिय थीं तथा औरतों के खिलाफ होने वाली यौन हिंसा के खिलाफ अभियानों में भी शामिल रहती थीं।

संस्थापक सदस्याओं में से एक ने बताया, "अगर हमें किसी के साथ ज़्यादती का पता चलता था तो चाहे वह हमारे गांव की न हो तब भी हम उस औरत की हर हालत में मदद करते थे। एक दफे दूर के एक गांव में बलात्कार हुआ तो हम लोग जीप में भरकर वहां जा पहुंचे। हम 70 लोग थे। लोग हमारे पास आए और कहने लगे, 'मैडम आइए, हम चलेंगे। अगर हम समूह में जाएंगे तो कोई हमारा क्या बिगाड़ लेगा?' औरतें सदा सक्रिय रहती थीं। हम थाने में भी गए। हमने बताया कि हम संगम की सदस्य हैं और पुलिस को कहा कि वह बलात्कारी को फौरन गिरफ्तार करे। हमने उन्हें चेता दिया था कि अगर तुमने कार्रवाई नहीं की तो हम खुद कदम उठाएंगे।"

इसके बाद इस वृत्तांत में अचानक एक बदलाव आ गया। "लेकिन अब हम ऐसे मामले नहीं उठाते। अगर एक मामला उठाएंगे तो यह सिलसिला बढ़ता ही चला जाएगा। ऐसे मामले जल्दी खत्म नहीं होते। लगातार फॉलोअप करना पड़ता है। हमारा सारा समय इन्हीं मुद्दों पर खर्च हो जाता है। हम आमतौर पर ऐसे बड़े मुद्दे नहीं उठाते क्योंकि ऐसी बातें हमारे कार्यक्रम के लिए मुफीद नहीं हैं। जब हम किसी चीज़ के लिए पैसे लेते हैं तो उससे आगे कैसे जा सकते हैं।"

एक और संस्थापक सदस्य ने माइक्रो क्रेडिट की मांग और सशक्तीकरण की मांग के बीच तनाव की ओर इशारा किया। उन्होंने बताया, "मेरे दिमाग में यही दुविधा रहती है। माइक्रो क्रेडिट के साथ हम कितनी सामाजिक सरगर्मी कर सकते हैं। हमारे पास सामाजिक मुद्दों को संबोधित करने के लिए न तो समय है और न संरचना।" लेकिन भविष्य में सामाजिक न्याय के मुद्दों को उठाने की चाह ज़रूर

दिखायी दे रही थी। एक समिति बनाने की योजना चल रही है जो खासतौर से ऐसे ही मुद्दों पर काम करेगी। अगर कल को संगठन न रहे तो भी ये समूह ऐसी स्थिति में होने चाहिए कि अपने बचत और ऋण के एजेंडे के साथ इन मुद्दों पर भी काम करते रहें।

समता और न्याय के इन मुद्दों को दोबारा उठाने की चाह एक स्तर पर उत्साहजनक है लेकिन इस बात को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि आज का परिवेश माइक्रो क्रेडिट कार्यक्रम के दबावों के चलते समता के मुद्दे पर फोकस की छूट नहीं देता। जैसे–जैसे स्वयंसेवी संस्थाएं बैंकों से जुड़ती जा रही हैं, यह दबाव भी बढ़ता जा रहा है। फिलहाल जिस तरह के सामाजिक एजेंडा को उठाया जा रहा है (जिसमें ज़्यादातर अभिशासन और कुछ हद तक घरेलू हिंसा के मुद्दे शामिल हैं) उन्हें देखकर भी यही लगता है कि भविष्य में ऐसे मुद्दों को नहीं उठाया जाएगा जो व्यापक सत्ता संरचना के लिए खतरा पैदा कर सकते हैं।

कोई हस्तक्षेप नहीं कर पाता। साक्षात्कारों में ऐसी कई घटनाओं का उल्लेख आया। इनमें मारपीट की एक ऐसी घटना का भी ज़िक्र आया जिसमें एक व्यक्ति ने अपनी पत्नी को इसलिए मारा था क्योंकि वह समूह में शामिल होकर बचत करना चाहती थी। एक बार जब बैठक चल रही थी उसी समय पड़ोस में एक औरत के साथ उत्पीड़न हो रहा था। इस पर भी कुछ नहीं किया गया। इसके अलावा भी समूह के भीतर ऐसे बहुत सारे तनाव थे जिनको संबोधित नहीं किया गया था।

अनौपचारिक बातचीत में महिलाओं ने हमें बताया कि घरेलू दायरे में होने वाली हिंसा पर खामोश रहने से मर्दों का संरक्षण मिलता रहता है। पुरुषों की क्या प्रतिक्रिया होगी, यह भय उससे मिलता–जुलता था जिसके बारे में हमने स्वशक्ति से जुड़े स्वयं सहायता समूह की सदस्याओं से सुना था। पितृसत्तात्मक ताकतों की मौजूदगी में यह ज़रूरी होता है कि प्रोत्साहक एजेंसी ऐसे अवसर उपलब्ध कराए ताकि औरतें लैंगिक न्याय के लिए आगे बढ़ सकें। ऐसी मदद न मिलने पर खामोशी स्वाभाविक हो जाती है। स्वशक्ति समूह में औरतों ने यह भी महसूस किया कि "ये हमारी ज़िंदगी के ऐसे मसले हैं जिनके बारे में हमें ज़रूर जानना चाहिए; तभी हम एक–दूसरे की मदद कर सकती हैं। लेकिन वे उन पर चर्चा नहीं करते। वे तो बस कभी–कभार हमसे बात करने के लिए किसी को ले आते हैं और चले जाते हैं। ये लड़कियां (प्रोत्साहक संगठन से आने वाली युवा फेसिलिटेटर्स) खुद कभी किसी चीज़ के बारे में बात नहीं करतीं।" यह इस बात का संकेत था कि कार्यक्रमों की ओर से उनकी इच्छाओं को किस तरह नज़रअंदाज़ किया जा रहा है।

ड्वाक्रा में भी स्वयं सहायता समूहों के एजेंडा पर जेंडर संबंधी चिंताएं दिखायी नहीं दीं। यह बात कार्यक्रम में सक्रिय मंडल स्तरीय कार्यकर्त्ताओं के जवाबों से भी पुष्ट होती थी। साक्षात्कार के दौरान स्फुर्ति सेविका (फील्ड स्तरीय कार्यकर्त्ता) ने बताया कि ड्वाक्रा ने औरतों की ज़िंदगी पर गहरा असर डाला है। उसके मुताबिक, "अब ड्वाक्रा समूह जो भी कहे, पति को मानना पड़ता है।" लेकिन वह एक भी ऐसा उदाहरण नहीं दे पायी जिसमें ड्वाक्रा समूहों ने किसी औरत को इस तरह मदद दी हो (उसने जो एकमात्र उदाहरण दिया वह शहर का था और जब हमने स्पष्ट रूप से कहा कि वह ग्रामीण इलाकों का कोई उदाहरण दें तो उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया)।

"यह दुविधा सदा मेरे मन में रहती है कि माइक्रो क्रेडिट के साथ सामाजिक सरगर्मी किस हद तक संभव है...। सामाजिक मुद्दों को संबोधित करने के लिए हमारे पास न तो समय है और न ही कोई संरचना है।"

हमने पाया कि एस.जी.एस.वाई. से जुड़े जिन स्वयं सहायता समूहों का अध्ययन किया गया, उनमें स्वशक्ति और ड्वाक्रा में औरतें ही परिवार के भीतर जेंडर न्याय के मुद्दों को, खासतौर से घरेलू हिंसा से जुड़े मुद्दों को, नज़रअंदाज़ कर रही हैं। इसी से जुड़ी यह सच्चाई थी कि स्वयं सहायता समूहों का एजेंडा केवल और केवल आर्थिक चिंताओं तक सीमित है।

हमने जिन अन्य कार्यक्रमों का अध्ययन किया उनमें जेंडर आधारित न्याय के मुद्दों के लिए काफी संभावना दिखायी देती थी, हालांकि सबमें स्तर अलग–अलग था। वेलुगू या पीस में मुद्दों को कम से कम उठाया गया है। हमने पाया कि वहां औरतें जेंडर आधारित न्याय से जुड़े मुद्दों पर कुछ हद तक प्रतिक्रिया ज़रूर दे रही हैं। पीस का उदाहरण इसलिए महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि यहां हमें वित्तीय कुशलता पर फोकस से सामाजिक न्याय के एजेंडा पर पड़ने वाला दबाव स्पष्ट रूप से सामने आता दिखायी देता है। इससे पता चलता है कि किस तरह स्वयं सहायता समूहों का एजेंडा प्रोत्साहक एजेंसी से मिलने वाली सहायता के स्तर व स्वरूप से भी प्रभावित होता है, बावजूद इसके कि स्वयंसेवी संस्था की गंभीरता और प्रतिबद्धता में कोई कमी नहीं है। आनंदी के समूहों की महिलाओं को प्रोत्साहक एजेंसी की सहायता प्राप्त है इसलिए वे सामाजिक मुद्दों को उठाने और समता का वैकल्पिक विमर्श खड़ा करने में बढ़–चढ़ कर सक्रिय हैं।

विकास के 'सुरक्षित' मुद्दों को उठाना

जिन कार्यक्रमों का अध्ययन किया गया उनमें से ज़्यादातर में सरकार से सुविधाएं मांगने से जुड़े मुद्दे ही ज़्यादा उठाए गए हैं। स्वयं सहायता समूहों में लैंगिक न्याय के मुकाबले इस तरह के मुद्दे ज़्यादा सामने आते रहे हैं। लैंगिक न्याय जैसे मुद्दों को इसलिए नहीं उठाया जाता कि वे घरेलू दायरे से जुड़े होते हैं। यह निश्चय ही उत्साहजनक बात है कि स्वयं सहायता समूह स्थानीय अभिशासन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मुद्दे उठा रहे हैं। लेकिन यहां गौर करने की बात यह है कि अधिकांश मामलों में अभिशासन के जिन मुद्दों को उठाया गया है उनका स्वरूप ऐसा है कि वे गरीबी और अन्याय की बुनियादी चिन्ताओं से नहीं जुड़े हैं। हम यह भी देखते हैं कि सरकारी कार्यक्रमों में अभिशासन संबंधी कार्रवाइयां मोटे तौर पर सरकार द्वारा स्वयं सहायता समूहों को साधन के रूप में इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति का परिणाम रही हैं। मिसाल के तौर पर, इन समूहों को टीकाकरण और जनसंख्या नियंत्रण आदि अभियानों में अकसर शामिल कर लिया जाता है। ड्वाक्रा में सरकारी सेवाओं और संसाधनों तक पहुंच जैसे मुद्दों को भी नहीं उठाया जा रहा है। जब ड्वाक्रा समूहों की बैठक होती थी (यानि तनावों के कारण बैठकें बंद हो जाने से पहले) तो इस तरह के मुद्दे समूह के एजेंडा पर नहीं थे। एस.जी.एस.वाइ. कार्यक्रम से जुड़े समूह में भी ऐसी ही स्थिति थी।

साक्षात्कारकर्ता: एस.एच.जी. की बैठकें कितनी देर चलती थीं?

सदस्या: कितनी भी देर चलें... हमें नहीं मालूम... शायद घंटा भर।

साक्षात्कारकर्ता: बचत और कर्ज़ों के अलावा क्या आप गांव के मुद्दों या समस्याओं पर भी चर्चा करती थीं... सड़कों या पीने के पानी के बारे में?

सदस्याः नहीं, ऐसा कुछ नहीं होता था...।

जहां इस तरह के मुद्दे उठाए जा रहे थे, वहां घरेलू दायरे में होने वाली जेंडर आधारित हिंसा के मुद्दों की संख्या अनुशासन संबंधी मुद्दों के मुकाबले बहुत कम थी। जिस तरह के अनुशासन संबंधी मुद्दे उठाए गए थे उनसे यथास्थिति को वैसा खतरा नहीं था जैसा खतरा जेंडर आधारित हिंसा के मुद्दों से पैदा हो सकता है। यह बात निरंतर सर्वेक्षण में भी सामने आयी थी कि जेंडर आधारित या यौन हिंसा से संबंधित मुद्दों की बजाय सरकारी योजनाओं तक पहुंच जैसे सामाजिक मुद्दों को ज़्यादा उठाया जाता है। सर्वेक्षण में इस बात का भी आकलन किया गया कि कौन–से समूह सामाजिक मुद्दे उठाते हैं, किस तरह के मुद्दे उठाए जा रहे हैं, उनके लिए किस तरह की रणनीति अपनायी जाती है और जहां इस तरह के मुद्दे उठते हैं वहां नेतृत्त्वकारी भूमिका निभाने वाली महिलाओं की साक्षरता का स्तर क्या होता है। इस सर्वेक्षण के निष्कर्ष नीचे टेबल में दिए गए हैं।

सर्वेक्षण से पता चलता है कि समूहों में जाति आधारित हिंसा और महिलाओं के साथ होने वाले यौन उत्पीड़न और हिंसा के मामले विरले ही कभी उठाए जाते हैं। यह इस बात का एक और साक्ष्य है कि स्वयं सहायता समूहों में समाज के सत्ता संबंधों से जुड़े मुद्दों को पर्याप्त रूप से संबोधित नहीं किया जा रहा है। यौन हिंसा से संबंधित मुद्दों पर इतनी कम सक्रियता संभवतः इस बात का संकेत है कि यौन उत्पीड़न/हिंसा के मामलों को उठाने के लिए औरतों को पहले शर्मिंदगी और इज्ज़त जैसी पितृसत्तात्मक

- जिन 2750 समूहों का सर्वेक्षण किया गया उनमें से आधे किसी भी तरह के सामाजिक मुद्दों पर सक्रिय नहीं थे। सरकारी समूहों में तो ऐसे समूहों की संख्या 64% थी।
- सामाजिक मुद्दे उठाने वाले समूहों ने सबसे ज़्यादा सरकारी योजनाओं और उनसे जुड़े लाभों के मामले उठाए थे (26%)। इसके बाद पुरुषों में शराबखोरी की समस्या पर पहल सबसे ज़्यादा थी (20%)। इन समूहों ने सबसे कम सक्रियता जाति आधारित हिंसा (6%) और यौन उत्पीड़न/हिंसा (6%) पर दिखायी। समस्याओं को 'हल' करने के लिए सबसे ज़्यादा 'समझौते' का रास्ता अपनाया गया। इससे पता चलता है कि संबंधित समूह लैंगिक आधार पर ज़्यादा न्यायपूर्ण और अधिकार आधारित विकल्पों के लिए प्रयास करने से हिचकिचाते हैं।
- उल्लेखनीय बात है कि 'प्रदर्शन' की पद्धति का सबसे ज़्यादा सरकार से नागरिक सुविधाओं की मांग के लिए इस्तेमाल किया गया। इस पद्धति का जेंडर आधारित या यौन हिंसा के माामले में सबसे कम इस्तेमाल हुआ।
- सामाजिक मुद्दों पर होने वाले हस्तक्षेपों के लिए प्रोत्साहक एजेंसियों से बहुत सीमित मदद मिलती है। प्रोत्साहक एजेंसियों की ओर से अधिकांशतः सहायता तभी उपलब्ध करायी गई जब सरकारी योजनाओं/लाभों तक पहुंच के मुद्दों को उठाया गया था। शराबखोरी और यौन उत्पीड़न/हिंसा के मामलों में प्रोत्साहक एजेंसियों ने सबसे कम मदद दी।

निरंतर सर्वेक्षण

धारणाओं से निपटना पड़ता है। इसके लिए सीखने या यूं कहें कि सीखे हुए को मिटाने की जो ज़रूरत होती है उसके मौके स्वयं सहायता समूहों में औरतों को प्रायः नहीं मिलते।

औरतों की पहल, सहायता के बिना

स्वशक्ति से जुड़े स्वयं सहायता समूहों के सदस्यों के साथ हमने इस बारे में चर्चा की थी कि गांव में औरतों को किस तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस चर्चा में औरतों ने दबे–छिपे स्वर में हाल की एक ऐसी घटना के बारे में बताया जिसमें एक आदमी ने दूसरी शादी की थी। उनका दृढ़ विश्वास था कि ऐसे मुद्दों को ज़रूर उठाया जाना चाहिए ताकि ऐसी घटनाएं फिर न घट सकें। लेकिन उन्हें लगता था कि वे समूहों के माध्यम से इन मुद्दों को नहीं उठा सकतीं। उनकी राय में इस मुद्दे या परिवार के भीतर होने वाली हिंसा जैसे मुद्दों को उठाने के लिए समूह सही मंच नहीं है। उन्होंने पुरुषों की शराबखोरी आदि के कारण घर में औरतों के साथ होने वाली शारीरिक हिंसा और बदसलूकी जैसे सवालों पर दखल तो दिया था लेकिन इस तरह की कार्रवाहियां व्यक्तिगत स्तर की थीं। ये हस्तक्षेप कुनबे–कुटुंब के रिश्तों या समूह से जुड़ाव के कारण किए गए थे। लेकिन इस तरह की मदद तो स्वयं सहायता समूहों के गठन से पहले भी उपलब्ध थी। इन कार्रवाहियों को समूह के सामने नहीं रखा गया क्योंकि सदस्याओं का मानना था कि ये बातें एस. एच.जी. की बैठकों के दायरे में नहीं आतीं।

एस.एच.जी. सदस्याओं ने बताया कि जहां पुरुष उनके समूहों की बैठकों पर नज़र रखते हों और समूह के रजिस्टर व पासबुक आदि की नियमित पड़ताल करते हों वहां औरतों के लिए यही बेहतर है कि वे समूह के सामने इस तरह के सवाल न उठाएं। उन्हें लगता है कि ऐसे में उन्हें बैठक में आने से रोक दिया जाएगा, उनकी आवाजाही पर अंकुश लगेगा और परिवार में उनकी हालत खराब होगी। कार्यक्रम कोऑर्डिनेटर के मुताबिक, "अन्य प्रकार के समूहों के मुकाबले स्वयं सहायता समूहों की बैठकों के बारे में पुरुषों का उत्साह और दिलचस्पी बढ़ती दिखायी देती है क्योंकि इन समूहों से उनकी भौतिक अपेक्षाएं जुड़ी हुई हैं। पहले औरतों के समूहों में औरतो की बातों पर ही चर्चा होती थी इसलिए कोई उनकी परवाह नहीं करता था। मर्द तो बिल्कुल नहीं। लेकिन स्वयं सहायता समूहों के बचत और ऋण कार्यक्रमों में पुरुषों को अपना भी बहुत कुछ दांव पर लगा दिखायी देता है इसलिए उन्हें लगता है कि समूह के वित्तीय और अन्य रिकॉर्ड्स की पड़ताल करने का उन्हें पूरा हक है। वे कुछ पैसा देते हैं इसलिए उन्हें लगता है कि सब कुछ उनका ही है। कभी यह औरतों की परिधि थी लेकिन अब नहीं रही। जब पैसा केंद्र में आ जाता है तो इस बारे में पुरुषों की दिलचस्पी बढ़ जाती है कि समूह में क्या चल रहा है।"

हमने जिन कार्यक्रमों का अध्ययन किया उनमें से अधिकांश का माहौल ऐसा नहीं था कि वहां स्वयं सहायता समूह जेंडर आधारित न्याय के मुद्दे उठा सकें। फिर भी बहुत सारे ऐसे उदाहरण थे जहां औरतों ने प्रोत्साहक एजेंसियों की सहायता या समर्थन के बिना स्वतःस्फूर्त ढंग से लैंगिक न्याय के मुद्दे उठाए थे। मिसाल के तौर पर, जब हम वेलुगू के अध्ययन के सिलसिले में फील्ड विज़िट्स पर गए तो गांव में हमें ड्वाक्रा के तहत चलने वाले एक समूह की सदस्यों से मिलने का मौका मिला। इस बातचीत में पता चला कि वेलुगू द्वारा प्रायोजित पुराने स्वयं सहायता समूह ने ड्वाक्रा समूह के सदस्यों को साथ जोड़कर शराबखोरी और घरेलू हिंसा के मुद्दे को उठाया था। वेलुगू से जुड़े

समूहों को गांव स्तरीय फेडरेशन की बैठकों में कार्यकर्त्ताओं से सीमित ही सही लेकिन कुछ मदद मिली थी लेकिन ड्वाक्रा से जुड़े समूह को तो कार्यक्रम के तहत ऐसी कोई मदद नहीं मिल पायी।

अभिशासन से जुड़े मुद्दों पर वेलुगू और ड्वाक्रा समूहों द्वारा संयुक्त कार्रवाई के उदाहरण भी सामने आए। उदाहरण के लिए, उन्होंने मिलकर गांव में हैंडपम्प्स के लिए आवाज़ उठायी थी। इसके लिए उन्होंने कलेक्टर के दफ्तर में अर्ज़ी दी, प्रदर्शन किया और आखिरकार हैंडपम्प लगावा लिए। ऐसे भी उदाहरण थे जब मिलकर कदम उठाने के लिए किसी समूह ने अपनी ओर से पहल लेकर दूसरे समूह से बात की हो। जब पीस द्वारा प्रोत्साहित समूह को पानी के सवाल पर समस्या दिखायी दी तो उन्होंने ड्वाक्रा द्वारा प्रोत्साहित समूह से सम्पर्क किया। "सभी को समस्या थी इसलिए सबने सोचा कि हमें मिलकर काम करना चाहिए। हम ड्वाक्रा समूह के साथ सरपंच के पास गए। अब हमें यह सोचकर अफसोस होता है कि हमने सुमित्रा को सरपंच बनाया था। हमारे पास मिलकर काम करने के अलावा और कोई चारा नहीं था।" स्वशक्ति के एक समूह ने गैर–सदस्य लोगों के साथ मिलकर कदम उठाए और अपने मौहल्ले में पानी के नलके व सड़क बनवाने के लिए सरपंच को अर्ज़ी दी। "हम परेशान थे और मर्द तो कुछ करने वाले थे नहीं इसलिए हमने सोचा कि हमीं कुछ करें। हमें सरपंच से बात करनी थी, उसकी घरवाली हमारे समूह की सदस्य है। लेकिन खाली अपने दम पर हम कुछ नहीं कर सकते थे इसलिए हमने इस बारे में दूसरी औरतों से बात की क्योंकि ये समस्याएं हम औरतों की ज़िन्दगी के लिए सबसे ज़्यादा अहम है।"

अध्ययन में ऐसे भी उदाहरण सामने आए जब समूह की सदस्याओं ने ऐसी औरतों की मदद के लिए हाथ बढ़ाया जो उनके समूह की सदस्य नहीं थीं (जैसे, पीस से जुड़े स्वयं सहायता समूह के मामले में)। ऐसा तब था जबकि समुदाय के सदस्य अकसर यह सवाल उठाते हैं कि समूह को ऐसे लोगों की मदद क्यों करनी चाहिए जो समूह के सदस्य नहीं हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि जिन कार्यक्रमों में समूहों के बीच आपसी संबंध दिखायी नहीं देते वे ऐसे कार्यक्रम थे जिनमें समाजिक न्याय के मुद्दों पर एक सहयोगी वातावरण मुहैया कराने या ऐसी मदद देने का कोई प्रयास नहीं किया गया था। ड्वाक्रा और एस.जी.एस.वाई. में यह समस्या दिखायी दी। पश्चिमी गोदावरी, आंध्र प्रदेश में ड्वाक्रा कार्यक्रम के अन्तर्गत चलने वाले समूहों में आपसी सम्पर्क के अभाव की बात औरतों ने स्पष्ट रूप से कही।

साक्षात्कारकर्ता: क्या आप अन्य समूहों के साथ मिलती हैं और उनके साथ बैठकर किसी चीज़ पर चर्चा करती हैं?

सदस्या: हमारे और अन्य समूहों के बीच कोई संबंध नहीं है। हो भी क्यों? हम अपने लिए बचत करते हैं वे अपने लिए।

सदस्या: सब अपना काम करती हैं। हम एक–दूसरे के काम में दखल नहीं देते। अगर एम.डी.ओ. (मंडल विकास अधिकारी) की तरफ से हुक्म आता है कि हम दूसरे समूह को किसी चीज़ के बारे में जाकर बता दें तो हम बता देते हैं, बस। और कुछ नहीं।

पहल की सीमाएं

पीस से जुड़े स्वयं सहायता समूह की महिलाओं से बात करते हुए हमें यह कहानी सुनने को मिली : "हमारे गांव में एक औरत को उसका आदमी पीट रहा था। पति ने उसे इतना मारा कि उसे खून बहने लगा। हम सब वहां गए, हमने आदमी को घसीट कर बाहर

निकाला और उसकी करतूत के लिए उसे चप्पलों से मार लगायी। नीम के पेड़ तले हमने पंचायत बुला ली। वह आदमी हमारे ख़िलाफ आग बबूला हो रहा था क्योंकि हमने उसकी बीवी का साथ दिया था। वह हमें गालियां दिये जा रहा था और सबक सिखाने की धमकी दे रहा था। बाद में उसने अपनी बीबी को पेड़ के नीचे खड़ा करके भी मारा–पीटा...। उसने किसी की नहीं सुनी। अब सारा गांव उससे डरता है। हमें पुलिस से भी मदद नहीं मिली। हमने आगे भी उस औरत की मदद करने का प्रयास किया लेकिन जो लोग शुरू में हमारे साथ थे वही अब हमारे खिलाफ होने लगे थे। सदा यही होता है। कोई आगे नहीं आता। हमने इस मामले को उठाने का तय कर लिया था। लेकिन अब वह औरत अपने पति के साथ नहीं रहती। दोनों अलग हो गए हैं।"

उस औरत ने अब पति के साथ रहना छोड़ दिया है, इस बात से समूह की सदस्याओं को तसल्ली नहीं थी। उन्हें यह सोचकर बुरा लग रहा था कि न तो वे उस आदमी के खिलाफ कोई कार्रवाई कर पायीं और न ही समुदाय ने उनका साथ दिया। उल्लेखनीय बात यह है कि यहां औरतों ने प्रोत्साहक संगठन का नाम नहीं लिया। जब हमने उनसे पूछा कि उन्होंने किसी से मदद मांगने की सोची थी या नहीं तो उन्होंने बस सरपंच का ज़िक्र किया।

यह निर्विवाद है कि इस तरह के बहुत सारे मामलों में औरतें अपने सामने आने वाली रुकावटों का बिना किसी मदद के सामना नहीं कर सकतीं। बहुत सारे ऐसे बिन्दु थे जहां एस.एच.जी. सदस्याओं को ये समझ में नहीं आ रहा था कि मामले को आगे कैसे बढ़ाया जाए। न ही उन्हें समाधान की ओर बढ़ने के लिए कहीं से मदद मिलती दिखायी दे रही थी। इससे साफ पता चलता है कि औरतों को सीखने के ऐसे मौके नहीं मिल रहे हैं जिनके ज़रिए वे खुद–ब–खुद पहल कर सकें। यह बात ऐसे माहौल में बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाती है जहां पितृसत्तात्मक ताकतों के कारण ऐसे मुद्दों पर समुदाय के भीतर से या तो कोई मदद नहीं मिलती या मिलती भी है तो बहुत मामूली। ऐसे में आरोपी ही आक्रामक रवैया अपना लेता है और उन्हें चुनौती देने लगता है। जैसा कि अध्याय 3 में बताया गया है, वित्तीय एजेंडा के दबावों की वजह से प्रोत्साहक संस्थान ऐसी सूचनाएं और अन्य सहायता उपलब्ध नहीं कराना चाहते जिनके ज़रिए औरतें सामाजिक न्याय के मुद्दों पर पहल कर सकती हैं। जब औरतों ने अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाने की अपनी कोशिशों का ब्यौरा दिया तो मदद के इस अभाव के परिणाम भी उनकी बातों में साफ झलक रहे थे।

जहां परिवेश मददगार रहा है वहां की कहानी बिल्कुल अलग दिखायी देती है। आनंदी द्वारा प्रोत्साहित समूह की औरतों के सामने एक ऐसी घटना आयी जिसमें गांव के सरपंच के बेटे ने गांव की एक औरत के साथ ज़ोर–ज़बरदस्ती की थी। पीड़ित महिला समूह की सक्रिय सदस्य नहीं थी लेकिन समूह ने इस मामले में हस्तक्षेप का फैसला लिया। उन्होंने मामले की चर्चा के लिए गांव की एक बैठक बुलायी। यह घटना इसलिए और भी गंभीर हो गई थी क्योंकि पीड़ित औरत का पति भी उसी को दोषी ठहरा रहा

जिन कार्यक्रमों में सामाजिक न्याय के मुद्दों पर इनपुट्स या सहायक वातावरण का पूरी तरह से अभाव था उनमें समूहों के बीच आपसी संबंधों का कोई प्रमाण दिखाई नहीं दिया।

था। पति ने उसे पेड़ से बांधकर इतना मारा की वह लगभग बेहोश हो गई। समूह की औरतों ने तय किया कि वे छेड़छाड़ करने वाले आरोपी और हिंसक पति, दोनों को सज़ा दिलवाकर रहेंगी। इस बात के लिए उन्होंने अपने संगठन को श्रेय दिया जिसने उन्हें सामाजिक न्याय के लिए प्रतिबद्ध समूह के रूप में काम करने के योग्य बनाया और उनकी विश्वसनीयता सुनिश्चित करने के लिए उन्हें पहचान पत्र जारी किए। संगठन ने ही उन्हें कानूनों की जानकारी दी और यह बताया कि न्याय व्यवस्था कैसे काम करती है।

यहां सामाजिक मुद्दों के बारे में औरतों के अपने नज़रिए का मामला भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। कुछ मामलों में औरतों को खुद ही ये नहीं लगता था कि वे कुछ खास तरह के जेंडर भेदभाव को चुनौती दे सकती हैं हालांकि उन्हें ऐसे भेदभाव से परेशानी थी। यहां से सीखने के अवसरों की ज़रूरत और उन जेंडर आधारित तौर–तरीकों को पहचानने की प्रक्रिया शुरू होती है जिनके बारे में सशक्तीकरण के ज़रिए औरतें भेदभाव और गैर–बराबरी को चुनौती देने का विश्वास अर्जित कर सकती हैं। मिसाल के तौर पर पीस से जुड़े एक स्वयं सहायता समूह की एक सदस्या ने दहेज के बारे में कहा कि यह "हालत बदलने वाली नहीं है। यही हमारा भाग्य है। अब दिन पर दिन और दहेज मांगा जाने लगा है। हम इसके बारे में सोचते हैं लेकिन क्या करें कुछ समझ में नहीं आता है।" हमने पाया कि इस लाचारी के बावजूद समूह की औरतों में गुस्सा था। वे इस परंपरा को गलत मानती हैं और उसके बारे में कुछ करना चाहती हैं। कई चर्चाओं में मिले–जुले भाव सामने आए। किसी में बेचारगी दिखायी देती थी तो किसी में हालात को बदलने की घोषित चाह थी। आनंदी में सक्रिय औरतों ने इस मुद्दे पर तीखी बहस चलायी और वे इस नतीजे पर पहुंचीं कि अगर कोई भी व्यक्ति दहेज लेना या देना चाहता है तो उसे सजा दी जानी चाहिए और उसे संगठन की सदस्यता से बाहर कर देना चाहिए। इसकी बजाय संगठन की नेताओं ने सदस्याओं को ऐसे वर–वधु ढूंढने में मदद दी है जो दहेज के बिना शादी करने को तैयार हैं। इस बारे में बताते हुए सदस्याओं के चेहरे पर गर्व का भाव देखा जा सकता था।

न्याय समिति की महिलाएं ऐसे मुद्दों की प्राथमिकता के मामले में ज़्यादा बेबाक राय रखती थीं। एक सदस्या ने कहा "अगर औरत को घर में शांति और सुरक्षा न मिले तो बाकी सारी चीज़ों का क्या मतलब? औरतें तभी दूसरी लड़ाई लड़ सकती हैं जब उन्हें ये यकीन हो कि घर के भीतर बराबरी की इस सबसे बड़ी लड़ाई में कोई उनका साथ देने वाला है।"

वित्तीय एजेंडा और सामूहिकता के बीच तनाव

प्रोत्साहक एजेंसियों की ओर से पर्याप्त अवसर और मदद न मिलने के कारण औरतें न केवल जेंडर और सामाजिक न्याय से जुड़े मुद्दों को उठाने में नाकाम हो जाती हैं। समूहों के भीतर समाजिक न्याय के मुद्दों पर उनकी सक्रियता के अभाव को समूह की एकजुटता और स्वयं सहायता समूहों में पैसे से जुड़े सवाल पर ज़ोर के बीच निहित तनावों के संदर्भ में भी देखा जाना चाहिए। प्रोत्साहक एजेंसी समूह को इस योग्य बनाने का प्रयास नहीं करती कि वह माइक्रो क्रेडिट के आर्थिक तर्क से पैदा होने वाले तनावों और दबावों को झेल सके। इससे पूरे समूह के लिए गंभीर परिणाम पैदा हो सकते हैं।

पीस द्वारा प्रोत्साहित एक स्वयं सहायता समूह की बैठक में सदस्याओं के बीच चर्चा से यह बात उभर कर आयी कि आर्थिक लेन–देन और संबंधों के कारण

कई ऐसे बिन्दु थे जिन पर एस.एच.जी. सदस्याओं को आगे बढ़ने का रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था। यह इस बात का संकेत है कि औरतों के स्वतःस्फूर्त पहल को आगे बढ़ाने के लिए सीखने के अवसर बिलकुल नहीं हैं।

समूह के भीतर सदस्यों के रिश्ते किस तरह विकृत हो जाते हैं। समूह की एक सदस्या (माया) ने पूरा कर्ज़ा नहीं चुकाया था। जब इस बारे में चर्चा चली तो समूह की नेता ने एक अन्य सदस्या (शीला) की ओर इशारा करके कहा कि "आज शीला चुप क्यों है? कहीं ऐसा तो नहीं कि उसने माया से थोड़ा–बहुत कर्ज़ा ले लिया है" (इसका मतलब था कि संभवतः माया ने अपने कर्ज़े का कुछ हिस्सा शीला को दिया हुआ है जिसकी वजह से शीला माया के खिलाफ मुंह नहीं खोलना चाहती)।

एस.जी.एस.वाई. से जुड़े स्वयं सहायता समूह के मामले में आर्थिक दबावों के कारण समूह के भीतर तनाव और अविश्वास भी दिखायी दिया। बैंक की ओर से समूह की सदस्यों को सब्सिडीयुक्त ऋण बहुत बिलंब के बाद जारी किया गया था। समूह की गरीब सदस्याओं ने कहा, "दूसरी सदस्यों ने कहा था इसलिए हमने भी भैंस खरीदने के लिए कर्ज़े की अर्ज़ी दे दी थी। हमने फॉर्म और फोटो खिंचवाने पर पैसा खर्च किया लेकिन बैंक के तो मैनेजर का ही तबादला हो गया।" इसके जवाब में समूह के नेता ने कहा कि "आवेदन देने के तीन महीने बाद भी हमें ऋण नहीं मिला। सारी मेम्बर शिकायत करने लगीं। हम (नेता) पता लगाने गए पर कुछ नहीं हुआ। औरतें गुस्सा होने लगीं। उन्होंने हम पर ही झूठ का इलज़ाम लगा दिया। कुछ महीने बाद सबने साथ जाने का फैसला किया। लेकिन नए मैनेजर ने भी हमारी एक न सुनी। अब कई महीने से वह आ ही नहीं रहा है। ग्राम सेवक[4] ने हमें और इंतजार करने के लिए कहा है।" सरकारी सब्सिडी तक पहुंच के आलावा महिलाएं अभी भी बैंक को अपना पैसा जमा कराने का ज़रिया भर ही मानती हैं। समूह के नेता ने कहा कि "अगर हम आपस में ही कर्ज़ पर पैसा देने लगें तो ये ठीक नहीं रहेगा।" विश्वास के अभाव और विश्वास पैदा करने वाली प्रक्रियाओं के न होने से आपस में पैसे के लेन–देन का विकल्प खारिज कर दिया गया। फिर भी, यही कसौटी है जिसके आधार पर तय किया जाता है कि किसी समूह को कर्ज़ा दिया जा सकता है या नहीं।

प्रोत्साहक एजेंसी की ओर से मदद न मिलने की सूरत में सामूहिक संबंधों पर आर्थिक दबाब का सबसे बुरा असर ड्वाक्रा द्वारा चलाए जा रहे एक स्वयं सहायता समूह में दिखायी दिया। पश्चिमी गोदावरी आंध्र प्रदेश के संपन्न ज़िलों में आता है लेकिन अध्ययन के लिए जिस एस.एच.जी. को चुना गया वह दलितों का समूह था। सभी सदस्याएं आर्थिक रूप से कमज़ोर थीं। समूह के साथ पहली बातचीत के दौरान ही यह स्पष्ट हो गया कि यहां हम उन सभी मुद्दों पर बात नहीं कर पाएंगे जिन पर हमें ऐसे साक्षात्कार में बात करनी थी। इस समूह में तनाव और आपसी अविश्वास बहुत ज़्यादा था। साक्षात्कार के दौरान यह भी स्पष्ट हो गया कि पिछले तीन साल से समूह की कोई बैठक नहीं हुई है।

जब यह समूह बना तो शुरुआती दौर में सदस्याएं बचत पर ध्यान देती थीं। जैसे ही ड्वाक्रा कार्यक्रम की ओर से समूह को रिवॉल्विंग फंड (सामूहिक आर्थिक उद्यम चलाने के लिए दिया जाने वाला अनुदान) दे दिया गया, सदस्याएं उसे बांटकर अपने व्यक्तिगत 'हिस्से' पर कर्ज़े लेने लगीं और उन्होंने

4. एस.जी.एस.वाई. कार्यक्रम का समुदाय स्तरीय कार्यकर्त्ता।

बचत बंद कर दी। भले ही ऐसा करने का प्रावधान नहीं होता लेकिन अगर इनपुट न मिले तो बहुधा ऐसा हो सकता है। सदस्याओं ने बचत न कर पाने के लिए ये कारण बताया कि कर्ज़ा चुकाने और बचत करने, दोनों का मिला–जुला बोझ बहुत ज़्यादा हो गया था।

तनाव के दो बिन्दु थे। पहला, एक बार यह तय किया गया था कि बैंक में रिवॉल्विंग फंड का जो हिस्सा बचा हुआ है उसे महिला बैंक को सौंप दिया जाए। महिला बैंक ड्वाक्रा समूहों की एक फेडरेशन द्वारा चलाया जा रहा एक बैंक है। इस फैसले से समूह में काफी अविश्वास पैदा हुआ। सदस्याओं का दावा था कि नेताओं ने उनसे राय लिए बिना फैसला ले लिया था। इस बात को खुलकर तो किसी ने नहीं कहा लेकिन अविश्वास इसी बात को लेकर था कि समूह के पैसे को एक बैंक से दूसरे बैंक में ले जाने की प्रक्रिया में नेताओं ने समूह के पैसे का कुछ हिस्सा दबा लिया था। पारदर्शिता सुनिश्चित करने वाली प्रक्रियाओं के अभाव में यह समूह सिर्फ बचत जमा करने के न्यून्तम ढंग से काम कर रहा था। सामूहिक एजेंडा तो दूर की बात रही उसमें फैसलों के बारे में चर्चा तक नहीं होती थी।

अब तक समूह का अस्तित्व बचत पर यांत्रिक रूप से आश्रित था जिसमें किसी सामूहिक एजेंडा की बात तो दूर रही, फैसलों पर भी कोई खास चर्चा नहीं होती थी।

तनाव की दूसरी वजह यह थी कि नेता चाहते थे कि ग्रुप के सदस्यों के बीच, पैसा बांट लिया जाए। सदस्याओं को लगता था कि पैसे को बांटने की बजाय उसे कर्ज़ के रूप में सदस्यों द्वारा ले लिया जाए और लौटा दिया जाए, जैसा पहले होता रहा था। इस मतभेद की एक वजह शायद यह थी कि समूह के नेता को सदस्याओं की कर्ज़ा लौटा पाने की क्षमता पर भरोसा नहीं था। "अब तो ये कह रही हैं कि पैसा चुका देंगी। पर अगर बाद में उन्होंने नहीं लौटाया तो क्या होगा, कौन जाने?" नेताओं का कहना था कि जिन बैंकों में पहले उनके खाते थे वहां अभी भी बकाया किस्तें बाकी हैं। साक्षात्कार के दौरान सदस्याओं और नेताओं के बीच कर्ज़ वापसी में देरी के सवाल पर काफी कहा–सुनी हुई। रिवॉल्विंग फंड को नेता शायद इसलिए भी बांटना चाहती थी क्योंकि वह समूह में खींचतान से तंग आ चुकी थी। ये सारे मुद्दे चर्चा के लिए तभी उठे जब अध्ययन दल ने समूह से बातचीत के लिए सम्पर्क किया क्योंकि पिछले तीन साल से तो समूह की कोई बैठक ही नहीं हुई थी। न ही कार्यक्रम दल ने समूह को कोई मदद दी थी इसलिए हमारे पहुंचने तक यह मुद्दा अनसुलझा ही पड़ा रहा।

ये कुछ ज़्यादा ही अजीबोगरीब स्थितियां हैं। जब हमने यह जानने का प्रयास किया कि क्या इस तरह के टकराव अन्य समूहों में भी होते हैं तो दूसरे समूहों की सदस्याओं ने बताया कि यह तो सभी समूहों में होता है। समूह की नेताओं में से एक महिला ने कहा, "कुछ समूहों में नेताओं ने 7–8 हज़ार रुपये तक लिए हुए हैं। बैंक बदलने के लिए हमने इसलिए फैसला लिया था ताकि हमें ज़्यादा ब्याज मिले। इसमें गलती किसकी है? जब उन्होंने पासबुक मांगी तो हमने दिखाया और वे उसे लेकर ही भाग गईं। वह अब तक उन्होंने नहीं लौटायी। वे बैठक में भी नहीं आ रही थीं। अब वे इसलिए आयी हैं क्योंकि आप लोग आ गए हैं।"

यह अविश्वास पारदर्शिता की कमी का नतीजा था। पारदर्शिता की कमी आधारभूत संस्थागत प्रक्रियाओं के अभाव की वजह से बनी हुई थी। समूह

की एक सदस्या ने इस बात को स्पष्ट रूप से कहा भी। "अगर बैंक जाने से पहले हर महीने एक बैठक हो जाए तो हमें भी पता चल जाएगा कि कितना पैसा लौटा दिया गया है। लेकिन हमारी तो कोई बैठक ही नहीं होती। वे (नेता) हमारे घर आती हैं और पैसे लेकर चली जाती हैं। फिर वे क्या करती हैं हमें नहीं मालूम। समूह की नेता कोई चीज़ हमें नहीं बतातीं। उनका बस यह कहना होता है कि जब बैंक वालों को कोई दिक्कत नहीं है तो तुम्हें क्या दिक्कत है।" नेताओं की भूमिका के बारे में सदस्यों ने और भी कई अहम बातें कहीं। साक्षात्कारों के आखिर में जब हमने सदस्यों से पूछा कि उनकी राय में समूह से लाभ उठाने के लिए उन्हें किस तरह की मदद चाहिए तो एक सदस्या ने कहा, "ये तो बस नेताओं को पता है। वे बड़े लोग हैं।"

समूह के भीतर सामूहिकता का भाव कहीं नहीं था। न केवल उपरोक्त विवादों के कारण आपसी तनाव पैदा हो चुकी थी बल्कि सबने व्यक्तिगत नफे–नुकसान को ध्यान में रखते हुए काम करने का ही उसूल बना लिया था। जब उनसे पूछा गया कि क्या बुरे वक्त में सदस्य एक–दूसरे की मदद करती हैं या नहीं तो एक सदस्या ने जवाब दिया, "अब कोई किसी की परवाह नहीं करता। अगर कोई मुश्किल में हो तो कोई उसकी मदद नहीं करेगा।"

पहले साक्षात्कार के आखिर में सदस्याओं का कहना था कि इन बातों पर बहस करके उनका मन काफी हल्का हुआ है। यह बात दूसरे साक्षात्कार में भी दिखायी दी। इस बार उनके बीच खींचतान और तू–तू, मैं–मैं काफी कम रही। इस प्रक्रिया में सबसे ज़्यादा ध्यान देने वाली बात यह है कि कार्यक्रम दल की ओर से कभी भी इस स्थिति पर कोई प्रतिक्रिया या पहलकदमी नहीं आयी थी। आपसी अविश्वास और दुश्मनी से जूझने के लिए औरतों को अकेला छोड़ दिया गया था।

इस विवाद को कैसे समझा जाए? प्रत्यक्ष नकारात्मक तनावों को छोड़ दें तो कुछ अच्छी बातें भी दिखायी दीं। हमने पाया कि महिलाओं ने अपने बूते पर कई आर्थिक फैसले लिए थे। उदाहरण के लिए, विभिन्न बैंकों द्वारा उपलब्ध कराए जा रहे लाभों की तुलना के आधार पर नेताओं ने खाते को एक बैंक से दूसरे बैंक में स्थानांतरित कर लिया था। एक बार जब आर्थिक फैसलों के बारे में टकराव की स्थिति पैदा हुई तो समूह ने ही सरकारी अफसरों से सम्पर्क किया था। समूह ने पहलकदमी की ठीक–ठाक क्षमता दिखायी। आर्थिक रूप से या प्रक्रिया (समूह की सदस्याओं से सलाह मशविरा लिए बिना फैसले लेना) के स्तर पर इन फैसलों को बहुत विवेकसम्मत नहीं कहा जा सकता। लेकिन ये फैसले इस कारण उल्लेखनीय हैं क्योंकि इनसे पता चलता है कि समूह ने जानकारी जुटाने का प्रयास किया और महत्त्वपूर्ण फैसले लिए, जिनमें से कुछ फैसले तो जोखिम भरे भी थे। परंतु आखिरकार ये सारी कोशिशें बेकार चली गईं क्योंकि ये फैसले ऐसे संदर्भ में लिए जा रहे थे जहां समूह को सही फैसले लेने के बारे में न तो कोई इनपुट या मदद मिली थी और न ही पर्याप्त मार्गदर्शन अथवा पद्धति की जानकारी मिल रही थी।

क्योंकि महिलाओं को यह आंकने के लिए पर्याप्त इनपुट नहीं मिल रहे हैं कि बचत करने या कर्ज़ा लेने से उन पर कितना आर्थिक बोझ पड़ने वाला है इसलिए उन्होंने अपनी क्षमता से ज़्यादा आर्थिक बोझ अपने ऊपर ले डाला। ज़रूरी प्रक्रियाओं का पालन किए बिना रिवॉल्विंग फंड जारी कर देने की हालत में औरतें पैसा तो ले लेती हैं लेकिन उन्हें इस बात का कोई अंदाज़ा नहीं होता कि वे उस पैसे का इस्तेमाल

कैसे करेंगी और उससे कोई लाभ हासिल कर पाएंगी या नहीं। ऐसी सूरत में वे ऐसे साधारण तरीके अपनाने लगती हैं जिनके लिए लेन–देन की पूरी समझ ज़रूरी नहीं होती।

अगर उन्हें ज़रूरी इनपुट मिले होते तो वे जानकारियों के अभाव में लिए गए फैसलों के कारण पैदा हुए अविश्वास से बच सकती थीं। जब महिलाओं ने इस बारे में एम.डी.ओ. से बात करनी चाही कि रिवॉल्विंग फंड का किस तरह इस्तेमाल किया जाना चाहिए तो उन्हें इस बात का ज़रा–सा भी भान नहीं था कि वे जो सोच रही हैं वह बात इस फंड की भावना और नियमों के बिल्कुल खिलाफ जाती है। रिवॉल्विंग फंड की अवधारणा के बारे में जानकारी न मिलने और उससे क्या आर्थिक फायदे मिल सकते हैं, यह पता न होने पर रिवॉल्विंग फंड जैसी महत्त्वपूर्ण अवधारणा भी सिर्फ ऐसी राशि पर सिमटकर रह गई जिसकी वजह से वे कर्ज़ा ले सकती हैं या उसे आपस में बांट सकती हैं। ड्वाक्रा और एस.जी.एस.वाई., दोनों ही कार्यक्रमों में स्वयं सहायता समूहों के बारे में औरतों की सोच यह है कि इससे आने वाले समय के लिए संसाधन जुटाने का मौका मिलता है। वे इसे ऐसी सामूहिक मंच के रूप में नहीं देखती जहां आर्थिक व अन्य समस्याओं को मिलकर संबोधित किया जा सकता है।

स्वयं सहायता समूहों में नेतृत्त्व और साक्षरता

अगले अध्याय में इस बात की पड़ताल की गई है कि ज़्यादा पढ़ी–लिखी सदस्याएं न केवल समूह के भीतर औपचारिक नेतृत्त्व में दबदबा बना लेती हैं बल्कि पंचायतों में भी उनकी मौजूदगी तुलनात्मक रूप से ज़्यादा रहती है। लेकिन हमने यही पाया कि जो महिलाएं पढ़ी–लिखी नहीं हैं उनके पास स्वयं सहायता समूहों के भीतर आर्थिक विषयों से संबंधित सामाजिक न्याय के मुद्दों को उठाने का हौसला ज़्यादा होता है।

सामाजिक मुद्दों पर स्वयं सहायता समूहों की सक्रियता के बारे में निरंतर सर्वेक्षण के निष्कर्षों से पता चलता है कि 70% समूहों में सामाजिक न्याय से जुड़े मुद्दों पर नेतृत्त्वकारी भूमिका समूह की नेता और सदस्य, दोनों निभाती हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि इन मुद्दों पर नेतृत्त्वकारी भूमिका निभाने वाली महिलाओं में से बहुत सारी लिखना–पढ़ना नहीं जानती थीं। ऐसी महिलाओं की संख्या लगभग 41% थी (इसमें ऐसी महिलाएं भी शामिल हैं जो केवल दस्तखत करना जानती हैं और उनकी संख्या भी काफ़ी, 30.2% यानी काफ़ी ऊंची थी)। जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि स्वयं सहायता समूहों के सर्वेक्षण में लगभग 60% सदस्याएं लिखना–पढ़ना नहीं जानतीं तो सामाजिक मुद्दों पर नेतृत्त्वकारी भूमिका निभाने वाली असाक्षर महिलाओं का प्रतिशत दरअसल 68% पर पहुंच जाता है। सामाजिक न्याय से जुड़े मुद्दों पर नेतृत्त्वकारी भूमिका निभाने वाली लगभग 50% महिलाओं ने किसी तरह की औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं की है। सहभागिता का यह स्तर आश्चर्यजनक है। समूहों में नवसाक्षर महिलाओं की संख्या 20% थी और नवसाक्षर महिलाओं में से औसतन 40% सामाजिक मुद्दों में नेतृत्त्वकारी भूमिका निभा रही हैं।

ये सारी कोशिशें इसलिए बेकार चली गईं क्योंकि फैसले एक ऐसे संदर्भ में लिए जा रहे थे जहां समूह के पास सही फैसले लेने के लिए कोई मदद या दिशानिर्देश उपलब्ध नहीं थे।

ज़ाहिर है कि माइक्रो क्रेडिट केंद्रित समूहों में असाक्षर महिलाओं के नेतृत्त्वकारी पदों पर पहुंचने की संभावना बहुत कम रहती है। इतना ही नहीं, उनके पास इस बात के विकल्प भी कम होते हैं कि वे किस तरह की चीज़ों पर नेतृत्त्वकारी भूमिका निभा सकती हैं क्योंकि सामाजिक न्याय के जिन मुद्दों पर वे नेतृत्त्वकारी क्षमता रखती हैं उन्हें बहुत कम प्राथमिकता दी जाती है। ये कार्यक्रम सामाजिक मुद्दों में ज़्यादा रुचि नहीं लेते इसलिए वास्तव में ये नेतृत्त्वकारी अवसर और भी सीमित हो जाते हैं। सामाजिक न्याय से जुड़े मुद्दों पर असाक्षर महिलाओं की हिस्सेदारी के स्तर को इस बात से भी जोड़कर देखा जाना चाहिए कि उनके पास क्षमता निर्माण के अवसर बहुत कम होते हैं। जैसा कि अगले अध्याय में विस्तार से बताया गया है, समूहों को जो इनपुट उपलब्ध कराए जा रहे हैं उनमें मुख्य रूप से आर्थिक और प्रबंधकीय जानकारियां होती हैं। यह मौके भी समूह की तुलनात्मक रूप से पढ़ी–लिखी नेताओं को ध्यान में रखकर तैयार की जाती है। इससे ज्ञान तक लोकतांत्रिक पहुंच की ज़रूरत के साथ–साथ यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि उन्हें ऐसा ज्ञान मुहैया कराया जाना चाहिए जो केवल आर्थिक एजेंडा तक सीमित न हो।

अन्य असमताएंः जाती, वर्ग और धर्म के आयाम

माइक्रो क्रेडिट अध्ययनों के आधार पर परिघटना के बारे में यह बात भी साबित हो चुकी है कि इसमें समाज के बहुत निर्धन तबकों तक को शामिल नहीं किया जा रहा है। जो आर्थिक रूप से सबसे कमज़ोर हैं वे अधिकांशतः अनुसूचित जाति (एस.सी.), अनुसूचित जनजाति (एस.टी.) और मुसलमानों में से हैं। इस बात को देखते हुए माइक्रो क्रेडिट कार्यक्रमों में सबसे निर्धन तबकों की बेदखली का मतलब यह होता है कि जो सामाजिक रूप से कमज़ोर है वही बेदखल हो रहे हैं। सरकारी माइक्रो क्रेडिट आधारित कार्यक्रमों में ज़्यादातर कार्यक्रम उन लोगों के लिए बनाए गए हैं जो गरीबी की रेखा से नीचे (बी.पी.एल.) हैं। फिर भी इन योजनाओं में मुसलमानों, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और पिछड़ी जातियों को पर्याप्त जगह नहीं मिलती। आर्थिक और सामाजिक रूप से हाशियाई तबकों के बीच काम करने की चुनौती स्वयंसेवी संस्थाओं के मामले में और भी गंभीर बन जाती है।

इसकी वजह यह है कि इन संस्थाओं को कार्यक्रम को आर्थिक रूप से सफल बनाना होता है। अध्ययन से ऐसे अंतर्विरोध नज़र आए जो माइक्रो क्रेडिट के उद्देश्यों और वास्तविकताओं के फासले से जूझती स्वयंसेवी संस्थाओं के सामने आ सकते हैं।

पीस एक ऐसा संगठन है जिसकी जड़ें समता और न्याय के मुद्दों पर दलित समुदायों के बीच कामों से सींची गई हैं। नीचे हमने माइक्रो क्रेडिट कार्यक्रम से जुड़े एक कार्यकर्त्ता के साथ हुई बातचीत के अंश दिए हैं। स्वयंसेवी संस्था में आने से पहले वह दलित युवा राजनीति में सक्रिय था। उसे इस बात से खास

एस.एच.जी. के तहत पिछड़ी जातियों पर फोकस करना दरअसल एक बड़ी परिघटना का हिस्सा है। सर्वे किए गए समूहों में 43% समूह ऐसे थे जिनमें पिछड़ी जाति की सदस्यों की संख्या ज़्यादा थी। केवल 27% समूहों में अनुसूचित जाति और 14% समूहों में अनुसूचित जनजाति अधिसंख्यक थे।

निरंतर सर्वेक्षण

आपत्ति थी कि इलाके के रेड्डी[5] जाति के लोग दलितों के साथ अपमानजनक व्यवहार करते हैं। वह स्वयंसेवी संस्था में शामिल होकर दलितों को एकजुट करना चाहता था।

कार्यकर्त्ता: मैं इन गांवों में दलितों के लिए काम करने संगठन में आया था।

साक्षात्कारकर्ता: तो क्या आपका संगठन अभी भी दलित समूहों के लिए काम करता है?

कार्यकर्त्ता: हां करते तो हैं लेकिन बहुत कम। अब तो जो भी पैसे दे सकता है वह समूह में जुड़ जाता है। समूहों की सदस्यता बढ़ाने के लिए संगठन ने पिछड़ी जातियों में काम शुरू किया है...। संगठन अपना दायरा फैला रहा है।

साक्षात्कारकर्ता: क्या अपना दायरा फैलाने के सिलसिले में संगठन ने दलितों और उनके मुद्दों पर ध्यान देना कम कर दिया है?

कार्यकर्त्ता: जी हां, ये तो होना ही था।

साक्षात्कारकर्ता: क्या अब दलित महिलाओं के अधिकार की बजाय अन्य महिलाओं के अधिकारों पर ज़्यादा ज़ोर दिया जा रहा है?

कार्यकर्त्ता: हां, अब दलित औरतों की बजाय पिछड़ी जातियों की औरतों पर ज़्यादा ध्यान दिया जा रहा है।

साक्षात्कारकर्ता: जातिगत मुद्दों के लिहाज़ से अब संगठन के काम को आप कहां देखते हैं? क्या आपको लगता है कि अब संगठन का फोकस जाति की बजाय जेंडर से जुड़े मुद्दों पर है?

कार्यकर्त्ता: पहले फडिंग एजेन्सी दलितों के बीच हमारे काम को प्रोत्साहन देती थीं लेकिन अब वे जेंडर के लिए मदद देती हैं। यह तो चमत्कार है। एक से दूसरे की तरफ बढ़ते जा रहे हैं...।

इस चर्चा से पता चलता है कि प्राथमिकताएं बदल रही हैं। यह चिंता का विषय है। अध्ययन के दौरान हमने इस बदलाव के कुछ परिणामों को भी महसूस किया। पीस के कार्यक्षेत्र के एक गांव में पहले गांव स्तरीय संगठन में 500 औरतें होती थीं और सभी दलित थीं। अब गांव के ज़्यादातर छोटे–छोटे स्वयं सहायता समूहों में पिछड़ी जाति की औरतें हैं। सिर्फ दो समूह ऐसे हैं जिनमें दलित औरतें भी सदस्य हैं। हमने जिन दलित महिलाओं से बात की वे स्वयंसेवी संस्था के प्रति निश्चय ही गुस्से में थीं। उनकी भाषा और हाव–भाव इस बात को दर्शा रही थी कि उनके साथ धोखा हुआ है। उनकी बेचैनी का एक पहलू शिक्षा से भी जुड़ा हुआ था। देश भर के दलित समुदायों की तरह यहां भी बच्चों की शिक्षा का मुद्दा बहुत महत्त्वपूर्ण था। स्वयं सहायता समूह की एक सदस्य ने कहा भी कि "हमारे मां–बाप तो हमें पढ़ा–लिखा नहीं सके। पर हमें तो अपनी लड़कियों को पढ़ाना चाहिए। इसीलिए हम चाहते थे कि नाइट स्कूल (रात्रि पाठशाला) खुले। पहले रुक्मिणि (स्वयंसेवी संस्था की कार्यकर्त्ता) हमारे (दलित) बच्चों को पढ़ाया करती थी। अब वह फेडरेशन की मैनेजर बन गई है। अब हमारे बच्चों को कौन पढ़ाएगा?"

यह खतरा तो है ही कि दलित समुदाय कार्यक्रमों की प्राथमिकता और दायरे से बाहर जा रहे हैं खासतौर से स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा चलाये जा रहे कार्यक्रमों में, लेकिन इसके साथ ही एक और खतरा भी दिखायी दे रहा है। कर्ज़ वापसी सुनिश्चित करने के सवाल पर स्वयं सहायता समूहों में समरूपता काफी ज़्यादा दिखायी देने लगी है। समूह एकजुट हो और सभी सदस्य कर्ज़ वापसी के लिए एक–दूसरे के प्रति जवाबदेह हों, यह सुनिश्चित करने के लिए जाति आधारित समूह बनाना ज़रूरी दिखायी देता है। मुख्यधारा के माइक्रो क्रेडिट संस्थानों की सोच यह है कि यदि स्वयं सहायता समूह के सदस्य एक ही

5. जातीय पदानुक्रम में "ऊंची" मानी जाने वाली एक जाति।

"हमारे मां–बाप तो हमें पढ़ा नहीं पाए। इसीलिए हम नाइट स्कूल चाहते थे। रुक्मिणी हमारे बच्चों को पढ़ाती थी। अब वह फेडरेशन की मैनेजर बन गई है। अब हमारे बच्चों को कौन पढ़ाएगा?"

एस.एच.जी. सदस्य

सामाजिक समूह से होंगे तो वे मिलकर ज़्यादा अच्छी तरह कर्ज़ वापसी कर पाएंगे। जाति जैसे सवालों पर उनके बीच कोई खींचतान नहीं होगी। अगर एक सदस्य पैसा चुकाने में कमज़ोर पड़ जाएगी तो बाकी सदस्या उसकी मदद करने में पीछे नहीं हटेंगी। लेकिन समरूपता का यह तर्क जाति के आधार पर भेदभाव को और मज़बूत कर देता है। ऐसे जातीय समूहों के बनने से जातीय विभेद को बनाए रखने और मज़बूत करने में मदद मिलती है। कुशलता का तर्क और जाति आधारित समूहों को 'स्वाभाविक' या 'स्वतःस्फूर्त' मानने की सोच से एक जाति आधारित समाज की ऐतिहासिक निर्मिति के संदर्भ को नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है।

मुख्य रूप से दलित महिलाओं को लेकर बनाए गए समूह सामाजिक न्याय के कार्यक्रमों और आंदोलनों में काफी आम दिखायी देते हैं। लेकिन माइक्रो क्रेडिट के क्षेत्र में जातीय समरूपता का मुद्दा अलग आयाम ग्रहण कर लेता है। पहला, दलितों को बेदखल कर दिया जाता है। इसलिए जब हम समरूपता की बात करते हैं तो मोटे तौर पर पिछड़ी जातियों के समूहों की बात करने लगते हैं। जब तक ऐसी प्रक्रियाएं मौजूद नहीं होंगी जिनके सहारे सदस्य अन्याय को चुनौती दे सकें, तब तक इस तरह की समरूपता से बात बनने वाली नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि माइक्रो क्रेडिट के लिए कर्ज़ा चुकाने और बचत करने की एक निश्चित क्षमता ज़रूरी होती है। इस तर्क के फलस्वरूप, समूह की स्थापना से ही बेदखली की प्रक्रिया भी शुरू हो जाती है सदस्यों ने बताया कि पहले जब बड़े समूह हुआ करते थे तो दलितों को ऐसे मिश्रित समूहों की सदस्यता पाकर ताकत का अहसास होता था। वे परिवर्तन की प्रक्रिया में, गठबंधन बनाने की रणनीति में अन्य सामाजिक समूहों के साथ हिस्सेदार महसूस करते थे। अब वे ऐसे स्वयं सहायता समूहों के सदस्य हैं जिनमें सिर्फ उन्हीं की जाति के सदस्य होते हैं।[6]

हमें बताया गया कि पहले पीस द्वारा प्रायोजित गांव स्तरीय संगठन की एक अच्छी बात यह थी कि इससे दलित समुदाय की सदस्याओं को गांव में एक पहचान मिली थी और विभिन्न जातियों की सदस्याओं के साथ बैठने का मौका मिला था। स्वयं सहायता समूह की एक सदस्या ने बताया कि पहले जब बड़े संगठन बनाए गए थे तो "संगम के गठन के बाद हर कोई उसमें शामिल होने लगा था। सब साथ आते थे, साथ बैठते थे। लोग पुरानी भावनाओं से बाहर निकलने लगे। इससे पहले अनुसूचित जाति के लोग कभी ऊंची जाति वालों के सामने नहीं बैठते थे।"

इस बात पर स्वयंसेवी संस्थाओं ने ध्यान नहीं दिया है कि समूहों को इस तरह चिन्हित करने से जाति एक महत्त्वपूर्ण विभाजक रेखा बन गई है। पीस में काम करने वाले कार्यकर्त्ताओं के साथ साक्षात्कार के पिछले अंश से साफ पता चलता है कि समूहों में जाति के स्तर पर फर्क पड़ा है लेकिन संगठन के ज़्यादातर कार्यकर्त्ता इस बात को मानने के लिए तैयार दिखायी नहीं दिए। ज़्यादातर का मानना था कि अब स्वयं सहायता समूहों को सदस्यों के आवास से नज़दीकी के आधार पर गठित किया जा रहा है। स्वयं

6. इसी तरह की बात गुजरात के धंगदरा इलाके में काम करने वाली स्वयंसेवी संस्था स्वाति की समन्वयक से भी सुनने को मिली। उनका कहना था कि बड़े समूहों में औरतों को वर्ग आधारित संघर्षों में विश्वसनीयता और नेतृत्त्व हासिल करने में मदद मिलती है। बड़े समूहों के टूटने से इन प्रक्रियाओं को ठेस पहुंची है।

सहायता समूहों को 'मोहल्ले' के आधार पर गठित किया जा रहा है। लेकिन वे इस बात को नहीं समझना चाहते कि तकरीबन पूरे ग्रामीण भारत में मोहल्ले भी जाति पर ही आधारित होते हैं। स्वयंसेवी संस्थाओं के माइक्रो क्रेडिट कार्यक्रमों से जुड़ी फंडिंग एजेन्सी इस सोच के साथ काम करती हैं कि समरूपता के आधार पर परस्पर जुड़ाव ज़्यादा ठोस होता है। 'एक विकल्प के रूप में समूह' (group as an alternative) की सोच पर केंद्रित केयर की एक रिपोर्ट में जातियों और उपजातियों को 'साझा बंधन' के रूप में चिन्हित किया गया है। रिपोर्ट के मुताबिक, यह बंधन समूह निर्माण का एक ऐसा आधार है जो किसी भी प्रयास की शुरुआत से पहले ही मौजूद होता है (जाति उस सूची में सबसे पहले स्थान पर है जिसमें परस्पर एकजुटता के लिए रक्त, समुदाय, जन्म स्थान या पेशागत समानताओं को भी शामिल किया गया था)। प्रायः 'एफ़िनिटी ग्रुप्स' (समरूपी समूह) के नाम से संबोधित किए जाने वाले स्वाभाविक समूहों को मान्यता देना ज़रूरी है। "यदि समूह के सदस्य एक जैसी परंपरागत गतिविधियों, जैसे टोकरी बनाना, में लगे हुए हैं तो भी समूह की परस्पर निकटता का आधार उनकी समान जाति या समान उद्गम ही माना जाता है।" समूहों की आंतरिक समरूपता को पूरे देश में बढ़ावा दिया जा रहा है। नाबार्ड और भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा जारी किए गए दिशानिर्देशों में भी यही बात दिखायी देती है।

स्वयं सहायता समूहों के भीतर समरूपता की 'चाह' यही सुनिश्चित करने के लिए है कि अगर समूह में एक ही जाति के सदस्य होंगे तो कर्ज़ वापसी के लिए वे एक–दूसरे के प्रति जवाबदेह रहेंगे।

स्वयं सहायता समूहों के ज़रिए जाति के साथ–साथ कुनबे–कुटुंब के संबंधों को भी मज़बूत करने की कोशिश की जा रही है। मिसाल के तौर पर, एस.जी.एस.वाई. से जुड़े स्वयं सहायता समूह में सारी औरतें वांकर समुदाय की हैं। उनमें से तीन देवरानी–जेठानी (co-sisters) हैं। वे एक ही परिवार के तीन सगे भाइयों से ब्याही हैं। समूह की नेता और एक अन्य सदस्या, दोनों बहनें हैं। वे एक–दूसरे के घर जाती हैं और साथ मिलकर काम निपटाती हैं। उपरोक्त सदस्याओं के अलावा तीन अन्य सदस्याएं भी इसी तरह एक–दूसरे की संबंधी हैं। उनका भी समूह में एक अलग गुट है। कर्ज़ा लौटाने और बचत के मौकों पर वे एक–दूसरे को मदद देती हैं। समूह में किस औरत को शामिल किया जा सकता है और किसको नहीं, इस बारे में नेता के जेठ (जो पंचायत में वार्ड सदस्य भी है) का काफी दखल रहता है। उसी की सहमति से समूह में शामिल होने वाली एक सदस्या के मुताबिक, "वह साक्षर है इसलिए उसे सब पता है।" ज़ाहिर है उसकी समझदारी और रसूख के बारे में जो छवि बनी हुई है उसके अलावा पारिवारिक संबंध भी उसको यह विश्वसनीयता दिलाते हैं।

इस तरह के कुनबा आधारित समूह सामाजिक तौर–तरीकों में बदलावों के लिए अनुकूल नहीं होते। ऐसी स्थिति में सशक्तीकरण की ओर ले जाने वाली कोई भी पहल पूरे परिवार में चर्चा का विषय बन जाती है और पितृसत्तात्मक नियंत्रण यथास्थिति को बनाए रखने में हावी हो जाता है। ऐसा सामाजिक समेकीकरण पितृसत्ता की जड़ों को मज़बूत करता है। औरतों को सतही तौर पर कुछ रियायतें तो मिल जाती हैं लेकिन उनके जीवन की सारी सीमाएं ऐसे परंपरागत कायदे–कानूनों से ही परिभाषित भी होती चली जाती हैं।

परिवार

औरतों को ध्यान में रखते हुए गरीबी उन्मूलन, सशक्तीकरण और/या विकास से जुड़े हस्तक्षेपों के असर का आकलन करने के लिए परिवार भी एक महत्त्वपूर्ण परिधि है। यह ऐसा मंच है जहां सार्वजनिक और निजी दायरे अकसर एक–दूसरे के साथ आ जुटते हैं और, वित्तीय, व्यक्तिगत, कुटुंब आधारित और समुदाय के दायरे सब एक–दूसरे में समा जाते हैं। यहीं माइक्रो क्रेडिट, गरीबी उन्मूलन और सशक्तीकरण के बीच बनने वाले अंतर्संबंधों के सारे पहलू साफ़ दिखायी देते हैं और यहीं वे सबसे ज़्यादा एक–दूसरे से टकराते दिखते हैं। यद्यपि हर कार्यक्रम में गरीबी उन्मूलन का लक्ष्य निर्धारित किया गया है लेकिन यह लक्ष्य यथार्थ का रूप तो परिवार के स्तर पर ही ग्रहण करता है। परिवार में ही उसका सबसे ज़्यादा असर भी दिखायी पड़ता है। लेकिन जैसे ही एक बार संसाधनों को परिवार की ओर मोड़ दिया जाता है, इस बात को आंकने या इस बात पर नज़र रखने की कोशिश प्रायः नहीं की जाती कि परिवार के भीतर इससे क्या बदलाव आने वाले हैं या क्या असर पड़ सकते हैं।

संसाधनों पर नियंत्रण

नीचे हमने पीस से जुड़े एक स्वयं सहायता समूह की सदस्याओं के साथ जेंडर तथा ऋण संबंधी प्रक्रियाओं के बारे में हुई बातचीत के कुछ अंश दिए हैं। इस बातचीत में खामोशियां भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण थीं जितना बोले गए शब्द महत्त्वपूर्ण थे।

साक्षात्कारकर्ता: मान लीजिए आप अपने नाम पर कर्ज़ा लेकर उससे पति के नाम पर मकान खरीद लेती हैं। अब अगर कुछ समय बाद आपका पति भी पोचम्मा के आदमी की तरह (यहां पिछले साक्षात्कार में उल्लिखित घटना की चर्चा की जा रही है) किसी और से शादी करके आपको घर से बाहर निकाल देता है तो आपका क्या होगा?

नेता: क्या सारे मर्द एक–से होते हैं? क्या सारे एक जैसा बर्ताव करते हैं?

साक्षात्कारकर्ता: सवाल यह नहीं है कि वे एक जैसे हैं या भिन्न हैं। सवाल यह है कि ऐसे हालात से निपटने के लिए हम क्या कर सकते हैं।

नेता: इस तरह की हालात कभी पैदा नहीं हुई।

साक्षात्कारकर्ता: लेकिन अगर ऐसा हो तो?

सदस्य: अगर वे हमें बाहर फेंक देंगे तो हम करेंगे क्या? (वह औरों की तरफ घूम जाती है।)

कोई प्रतिक्रिया नहीं...।

साक्षात्कारकर्ता: आप अपने घर के लिए कुछ भी खरीदें, उस पर आपका हक कितना होता है?

खामोशी...।

साक्षात्कारकर्ता: तो फिर हमें ज़मीन और मकान किसके नाम पर खरीदना चाहिए?

सदस्या: औरत के नाम पर खरीदना चाहिए।

सदस्या: मेरे आदमी ने तो मेरे ही नाम पर ज़मीन खरीदी है।

सदस्या: मेरे आदमी ने भी...।

साक्षात्कारकर्ता: जब आप कर्ज़ा लेती हैं तो घर ले जाकर पैसा कहां रखती हैं?

सदस्या: मैं अपने पति को दे देती हूं।

साक्षात्कारकर्ता: तो फिर ये कौन तय करता है कि उस पैसे को कैसे खर्च करना है?

सदस्या: वही तय करता है।

नेता (खिन्न है): वो तय करता है!?

सदस्या (अपनी बात स्पष्ट करती है): मैंने पैसा उठाया और ले जाकर उसे सौंप दिया। फिर हमने तय किया कि इस पैसे से हम भैंस खरीदेंगे और दोनों भैंस खरीदने बाज़ार गए।

नेता (थोड़ी परेशान है): क्या मैंने तुम्हें कर्ज़ा दिया?
सदस्या: हम दोनों साथ गए और जाकर भैंस खरीद लाए।
साक्षात्कार में कुछ समय बाद...
साक्षात्कारकर्ता: क्या आप अपनी मां को पैसा सौंपने का फैसला ले सकती हैं?
सदस्या: नहीं, मैं उसे पैसे नहीं दे सकती। न ही अपने मायके की मदद के लिए पैसे दे सकती हूं।
इस बातचीत में कई तरह की अभिव्यक्तियां छुपी हुई हैं:

- जब औरतों को इस बारे में सोचने को उकसाया गया कि परिवार के भीतर जेंडर के आधार पर बहुत कठोर परिस्थितियां भी पैदा हो सकती हैं तो सबने इस बात को नकार दिया था। महिलाएं ऐसी घटनाओं को अकसर अपवाद बताकर खारिज़ कर देती हैं। यह बात अन्य साक्षात्कारों में भी दिखायी दी। पर औरतें इस बात को लेकर थोड़ा चिंतित भी थीं कि उन्होंने इस बारे में पहले क्यों नहीं सोचा था। यह स्थिति तब थी जबकि साक्षात्कारों में उन्होंने खुद अपने तजुर्बों के बारे में जो बताया था उनसे इस बात की पुष्टि हो चुकी थी कि ऐसी आशंकाएं खाली हवाई नहीं हैं। जब साक्षात्कारकर्ता ने बात को उठाया तो महिलाओं ने भी जेंडर आधारित विभेदों और हकीकत को स्वीकार किया।
- इन संवादों से 'पहुंच' और 'स्वामित्व' के बीच फर्क स्पष्ट करने में मदद मिली। मकानों के मालिकाने से संबंधित साक्षात्कार में कई औरतों ने यह कहा कि उनकी भी 'पहुंच' है (जिसमें उस सरकारी नीति का भी योगदान रहा है जिसमें मकान औरतों के नाम पर देने का प्रावधान किया गया था) लेकिन जब उनसे पूछा गया कि पति के साथ टकराव की स्थिति में वे क्या करेंगी तो उनकी खामोशी से यही संकेत मिलता था कि भले ही कागज़ी तौर पर मालिकाना उनका हो, वे उस संपत्ति पर वैसा अधिकार महसूस नहीं करतीं। यह बात उनकी भाषा में भी दिखायी देती है ("मेरे आदमी ने तो मेरे नाम पर ज़मीन खरीदी है")। इस वक्तव्य से पता चलता है कि पति ही ज़मीन खरीद रहा है और इस बारे में फैसला लेने का अधिकार उसी के पास है।
- चर्चा में कम से कम नेता की तरफ से जागरूकता का भाव दिखायी देता है। उसे पता है कि क्या 'होना चाहिए'। यह बात तब स्पष्ट हो गई जब एक सदस्या ने कहा कि कर्ज़े पर उसके पति का ही नियंत्रण रहता है। इस बात को सुनकर नेता थोड़ा व्यथित दिखायी दे रही थी।
- अपने व्यक्तिगत हितों और परिवार के हितों के बीच फर्क को स्वीकार करने में भी औरतों को मुश्किल महसूस होती थी। यह जेंडर आधारित सामाजिकरण को अन्तसात करने का परिणाम दिखायी देता है। उनके पास इस स्थिति को चुनौती देने की क्षमता बहुत कम है इसलिए उन्हें बदलाव लाने वाली प्रक्रियाओं की ज़रूरत है।

संपत्ति पर औरतों का कोई हक नहीं होता, इस सोच के साथ–साथ संसाधनों पर नियंत्रण के बारे में जेंडर

सामाजिक व्यवहार में किसी बदलाव के लिए कुनबे–कुटुम्ब के रिश्तों पर आधारित समूह फायदेमन्द नहीं होता। ऐसे में पितृसत्तात्मक नियंत्रण आखिरकार यथास्थिति कायम कर लेता है।

आधारित स्थिति बदलते अर्थव्यवस्था के स्वरूप की वजह से और गंभीर हो गया दिखायी देता है। सीमित संसाधनों के कारण जेंडर आधारित निषेध की प्रक्रियाएं तेज़ी से आगे बढ़ने लगती हैं।

जब यह पूछा गया कि क्या उन्होंने कभी इस बारे में सोचा है कि वे भी संपत्ति की मालकिन हो सकती हैं तो पीस से जुड़े स्वयं सहायता समूह की एक सदस्या ने कहा, "हमारे नाम पर संपत्ति कैसे हो सकती है? हम अपनी संपत्ति इकट्ठा करने के लिए भला कहां से पैसा कमा कर ला सकती हैं? मुझे लगता है कि आप पढ़ती–लिखती हैं, अध्ययन करती हैं, नौकरी कर लेती हैं और कमाने लगती हैं। आप चीज़ें जुटा सकती हैं। पर हमारे पास कैसे कुछ हो सकता है? हम तो मामूली किसान हैं। हम खोदते–जोतते हैं और बीज बोते हैं। हम 'मेरा' और 'तुम्हारा' का हिसाब नहीं लगा सकते। खेत में अलग तरह से पैसा लगाना पड़ता है – उसमें मेहनत, ताकत, पैसा और देखभाल लगती है। हम इन सारी चीज़ों का हिसाब कैसे लगा सकते हैं?" संसाधनों पर औरतों के नियंत्रण का अभाव सभी वर्गों में दिखायी देता है लेकिन इस वक्तव्य में यह महिला इस बात की तरफ संकेत कर रही है कि सब चीज़ों को पैसों में आंकना संभव नहीं होता। ऐसे में संसाधनों के बारे में औरतों के अधिकारों की जागरूकता पैदा करना और भी ज़्यादा मुश्किल हो जाता है। इससे यह कमज़ोरी भी सामने आ जाती है कि संसाधनों के अभाव से जो हालात पैदा होते हैं उनमें औरतों को जेंडर के आधार पर अधिकारों के लिए ज़ोर देने की बजाय चुपचाप निषेध को स्वीकार करने पर विवश हो जाना पड़ता है।

इसमें एक प्रकार की व्यवहार बुद्धि भी दिखायी देती है। यह इस बात की ओर संकेत है कि जेंडर आधारित भूमिकाएं ही सब कुछ तय नहीं कर रही हैं। **सदस्याः** "जब हम बचत करना शुरू करती हैं तो हममें से कोई अपने पतियों को नहीं बताती। जब हमें पैसा मिलता है (रिवॉल्विंग फंड) तभी हम उन्हें बताती हैं कि हमें पैसा मिला है। हम यह भी बताती हैं कि हम यह पैसा लौटा सकती हैं। लेकिन चारों तरफ से दबाव भी पड़ता है। हमें और कभी पैसा नहीं मिलता इसलिए पति को तो बताना ही पड़ता है वरना उसे लगेगा कि ये पैसा कहां से आ गया।"

ड्वाक्रा समूह की सदस्याओं ने इस बात को भी स्पष्ट रूप से सामने रखा कि जब पति को फौरन पैसे की ज़रूरत होती है तो पत्नी कुछ नहीं कह सकती। लेकिन कई ऐसे उदाहरण भी मिले जब औरतों ने स्वयं सहायता समूह के आर्थिक नियमों का हवाला देकर अपने पतियों से बहस की है।[7] निगरानी व्यवस्था में कर्ज़ पर नियंत्रण के इर्द–गिर्द जेंडर आधारित संबंधों को आंकने या संबोधित करने का प्रयास नहीं किया जाता है। फिर भी ये उदाहरण महत्त्वपूर्ण थे क्योंकि उनसे पता चलता है कि इस तरह की व्यवस्थाओं के होने से उन्हें सौदेबाज़ी करने में मदद मिल रही है। ये उदाहरण पीस द्वारा प्रायोजित स्वयं सहायता समूहों की औरतों से मिले।

नेताः "हम इस बात पर नज़र रखते हैं कि उसने (कोई भी सदस्या) ने जो पैसा लिया था उसे वह कैसे इस्तेमाल कर रही है। अगर वह पैसे को उस काम के लिए इस्तेमाल नहीं कर रही है जिसके लिए उसने कर्ज़ा लिया था तो हम फौरन उससे बात करते हैं। मान लीजिए उसने गाय–भैंस खरीदने के लिए कर्ज़ा लिया था लेकिन वह उसे घर की दूसरी ज़रूरतों पर खर्च कर देती है तो इसको हम फौरन दर्ज़ करते हैं। हम उसे पहले ही आगाह कर देते हैं कि उसे यह पैसा सिर्फ उसी काम पर इस्तेमाल करना है जिसके

7. यहां 'पति' शब्द का आशय घर के नेता पुरुष या सबसे बड़े उम्र के पुरुष से है। परिवार के ऐसे अन्य पुरुष भी इसी श्रेणी में माने जा सकते हैं जो परिवार में पुरुष वर्चस्व को स्थापित करते हैं।

लिए उसने कर्ज़ा मांगा था। अगर वह ऐसा नहीं करती तो हम इस बात को लिख लेते हैं, रजिस्टर में दर्ज़ करते हैं और सबसे दस्तखत करवा लेते हैं।"

सदस्याओं ने एक ऐसे मामले की जानकारी दी जिसमें उन्होंने इसी तरीके का अपने पतियों के साथ इस्तेमाल किया था। कुछ औरतों ने भैंस खरीदने के लिए कर्ज़ा लिया था। जब पैसा मिल गया तो उनके पतियों ने दबाव डाला कि उसे किसी और चीज़ के लिए इस्तेमाल कर लिया जाए। इस पर उन्होंने पतियों से बहस की और कहा कि अब तो ये बात योजना में लिखी जा चुकी है इसलिए अब तो उन्हें भैंस ही खरीदनी पड़ेगी। औरतों ने अपने पतियों के साथ अपनी मोल–भाव क्षमता को मज़बूत करने के लिए एक तकनीकी तरीके का इस्तेमाल किया है, इससे पता चलता है कि उन्हें ऐसी प्रक्रियाओं और साधनों की ज़रूरत है जिनके सहारे वे अपने बूते पर और मज़बूती से फैसले ले सकें और उन पर डट सकें। जैसा कि इस अध्ययन में विभिन्न संदर्भों में दिखायी देता है, इन चर्चाओं से यह भी पता चला कि सहायक प्रक्रियाओं का छोटा–सा अंश भी औरतों के लिए ऐसे अवसर रच देता है कि वे हालात बदलने के लिए कदम उठाने का मन बनाने लगती हैं। जब इस तरह के इनपुट्स नहीं होते या ऐसे सवाल प्राथमिकता में नहीं होते तो औरतों को अपनी क्षमता भर ज़ोर लगाना या चुप बैठना पड़ता है।

संसाधनों पर नियंत्रण से संबंधित चर्चा पर विचार करते हुए ऐसा दिखायी देता है कि अगर औरतों के पास आर्थिक संसाधनों या संपदाओं तक पहुंच होती है तो भी यह मान लेना गलत होगा कि उनके पास स्वामित्व व नियंत्रण का भाव है। यह एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष है क्योंकि माइक्रो क्रेडिट प्रक्रियाओं के लाभों में तो पहुंच को ही सबसे महत्त्वपूर्ण बताया जाता है।

यह पहुंच किस हद तक और किस तरह स्वामित्व व नियंत्राण में रूपांतरित होती है, यह बात माइक्रो क्रेडिट के विमर्श और व्यवहार में उपेक्षित विषय रही है।

बचत और कर्ज़ वापसी का जेंडर आधारित भार विभाजन

कर्ज़ के इस्तेमाल से जुड़े फ़ैसले लेने की प्रक्रिया जेंडर आधारित एक और परिधि से भी जुड़ी हुई है। कर्ज़ वापसी का बोझ कौन वहन करेगा? पीस से जुड़े एस.एच.जी. की सदस्याओं ने हमें बताया कि अगर वे कर्ज़ के इस्तेमाल के बारे में फ़ैसला लेते हुए पति को अनदेखा करने लगें तो इससे समस्या पैदा हो सकती है। अगर वे ऐसा करती हैं तो बाद में पति कर्ज़ वापसी में मदद करने से इनकार कर सकता है। हालांकि इस बात का कोई सबूत नहीं मिला कि अगर उससे कर्ज़ के पैसे के इस्तेमाल के बारे में बात कर ली जाएगी तो वह कर्ज़ वापसी की ज़िम्मेदारी निभाने को तैयार हो जाएगा। इस हकीकत की प्रतिध्वनि ड्वाक्रा समूह से जुड़ी एक महिला की बातों में भी दिखायी दी। "पैसे का क्या करना है, इस बारे में पति ही फ़ैसला लेते हैं। वही बताते हैं कि हमें क्या करना चाहिए। अगर उनसे न पूछें तो वे फौरन कहते हैं कि मुझे तुमसे कोई मतलब नहीं, मुझे नहीं मालूम कि तुम क्या करती हो।" औरतें इस बात से डरी रहती हैं कि अगर वे कर्ज़े के इस्तेमाल के बारे में फ़ैसला लेती हैं और कुछ गड़बड़ी हो जाती है तो पति कर्ज़ वापसी का सारा बोझ पत्नी के सिर पर थोप देगा। दूसरी तरफ, अगर औरतें फ़ैसला लेने का अधिकार पति को दे देती हैं तो चाहे फायदा हो या नुकसान, पत्नी कम से कम उससे यह कह सकती है कि उसे भी कर्ज़ा चुकाने में मदद देनी चाहिए।

यह इस बात का उदाहरण है कि मौजूदा पितृसत्तात्मक कायदे–कानून और संरचनाएं किस तरह माइक्रो क्रेडिट से जुड़े विभिन्न जेंडर आधारित आयामों को एक–दूसरे से जोड़ देती हैं। ये तौर–तरीके और संरचनाएं ऋण प्रयोग के बारे में फ़ैसला लेने की औरतों की क्षमता और उसके ऊपर आने वाले कर्ज़ वापसी के बोझ, दोनों को एक–दूसरे का पूरक बना देती हैं। आनंदी सहित जितने भी स्वयं सहायता समूह कार्यक्रमों की हमने पड़ताल की उन सभी में यह बात सामने आयी कि कर्ज़ वापसी की बुनियादी ज़िम्मेदारी औरतें ही उठा रही हैं। यद्यपि आनंदी से जुड़े समूह की महिलाओं ने ज़िम्मेदारियों में साझेदारी की बात कही लेकिन फिर भी यह सच था कि ज़्यादा बोझ और ज़िम्मेदारी वही उठा रही हैं। ज़्यादातर औरतें कर्ज़ा चुकाने के लिए दिहाड़ी मज़दूरी या लघु वन उपज की बिक्री से पैसे का इंतज़ाम करती हैं। यहां जशोदा के आदमी का उदाहरण लिया जा सकता है। जब हम वहां ठहरे हुए थे, हमने देखा कि वह दिन भर प्रायः घर पर ही रहता था। सारे बच्चे और अन्य सदस्य आते–जाते रहते थे और वह बस देखता रहता था। जिस दिन हम गांव में पहुंचे उसी दिन जब जशोदा प्रशिक्षण सत्र से वापस लौटी तो वह सीधी घर के भीतर पहुंची और झोला दीवार पर लटकाकर फौरन रसोई में जुट गयी। झोले में कुछ फल थे जो वह लौटते हुए खरीद लायी थी। इसके बाद उसका पति सक्रिय हो गया। उसने सारे झोले खंगाल डाले। जो पैसा मिला उसने अपनी मुट्ठी में ले लिया। उसकी राय में यह उसका अधिकार था। हालांकि एक–एक बच्चे की नज़र उसकी सारी हरकतों का पीछा कर रही थी लेकिन कोई उससे सवाल नहीं पूछ सकता था। बाद में उसकी एक लड़की ने बताया कि उसने कॉलेज जाने के लिए मिले बस भाड़े के पैसे को अपने कपड़ों में छिपा लिया था क्योंकि वह अपने बाप की आदतों के बारे में बखूबी जानती थी। यह एक सामान्य बात है। जहां एक तरफ पुरुष यह दावा करते हैं कि घर के पैसे पर उन्हीं का अधिकार होता है वहीं दूसरी तरफ औरतों ने भी थोड़ा–बहुत पैसा अपने लिए बचा लेने के रास्ते ढूंढ लिए हैं।

अध्ययन से इस बात के सुबूत भी सामने आए कि बचतों से फायदा होते हैं या नुकसान, इस आधार पर पुरुषों का योगदान अलग–अलग रहता है। ड्वाक्रा समूह की एक सदस्या ने बताया कि "अगर हम पैसे का इंतज़ाम नहीं कर पाती हैं तो हमारे घरवाले मदद करते हैं। पहले ऐसा नहीं था। मर्दों ने तभी हाथ बंटाना शुरू किया जब समूह को रिवॉल्विंग फंड मिलने लगा।" इस तरह की सहायता तब सामने आती है जब स्वयं सहायता समूह में औरतों के शामिल होने से फायदे मिलने लगते हैं। ऐसी सूरत में पुरुष घर की महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों में शामिल होने के लिए मदद भी देते हैं। कई साक्षात्कारों में औरतों ने इस बात का ज़िक्र किया। ड्वाक्रा समूह की एक सदस्या ने बताया कि अब पति लोग अपनी पत्नियों

"पैसे का क्या करें, यह फ़ैसला पति ही लेते हैं। वही बताते हैं कि हमें क्या करना चाहिए। वरना तो वह मुंह फेर लेगा और कहेगा कि मुझे तुमसे कोई मतलब नहीं है। मुझे क्या पता तुम क्या करती फिरती हो।"

एक एस.एच.जी. सदस्या

की बढ़ती आवाज़ाही पर ज़्यादा एतराज़ नहीं करते। "क्योंकि हमें जाना होता है... ड्वाक्रा के लिए।" एस. जी.एस.वाई. या गुजरात में स्वशक्ति समूह में औरतों के लिए इस तरह की मदद न मिलने का एक कारण यह हो सकता है कि अब तक इन कोशिशों से औरतों को कोई ख़ास फायदे नहीं मिल पाए हैं। जो कर्ज़े मिल रहे हैं वे बहुत छोटे हैं इसलिए पुरुषों को यह अहसास ही नहीं है कि औरतें संसाधन जुटाने का काम कर रही हैं। वेलुगू द्वारा प्रायोजित समूह की औरतों ने ऋण की किस्मों और इसी हिसाब से पुरुषों के रवैये के बीच फर्क भी स्पष्ट किया। चावल खरीदने के लिए मिलने वाले खाद्य सुरक्षा ऋण की सार–संभाल और वापसी की ज़िम्मेदारी तकरीबन पूरी तरह औरतों के कंधे पर रहती है जबकि ऐसी बड़ी संपदाओं के लिए मिलने वाले कर्ज़ों को पुरुष ही संभालते हैं जिनके ज़रिए घर की आय उल्लेखनीय रूप से बढ़ सकती है। लेकिन कर्ज़ वापसी का बोझ तब भी औरतों को ही संभालना पड़ता है।

इस साक्ष्य से साफ़ पता चलता है कि बचत करने और कर्ज़ा वापस करने का बोझ मुख्य रूप से औरतों के कंधे पर होता है। पुरुषों का योगदान अनियमित और परिस्थितिजन्य होता है। गुजरात के एक वरिष्ठ नौकरशाह ने बताया कि "हो सकता है वे कई दिन के लिए गायब हो जाएं। वे या तो आपको गच्चा दे जाएंगे या कोई बहाना बना लेंगे। उन्होंने बच निकलने या व्यवस्था को बेवकूफ बनाने के हथकंडे सीख लिए हैं।" इससे एक बार फिर पता चलता है कि किसी व्यवस्था को अपनाने में औरतें जितनी मासूम होती हैं, पुरुष उतने ही माहिर होते हैं। इससे यह भी पता चलता है कि किस तरह प्रभावी पितृसत्तात्मक कायदे–कानून और संरचनाओं ने माइक्रो क्रेडिट के बारे में विभिन्न जेंडर आधारित आयामों को एक–दूसरे से जोड़ दिया है और इस्तेमाल के लायक बना दिया है। जिस तरह समूह की सदस्याएं एक–दूसरे पर दबाव डालती हैं कि वे पैसा समय पर लौटा दें उससे भी नए कायदे–कानूनों का सृजन हो रहा है। ये शर्मिंदगी और इज़्ज़त के अहसास से जुड़े जेंडर आधारित नए कायदे हैं जो कर्ज़दार के तौर पर औरत के आचरण को निर्धारित करते हैं।

काम का बोझ

सामूहिक साक्षात्कार के दौरान औरतों से जब काम के बोझ के बारे में सवाल पूछे गए तो पता चला कि स्वयं सहायता समूहों में उनकी हिस्सेदारी के साथ उनके काम के बोझ में इज़ाफा हो गया है। कुछ औरतों ने बताया कि जब वे एस.एच.जी. की बैठकों में जाती हैं तो घर के मर्द भी घरेलू कामों में 'मदद' कर देते हैं। ज़्यादातर औरतों का ऐसा मानना नहीं था। न ही यह देखने में आया कि स्वयं सहायता समूहों से जुड़ी गतिविधियों में औरतों की हिस्सेदारी को सहज बनाने में सीमित स्तर पर भी श्रम विभाजन में कोई बदलाव आ रहा है।

केवल आनंदी से जुड़े समूह में औरतों ने भूमिकाओं में बदलाव की बात बतायी। उन्होंने बताया कि उनके घर के पुरुष घर के बाहर भी औरतों की क्षमताओं और प्रयासों को पहचानने लगे हैं। परंतु यह बात भी माइक्रो क्रेडिट संबंधी गतिविधियों की बजाय राजनीतिक और सामाजिक सक्रियता के संबंध में ज़्यादा दिखायी पड़ती है। हमने जिन परिवारों से संपर्क किया उनके पुरुष और संगठन की बैठक में अचानक आ जाने वाली एक महिला, सभी का यह मानना था कि आनंदी के प्रयासों से औरतों के ज्ञान में इज़ाफा हुआ है। वे पहले से ज़्यादा जागरूक हुई हैं और कठिन परिस्थितियों में दखल दे पाती हैं।

इसलिए यह पुरुषों की भी ज़िम्मेदारी है कि महिलाओं की मदद करें भले ही इसके लिए औरतों वाले काम क्यों न करने पड़ें। गांव के कुछ पुरुषों ने बताया कि अब महिलाएं दूर के गांवों में और समुदाय के सदस्यों से मिलने भी जाने लगी हैं और यहां तक कि टकराव के समय पुलिस भी उनके मदद व हस्तक्षेप की मांग करती है। पर, उनका यह भी कहना था कि इसकी वजह से समुदाय को सोचना पड़ रहा है कि इससे समुदाय के युवाओं पर क्या असर पड़ेगा : "हो सकता है वे भी इन औरतों की तरह बर्ताव करना चाहें। तो क्या हम उन्हें रोकें? इसी बारे में हमने गांव में चर्चा की थी। हमने तय किया कि हम घर में उनके कामों में मदद देंगे। समुदाय में उनका साथ देंगे, अपनी पत्नियों को बाहर जाने देंगे। वे हमारे गांव का नाम ऊंचा कर रही हैं इसलिए अब हम उन्हें नहीं रोक सकते।" यह बात एक समूह नेता के पति ने कही थी। एक आदमी ने इस बात पर बाकी सबको राज़ी कर लिया कि अब औरतों को भी गांव में औरतों से जुड़े मामलों में दखल देने के लिए बुलाना चाहिए और पंचायत की बैठकों में उनकी भी सलाह और हाजिरी पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

जब ड्वाक्रा समूह की एक सदस्या से हमने पूछा कि एस.एच.जी. में शामिल होने के बाद उसके और उसके पति के बीच कामों के बंटवारे में कोई सुधार आया है तो उसने साफ़ शब्दों में कहाः "रत्ती भर बदलाव नहीं आया है। वे नहीं बदल सकते।" जब ये पूछा गया कि स्वयं सहायता समूहों की गतिविधियों में औरतों की हिस्सेदारी के मामले में उनके परिवार कितनी मदद देते हैं तो वेलुगू समूह की सदस्याओं ने भी गहरी निराशा व्यक्त की। "उन्हें फायदे चाहिए इसलिए वे हमें भेजते हैं। इसके लिए हमें घंटों पहले उठना पड़ता है। सुबह तक खाने–खिलाने का काम पूरा कर लेना पड़ता है। तभी हम बैठक में जा सकती हैं। अगर कोई काम छूट जाता है तो वापस जाकर हमें ही झेलना पड़ता है। वे हमें जाने तो देते हैं लेकिन उनकी दिलचस्पी सिर्फ़ इस बात में है कि कार्यक्रम से क्या मिलने वाला है। है कि नहीं?" एक औरत ने कहा, "जब मैंने कर्ज़ के पैसे से बकरियां खरीदने का फ़ैसला लिया तो वह (उसका पति) यह सोचकर आग–बबूला हो गया कि अब मैं उसे पैसे नहीं दूंगी। उसने फ़ैसला सुना दिया कि अब वह मुझे बैठक में नहीं जाने देगा। लेकिन मैं भी अड़ गयी। अब मैं काफ़ी बड़ी हो चुकी हूं। मेरे बच्चे बड़े हो चुके हैं। वह मुझे यूं नहीं धमका सकता।" उसका इशारा इस बात की तरफ था कि उम्र और ज़िंदगी का चरण भी इस बात को तय करता है कि औरतें किस हद तक अपनी बात मनवा सकती हैं। ज़ाहिर है, वे इस उम्र में न होतीं तो अपने ऊपर आश्रित परिजनों की बेहतरी को ध्यान में रखते हुए अपनी देह और व्यक्तित्व पर पाबंदियों और ज़ोर–जबर्दस्ती को चुपचाप सहती रहतीं। इन हालात पर अपना असंतोष व्यक्त करते हुए वेलुगू से जुड़े फ़ेडरेशन की एक नेता ने कहा, "मर्दों को आर्थिक फायदा भले ही हो रहा है लेकिन वे काम का बोझ नहीं उठा रहे हैं। परिवार, गांव, मंडल, ज़िला और देश–एस.एच.जी. से सबको फायदा हो रहा है।"

एक फ़ेडरेशन नेता का कहना था कि "मर्द आर्थिक फायदा तो उठा रहे हैं लेकिन काम के बोझ में हाथ बंटाने को तैयार नहीं हैं। परिवार, गांव, मंडल, ज़िला और देश––सब स्वयं सहायता समूहों से फायदा उठा रहे हैं।"

एक और गांव में महिलाओं ने बताया कि जब से वे मसालों की पैकिंग करके कमाने लगी हैं तो उनके पतियों ने काम पर जाना ही छोड़ दिया है। "पहले हम दिहाड़ी मज़दूरी करती थीं और तपती दुपहरी में दिन पर खटती थीं। उससे तो यही काम बेहतर है। पर अब हमारे पति बैठे–बैठे समय काटने लगे हैं। अब उन्हें तपती धूप में हाड़ गलाने की ज़रूरत नहीं लगती। अब वे इस बारे में नहीं सोचते कि अगले दिन पैसा कहां से आएगा। वह काम तो हमने संभाल लिया है।" ये औरतें अपने पतियों को दिहाड़ी कामों की मुसीबत से छुटकारा दिलाने के लिए कर्ज़े ले रही हैं लेकिन बदले में पतियों की तरफ से उन्हें कोई मदद नहीं मिलती। बल्कि अब तो उनके आदमी जुए जैसी सामाजिक समस्याओं का भी शिकार होने लगे हैं। एस.जी.एस. वाई. समूह की 11 (आधे से भी अधिक) सदस्याओं ने बताया कि जब वे काम करने जाती हैं तो घर में सारी ज़िम्मेदारी उनकी बहुएं संभालती हैं। वे घर के पुरुषों के सामने ये बातें नहीं कह सकतीं। अब वे समूह में नई औरतों को भी शामिल करने से हिचकिचा रही हैं क्योंकि इससे उनके अपने आयवर्धक अवसरों में खलल पड़ सकता है।

"अब हमारे पति खाली बैठे रहते हैं। उन्हें तपती दोपहरी में बाहर जाने और काम करने की ज़रूरत नहीं है। न उन्हें ये सोचने की ज़रूरत है कि कल पैसा कहां से आएगा। सारी परेशानी हमने ले ली है।"

एक एस.एच.जी. सदस्या

अच्छी औरत की छवि

इस बारे में साक्ष्यों की कोई कमी नहीं है कि माइक्रो क्रेडिट कार्यक्रम 'अच्छी औरत' के आदर्श को किस तरह निर्धारित कर रहे हैं। औरतों को लगता है कि 'आखिरकार' अब वे भी अपने पति की मदद करने लायक बन गयी हैं। इस सोच के पीछे यह अहसास लगातार दिखायी देता है कि श्रम, आय, प्रबंधन या किसी भी और ज़िम्मेदारी के लिहाज़ से घरेलू अर्थव्यवस्था में उनका अब तक का योगदान अदृश्य (invisible) था या मान्यता के योग्य नहीं था। महिला आंदोलन लंबे समय से इस बात के लिए आवाज़ उठा रहा है कि औरतों के अदृश्य श्रम को भी मान्यता दी जाए। यह नई परिघटना इस भावना के विपरीत दिखायी देती है। 'अच्छी औरत' की छवि सशक्तीकरण के विमर्श में आ रहे इन कपटपूर्ण बदलावों का एक बढ़िया उदाहरण है। यह सोच ऋण तक औरतों की बढ़ती पहुंच के ज़रिए घरेलू अर्थव्यवस्था में उनके योगदान को भी यह कहकर हल्का कर देती है कि इस तरह वे सिर्फ़ अपने पति की मदद भर कर पा रही हैं। यह तथ्य उनकी अपनी इस सोच के भी विपरीत जाता है कि कर्ज़ वापसी की बुनियादी ज़िम्मेदारी उन्हें ही उठानी पड़ती है।

पीस से जुड़े स्वयं सहायता समूह के साथ हुए सामूहिक साक्षात्कार के इस अंश से ये बातें बड़ी साफ़ उभर कर आती हैं :

नेताः अब सब कुछ बराबर है (पति और पत्नी के बीच)। पहले यह सिर्फ़ इन्हीं की सिरदर्दी थी। पर अब हम उनसे बेहतर काम करके दिखा रहे हैं।

सदस्याः बिल्कुल। पहले वे बड़े–बड़े ब्याज पर पैसा उठाते थे और हमें तब तक पता भी नहीं चलता था जब तक हम सिर तक नहीं डूब जाते थे। अब हमें पता है कि हम कहां हैं। अब हम भी ज़िम्मेदारियों में

बराबर हिस्सा निभाती हैं। अब उन्हें लगता है कि हम उनकी परेशानियों (घरेलू अर्थव्यवस्था) को समझ सकती हैं।

सदस्याः अब औरतें भी अपने पतियों को ये भरोसा दिला सकती हैं कि हम भी कुछ समस्याओं को संभाल लेंगी इसलिए उन्हें परेशान होने की ज़रूरत नहीं है... ताकि उन्हें कुछ आराम मिले। अब हमें पता है कि ऐसा भी वक्त था जब उन्हें जगह–जगह जाना पड़ता था और खेती के लिए, बीजों के लिए पैसा नहीं मिल पाता था। वे माथा पकड़ कर घर में बैठे रहते थे।

नेताः अब हम उनकी मदद करती हैं। पहले कर्ज़ वापसी आदि के बारे में सिर्फ़ उन्हें ही सोचना पड़ता था। अब इसमें हम भी हाथ बंटाती हैं।

संबंधों या ज़िम्मेदारियों के बंटवारे को ज़रा सा भी अस्त–व्यस्त किए बिना घर की भौतिक बेहतरी में योगदान देने वाली 'अच्छी औरत' की अवधारणा को स्वयंसेवी संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं ने भी पुष्ट किया है। स्वयं सहायता समूहों में हिस्सेदारी से औरतों को जो फायदे हुए हैं उसके बारे में अपनी राय बताते हुए उन्होंने कहा, "पहले पति को यह लगता था कि पत्नी की ज़िम्मेदारी सिर्फ़ खाना बनाने तक होती है। अब भूमिकाएं और ज़िम्मेदारियां बढ़ गयी हैं। औरतें पहले से ज़्यादा दिलचस्पी लेने लगी हैं...। वे परिवार के मामलों को उठाती हैं और आर्थिक सार–संभाल का महत्त्व समझने लगी हैं। वे सीखने और कुछ मसलों को समझने की भी कोशिश कर रही हैं। वे चीज़ों ... घर की योजना, प्रबंधन ... को सहज ढंग से चलाने की कोशिश कर रही हैं। अब घर चलाने, बच्चों को संभालने में उनका विश्वास बढ़ा है। अब उनको भरोसा है कि वे परिवार को पूरी मदद दे सकती हैं।"

उत्पादन और प्रजनन कार्य में औरतों की भूमिका को मान्यता न मिलने के साथ–साथ हम यह भी देखते हैं कि पहले की समस्याओं का कारण भी औरतों को ही ठहराया जा रहा है––मसलन, वे घर से बाहर नहीं निकलती थीं, काम नहीं करती थीं, उन्हें ज़िम्मेदारी का अहसास नहीं था। चाहे खुद औरतों की तरफ से हो या माइक्रो क्रेडिट कार्यक्रम को बढ़ावा देने वाली एजेंसियों की ओर से, एस.एच.जी. से मिलने वाले फायदों से संबंधित तमाम वक्तव्यों में हमने यही पाया कि औरतों को परिवार संस्था के साथ अधिकाधिक घनिष्ठ रूप से जोड़ कर देखा जा रहा है। परिवार पर इस अत्यधिक ज़ोर से यह सोच क्षीण हो जाती है कि औरत अपने आप में भी एक स्वायत्त इकाई है। उनके भी अपने अधिकार, दिलचस्पियां और ज़रूरतें हैं। महिला आंदोलन इसी सोच को स्थापित करने के लिए लंबे समय से संघर्ष करता आ रहा है। हमें मालूम है कि औरतों को परिवार संस्था के पितृसत्तात्मक स्वरूप को समझने और परिवार के भीतर अपने हितों के लिए आवाज़ उठाने में मदद नहीं दी जा रही है। और अब हम यह देखते हैं कि किस तरह माइक्रो क्रेडिट प्रक्रियाएं भी औरतों को परिवार संस्था के साथ और ज़्यादा मज़बूती से बांध देने का प्रयास कर रही हैं।

ज़ाहिर है कि पुरुष स्वयं सहायता समूहों में औरतों की हिस्सेदारी से संतुष्ट हैं। उन्हें अच्छी तरह पता है कि औरतों की इस सक्रियता से परिवार के भीतर कायम असमान सत्ता संबंधों को कोई ठेस पहुंचने वाली नहीं है। यह बात एस.जी.एस.वाई. से जुड़े स्वयं सहायता समूह की नेता के पति के दृष्टिकोण में भी प्रतिबिंबित होती है। उसने कहा था, "क्योंकि सरकारी योजना के फायदे औरतों के लिए हैं इसलिए हम उन्हें बैठक में जाने की छूट दे देते हैं। इससे परिवार को ही तो फायदा होगा," और "हम इस बात पर लगातार नज़र रखते हैं कि परिवार को फायदा होता रहे।" क्योंकि ज़्यादातर मामलों में बचत का भार औरतें ही

उठाती हैं, चाहे खर्चे पर अंकुश लगाकर चाहे अपनी आमदनी के ज़रिए। इसलिए पुरुष दीर्घकालिक फायदों में दिलचस्पी लेते हैं। उन्हें तात्कालिक छोटे–मोटे नुकसानों से कोई फर्क नहीं पड़ता। हमारे सामने बार–बार इसी तरह के बयान आए।

अच्छी औरतः अच्छी कर्ज़दार

हमने भूमिका वाले हिस्से में भी दर्शाया था कि किस तरह माइक्रो क्रेडिट योजनाओं में औरतों को ही निशाना बनाया जा रहा है क्योंकि उन्हें बेहतर और ज़्यादा ज़िम्मेदार कर्ज़दार की नज़र से देखा जाता है। इस आशय के निष्कर्ष बहुत सारे अध्ययनों में सामने आए हैं कि औरतों को अच्छी कर्ज़दार माना जाता है। जानकारों का यह भी कहना है कि माइक्रो क्रेडिट को बढ़ावा देने वाली एजेंसियों की सोच गहरे तौर पर रूढ़ जेंडर आधारित विचारों और धारणाओं पर आधारित है। हमारा अध्ययन इस सोच को बेपर्द करने की कोशिश करता है कि औरतें अच्छी कर्ज़दार होती हैं। यहां हम ये दर्शाना चाहते हैं कि बचत और ऋण के बारे में अपने अनुभवों को लेकर खुद औरतों का क्या कहना है।

"अब औरतें अपने पतियों को यह भरोसा दिलाने लगी हैं कि कुछ समस्याएं वे भी स्वयं संभाल सकती हैं। पति को परेशान होने की ज़रूरत नहीं है... जिससे पतियों को राहत मिली है।"

एक एस.एच.जी. सदस्या

'अच्छी औरत' की छवि में अनुशासन का बहुत महत्त्व है। जब ड्वाक्रा से जुड़े स्वयं सहायता समूह की सदस्याओं से पूछा गया कि समूह में शामिल होने के बाद उन्होंने क्या नया सीखा है तो एक का कहना था कि "हमने बचत करना और पैसे के मामले में अहतियात बरतना सीख लिया है। हममें भी बदलाव आया है। हमने ये समझा है कि आत्मानुशासन अच्छा होता है और कोई बात कहने में ज़रूरत से ज़्यादा जल्दबाज़ी अच्छी नहीं होती...।"

हो सकता है वह महिला इस बात को ध्यान में रखकर बोल रही हो कि शहरी, पढ़ी–लिखी साक्षात्कार लेने वाली क्या सुनना चाहती होगी। फिर भी, उसके बयान से हम यह तो अंदाज़ा लगा ही सकते हैं कि एस.एच.जी. संस्कृति में अनुशासन को महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यह बात इस यांत्रिक सोच से मिलती–जुलती है कि औरतों को ही स्वयं सहायता समूहों से जुड़ने के लिए इतना बढ़ावा क्यों दिया जा रहा है। ड्वाक्रा सहित अध्ययन में चुनी गयी सभी प्रोत्साहक एजेंसियों की ओर से इस बात पर ज़ोर दिखायी दिया। वेलुगू कार्यक्रम के कोऑर्डिनेटर्स ने बताया कि औरतों को चुनने में खतरा नहीं होता। घर की 'इज्जत' उन्हीं के कंधों पर जो होती है। यही भावना गुजरात के मझौले और वरिष्ठ स्तर के अधिकारियों में भी दिखायी दी। इससे प्रोत्साहक एजेंसियों को औरतों से कर्ज़ा वसूल करने के लिए आर्थिक परिणामों की बजाय सामाजिक भय का सहारा लेने की छूट मिल जाती है। स्थानीय स्तर के कार्यकर्त्ताओं ने बताया कि वे मामूली संसाधनों के बावजूद बचत करने और मुश्किल हालात में भी कर्ज़ा लौटाने के लिए औरतों को इस तरह बाध्य करते हैं क्योंकि वे इस तरह के दबावों के सामने जल्दी टूट जाती हैं।

'सभी' औरतों के अनुभवों के सामान्यीकरण से पैदा होने वाले खतरों को देखते हुए यह साफ़ है कि पितृसत्ता के तहत चलने वाले समाजीकरण की वजह से औरतें शर्मिंदगी के अहसास को लेकर ज़्यादा

चिंतित रहती हैं। माइक्रो क्रेडिट के संदर्भ में हम यह देख सकते हैं कि अनुशासन और शर्मिंदगी, इन दोनों विचारों के मिलने से औरत अपनी साथी सदस्याओं के दबाव की शिकार आसानी से बन सकती है। इसी समूह के साथ एक और साक्षात्कार में एक सदस्या का कहना था, "जब हम कर्ज़ा नहीं लौटा पाती हैं तो बेचैन हो जाती हैं। हमें शर्मिंदगी और बुरा महसूस होता है। बड़ी बुरी हालत हो जाती है। इससे बचने के लिए हम और ज़्यादा मेहनत करने लगती हैं।"

एक और सदस्या ने कहा, "हमारे लिए बचत करना बहुत मुश्किल है। दोनों तरफ से दबाव रहता है, समूह की तरफ से भी और परिवार की तरफ से भी। समूह में कोई किसी की नज़रों में गिरना नहीं चाहता। आप घर में चाहे भूखे पेट सो जाएं पर समूह में बेइज्ज़ती किसी को अच्छी नहीं लगती। आदमी तो ये कहकर मुंह फेर लेते हैं कि यह तुम्हारी सिरदर्दी है, तुम्हीं जानो।" आंतरिकीकरण और साथियों के दबाव की इन प्रक्रियाओं के चलते यह वक्तव्य हमें कर्ज़दार के तौर पर औरतों की हकीकत के तीसरे आयाम की ओर ले आता है। जी हां, उन्हें कर्ज़ा मोटे तौर पर अकेले ही चुकाना पड़ता है।

एक तरफ तो स्वयं सहायता समूहों में सीखने की प्रक्रियाएं ऐसी नहीं हैं कि औरतें जेंडर के सवाल पर कोई चुनौती खड़ी कर सकें। दूसरी ओर जेंडर के मसले पर समाजीकरण की पितृसत्तात्मक प्रक्रियाएं माइक्रो क्रेडिट कार्यक्रमों में इस तरह सामने आती हैं कि जेंडर आधारित समाजीकरण के परंपरागत रूप एक नवउदार आर्थिक फ्रेमवर्क में एक 'अच्छी औरत' होने के मायनों से जुड़ जाते हैं, एक–दूसरे को पुष्ट करने लगते हैं। इस पुनर्निमित परिदृश्य में औरतों को यही लगता है कि कर्ज़ा ले पाने की योग्यता की वजह से अब 'आखिरकार' वे भी घर के कल्याण में योगदान देने लगी हैं। ऐसी प्रक्रिया में घरेलू अर्थव्यवस्था में औरत का योगदान और भी ज़्यादा ओझल हो जाता है जबकि उसके काम का बोझ बढ़ जाता है। शर्म और अनुशासन की सोच भी औरत को इस बात के लिए बाध्य करती है कि वह कर्ज़ा वापस लौटने के लिए और ज़्यादा ज़िम्मेदारी संभाले तथा और ज़्यादा काम करे।

माइक्रो क्रेडिट क्षेत्र के ये अनुभव एक चिंताजनक स्थिति की ओर संकेत कर रहे हैं। हम देखते हैं कि जिन प्रक्रियाओं से महिलाओं का सशक्तीकरण हो सकता था उनको साकार नहीं किया जा रहा है और या तो उनको बदल लिया गया है या पूरी तरह ताक पर रख दिया गया है। बात सिर्फ़ यह नहीं है कि यथास्थिति बनी रहती है और किसी तरफ 'कोई फर्क नहीं' पड़ता। परेशानी की बात यह है कि माइक्रो क्रेडिट प्रक्रियाएं असल में उन्हीं जेंडर आधारित कायदे–कानूनों को पुष्ट और पुनर्निर्धारित कर रही हैं जिनके आधार पर औरतों को केंद्र में रखने की बात कही गयी थी। नियमित रूप से बचत करने वाली, परिवार के हित में निष्ठापूर्वक कर्ज़ा लौटाने वाले और दूसरी तरफ पहले से ज़्यादा काम करने वाली अच्छी औरत की यह नई पहचान एक प्रगतिशील महिला के रूप में भी स्थापित की जा रही है जिसके पास घर से बाहर आने–जाने की आज़ादी है और वह सत्ता

परिवार पर इस बेहिसाब फोकस से अधिकारों, हितों और ज़रूरतों से लैस एक इकाई के रूप में औरत के व्यक्तित्व को ठेस पहुंची है जिसके लिए महिला आन्दोलन लंबे समय से आंदोलन कर रहा था।

शृंखला में ऊपर बढ़ रही है। लेकिन उसी पर इन प्रतीकों को अक्षुण्ण रखने का भार भी है।

रूप–रंग, पहचान के तौर पर

अच्छी औरत देखने में भी एक ख़ास तरह की होती है। वेलुगू से जुड़ी एक फ़ेडरेशन की नेता सुषमा की छवि उस प्रक्रिया के एक और पहलू को पकड़ती है जिसके ज़रिए माइक्रो क्रेडिट प्रक्रियाएं औरतों की नई पहचान गढ़ रही हैं। सुषमा असाक्षर हैं, दलित हैं, फ़ेडरेशन की सदस्य है। पहले वह पान खाती थीं। उसने बताया कि जब वह फ़ेडरेशन की पहली बैठक में आयी थी तो उसे कहीं पान थूकने की जगह नहीं मिली। उन्हें पान छोड़कर मीठी गोलियां और टॉफी शुरू करनी पड़ी। समूह की युवा और ज़्यादा साक्षर सदस्याओं ने उनका मज़ाक उड़ाया। कार्यक्रम के कार्यकर्त्ताओं ने भी उसको 'उज्जड' व गंवार कहा। उन्होंने कहा कि अगर वह अपनी इस आदत को नहीं बदलेगी तो उसके नेता बनने की कोई उम्मीद नहीं है। ऐसी औरत किसी के लिए मिसाल कैसे बनेगी। नेता जैसी दिखने के लिए उसे इन सारे नियमों को अपनी ज़िंदगी में ढालना था। उन्हें यह बुरा लगा और उन्होंने अपना विरोध भी जताया। इस संवाद में जातीय भावनाएं भी निहित थीं। बातचीत के दौरान जब कभी सुषमा अनौपचारिक ढंग से बैठ जाती थी या किसी अन्य सदस्या पर झुक जाती तो कम उम्र की महिलाएं कनखियों से एक–दूसरे को देखतीं और हमारा भी ध्यान उस तरफ खींचने की कोशिश करतीं। वह और अन्य दलित सदस्या जिस तरह परंपरागत ढंग से साड़ी पहनती थीं, इस बात पर भी टीका–टिप्पणियां सुनायी दीं। वे औरों की तरह शहरी ढंग से साड़ी नहीं पहनती थीं। कुछ सदस्याओं ने तो इस बात पर भी चुटकी ले डाली कि वह घिसी–पिटी सूती साड़ी पहनती है जबकि वे सिंथेटिक साड़ियां पहनती हैं। सुषमा ने इस बात पर एतराज़ जताते हुए कहा कि वह कड़ी मेहनत करती है इसलिए उसके लिए सूती ही ठीक है। उसने कहा कि वह दिन भर कुर्सियों पर और सुंदर सजे कमरों में बैठ कर औरों पर हुक्म नहीं चलाती। युवा सदस्याओं ने इस बात की कोई फिक्र नहीं की कि सुषमा ने नाश्ता किया है या नहीं और अगर वह थकी हुई है तो उसे आराम की ज़रूरत है या नहीं। वे बस उसका मज़ाक उड़ा रही थीं। इन युवा महिलाओं के पास बाहरी सार्वजनिक एवं औपचारिक संस्थानों––स्कूल, बैंक प्रतिनिधियों से बातचीत, आदि––का ज़्यादा एक्सपोजर और अनुभव था। संभवतः उन्हें इस तरह के मौके कई बार मिले थे। लेकिन इन सवालों पर कहीं कोई चर्चा नहीं थी–बस इस बात का एक ख़ास कायदा गढ़ने की बात थी कि एक 'सौम्य' नेता का आचरण कैसा होना चाहिए और वह देखने में कैसी लगती हो।

समूहों में इस तरह के तौर–तरीकों को सभ्य बनाने की प्रक्रिया के रूप में अपनाया गया है। समूहों की बैठकों में औरतों से बालों में तेल लगाकर व कंघी करके, साफ़ धुली साड़ी पहनकर, हाथ–पैर धो–पोंछकर आने की उम्मीद की जाती है। उनसे उम्मीद की जाती है कि अगर वे समूह की पहचान से जुड़ना चाहती हैं तो वे बैठक में सीधे बैठा करें। अगर वे एक ख़ास तरह से दिखने की शर्त को पूरा नहीं करतीं तो उन पर जुर्माना भी किया जा सकता है। एक प्रौढ़ सदस्या ने तो शोधकर्ता का भी ये कहकर मज़ाक उड़ाया कि उसने अपने बाल खुले रख कर कैसे 'उल–जुलूल' कर लिए हैं। लगे हाथ उसे यह चेतावनी भी दे दी गयी कि अगर उसे समूह की अगली बैठक में आना है तो बालों में तेल लगाकर और बाल काढ़कर ही आना होगा! यह बात मज़ाक

के अंदाज़ में कही गयी थी क्योंकि अब ये महिलाएं शोधकर्ताओं के साथ खुलने लगी थीं। इससे पहले उनकी दो बार मुलाकात हो चुकी थी। लेकिन इससे यह तो ज़ाहिर हो ही गया कि औरतों ने सभ्य बनने के इन मानकों को अपने व्यक्तित्व में उतार लिया है ताकि वे साधारण उज्जड पहचान से भिन्न दिखायी देने लगें और 'समूह की सदस्य' जैसी दिखें। ताकि उनकी पहचान और गतिविधियों की झलक उनके व्यक्तित्व से मिल जाए।

जो समूह आर्थिक अभिशासन के कायदे–कानूनों को लेकर ज़्यादा सख्त और मुस्तैद दिखायी देते हैं वहां बाहरी रूप–रंग के बारे में अनुशासन के नियम भी उतने ही कड़े हो जाते हैं मानो ऋण पा लेने भर से व्यक्ति की भौतिक स्थिति बेहतर हो जाती हो! भौतिक स्तर में सुधार की अपेक्षाओं के साथ रूप–रंग के मामले में ऐसे सामाजिक मूल्यों को अपनाने की बाध्यता भी पैदा हो जाती है जो संपन्न तबके की ही पहचान माने जाते हैं। वेलुगू से जुड़े समूह की महिलाएं अन्य समस्याओं की बजाय आर्थिक लेन–देन के बारे में ज़्यादा सख्त थीं जबकि एस.जी.एस.वाई. समूह से जुड़ी औरतों ने इस तरह के अनुशासनात्मक व्यवहार में कम दिलचस्पी दिखायी। वे अपने आर्थिक अनुशासन के मामले में भी ज़्यादा सहज और निश्चिंत दिखायी दीं।

बाज़ार और स्थानीय अर्थव्यवस्था

स्वयं सहायता समूह और परिवार की परिधि के भीतर एस.एच.जी. मॉडल तथा माइक्रो क्रेडिट के लिए पैदा होने वाले निहितार्थों को हम देख चुके हैं। यहां अगली महत्त्वपूर्ण चर्चा इस बारे में है कि बाज़ार और आर्थिक गतिविधियों के साथ स्वयं सहायता समूहों का कैसा रिश्ता बन रहा है। माइक्रो क्रेडिट कार्यक्रम जिन आर्थिक गतिविधियों को जन्म देने का दावा करते हैं उनसे सीखने और लाभ उठाने के लिहाज़ से औरतों के लिए क्या परिणाम सामने आते हैं? इस तरह की आर्थिक गतिविधियां कैसी होती हैं? यह बात महिलाओं के सशक्तीकरण और गरीबी उन्मूलन के साथ कैसे जुड़ी हुई है?

ऋण तक पहुंच

निरंतर सर्वेक्षण से पता चलता है कि बचत करने वाले 90% स्वयं सहायता समूह अपनी बचत बैंकों में जमा कराते हैं। लेकिन कर्ज़ा पाने वाले समूहों की संख्या केवल 42% है। ये सारे समूह पिछले कम से कम दो साल से अस्तित्व में हैं। जब हम इस बात पर ध्यान देते हैं कि कर्ज़ पाने की चाह ही महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों में जोड़ने की बुनियादी प्रेरणा रही है तो ऋण पाने में यह विफलता और भी महत्त्वपूर्ण दिखायी देने लगती है।

आम धारणा है कि माइक्रो क्रेडिट के कारण सूदखोरों की जगह और इस्तेमाल कम हो गया है। यहां इस बात को रेखांकित करना ज़रूरी है कि ऋण तक पहुंच के बावजूद औरतें महाजनों और सूदखोरों से पूरी तरह आज़ाद नहीं हुई हैं। हालांकि औरतों ने बचत और ऋण को संकटों से पार पाने और उपभोग संबंधी खर्चों का इंतज़ाम करने के लिए महत्त्वपूर्ण

माइक्रो क्रेडिट के साथ पितृसत्तात्मक प्रक्रियाएं इस तरह सामने आती हैं कि जेंडर आधारित समाजीकरण के परंपरागत रूपों को तो बल मिलता ही है, नवउदारवादी आर्थिक परिदृश्य में 'एक अच्छी औरत' की छवि भी स्थापित होती जाती है।

माना है लेकिन इस मद में उन्हें जो राशि मिलती है वह इतनी कम होती है कि उन्हें सूदखोरों व अन्य स्रोतों से भी कर्ज़ा लेना ही पड़ता है। मिसाल के तौर पर, एस.जी.एस.वाई. समूह की औरतें न केवल स्वास्थ्य संबंधी ज़रूरतों के लिए बल्कि सामाजिक कार्यक्रमों के लिए भी सूदखोरों से पैसा लेती हैं। ऋण तक पहुंच के कारण सूदखोरों पर स्वशक्ति समूह की औरतों की निर्भरता में कोई ख़ास कमी नहीं आयी लेकिन महिलाओं को लगता है कि छोटी–मोटी घरेलू ज़रूरतों के लिए अब वे हर रोज पति पर आश्रित नहीं रहतीं। वे अपने ही खेतों से थोड़ा–बहुत बाजरा, सब्ज़ियां, इमली या महुआ इकट्ठा करके बेच लेती हैं। इस पैसे से घर में नमक–तेल आदि छोटी–मोटी ज़रूरतें पूरी हो जाती हैं। फिर भी अब उनके पास बच्चों की किताबों और स्कूल बैग या इलाज आदि अगले स्तर की ज़रूरतों के लिए कर्ज़ तक पहुंच मिल गयी थी। वेलुगू से जुड़ी महिलाओं ने बताया कि अब उन्हें ज़मींदारों पर पहले जितना निर्भर नहीं रहना पड़ता। वैसे भी ज़मींदार कर्ज़ के बदले ज़मानत की मांग करते थे। और कर्ज़दारों से खेतों में मुफ्त काम करवाते थे सो अलग। उन्होंने बताया कि अब "समूह में ही हम पैसे को घुमाते रहते हैं और ज़मींदारों के सामने हाथ फैलाने की ज़रूरत नहीं पड़ती। हम कोई गुलाम थोड़े ही हैं। हम आज़ाद हैं। हम अपनी मर्ज़ी की मालिक हैं।"

निरंतर सर्वेक्षण से पता चला कि बचत करने वाले 90% एस.एच.जी. अपनी बचत बैंकों में जमा कराते हैं लेकिन बैंकों से ऋण हासिल कर पाने वाले समूहों की संख्या केवल 42% थी।

निरंतर सर्वेक्षण में यह भी दर्शाया गया है कि स्वयं सहायता समूहों की महिलाएं समूह के बाहर से जो कर्ज़ा लेती हैं उसमें महाजनों से लिए गए कर्ज़े का हिस्सा सबसे बड़ा होता है। सर्वेक्षण से यह भी पता चला कि महिलाओं ने जिन कामों के लिए महाजन या अन्य स्रोतों से कर्ज़े लिए हैं उन कामों के लिए वे स्वयं सहायता समूहों से भी कर्ज़ा ले सकती थीं (स्वयं सहायता समूहों से उन्हें सिर्फ़ विवाह और दहेज आदि खर्चों के लिए कर्ज़ा नहीं मिल सकता था)। निष्कर्षतः, अन्य स्रोतों से लिए गए 36% कर्ज़े संकट से उबरने और स्वास्थ्य संबंधी ज़रूरतों के लिए थे (स्वास्थ्य के मामले में ज़्यादातर ज़रूरतें पति और बच्चों से संबंधित थीं)। यह तथ्य इस दावे को झुठला देता है कि स्वयं सहायता समूहों ने औरतों को संकट से संबंधित सारी ज़रूरतों को पूरा करने के साधन उपलब्ध करा दिए हैं।

अध्ययन से एक बेचैन करने वाला साक्ष्य यह सामने आया कि स्वयं सहायता समूहों की सदस्याओं को बैंकों से कर्ज़ा नहीं मिल पाता था। प्रोत्साहक एजेंसियां इसे लगभग स्वाभाविक बात मानकर चलती हैं। यह साक्ष्य ऋण तक पहुंच में अक्षमता को औरतों के पास जानकारियों के अभाव से भी जोड़ देता है। ऐसे में सारी जानकारियां मध्यस्थों के पास मौजूद सत्ता में निहित होती हैं।

इस आशय का सबसे तीखा उदाहरण गुजरात में एस.जी.एस.वाई. कार्यक्रम के अंतर्गत दिखायी दिया। समूह की ओर से भैंस खरीदने के लिए भेजा गया आवेदन साल भर से भी ज़्यादा समय से बैंक में पड़ा है। समूह ने इस अर्ज़ी पर कार्रवाई के लिए बार–बार प्रयास किया है लेकिन कोई कार्रवाई नहीं हुई। समूह की नेता कविता ने बताया, "पहले हम लोग (नेतागण) फ़ॉर्म जमा करवाने बैंक गए। तीन महीने बाद स्थिति

का पता लगाने हम फिर बैंक गए। सारी औरतें शिकायत करने लगी थीं इसलिए हमें जाना पड़ा। औरतें शांत होने पर नहीं आ रही थीं। उनका आरोप था कि हमने उनसे झूठ बोला है। कुछ दिनों बाद सारी औरतें बैंक वालों के पास गयीं। तब तक मैनेजर का तबादला हो गया था। नया मैनेजर बाहर का है। वह हमारी ज़बान नहीं बोलता। वह आपकी तरह (हिंदी में) बोलता है। और अब वह महीनों से आ नहीं रहा है। इसलिए ग्राम सेवक ने हमें फिर से इंतजार करने के लिए कहा है। नहीं पता कि हमें कर्ज़ा क्यों नहीं मिल रहा। हमें इस बारे में चर्चा करके सोचना होगा कि कहां चूक हो रही है।"

समूह की एक सदस्या ने कर्ज़ के लिए अपनी अर्ज़ी की पैरवी पर आने वाले खर्चे के बारे में बताया। "कर्ज़ के लिए कागज़ तैयार करने में हमें 500 रुपए खर्च करने पड़े। यह दो साल पहले की बात है। फिर हम मोडासा दफ्तर गए। उसके लिए हमें दिन भर की दिहाड़ी तो छोड़नी ही पड़ी, बस का भाड़ा भी 20–20 रुपए पड़ा। आखिरी बार जब हम टी.डी.ओ. (ताल्लुका विकास कार्यालय) गए थे तब से अब तक 8 महीने बीत चुके हैं।" जब हमने पूछा कि अब तक कर्ज़ा क्यों नहीं मंजूर हुआ है तो समूह के पास कोई जवाब नहीं था। उन्होंने बताया, "मैनेजर ने हमें कुछ नहीं बताया है। उन्होंने कोई जानकारी भी नहीं दी कि कर्ज़ मंजूर करवाने के लिए हमें क्या करना चाहिए। मैनेजर ने गांव के पांचों समूहों के रिकार्ड तो देखे पर कहा कुछ नहीं।"

ग्राम सेवक को पता है कि कर्ज़ा लेने के लिए इस समूह की रेटिंग अभी अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुंची है। वह अन्य कामों के लिए समय–समय पर बैंक जाता रहता है। उसे सब पता है। लेकिन इस बारे में उसने समूह को कोई सलाह नहीं दी। न ही वह बैंक अधिकारियों के साथ बातचीत में मदद देने के लिए उनके साथ कभी बैंक गया। ग्राम सेवक की सलाह और मार्गदर्शन के अभाव में औरतों का बार–बार बैंक जाना इस सोच की तरफ इंगित करता है कि औरतों की मेहनत और ऊर्जा का कोई महत्त्व नहीं है। दरअसल, अगर इन महिलाओं को ज़रूरी जानकारियां मिल जाएं तो हो सकता है कि ग्राम सेवक के हित खतरे में पड़ने लगें।

शोध दल द्वारा की गयी पड़ताल से पता चला कि बैंक ने इस इलाके में नए कर्ज़े देने पर तब तक के लिए रोक लगा दी है जब तक पिछले सारे कर्ज़े वसूल नहीं कर लिए जाएंगे (तालुका एवं ग्राम स्तर पर डी.आर.डी.ए. कार्यकर्त्ताओं ने यह जानकारी दी)। यहां हम देना बैंक की बात कर रहे हैं। यह ज़िले का सबसे बड़ा बैंक है। इलाके के पटेलों ने बड़े–बड़े कृषि कर्ज़े लिए हुए हैं। अब एस.एच.जी. में सक्रिय दलित औरतों पर इस बात के लिए दबाव डाला जा रहा है कि वे पटेलों को कर्ज़ा लौटाने के लिए मजबूर करें। जिन औरतों का औरों के कर्ज़े देने–लेने से कोई संबंध नहीं था अब उन्हें भी उन कर्जों की वसूली के लिए ज़िम्मेदार ठहराया जा रहा है! पुराने मैनेजर ने एस. एच.जी. सदस्याओं को ये कहा था कि अगर वे बकाया कर्ज़े वसूल करवाने में मदद करेंगी तो उनकी अर्जी ज़्यादा आसानी से मंजूर हो सकती है। लेकिन ये औरतें कर्ज़ वसूली में क्या 'मदद' कर सकती हैं! "हम दूसरे मर्दों के पास जाकर ये कैसे कह सकते हैं कि वे बैंक का पैसा लौटा दें? वे कोई हमारे घर के थोड़े ही हैं। वे तो अजनबी हैं। हम इस काम के लिए उनके पास क्यों जाएं? उन्होंने (बैंक वालों ने) कर्ज़ा दिया था उन्हें ही वसूल करना चाहिए।"

एक और महत्त्वपूर्ण मुद्दा यह था कि कर्ज़ वसूली का बोझ उन औरतों पर डाला जा रहा है जिन्हें देना बैंक में ही बचत जमा कराने के लिए मजबूर किया

गया था। यह ज़िले का सबसे प्रमुख बैंक है इसलिए एस.जी.एस.वाई. के तहत आने वाली सब्सिडी या किसी दूसरी सरकारी योजना के तहत आने वाले आर्थिक लाभ देना बैंक के ज़रिए ही वितरित किए जाते हैं। कर्ज़ा पाने के लिए समूहों को अपनी बचत ज़िले के एक खास बड़े बैंक में ही जमा करानी पड़ती है। एस.एच.जी. इस शर्त का उल्लंघन नहीं कर सकते फिर चाहे वह बैंक अपने व्यवहार या लचीलेपन के मामले में कैसा भी क्यों न हो। हमें बताया गया कि जब देना बैंक के आला अफ़सरों ने इस पाबंदी का फ़ैसला लिया था तो डी.आर.डी.ए. के अफ़सर भी वहां मौजूद थे परंतु उन्होंने इस फैसले को चुनौती नहीं दी। बल्कि सरकारी कार्यकर्त्ता तो औरतों को अभी भी इस बात के लिए प्रेरित कर रहे हैं कि वे इसी बैंक में अपना पैसा जमा कराएं। औरतों को इस मसले का कुछ भी पता नहीं है। उन्हें तो ग्राम सेवक की सलाह मानने के लिए बाध्य किया जाता है। वे एस.जी.एस. वाई. ऋण की आस में देना बैंक में अपनी मासिक बचत जमा कराती जाती हैं। समूह किसी और बैंक की शरण में जाना चाहते हैं लेकिन उन्हें यह चुनाव करने की आज़ादी नहीं है। दूसरी तरफ संपन्न तबके के परिवार भी होंगे जिन्होंने कर्ज़ा भी नहीं चुकाया होगा (और वह बड़ा कर्ज़ा रहा होगा!) और फिर भी वे जब चाहें किसी और बैंक से कर्ज़ा ले सकते हैं। सवाल यह उठता है कि औरतों की बचत को अन्य बैंकों में क्यों नहीं जमा कराया जा सकता (भले ही उन बैंकों में सब्सिडी न भी आती हो)। औरतों को ऐसे बैंक चुनने की आज़ादी क्यों नहीं मिलती जो ऋण

ऋण का अलग–अलग महत्त्व

अध्ययन से पता चला कि एस.एच.जी. सदस्याओं के लिए ऋण का महत्त्व काफ़ी हद तक इस बात से तय होता है कि संबंधित महिला की आर्थिक स्थिति कैसी है।

सबसे गरीब सदस्याओं के लिए एस.एच.जी. आधारित बचत का मॉडल ज़्यादा उम्मीद भरा नहीं है क्योंकि वे नियमित रूप से बचत नहीं कर सकतीं। रोज़ी–रोटी के लिए दिन भर की जद्दोजहद का नतीजा यह होता है कि वे बैठकों में भी नहीं जा पातीं। अगर बैठक दिन में हो तो उनकी परेशानी और बढ़ जाती है।

जो किसान औरतें लम्बी पालियों में कठोर परिश्रम नहीं कर सकतीं उनके लिए स्वयं सहायता समूह बचत का एक विकल्प बन सकता है। वेलुगू और एस.जी.एस.वाई. से जुड़े समूहों में सक्रिय प्रौढ़ महिलाओं का कहना था कि उनके लिए बचत ही महत्त्वपूर्ण नहीं है। समूह की सदस्यता से उन्हें अन्य अवसरों (जैसे चावल ऋण, आवस योजना आदि) तक पहुंच भी मिल जाती है।

सीमांत किसान, बंटाईदार और दस्तकार आदि जिन औरतों के पास मामूली ही सही लेकिन थोड़े–बहुत संसाधन हैं उनके लिए बचत और ऋण ही संकट के समय संसाधनों की व्यवस्था करने का ज़रिया है। इसका यह भी मतलब है कि वे बीजों की खरीद आदि कामों के लिए जितना पैसा बचा सकते थे उसके मुकाबले अब उन्हें ज़्यादा मात्रा में आर्थिक मदद मिल सकती है।

नेताओं और ज़्यादा साक्षर सदस्याओं को ऋण तक सबसे ज़्यादा पहुंच मिलती है। वे कर्ज़ लौटाने में ढील बरतती हैं तो भी उन्हें औरों की आलोचना नहीं झेलनी पड़ती। यह बात एस.जी.एस.वाई. और वेलुगू दोनों योजनाओं में दिखायी दी।

चुकाने की उनकी योग्यता के आधार पर उनकी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए तैयार हैं।

मानो इतना ही काफ़ी नहीं था, ग्राम सेवक और टी.डी.ओ. (ताल्लुका विकास अधिकारी) एस.एच.जी. सदस्याओं को बैंक से अपनी बचत वापस निकालने की भी छूट नहीं देते। औरतें बैंक से तभी पैसा निकाल सकती हैं जब वे अपने आवेदन पर ग्राम सेवक और टी.डी.ओ. के दस्तख्त करा लें। हालांकि यह नीतिगत बात नहीं है लेकिन अनौपचारिक रूप से यह नियम बन चुका है। यह औरतों के संसाधनों पर कब्ज़े का एक बेमानी तरीका है जिसके बारे में न तो स्थानीय कार्यकर्त्ताओं के पास और न ही ज़िला स्तरीय अधिकारियों के पास कोई स्पष्टीकरण था।

औरतों का कहना है कि कर्ज़ मंजूर होने में इसलिए भी देर हो सकती है कि शायद ग्राम सेवक अपने पैसे बनाने के चक्कर में है। लेकिन वे उस पर उंगली नहीं उठा सकतीं वर्ना उन्हें पूरे कर्ज़े से भी हाथ धोना पड़ सकता है। बाद में टी.डी.ओ. ने हमें बताया कि ग्राम सेवक की तरफ से उन्हें ऐसा कोई औपचारिक आवेदन नहीं मिला है। ज़ाहिर है कि औरतों को यह मालूम ही नहीं था कि इसके लिए उन्हें औपचारिक रूप से आवेदन देना चाहिए। इस उदाहरण से यह बात एक बार फिर साबित हो गयी कि ऋण प्रक्रिया के बारे में जानकारियों के अभाव के चलते औरतें ऋण संबंधी प्रक्रियाओं का पूरी तरह पालन नहीं कर पा रही हैं।

सरकारी अफ़सरों ने बचत का पैसा वापस निकालने पर जो पाबंदी लगायी हुई है उसके कारण औरतें समूह के भीतर अपनी ही बचत के आधार पर भी कर्ज़ा नहीं ले सकतीं। इसका नतीजा यह हुआ है कि समूह की औरतों ने समानांतर व्यवस्था शुरू कर दी है। वे पैसा बचाती हैं और एक–दूसरे को कर्ज़ा देती हैं। लेकिन आपस में कर्ज़ा देना भी महंगा सौदा है क्योंकि इसके लिए औरतों को ज़्यादा बचत करनी पड़ती है। विडंबना यह है कि आंतरिक ऋण विनिमय जितना ज़्यादा होगा बैंक की नज़र में ऋण योग्यता की कसौटी पर संबंधित समूह का आकलन व रेटिंग उतनी ही बढ़ जाएगी।

यहां कई गंभीर चिंताएं सामने आती हैं :

- गरीब औरतें गाढ़े पसीने की अपनी बचत कर्ज़े की उम्मीद में फंसा कर बैठ गयी हैं। जब तक सरकार दखल नहीं देगी तब तक न तो उन्हें कर्ज़ा मिलेगा और न उनकी बचत का पैसा।
- औरतों को बैंक कर्जों की वसूली का ज़रिया बनाया जा रहा है।
- औरतों को लगता है कि बैंकों और सरकार के बीच मिलीभगत चल रही है जिसकी वजह से सरकार यह जानते हुए भी खामोश बनी हुई है कि बकाया कर्जों का बहाना बनाकर बैंक औरतों को कर्ज़ा देने से कतरा रहे हैं। इस स्थिति को उदारीकरण के संदर्भ में समझा जाना चाहिए जहां बैंकों को गरीबों की लागत पर मुनाफ़े और वसूली के लक्ष्यों की आड़ में सामाजिक विकास के लक्ष्यों को अनदेखा करने की छूट दी जा रही है।
- गरीब औरतों के पास यह चुनने का अधिकार नहीं है कि वे अपनी बचत कहां जमा कराएं। जो बैंक स्वयं सहायता समूहों की ज़रूरतों को पूरा नहीं करते वे भी अपने संसाधन फैलाने के लिए इन औरतों की कमाई का इस्तेमाल कर रहे हैं।
- औरतों को अपनी बचत पर नियंत्रण नहीं मिल रहा है। बैंक से अपना पैसा वापस निकालने पर लगी पाबंदी के कारण यह नियंत्रण और भी कम रह गया है। यह बिल्कुल गलत बात है क्योंकि

इन औरतों ने अपने खर्चे कम करके और कठोर परिश्रम करते हुए यह पैसा बचाया है जो उन्हें मिलना ही चाहिए। यह बुनियादी ज़रूरतों से निपटने का साधन है न कि भारी मुनाफ़े में से जमा करायी गयी राशि इसलिए इस पर उनका नियंत्रण होना ही चाहिए।

- न केवल औरतों को ऐसी जानकारियां और मदद नहीं मिल पा रही हैं जो स्थानीय कार्यकर्त्ताओं और कर्मचारियों से उन्हें लगातार मिलनी चाहिए बल्कि स्थानीय कर्मचारियों के सामने अपनी शक्तिहीनता के कारण वे और भी कमज़ोर पड़ती जा रही हैं।

औरतों को औपचारिक संस्थागत परिधियों तक पैठ बनाना सीखना होगा। यह एक ऐसी रुकावट है जो लगातार बढ़ती नकदी अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण होती जा रही है। औरतों की मुश्किलों को हल करने और उनकी पूंजी संबंधी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए ऋण और नकद आधारित लेन–देन पर ज़ोर लगातार बढ़ता जा रहा है। यह सोच में एक बुनियादी बदलाव का संकेत है। ऐसी औरतों के लिए यह एक नई दुनिया है जो अब तक सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से चूल्हे–चौके और खेतों तक ही सिमटी हुई थीं। इस संदर्भ में औरतों को बैंकरों के जाति, वर्ग और पितृसत्तात्मक पूर्वाग्रहों का सामना करना पड़ता है सो अलग। गरीब देहाती औरतों, ख़ासतौर से असाक्षर औरतों के लिए बैंककर्मियों से संवाद एक कठिन अनुभव होता है। बैंकों की भारी–भरकम, कठोर और अकसर गरीब विरोधी प्रक्रियाएं, पद्धतियां और औपचारिकताएं उनकी मुश्किलों को और बढ़ा देती हैं। औरतों को न केवल बैंकिंग व्यवस्था के बारे में बहुत कुछ सीखने का मौका मिलना चाहिए बल्कि उन्हें आत्मविश्वास अर्जित करने और नई योग्यताएं हासिल करने के लिए भी इनपुट्स मिलने चाहिए।

एस.एच.जी. सदस्याओं को बैंक से अपनी बचत निकालने की छूट नहीं दी गई है। बैंक से पैसे निकालने के लिए उन्हें अपनी अर्ज़ी पर ग्राम सेवक और तालुका विकास अधिकारी के दस्तखत करवाने पड़ते हैं।

इस तरह के अनुभवों के कई सकारात्मक उदाहरण भी सामने आए हैं। आनंदी के समूह में औरतें स्थानीय धक्का बैंक कर्मचारियों के हाथों हो रहे शोषण को चुनौती देना चाहती थीं। आनंदी की ओर से इन महिलाओं को खाता–बही संभालने की पद्धतियों के बारे में बताया गया और औपचारिक ऋण व्यवस्था व उसके भीतर महिलाओं के अधिकारों की जानकारी दी गयी। इलाके के बैंकों के साथ एक्सपोज़र और संपर्क विकसित करने में मदद देने के साथ–साथ आनंदी ने ऐसी परिधियां विकसित करने का भी प्रयास किया है जिनके ज़रिए महिलाएं बैंकों के साथ संपर्क और सौदेबाज़ी कर सकें। बैंक तथा उसके नियमों व तौर–तरीकों के विश्लेषण से औरतों को मुद्दे उठाने और अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए मांग प्रस्तुत करने की ताकत मिलती है।

आजीविका की सही गतिविधि का 'चुनाव' करना

हमने जिन कार्यक्रमों का अध्ययन किया, लगभग उन सभी में कर्ज़ पाने के बाद उद्यमशीलता को अगली कड़ी के रूप में देखा जाता है। जैसे ही कोई महिला समूह की सदस्य बनती है तबरीबन फौरन यह चर्चा भी शुरू हो जाती है कि औरतें किस तरह के आर्थिक रूप से उत्पादनशील काम कर सकती हैं। ड्वाक्रा,

स्वशक्ति और एस.जी.एस.वाई. से जुड़े जिन समूहों का अध्ययन किया गया उनमें औरतों को यही लालच दिया गया था कि समूह में शामिल होकर उन्हें जो संसाधन मिलेंगे उनसे वे आयवर्धक काम शुरू कर सकेंगी। लेकिन व्यावहारिक आर्थिक प्रयासों के बारे में जांच–पड़ताल के लिए तैयारी की कोई समयसीमा निर्धारित नहीं है। न ही उन गतिविधियों के लिए समयसीमा निर्धारित है जो आयवर्धन तक सीमित नहीं हैं बल्कि वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन से संबंधित हैं और जिनके लिए क्षमता निर्माण की ज़रूरत होती है। 'आयवर्धक गतिविधियों' को 'आजीविका सुदृढ़ीकरण' गतिविधियों तक विरले ही कभी विस्तार दिया जाता है।

आनंदी के समूह में आजीविका से संबंधित बुनियादी चिंताओं को संबोधित किया जा रहा है। वहां बचत और ऋण विभिन्न कार्यक्रमों का सिर्फ़ एक पहलू है। फ़ेडरेशन की नेताओं के मुताबिक इन पहलुओं का महत्त्व "गोंद जैसा" होता है। अपनी गरीबी और आर्थिक दुर्बलताओं को दूर करने के लिए महिलाएं बचत और ऋण के साथ–साथ अन्य काम भी करती हैं। आर्थिक स्तर पर उनके प्रयास खाद्य सुरक्षा की मांग, एक प्रभावी सार्वजनिक वितरण व्यवस्था, सरकारी योजनाओं तक पहुंच के माध्यम से क्षमताओं में सुधार और आयवर्धक अवसरों के लिए संसाधनों तक पहुंच तथा रोजगार के अधिकार से संबंधित हैं। इन समूहों ने ठेकेदारों के ख़िलाफ़ भी अपना विरोध व्यक्त किया है जो सही वेतन नहीं देते, बाहर से मज़दूर ले आते हैं, स्थानीय मज़दूरों को काम पर नहीं रखते। ये सारी कोशिशें इन समुदायों के परंपरागत व्यवसायों से संबंधित हैं। ये शोषण तथा प्राकृतिक संसाधनों पर स्वामित्व के अभाव से पैदा हुई गरीबी को दूर करने की कोशिशें हैं। यद्यपि महिलाओं ने खुदरा गतिविधियों के लिए ऋण लिए हैं लेकिन आधे से भी बहुत ज़्यादा महिलाओं ने खेती और अन्य मुख्य आर्थिक गतिविधियों को मज़बूत करने के लिए ही कर्ज़े लिए हैं। उन्होंने वेतन आधारित अवसरों को बढ़ाने के लिए भी कर्ज़े लिए हैं।

प्रोत्साहक एजेंसियां जिस तरह के आजीविका संबंधी प्रयासों को लागू कर रही हैं उनको देखते हुए ऐसा लगा कि इन औरतों के आर्थिक हालात को प्रभावित करने वाली संभावनाओं की पहचान करने में कल्पनाशीलता और रचनात्मकता का अभाव रहा है। औरतें किसी भी तरह की आयवर्धक गतिविधियों में हिस्सा लेने को तैयार रहती हैं लेकिन बहुधा उन्हें अंदाज़ा नहीं होता कि ऐसा काम क्या हो सकता है। वे आमतौर पर केवल ऐसे विकल्पों पर विचार कर पाती हैं जिनको वे औरों के मामले में देख चुकी हैं। ऐसे ज़्यादातर काम छोटे पैमाने के, व्यक्तिगत और जेंडर आधारित श्रम विभाजन पर आधारित दिखायी देते हैं। ऐसे बहुत सारे काम या तो व्यावहारिक नहीं होते या उनसे बहुत मामूली फायदा होता है। फलस्वरूप वे इन महिलाओं की आमदनी पर ख़ास असर नहीं डाल पाते। ऐसे संदर्भ में महिलाओं को विभिन्न संभावनाओं में से चुनने का विकल्प दिए बिना केवल यह पूछना कि वे किस तरह का काम करना चाहेंगी, असल में आवश्यकता आधारित नियोजन का मज़ाक दिखायी देने लगता है। इस तरह की कवायद में जो जवाब सामने आते हैं वे भी ऐसे होते हैं जिनसे वर्ग और जेंडर के स्तर पर यथास्थिति बनी रह जाती है। ऐसे काम इसलिए भी आरामदेह दिखायी देते हैं क्योंकि प्रोत्साहक एजेंसी को आवश्यकता आकलन में पर्याप्त ऊर्जा और निवेश करने की ज़रूरत दिखायी नहीं देती। फलस्वरूप इस तरह के आकलन से औरतों के लिए जो परिणाम सामने आ सकते हैं वह भी समाप्त हो जाते हैं। अध्ययन से पता चलता है कि औरतें जिन

विकल्पों का चुनाव करती हैं, वह उनके मौजूदा हालात से पहले ही निर्धारित हो चुके होते हैं। उनके एक्सपोजर का स्तर, उनकी वर्गीय हैसियत (मसलन, जोखिम लेने और निवेश करने की क्षमता) और जेंडर आधारित यथार्थ (घर पर रहकर होने वाले कामों के लिए प्राथमिकता ताकि जेंडर आधारित श्रम–विभाजन और आयवर्धक गतिविधियों, दोनों के बीच संतुलन बना रहे), इन सारी बातों से औरतों के चुनाव पर असर पड़ता है। सीखने के अवसरों और भौतिक सहायता के अभाव में औरतें लगभग हमेशा ऐसे विकल्प ही चुनती हैं जो उनके मौजूदा हालत पर आधारित होते हैं। ऐसी सूरत में समानता के उद्देश्य से विकल्पों को विस्तार प्रदान करने के लिए सीखने की प्रक्रिया की ज़रूरत पूरी तरह सामने नहीं आ पाती।

उद्यमी नहीं, इकाई दर मज़दूर

एस.जी.एस.वाई. से संबद्ध फ़ेडरेशन ने मसालों की पैकेजिंग और खुदरा बिक्री का काम शुरू किया था। साबरकांठा ज़िले की मसाला फ़ेडरेशन को ज़िला अधिकारी एक कामयाबी के रूप में पेश करते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि अगर फ़ेडरेशन की मैनेजर विनीता बहन की नज़र से देखें तो यह प्रयोग निश्चय ही सफल हुआ है। इससे विनीता बहन को तो फायदा हुआ ही है उनके बेटों के लिए भी रोज़गार पैदा हुए हैं। परंतु उत्पादन में लगी औरतों को मसाला फ़ेडरेशन के तहत इकाई दर पर मज़दूरी से ही संतोष करना पड़ता है। वे सिर्फ़ इकाई दर पर काम करने वाली मज़दूर हैं। यद्यपि ऋण और निवेश तो फ़ेडरेशन की सभी सदस्यों के नाम पर हुआ है लेकिन उनमें से मुट्ठी

रिवॉल्विंग फंड की ज़रूरत

हमने वेलुगू और आनंदी से जुड़े स्वयं सहायता समूहों की जिन सदस्याओं से बात की उनका मानना था कि गरीब औरतों के लिए ऋण की बजाय रिवॉल्विंग फंड का मॉडल अपनाना ज़्यादा बेहतर होगा। उनका कहना था कि उन्हें यह समझने के मौके मुहैया कराए जाएं कि इस व्यवस्था के सिद्धांतों का किस तरह पालन किया जाना चाहिए। परिवार के समक्ष महिलाएं रिवॉल्विंग फंड के माध्यम से संसाधनों पर ज़्यादा नियंत्रण हासिल कर सकती हैं क्योकि तब वे कह सकती हैं कि यह समूह का साझा फंड होता है इसलिए कोई एक व्यक्ति उस पर कब्जा नहीं कर सकता। रिवॉल्विंग फंड की स्थिति में संसाधनहीन औरतों को औपचारिक संस्थानों को ब्याज चुकाने से भी छुटकारा मिल जाएगा। अपनी ज़रूरतों को मनवाने में औपचारिक संस्थानों के सामने उन्हें वैसे भी बहुत परेशानियों का सामना करना पड़ता है (नीतियों में ज़्यादा लचीलेपन के लिए)। अपने संसाधन आधार और क्षमताओं में सुधार के ज़रिए बाद में धीरे–धीरे औपचारिक ऋण संस्थानों के साथ भी संबंध कायम किए जा सकते हैं। इस तरह के वक्तव्यों में औरतें यह दर्शाती हैं कि वे इस बात को अच्छी तरह समझती हैं कि कौन–सी रणनीति गरीब औरतों के ज़्यादा हित में होती है (बामुकाबले उन रणनीतियों के जो ज़्यादा ताकतवर लोगों की ज़रूरतों को पूरा करती हैं)। ज़्यादातर मामलों में वास्तविकता यही है कि औरतों को इस तरह के आकलन के लिए जगह नहीं दी जा रही है और ऋण से संबंधित प्रणालियों और पद्धतियों के मामले में उनके पास ज़्यादा विकल्प नहीं होते।

भर ही सही मायनों में उद्यमी कही जा सकती हैं। ये महिलाएं हैं विनीता बहन की सख्त और मालिकाना नज़रों के सामने फ़ेडरेशन के जहाज़ को चला रही हैं।

विनीता बहन ने सरकारी संस्थानों से आपूर्ति के ठेके हासिल करने के लिए सरकारी महकमों से ताल्लुक बनाने का ढंग सीख लिया है। वह अपनी फ़ेडरेशन द्वारा बनाए गए मसालों को खरीदने के लिए थोक बाज़ार के व्यापारियों को भी राज़ी करने में कामयाब रही हैं। बैंकों से भी उन्हें अतिरिक्त संसाधन पाने के लिए पहुंच हासिल हो गयी है। अब वह इसी काम को पड़ोस के ज़िलों में भी फैलाना चाहती हैं। फ़ेडरेशन की बाकी सदस्यों को न तो इन क्रियाकलापों का और न ही इन संभावनाओं का पता है। जो आयोजक पैकेटबंद मसालों को ज़िले तक पहुंचाते और वहां से कच्चा माल लाते हैं उन्हें भी इस बात का अंदाज़ा नहीं था कि फ़ेडरेशन कैसे काम कर रही है। सदस्याओं को तो बोनस के वितरण की जानकारी भी नहीं थी। उन्हें तो बस इस बात में दिलचस्पी थी कि कुछ लोगों का वर्चस्व बना रहे ताकि उनके वेतन में कमी न आए। वे चाहती हैं कि मसाला फ़ेडरेशन में उत्पादक/पैकर के काम में नई सदस्यों को शामिल न किया जाए। हालांकि फ़ेडरेशन की नई प्रबंध समिति और अध्यक्ष का चुनाव हो चुका है लेकिन विनीता बहन नेतृत्त्वकारी हैसियत और रुतबा छोड़ने को तैयार नहीं हैं। उनका कहना है कि उन्होंने इस काम को आगे बढ़ाने में जितनी जद्दोजहद की है उसे देखते हुए उनकी यह ज़िद जायज़ है।

व्यावहारिक आर्थिक कार्यक्रम का पता लगाने के लिए तैयारी की समय–सीमा का कोई प्रावधान नहीं है। 'आयवर्द्धक गतिविधियों' की परिभाषा में आजीविका सुदृढ़ीकरण गतिविधियों को भी विरले ही शामिल किया जाता है।

एक तरफ तो विनीता बहन हैं जिनका इकाई दर मज़दूरों पर पूरा नियंत्रण है, और दूसरी तरफ सरकार पर फ़ेडरेशन की निर्भरता है। इतने सालों के बाद भी फ़ेडरेशन के खातों और रजिस्टरों को सरकारी कार्यकर्त्ता ही संभालते हैं। इस फ़ेडरेशन की 'सफलता' को ज़िला अधिकारियों से मिलने वाली भारी–भरकम सहायता और संरक्षण का फल माना जा सकता है। अब एक सेचुरेशन पोईंट आ चुका है जिसके कारण सदस्यों की संख्या सीमित रखना ज़रूरी हो गया है। सरकार ने इसके लिए कोई प्रयास नहीं किया है कि मसाला फ़ेडरेशन को मार्केटिंग के अतिरिक्त विकल्प भी उपलब्ध कराए जाएं। इसीलिए सरकारी संरक्षण पर निर्भरता बदस्तूर बनी हुई है। विनीता बहन इस बात को स्वीकार करती हैं कि सप्लाई के ऑर्डर हासिल करने में सरकारी सहायता का महत्त्व होता है। उनका भी मानना है कि अगर खुले बाज़ार के ढंग से काम करना पड़ता तो फ़ेडरेशन टिक नहीं सकती थी क्योंकि ओवरहेड लागतें बहुत ज़्यादा हैं।

ये सारी बातें एक सघन और लगातार चलने वाली शैक्षणिक प्रक्रिया के अभाव को स्पष्ट कर देती हैं। ऐसी प्रक्रिया के सहारे ही और ज़्यादा महिलाएं फ़ेडरेशन की दृष्टि और कामों को समझ सकती थीं और उद्यम के संयुक्त स्वामियों के रूप में निर्णयकारी भूमिकाएं निभा सकती थीं। सरकार एक आदर्श फ़ेडरेशन की स्थापना करना चाहती थी इसलिए इस फ़ेडरेशन को मिल रहा सरकारी संरक्षण इसी बात का मुआवज़ा है। प्रबंधकीय समिति में आयी नयी सदस्याओं को उत्पादक/सदस्य शिक्षा कार्यक्रम के

ज़रिए व्यवस्थित शैक्षणिक इनपुट उपलब्ध कराने से न केवल फ़ेडरेशन की पारदर्शिता और उत्तरदायित्त्व में इज़ाफा होता बल्कि औरतों को फ़ेडरेशन को व्यावहारिक ढंग से चलाने और उसकी स्वायत्तता बनाए रखने में भी मदद मिलती।

लोकतांत्रीकरण करने, अन्य महिलाओं को जोड़ने और उनकी क्षमताएं विकसित करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया है। अगर ऐसा होता तो महिलाएं फ़ेडरेशन को स्वायत्त स्तर पर चला सकती थीं। विनीता बहन जब भी माल खरीदने बाहर जाती हैं, डी.आर.डी.ओ. कार्यालय का कोई अधिकारी या ताल्लुकदार उनके साथ होता है। उनके साथ औरत कोई नहीं जाती। उनके अलावा और किसी को कोई इनपुट नहीं मिलते। सरकार विनीता बहन को संरक्षण देकर संतुष्ट है जबकि वह किसी के प्रति जवाबदेह नहीं है। विनीता बहन इस बात का नमूना हैं कि किस तरह स्वयं सहायता समूहों से जुड़ी औरतों को आर्थिक गतिविधियों में शामिल तो किया जा सकता है लेकिन उनका आर्थिक सशक्तीकरण नहीं किया जा सकता।

नियोजन में हिस्सेदारी का अभाव

हमारे अध्ययन में वेलुगू उन कुछ उदाहरणों में था जहां कृषि या लघु वन उपज से जुड़ी मौजूदा आर्थिक गतिविधियों में मूल्य संवर्धन के ज़रिए आजीविका सुदृढ़ीकरण के प्रयास किए गए हैं। लेकिन वहां भी इन प्रयासों को लागू करने के तरीके में समस्याएं दिखायी दीं। मूंगफली की खेती से संबंधित कार्यक्रम में मुनाफा बढ़ाने के लिए वेलुगू कार्यक्रम के तहत एक योजना तैयार की गयी थी। ग्राम संगठन (गांव के स्तर पर स्वयं सहायता समूहों की फ़ेडरेशन) के ज़रिए स्थानीय समुदाय भी मांग व वितरण के आकलन और पेशगी की वापसी का हिसाब लगाने की प्रक्रिया में

औरतों को विभिन्न संभावनाओं में से चुनने की क्षमता प्रदान किए बिना उनसे ये पूछना आवश्यकता आधारित नियोजन का मखौल है कि वे किस तरह का उद्यम चलाना चाहती हैं। सिखने के इनपुट्स की अनुपस्थिति में औरतें अपने मौजूदा हालात के आधार पर कोई भी चुनाव कर बैठती हैं।

सक्रिय था। लेकिन इस कार्यक्रम की तैयारी के चरण में खरीद संबंधी सौदेबाज़ी और मूल्य श्रृंखला विश्लेषण के अन्य आयामों के बारे में फ़ेडरेशन नेताओं को भी जानकारी नहीं दी गयी थी इसलिए इन प्रक्रियाओं से उन्हें सीखने का कोई मौका नहीं मिला। गांव से निकले प्रस्तावों पर मंडल स्तरीय फ़ेडरेशन––मंडल सामाख्या––में फ़ैसला लिया गया। हालांकि फ़ेडरेशन की सदस्याएं इस बैठक में मौजूद थीं लेकिन व्यावहारिकता और ज़रूरतों से संबंधित फ़ैसले परियोजना कार्यकर्त्ताओं द्वारा ही लिए गए। महिला नेताओं को बहुत ज़्यादा ज्ञान नहीं था। मसलन, उन्हें प्रति एकड़ बीज की मात्राा या बीज की कीमत वगैरह के बारे में जानकारी नहीं थी। उन्होंने बताया कि परियोजना कर्मचारियों के पास ही इस तरह की जानकारियां थीं इसलिए उन्होंने ही ये सारे फैसले लिए थे। यह प्रस्ताव पारित हो जाने के बाद मूंगफली की खरीद और वितरण के लिए एक कमेटी बना दी गयी। एक बार फिर वही हुआ। हालांकि फ़ेडरेशन की नेता समिति में उपस्थित थी लेकिन खरीदारी, वितरण और बही–खाते संभालने का काम उनके पतियों और समुदाय स्तरीय कार्यकर्त्ताओं ने ही संभाला हुआ था। पढ़ने और लिखने की क्षमता के बावजूद इन औरतों

ने इस प्रक्रिया पर नज़र नहीं रखी। बल्कि हमारी चर्चा के दौरान फ़ेडरेशन की दो असाक्षर और प्रौढ़ सदस्याओं ने यह पूछने के लिए हम पर ज़ोर डाला कि इस प्रक्रिया में किसने क्या काम किया था। उनमें से एक सुषमा थी जो कमेटी की सदस्य है और जिसने इस गतिविधि में काफ़ी दिलचस्पी दिखायी थी। उसे इस बात पर काफ़ी दुख था कि फ़ेडरेशन की पढ़ी–लिखी पदाधिकारियों ने पर्याप्त पहल नहीं की।

वेलुगू में विभिन्न स्तरों पर काम करने वाले कार्यकर्त्ताओं का दावा है कि कार्यक्रम के हस्तक्षेप मांग पर आधारित हैं और समुदाय द्वारा निर्धारित व नियोजित प्रस्तावों के अनुसार हैं। लेकिन हमने पाया कि कार्यक्रमों के बारे में फ़ैसला ज़्यादातर ज़िला और ब्लॉक स्तरों पर लिया जाता है जिस पर बाद में समुदाय के साथ बैठक में सहमति की मोहर लगवा ली जाती है। इस खंड में अन्य स्थानों पर दिए गए बहुत सारे उदाहरणों से पता चलता है कि परामर्श प्रक्रिया और क्षमता निर्माण के अवसरों के अभाव से क्या परिणाम पैदा हो सकते हैं। इनमें यह बात भी शामिल है कि एस.एच.जी. सदस्याओं को विभिन्न कार्यक्रमों के बारे में जानकारी नहीं है (जैसे पाखाना निर्माण के ठेके से संबंधित खाते, चावल ऋण योजना के प्रावधान, आदि) और उनके पास योजना बनाने के प्रभावी अवसर नहीं हैं (मसलन, रिक्शों की खरीद से पहले उनके रख–रखाव से जुड़े मसलों पर चर्चा नहीं की गयी थी)।

योजना और क्रियान्वयन की योग्यता पैदा करने के लिए क्षमता निर्माण के अवसरों की कमी का एक परिणाम यह होता है कि प्रोत्साहक एजेंसी पर और कभी–कभी परिवार के पुरुषों पर भारी निर्भरता बन जाती है। हालांकि औरतों ने अपने पतियों और परियोजना कार्यकर्त्ताओं पर निर्भरता को स्वीकार किया लेकिन उन्हें इस तरह की निर्भरता में कोई खोट नज़र नहीं आता था। फ़ेडरेशन की अध्यक्ष का कहना था कि "वैसे भी मर्द ही बताते हैं कि कितनी ज़रूरत है। उन्हें ही पता होता है कि बाज़ार में क्या भाव चल रहा है? हम कर्ज़ा ला देती हैं। इस तरह सब आसान हो जाता है।" औरतों ने कहा कि अगर इन खरीदारियों के लिए एस.एच.जी. से कर्ज़ा न लिया जाए तो किसी और स्रोत से कर्ज़ा लेना पड़ेगा जो ठीक नहीं होगा। अभी भी औरतों को मानो यही लगता है कि उनकी तरफ से कर्ज़े का इंतज़ाम हो जाना ही काफ़ी है, उन्हें कार्यक्रम में और किसी स्तर पर हिस्सा लेने की ज़रूरत नहीं है। ऐसा कोई अवसर या प्रक्रिया नहीं है जिसके ज़रिए वे इस बारे में पुनर्विचार कर सकें।

अपर्याप्त सहायता

संपदा निर्माण के ज़रिए स्वरोज़गार पर आग्रह के बावजूद एस.जी.एस.वाई. योजना इस मान्यता पर आधारित है कि आर्थिक गतिविधियां स्वतःस्फूर्त रूप से आय प्रदान करने लगेंगी। फलस्वरूप इस योजना में समुदाय की सदस्याओं के क्षमता निर्माण के लिए ऐसा प्रयास नहीं किया जाता जिसके दम पर वे स्वयं कोई उद्यम चला पाएं। एस.जी.एस.वाई. दिशानिर्देशों में प्रावधान किया गया है कि प्रत्येक ब्लॉक के लिए पांच गतिविधियों का चुनाव किया जाएगा (ताकि इन्हीं गतिविधियों के लिए सहायक सेवाओं और प्रशिक्षण आदि का व्यवस्थित ढंग से इस्तेमाल किया जा सके)। इन गतिविधियों के लिए फॉरवर्ड और बैकवर्ड लिंकेजेज़ मुहैया कराने और इन उद्यमों को लाभदायक बनाने के लिए क्षमता/निपुणता विकास अवसर उपलब्ध कराने की ज़िम्मेदारी ब्लॉक कार्यालय को सौंपी गयी है। जिन गांवों का अध्ययन किया गया उनमें कार्यक्रम से जुड़े कार्यकर्त्ता अपने ज़िले और

ब्लॉक के लिए चुनी गयी पांच गतिविधियों के बारे में भी नहीं जानते थे। यही स्थिति एस.एच.जी. सदस्याओं की थी। जब हम दौरे पर गए तो ब्लॉक (साबरकांठा) स्तर पर एक प्रशिक्षण कार्यक्रम चल रहा था जिसमें महिलाएं विभिन्न आयवर्धक विकल्पों के बारे में चर्चा कर रही थीं। हमने देखा कि ब्लॉक स्तरीय कार्यकर्त्ताओं को इस बारे में ख़ास समझ नहीं थी कि इन गतिविधियों को व्यावहारिक ढंग से चलाने के लिए किस तरह की सहायता ज़रूरी है। ग्राम सेवक को भी इस बात का कोई अंदाज़ा नहीं था।

ड्वाक्रा कार्यक्रम में महिलाएं व्यक्तिगत स्तर पर पंखें बनाने–बेचने और सब्ज़ियों की फेरी लगाने जैसे काम करती हैं। लेकिन कार्यक्रम के तहत रिवॉल्विंग फंड मुहैया कराने के अलावा उन्हें न तो मार्केटिंग के स्तर पर कोई मदद दी गयी थी और न ही इन आर्थिक गतिविधियों के सुदृढ़ीकरण में सहायता दी जा रही थी। इन संभावनाओं की कभी पड़ताल नहीं की गयी। मिसाल के तौर पर, वहां एक ज़िला उद्योग केंद्र है जहां लोगों को चीनी, कागज़, तेलों के दोहन, डिस्टिलरी व रसायन, नालीदार डिब्बे, अंडे की ट्रे और आधुनिक छत बनाने जैसे लघु उद्योगों के लिए मदद दी जाती है। इस केंद्र के साथ कोई संपर्क मुहैया नहीं कराया गया।

वेलुगू समूह में जिन महिलाओं ने कर्ज़ लेकर मवेशी खरीदे थे वे अब इस बात के लिए चिंतित हैं कि सूखे के मौसम में उनके लिए चारे और पानी का इंतज़ाम कहां से करेंगी। उन्हें समझ में नहीं आ रहा है कि जब उन्हें यहां से कहीं और जाना होगा तो वे

गरीब औरतों के हक में

आनंदी का रुझान गरीब औरतों के हक में दिखायी देता है। यह संस्था औरतों के मुद्दों को सिर्फ जेंडर का मुद्दा नहीं मानती। उसके लिए यह वर्ग, जाति और जेंडर, सबसे जुड़ा मुद्दा होता है : "हम सर्वाधिक निर्धन और ऐसी औरतों के हित में काम करते हैं जिनकी हैसियत सामाजिक–आर्थिक स्तर पर बहुत खराब है। अगर बरिया (सवर्ण जाति) समुदाय की किसी औरत के साथ हिंसा का मामला आता है तो हम उसकी मदद करने से इनकार नहीं करेंगे लेकिन जहां तक विकास संबंधी प्रक्रियाओं के लिए गोलबंदी की बात है, वह महिला हमारी प्राथमिकता में नहीं होगी। हमें सारे मुद्दों को एक ही छाते में समेट लेने की सोच से गंभीर परेशानी है। आपको किसी खास समूह के मुद्दों पर ध्यान देना पड़ता है। हर समूह को बाकी समूहों के साथ मिला देने से बात नहीं बनती।"

आनंदी द्वारा शुरू की गयी सीखने की प्रक्रिया के फलस्वरूप गरीबी के कारणों, प्रवास के निहतार्थों, खाद्य सुरक्षा की समस्या और ठेका मज़दूरी में शोषण के बारे में औरतें गहरे तौर पर जागरूक हो चुकी हैं। अब गांव और क्लस्टर के स्तर पर होने वाली एस.एच.जी. बैठकों में ये मुद्दे नियमित रूप से उठते हैं। पिछले 10 सालों में फ़ेडरेशन (देवगढ़ महिला संगठन–डी.एम.एस.) ने गरीबी और शोषण के मुद्दों का विश्लेषण करने के लिए एक मुकम्मल फ्रेमवर्क विकसित कर लिया है। हमारे अध्ययन के समय 'डायमंड मैथड' से संबंधित प्रशिक्षण गतिविधियों के सहारे इस फ्रेमवर्क को और परिष्कृत किया जा रहा था।

इन जानवरों को कैसे संभालेंगी। एस.एच.जी. की एक सदस्या ने हमें बताया कि पहले के सालों में वह कम से कम सूखे के समय कहीं दूसरी जगह जा तो सकती थी, अब तो यह भी संभव नहीं रहा। उसने कहा कि यह गाय "मेरे गले में फांसी का फंदा बन गयी है।" वह गाय के लिए न तो चारे का इंतज़ाम कर सकती है और न ही उसे लेकर या छोड़कर किसी दूसरे इलाके में जा सकती है। इन महिलाओं ने जो संपदाएं जुटा ली हैं उन्हें कायम रखने के लिए एक समग्र सहायता पैकेज का अभाव साफ़ दिखायी देता है। न ही औरतों को इस बात के लिए क्षमता विकास के अवसर उपलब्ध कराए जा रहे हैं कि टिकाऊपन के स्तर पर वे समयपूर्व कैसे तैयारी करें। मवेशी उपलब्ध करा देना सिर्फ़ आधा काम है। कर्ज़ा जारी होते ही यह मान लिया जाता है कि काम पूरा हो गया। इसके बाद औरतें खुद जानें कि इस कर्ज़े का उन्होंने जो इस्तेमाल किया है उससे उन्हें फायदा होगा या नहीं।

मझोले उद्योगों के लिए अपर्याप्त ऋण और सामूहिक उद्यमों का अभाव

सरकारी योजनाओं, एस.एच.जी. आदि इन सभी स्रोतों से मिलने वाले ऋण की राशि इतनी मामूली होती है कि उसके आधार पर पर्याप्त मात्रा में सम्पदाओं का इंतज़ाम नहीं किया जा सकता। ऋण की अवधि भी इतनी छोटी होती है (कर्ज़ा जारी करते ही उसकी किस्तें लौटाने का सिलसिला शुरू हो जाता है) कि अगर सम्पदाएं जुटा ली जाएं तो भी उनके फायदे मिलने से पहले ही कर्ज़ा लौटाने का दबाव पैदा हो जाता है। ऐसी सूरत में ऋण के माध्यम से हासिल होने वाले संसाधनों का पूंजी व्यय की बजाय केवल चालू लागतों के लिए ही इस्तेमाल किया जा सकता है। इस प्रकार गरीब औरतों के लिए संसाधनों के स्वामित्व का अभाव और ठोस रूप ग्रहण कर लेता है। इसी से जुड़ी एक समस्या यह थी कि जिन कार्यक्रमों का अध्ययन किया गया उनमें से किसी में भी प्रोत्साहक एजेंसियों ने ऐसे उद्यमों को बढ़ावा नहीं दिया जिनमें सामूहिक उत्पादन या सामूहिक प्रबंधन हो सकता था।

ड्वाक्रा कार्यक्रम के मामले में पश्चिमी गोदावरी ज़िले में मंडल स्तर पर काम करने वाले एक वरिष्ठ अफसर ने स्वीकार किया कि सामूहिक आर्थिक गतिविधियां बहुत कम समूहों में ही शुरू की गयी हैं। इस इलाके में फीते बनाने का व्यवसाय बहुत बड़े पैमाने पर चल रहा है। यह काम भी इकाई दर के आधार पर ही हाथ में लिया गया है। ऋण का सबसे आम इस्तेमाल गाय–भैंस खरीदने के लिए हुआ है। इस गतिविधि में व्यक्तिगत लाभ के लिए एक सम्पत्ति को सामूहिक रूप से खरीदना पड़ता है। यह सामूहिकता का बेहद संकुचित उदाहरण है। इसके लिए समूह की ज़रूरत एक सम्पत्ति तक पहुंच के लिए ही है बशर्ते समूह के अन्य सदस्य जवाबदेही वहन करने को तैयार हों।

आनंदी में आर्थिक सशक्तीकरण और आजीविका संबंधी गतिविधियों के लिए कई जगह सामूहिक प्रयास किए जा रहे हैं। इसी क्रम में वहां अनाज बैंक बनाए गए हैं। लेकिन ऐसे सामूहिक सूक्ष्म उद्यम नहीं शुरू किए गए हैं जिनमें कोई उत्पादन बनता हो, सेवाएं मुहैया करायी जाती हों या मूल्य संवर्धन किया जाता हो। आनंदी में एक भाव यह था कि इस तरह के प्रयोगों को क्रियान्वित करना मुश्किल होता है। कार्यक्रम से जुड़े आला अधिकारियों ने यह भी कहा कि सामूहिक उद्यमों को एक समुच्चय के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए बल्कि इस बात की जांच की जानी चाहिए कि

कौन–से तत्त्वों को सामूहिक रूप से किया जा सकता है और कौन–से तत्त्व व्यक्तिगत स्तर के हैं।

ड्वाक्रा कार्यक्रम में सामूहिक आर्थिक गतिविधियों (यानि सामूहिक एप्रोच) के महत्त्व पर स्पष्ट ज़ोर दिया गया है जबकि एस.जी.एस.वाई. और स्वशक्ति में सामूहिक उद्यम की संभावना को अयथार्थवादी माना गया है। इनरेका (स्वशक्ति को लागू करने वाली स्वयंसेवी संस्था) के ज़िला प्रबंधक और स्थानीय कार्यकर्त्ता का कहना था कि सामूहिक उद्यम चलाना "धारा के विरुद्ध बहने" वाली बात होगी। आज के हालात में सारे काम घरखाता आधार पर ही चलाए जा रहे हैं।

कहने का मतलब यह नहीं है कि सामूहिक उद्यमों को लागू करना कोई आसान काम होता है। लेकिन हम इतना ज़रूर कहना चाहते हैं कि प्रोत्साहक एजेंसियां इस क्षेत्र में प्रयोग करने और नए विचारों को आजमाने के लिए पर्याप्त कोशिश नहीं कर रही हैं। यह सोच न केवल कार्यक्रम अधिकारियों के जहन में बनी हुई है बल्कि समूह की नेता और सदस्याओं को भी यही लगता है कि सामूहिक आजीविका आधारित गतिविधियां संभव नहीं हैं। इसके लिए तैयारी के चरण में ही औरतों को इस बात का अहसास कराना होगा कि उद्यम चलाने के सामूहिक तरीके बेहतर भी हैं और संभव भी। यह बात सामूहिक आर्थिक प्रयासों के बारे में संभावित अवसरों पर औरतों की प्रतिक्रियाओं में भी दिखायी दी। क्योंकि सामूहिक उद्यमों के लिए ज़्यादा पैसे की ज़रूरत होती है इसलिए उनके टिकाउपन के बारे में जो आशंकाएं हैं उनको भी संबोधित करना होगा क्योंकि औरतें प्रायः यही मानकर चलती हैं कि इस तरह की परियोजनाएं अल्पकालिक होती हैं।

ड्वाक्रा समूह में स्थानीय कार्यकर्त्ता ने औरतों के सामने यह सुझाव रखा था कि उन्हें सामूहिक आयवर्धक गतिविधियों को अपनाना चाहिए लेकिन औरतों ने उसमें दिलचस्पी नहीं दिखायी। जैसा कि समूह की एक सदस्या ने बताया, "हम खेतों में जाकर काम करते हैं। हम सामूहिक रूप से काम नहीं कर सकते।" उसके कहने का आश्य यही था कि आर्थिक उद्यम व्यक्तिगत और पारिवारिक आधार पर ही चलते रहे हैं। उनके लिए सामूहिक रूप से काम करना मुश्किल रहेगा। नेता का मानना था कि सदस्याएं "किसी की सुनती ही नहीं हैं इसलिए सामूहिक कारोबार मुमकिन नहीं है।" विश्वास निर्माण के लिए

ऋण ही काफ़ी नहीं

दुनिया भर में आजीविका प्रोत्साहन की दिशा में चल रहे प्रयासों से एक सीख यह निकली है कि छोटे और सूक्ष्म उद्यमों को आगे बढ़ाने के लिए ऋण भले ही अनिवार्य हो, लेकिन केवल इसी के सहारे काम नहीं चल सकता। इस कार्यक्रम को पूरा करने के लिए कई तरह के अन्य अवसरों और सेवाओं की भी ज़रूरत होती है। इसके लिए आजीविका संभावनाओं की व्यवस्थित रूप से शिनाख्त करना, संभावित ग्रामीण उत्पादकों को इस दिशा में बढ़ने के लिए प्रेरित और प्रशिक्षित करना, कच्चे माल, इनपुट्स, उपकरणों, बुनियादी ढांचे और तकनीक की आपूर्ति सुनिश्चित करना, बाज़ार के साथ संबंध स्थापित करना और जहां ज़रूरत हो वहां नियमों और नीतियों में बदलाव करना ज़रूरी होता है हालांकि हर स्थिति में इन सारी चीज़ों की ज़रूरत प्रायः नहीं होती।

सस्टेनेबल रूरल लाइवलीहुडः
द चैलेंज आफ़ दि डिकेड, विजय महाजन, बेसिक्स (www.basixindia.com/sustainable_rural_livelihoods.asp) से उद्धृत।

या औरतों को सामूहिक आजीविका गतिविधियों की व्यावहारिकता के बारे में राजी करने के लिए खास कोशिशें नहीं की गयी हैं। यह उस व्यापक परिघटना का हिस्सा है जिसमें आर्थिक एवं सामाजिक कमज़ोरियों को सामूहिक रूप से संबोधित करने की संभावनाओं पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है।

सामूहिक उद्यमों से संबंधित चर्चा आमतौर पर सामूहिक उत्पादन या सेवा डिलीवरी पर केंद्रित रहती है। अगर हम इस चर्चा को प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधक तक विस्तार प्रदान कर दें तो भी हम पाएंगे कि इस तरह के प्रयासों और गरीबी उन्मूलन के लिए की गयी कोशिशों के बीच सम्पर्कों का अभाव बना हुआ है। जलागम प्रबंधन और परती भूमि विकास कार्यक्रम सामूहिक लाभ के लिए सामूहिक प्रयास के सिद्धांत पर आधारित होते हैं लेकिन वेलुगू और एस.जी.एस.वाई. से जुड़े कार्यकर्त्ता उन्हें पूरे समूह को प्रभावित करने वाला मानते हैं इसलिए उनकी नज़र में वे केवल गरीबों के लिए लाभकारी नहीं हैं। यदि इस तरह के कार्यक्रम और एस.एच.जी. कार्यक्रम एक ही विभाग के माध्यम से लागू किए जा रहे होते हैं तो भी समता और वितरणात्मक मुद्दों को कम महत्त्वपूर्ण और संसाधन संरक्षण व पुनरुत्पादन को ज़्यादा महत्त्वपूर्ण माना जाता है। गरीबी उन्मूलन प्रयास कुछ खास संपदाओं के निर्माण के लिए गरीबों पर केंद्रित रहे हैं। वे मुख्यधारा के कार्यक्रमों का हिस्सा नहीं थे। इससे भी यही विश्वास पुख्ता होता है कि सामुदायिक प्रयासों और उससे मिलने वाले लाभों में हिस्सेदारी की बजाय अलग–अलग परिवारों को मुट्ठी भर सहायता देते रहना ही ज़्यादा बेहतर है।

जिन स्वयं सहायता समूहों का अध्ययन किया गया उनमें जारी किए गए सभी ऋण समूह की बजाय व्यक्तियों को दिए गए थे। इसके पीछे यही सोच थी कि समूहों के मुकाबले व्यक्तियों से कर्ज़ा वसूल करना आसान होता है। सामूहिक उद्यमों का अभाव अधिकांश कार्यक्रमों में समूह को मिलने वाले महत्त्व की कमी का प्रतीक है। ज़्यादातर मामलों में समूह का महत्त्व इसलिए होता है कि पैसा बचाने और ऋण वापसी में समूह की मौजूदगी फायदा पहुंचाती है। आनंदी समूह से जुड़ी औरतें दूसरे छोर पर खड़ी दिखायी देती हैं

सामूहिक प्रयास की संभावनाएं

उन्डाराजवरम मंडल को आंध्र प्रदेश में अंडों की खान कहा जाता है। पुराने सालों में मुर्गी फ़ार्मों में 'डीप लिटर' पद्धति का इस्तेमाल किया जाता था जिसमें एक फ़ार्म के लिए 1,000 मुर्गियां पर्याप्त मानी जाती थीं। इस स्थिति में छोटे और बड़े, दोनों तरह के मुर्गी फ़ार्म चल सकते थे। अब मुर्गी फ़ार्मो में मुर्गियों के लिए पिंजरों का इस्तेमाल किया जाता है। अब एक मुर्गी फ़ार्म को मुनाफे में चलाने के लिए 5,000–10,000 मुर्गियां ज़रूरी होती हैं। इस पर 5–8 लाख रुपए का खर्च आता है। लेकिन ड्वाक्रा कार्यक्रम में इस विकल्प को सामूहिक उद्यम के रूप में नहीं चुना गया क्योंकि अधिकारियों का मानना था कि औरतें मिलकर मुर्गी फ़ार्म नहीं चला सकतीं। बैंक भी गरीबों को अधिकतम 2 लाख रुपए तक ही कर्ज़ा देते हैं जबकि इस व्यवसाय के लिए कहीं ज़्यादा पैसे और कई तरह की सहायता आवश्यक थी। यह ऐसे बहुत सारे उदाहरणों में से है जहां सामूहिक आर्थिक प्रयास की संभावना को सिर्फ इसलिए नकार दिया गया क्योंकि उसके लिए बहुत ज़्यादा ऋण चाहिए होगा और उसके लिए निरंतर सहायता नहीं मिल पाएगी।

: "हमें यह सुनिश्चित करना है कि पूरे समूह को सुरक्षा मिले ताकि सभी फायदे में रहें। हममें से कोई भी सिर्फ अपने निजी फायदे को ध्यान में रखकर बहुत समय तक नहीं चल सकती।"

संस्थानों के साथ सम्पर्कः प्रोत्साहक एजेंसियां, सरकार एवं अन्य

इस अध्याय के आखिरी भाग में इस बात पर ध्यान दिया गया है कि स्थानीय या राज्य सरकार के विभागों व कार्यकर्त्ताओं तथा प्रोत्साहक एजेंसियों के कार्यकर्त्ताओं व आला पदाधिकरियों के साथ औरतों के संवाद का स्वरूप कैसा रहता है। एस.एच.जी. की सदस्यता से इन परिधियों के साथ संवाद कायम करने की औरतों की क्षमता किस प्रकार प्रभावित हुई है, इस बात को मापने पर यह पता लगाया जा सकता है कि जिनके पास ज़्यादा सत्ता है, जो औरतों के लिए कठिन दिखायी पड़ने वाले सार्वजनिक संस्थानों में बैठते हैं, उनसे संवाद स्थापित करने में औरतों की क्षमता बढ़ी है या नहीं। सबसे पहले हम प्रोत्साहक एजेंसियों के साथ महिलाओं के संबंधों पर ध्यान देंगे। इसके लिए हम समूह के आकार और स्वरूप के बारे में फ़ैसला लेने के दौरान उनकी हिस्सेदारी और समूह के कामों को प्रभावित करने की उनकी क्षमता का विश्लेषण करेंगे। हम इस बात को भी देखेंगे कि कौन–सा समूह अपनी प्रोत्साहक एजेंसी पर किस हद तक आश्रित है और इस निर्भरता को कौन–से कारक प्रभावित करते हैं।

एस.एच.जी. की मांगों के प्रति संवेदनशीलता का अभाव

सरकार स्वयं सहायता समूहों का उपयोगितावादी ढंग से इस्तेमाल करती है। इसके बावजूद सरकार औरतों की इस 'हिस्सेदारी' को सशक्तीकरण की कसौटी बताती है। इस सशक्तीकरण का एक साक्ष्य यह है कि अब एस.एच.जी. सदस्याएं सरकारी सेवाओं तथा अन्य लाभों तक पहुंच के बारे में अपनी शिकायतें सरकारी अफ़सरों तक ले जाने लगी हैं। मगर निरंतर सर्वेक्षण के निष्कर्षों से पता चलता है (जिसका आगे ज़िक्र किया गया है) कि ज़्यादातर समूहों की सदस्याएं न तो ग्राम सभा की बैठकों में हिस्सा लेती हैं और न ही पंचायतों के सामने किसी तरह की कोई मांग पेश करती हैं। यह सच है कि जिस हद तक इन प्रयासों को लागू किया जा रहा है उसी हद तक औरतें सार्वजनिक दायरे में दाखिल भी हो रही हैं और उनमें इस बात की जागरूकता बढ़ रही है कि वे अपने हकों के लिए आवाज़ उठा सकती हैं। फिर भी इस बात को रेखांकित करना ज़रूरी है कि गुणात्मक अध्ययन के दौरान अभिशासन के संदर्भ में महिलाओं द्वारा बताए गए ऐसे ज़्यादातर मामलों में उन्हें अपनी मांगें मनवाने में कामयाबी नहीं मिली थी। इसका मतलब है कि औरतों ने सरकार के दरवाजे पर दस्तक देना तो 'सीख' लिया है लेकिन समस्या यह है कि वे बस 'दस्तक ही देती चली जा रही हैं'। यहां सवाल यह उठता है कि ऐसे सूरत में सरकार की क्या ज़िम्मेदारी है? औरतों के इस सशक्तीकरण के फायदे तो सरकार उठा रही है लेकिन क्या अब उसे औरतों की मांगों के प्रति जवाबदेही का रवैया नहीं अपनाना चाहिए?

इनमें से ज़्यादातर मामलों में औरतें अपनी परेशानियों के कारण अपने ही बूते पर ये मांगें उठाती रही हैं। इसके लिए उन्हें ऐसी कोई सहायता नहीं मिली जिसके सहारे वे सरकार को जवाबदेह ठहरा सकें। कई बार तो इस तरह की मांगें उठाने के लिए समुदाय के पुरुष महिला समूहों की हिस्सेदारी का अपने निहित स्वार्थों के लिए भी इस्तेमाल करते हैं। लेकिन कुछ अन्य घटनाओं में ये महिलाएं इस अहसास

को भी प्रतिबिम्बित कर रही थीं कि अब उनके पास सरकार के सामने अपनी मांगें पेश करने का मौका और ताकत आ गयी है।

ड्वाक्रा से संबंधित एस.एच.जी. को देखने पर पता चलता है कि अभिशासन संरचना के साथ औरतों के जुड़ाव का स्वरूप कैसा रहा है। इस समूह की दो सदस्याओं के पास राशन कार्ड नहीं है। वे सात साल से राशन कार्ड के लिए ज़ोर लगा रही हैं लेकिन उन्हें कार्ड नहीं मिला। एक सदस्या ने बताया, "मंडल के अफ़सर हमें नसबन्दी का आपरेशन करवाने के लिए तो कह जाते हैं लेकिन हमारी इस एक मांग पर कभी कुछ नहीं कहते। एम.आर.ओ., एम.डी.ओ., विधायक, सब आ चुके हैं।" जब इस कार्यक्रम के लिए स्थानीय स्तर पर तैनात कार्यकर्त्ता स्फूर्ति सेविका के बारे में पूछा गया तो उन्होंने बताया कि वह "बहुत व्यस्त" है। "अगर हम जन्मभूमि (समस्याओं की सुनवाई के लिए गांव में सरकारी अफ़सरों के साथ होने वाली नियमित बैठक) में अपनी समस्याओं के बारे में बात करते हैं तो वे बस हमारी बात सुनकर चले जाते हैं। उस पर ध्यान कोई नहीं देता। हो सकता है आपकी बात वे सुन लें।" जब उनकी मांगें पूरी नहीं हुईं तो महिलाएं स्थिति का पता लगाने मंडल विकास अधिकारी के दफ्तर भी चली गयीं लेकिन उनके पास भी इस समस्या के समाधान की कोई रणनीति नहीं थी। वे जो मांगें उठा रही थीं वे 'व्यक्तिगत' किस्म की थीं (हालांकि राशन कार्ड जैसी समस्याएं सामूहिक दायरे में आती हैं)। ऐसी कोई मांग नहीं उठायी गयी जो पूरे समुदाय को लाभ पहुंचाती हो। इसके अलावा, औरतों ने बताया कि उन्हें परिवार नियोजन ऑपरेशन के अलावा नेत्र शिविरों में जाने के लिए भी प्रोत्साहित किया गया है।

राजनीतिक जागरूकता और निपुणता विकास महिला सशक्तीकरण के लिए आनंदी की रणनीति का

औरतों ने अभिशासन के दरवाज़ों पर दस्तक देना 'सीख' लिया है। समस्या यह है कि औरतें बस 'दस्तक दिए जा रही हैं'। सवाल यह उठता है कि ऐसी सूरत में सरकार की क्या ज़िम्मेदारी बनती है?

एक हिस्सा रहा है। राज्य विधान सभा चुनावों से पहले महिलाओं को आदिवासी महिलाओं के राजनीतिक हितों के लिए आवाज़ उठाने के वास्ते प्रशिक्षित किया गया था। इस बारे में विभिन्न स्तरों पर चर्चाएं आयोजित की गयी थीं कि विभिन्न पार्टियों के उम्मीदवारों की इन मुद्दों के स्तर पर किस तरह जांच की जाए। महिलाओं ने उम्मीदवारों के मुद्दों को समझने के लिए उन्हें चर्चा के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने उम्मीदवारों से महिला हिंसा, कार्यस्थल पर शोषण और खाद्य सुरक्षा जैसे सवालों पर उनकी राय मांगी। महिलाओं ने बताया कि उन्होंने उम्मीदवारों को समर्थन का आश्वासन तभी दिया जब उन्होंने यह समझ लिया कि किस उम्मीदवार की दिलचस्पी किन मुद्दों में है और वह महिलाओं के हितों का प्रतिनिधित्व कर सकता है या नहीं। उम्मीदवारों की प्रतिक्रियाओं पर आपस में चर्चा की गई। किसी खास उम्मीदवार को वोट देने का फ़ैसला लेने से पहले पार्टियों के घोषणापत्रों का भी विश्लेषण किया गया। महिलाओं ने बताया कि स्थानीय चुनावों के लिए उन्होंने अपनी उम्मीदवार भी मैदान में उतारी थीं। चुनाव लड़ने वाली महिलाओं को या तो उन्हीं की फ़ेडरेशन में या नेतृत्त्वकारी पदों पर चुन लिया गया या उन्हें क्लस्टर कमेटी अथवा फ़ेडरेशन कमेटी में शामिल किया गया।

दलगत राजनीति से जुड़े मुद्दों के अलावा औरतों में अपने अधिकारों के लिए जागरूकता पैदा करना,

औरतों को सरकार की जवाबदेही सुनिश्चित करने में मदद देना और अभिशासन की सही–गलत प्रक्रियाओं के बीच फर्क करने की योग्यता देना भी संगठन के प्रशिक्षण कार्यक्रम का हिस्सा रहा है।

स्वयं सहायता समूह और पंचायतें

अध्ययन में पाया गया कि समर्थन के लिए उम्मीदवारों के बारे में फ़ैसला लेने की प्रक्रिया में स्वयं सहायता समूहों की भी हिस्सेदारी थी। समस्या तब खड़ी होती थी जब एस.एच.जी. सदस्याएं निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों को जवाबदेही के लिए बाध्य नहीं कर पाती थीं। समूह की सदस्याओं को यह समझने में भी परेशानी थी कि निर्वाचित महिलाएं जिस पितृसत्तात्मक पंचायत व्यवस्था में काम करती हैं उसमें निर्वाचित महिलाओं को भी मदद की ज़रूरत होती है। ज़्यादातर निर्वाचित नेताओं ने महिलाओं की तरफ से पेश की गयी समस्याओं को संबोधित नहीं किया। ऐसी सूरत में एस.एच.जी. सदस्याओं को लगता था कि उनके साथ विश्वासघात हुआ है। एक बार फिर यह अध्ययन इस बात को रेखांकित करता है कि महिलाओं को ऐसी शैक्षणिक प्रक्रियाएं नहीं मिल पा रही हैं जिनके ज़रिए वे निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों से उत्तरदायित्व की मांग कर सकें और उन्हें मदद दे सकें। कहने की ज़रूरत नहीं है कि निर्वाचित महिला प्रतिनिधि भी एस.एच.जी. की सदस्य थीं। विडंबना यह है कि पंचायत नेताओं के रूप में प्रभावी ढंग से काम करने के लिए उन्हें भी पर्याप्त इनपुट नहीं मिले थे।

जन्मभूमि और प्रौढ़ शिक्षा

ड्वाक्रा एस.एच.जी. की सदस्याओं को ऐसा कोई शैक्षणिक अवसर या सुगमतावर्धक वातावरण नहीं मिला था जिसके सहारे औरतें समुदाय आधारित ज़रूरतों की शिनाख्त कर सकें या इस बारे में रणनीति बना सकें कि सरकार की जवाबदेही कैसे सुनिश्चित की जाए।

यदि हम सरकारी अधिकारियों के सामने केवल मांग पेश कर देने की बजाय उनके साथ संभावित मोल–भाव की एक परिधि जन्मभूमि कार्यक्रम की पड़ताल करें तो पता चलता है कि उसमें सीखने से संबंधित ऐसे प्रावधान सिरे से नदारद हैं जिनकी औरतों को हमेशा ज़रूरत पड़ती है। ज़िला प्रौढ़ शिक्षा विभाग के सतत् शिक्षा कार्यक्रम द्वारा जन्मभूमि के संबंध में किए गए प्रयासों की जानकारी इस प्रकार है।

जन्मभूमि की बैठक से संबंधित जानकारी सतत् शिक्षा केंद्र (सी.ई.सी.) में चिपका दी जाती है। यही जानकारी पंचायत के बोर्ड पर भी लगी होती है। जन्मभूमि की बैठक में प्रेरक (ग्राम स्तरीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यकर्त्ता) गांव के ऐसे लोगों के नाम या संख्या की जानकारी देता है जो अभी भी असाक्षर हैं। साथ ही वह नवसाक्षरों की संख्या भी बताता है। हमेशा प्रेरक ही यह सवाल खड़ा करता है कि जो असाक्षर हैं वे सी.ई.सी. में क्यों नहीं आते। जन्मभूमि की बैठक लोगों को प्रेरित करने का एक मंच बन जाता है। विडम्बना यह है कि न तो प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों के कर्ताधर्ताओं को और न ही औरतों को इस बारे में कोई जानकारी दी गयी है कि केवल प्रेरक एस.एच.जी. सदस्यों की ओर से जन्मभूमि में मुद्दे उठाने में किस तरह की मदद दे सकता है।

- लगभग 50% समूहों के पंचायतों से संबंध थे। सरकार द्वारा प्रायोजित स्वयं सहायता समूहों में पंचायतों से जुड़े समूहों की संख्या 37% जबकि स्वयंसेवी सस्थाओं द्वारा चलाए जा रहे एस.एच. जी. समूहों में ऐसे समूहों की संख्या 59% थी।
- सरकारी स्वयं सहायता समूहों में से 42% समूहों की कोई सदस्या ग्राम सभा की बैठकों में नहीं जाती थी।

निरंतर सर्वेक्षण के निष्कर्ष इस प्रकार हैं :

- ग्राम सभा की बैठकों में हिस्सेदारी और पंचायत के समक्ष पेश की जाने वाली मांगों, दोनों के लिहाज़ से पंचायतों के साथ स्वयं सहायता समूहों का जुड़ाव बहुत कम है।
- ग्राम सभा की बैठकों में समूह नेताओं की ज़्यादा हिस्सेदारी और पंचायतों के सामने नई–नई मांगें पेश करने से पता चलता है समूह नेताओं के पास सार्वजनिक संस्थानों से जुड़ाव के ज़्यादा मौके होते हैं। इससे उन्हें सीखने के ज़्यादा मौके भी मिलते हैं और सत्ता भी।
- साक्षरता को सत्ता की धुरी के रूप में देखने पर पता चलता है कि पंचायतों के सामने मांग पेश करने वाली ज़्यादातर औरतें साक्षर होती हैं। साक्षर औरतों को पंचायत के निर्वाचित सदस्यों में भी 'अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व' मिला है।

निरंतर सर्वेक्षण

एस.एच.जी. पद्धति का चुनाव

एस.एच.जी. परिघटना के शुरू होने से काफ़ी पहले ही बहुत सारी स्वयंसेवी संस्थाएं गांवों में महिला समूहों का गठन करने लगी थीं। इस अध्ययन के दौरान स्वयंसेवी संस्थाओं से हुई वार्ताओं (परिशिष्ट 2) तथा अन्य अनुसंधानों से पता चलता है कि माइक्रो क्रेडिट की मांगों के फलस्वरूप कई जगह बड़े समूहों को तोड़कर 10–15 महिलाओं वाली छोटी इकाइयों में पुनर्गठित किया गया ताकि उनका आसानी से प्रबंधन किया जा सके। हालांकि अलग–अलग संगठनों में समूह सदस्याओं की संख्या कम ज़्यादा रही है लेकिन औसत सदस्य संख्या 10–15 ही है। ज़्यादातर एस. एच.जी. समूह नाबार्ड द्वारा तय किए गए नियमों के अनुसार 10 से 20 सदस्यों वाले रहे हैं। दलील यह दी जाती है कि कर्ज़ वापसी के लिहाज़ से छोटे समूह आर्थिक दृष्टि से ज़्यादा कुशल होते हैं और उनको संभालना भी आसान होता है। इस अध्ययन से हमें सामाजिक एजेंडा पर फ़ोकस के निहितार्थों को समझने का मौका मिला है। पीस के अनुभव इस बात को समझने के लिहाज़ से काफ़ी महत्त्वपूर्ण हैं कि पद्धति में बदलाव से औरतों पर किस तरह के असर पड़ते हैं और उसके अपेक्षित परिणाम क्या रहते हैं।

स्वयं सहायता समूहों के कार्यकर्त्ताओं और सदस्याओं, दोनों की इस बारे में एक जैसी राय थी कि पीस के तहत बड़े समूहों की जगह छोटे स्वयं सहायता समूहों के गठन से क्या फायदे हुए हैं: "अगर समूह छोटा होता है तो उनके भीतर भय और ज़िम्मेदारी का अहसास होता है और वे पैसा चुका देती हैं। जब समूह बड़ा था तो हम इस बात का हिसाब भी नहीं रख पाते थे कि कितना पैसा वापस लौटा है। अब समूह छोटा है इसलिए हम किसी भी सदस्या को पकड़ सकते हैं।"

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, बड़े समूह जिस तरह की चिंताओं को उठा रहे थे उनमें शराब पीकर मारपीट, दलितों पर अत्याचार और असमान वेतन जैसे मुद्दे शामिल थे। ये ऐसे मुद्दे थे जो वृहत्तर सत्ता सरंचना

को सीधी चुनौती देते हैं। इसके लिए ऐसे तरीके अपनाए जाते थे जिन्हें उग्र या हिंसक माना जा सकता है। संगठन के कर्मचारियों ने बताया कि अब मुद्दों का स्वरूप बदल गया है। अब "पानी, साफ़–सफाई की सुविधा और बिजली" जैसे मुद्दों को उठाया जाता है। जहां तक रणनीति की बात है, "एस.एच.जी. सदस्याएं अपनी समस्याओं को लेकर स्थानीय अधिकारियों के पास जाती हैं। वे योजनाओं और लाभों के बारे में अफ़सरों से जानकारियां भी मांगती हैं। अब ज़्यादा विषय केंद्रित कार्रवाइयां होने लगी हैं।"

आश्चर्यजनक बात यह है कि समीक्षा और रूपरेखा पुनर्निर्धारण की कोशिशों के बावजूद हमारे साक्षात्कारों से पता चलता है कि सामाजिक एजेंडा को ध्यान में रखते हुए सरंचना में ऐसे बदलाव करने का कोई सचेत प्रयास नहीं किया गया था। एस.एच.जी. पद्धति अपनाने के बाद भी सामाजिक एजेंडा के विषय में आए इस बदलाव के निहितार्थों का विश्लेषण नहीं किया गया है। इससे स्वयंसेवी संस्थाओं और फ़ंडिंग एजेंसियों द्वारा समाजिक एजेंडा की उपेक्षा का ही पता चलता है। माइक्रो क्रेडिट कार्यक्रम लागू करने की पूर्वशर्त के रूप में सरंचनागत संक्रमण की इस प्रक्रिया में फ़ंडिंग एजेंसियों की भूमिका ही इस बात को तय कर देती है कि बदलाव किस तरह आएगा, किस फ्रेमवर्क में पुरानी संरचनाओं का विश्लेषण, विखंडन और उनकी जगह नई संरचनाओं (स्वयं सहायता समूह) की स्थापना की जाएगी ताकि विश्लेषण में सामाजिक एजेंडा को बाहर किया जा सके।

जिस संदर्भ में बड़े समूहों की जगह स्वयं सहायता समूहों पर ज़ोर दिया जा रहा है वह ऐसा संदर्भ है जिसमें समूह के पास संस्थागत प्रणालियों के बारे में ज़्यादा विकल्प नहीं हैं। जैसा कि पीस में दिखायी देता है, हमेशा यही देखा जाता है कि फ़ंडिंग एजेंसियां एस.एच.जी. मॉडल अपनाने पर ज़ोर देती हैं क्योंकि यह उनके लिए एक ज़्यादा बेहतर मॉडल है। सरकार से मिलने वाले फायदों को भी तभी हासिल किया जा सकता है जब समूह एस.एच.जी. के रूप में काम करता हो। इन वजहों से बहुत सारी स्वयंसेवी संस्थाओं को मज़बूरन या स्वेच्छापूर्वक ऐसे बड़े समूह तोड़ने पड़े जो कभी उन्होंने खुद ही बनाए थे। अध्ययन के दौरान हमने जिन स्वयंसेवी संस्थाओं से बातचीत की तथा जिन संस्थाओं ने संबंधित परिचर्चाओं में हिस्सा लिया, उनमें से ज़्यादातर का यह कहना था कि इस बदलाव से नकारात्मक परिणाम सामने आए हैं। यह बात सामाजिक न्याय के क्षेत्र में और भी साफ़ दिखायी देती है। जिस क्षेत्रा में पीस काम करता है, वहां भी अन्य स्थानीय स्वयंसेवी संस्थाओं की ओर से ऐसी ही बातें सुनने में आयी। जो स्थिति पहले पीस के साथ थी, उसी तरह उनमें से कई अन्य संगठन भी गांव स्तर के बड़े समूह वाले मॉडल पर काम कर रहे हैं। पिलापू नामक स्वयंसेवी संस्था के एक संस्थापक सदस्य ने एस.एच.जी. मॉडल की सीमाओं के बारे में बेबाक राय दी। लेकिन अब उन्हें भी लगता है कि संस्थागत स्वरूप के मामले में ज़्यादा विकल्प नहीं बचे हैं।

"बड़े संगम वाले मॉडल में लोग फटाफट जुटने लगते हैं। सरकार द्वारा चलाए जा रहे मौजूदा एस.एच.जी. मॉडल में लोग कभी एकजुट नहीं हो सकते। समूहों के बीच होड़ चलती है। इसके बावजूद सरकार बड़े संगमों की बजाय सिर्फ स्वयं सहायता समूहों को ही रिवॉल्विंग फंड देती है। स्वयंसेवी संस्थाओं ने इस समस्या को ज़िला स्तरीय बैठकों में उठाया है लेकिन नीति के स्तर पर कोई बदलाव दिखायी नहीं देता।" पिलापू सहित डी.डी.एन. के कुछ घटकों ने भी अब स्वयं सहायता समूह बनाने शुरू कर दिए हैं। एस.एच.

जी. मॉडल की तरफ बढ़ने का दबाव सरकार के साथ–साथ फ़ंडिंग एजेंसियों की तरफ से भी आ रहा है। उनकी राय में यह मॉडल लोगों के अपने संसाधनों पर आधारित है और सेवा डिलीवरी के लिहाज़ से ज़्यादा कुशल रहा है जबकि इसमें सामाजिक गोलबंदी की संभावना कम हो जाती है।

दोहरी सदस्यता

आइए एक बार फिर संस्थागत पद्धति से जुड़े मुद्दे पर लौटते हैं। यहां हमें एक ऐसे संदर्भ की पड़ताल करनी चाहिए जहां एक ही गांव में औरतों के सामने बहुत सारे स्वयं सहायता समूह मौजूद हैं। सरकारी और गैर–सरकारी, दोनों तरह की प्रोत्साहक एजेंसियों के बीच औरतों को 'अपने' एस.एच.जी. की तरफ खींच लेने की होड़ लगी रहती है। खासतौर से सरकारी माइक्रो क्रेडिट कार्यक्रमों में गैस कनेक्शन और रियायती ऋण या अनुदान जैसे अतिरिक्त लाभों की भी संभावना होती है। ऐसे में औरतों को यह फ़ैसला लेना ही पड़ता है कि उन्हें किस एस.एच.जी. में जाने पर सबसे ज़्यादा फायदा होगा।

पीस से जुड़े स्वयं सहायता समूह के अनुभव से ऐसे संदर्भ में औरतों के सामने आने वाली कुछ ठोस समस्याओं का अंदाज़ा मिलता है। शुरू–शुरू में पीस ने औरतों को ड्वाक्रा में शामिल होने के लिए उकसाया था क्योंकि इससे औरतों को कई लाभ मिल सकते थे। औरतों को बताया जाता था कि वे पीस प्रायोजित एस.एच.जी. में शामिल रहते हुए भी ड्वाक्रा से जुड़ सकती हैं। लेकिन प्रोत्साहक फ़ंडिंग एजेंसी केयर की दोहरी सदस्यता के मामले में स्पष्ट नीति थी। फलस्वरूप यह सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाए गए कि कोई भी महिला एक से ज़्यादा एस.एच.जी. की सदस्य न हो। उन्हें किसी एक मॉडल को अपनाने के लिए बाध्य किया गया। इस स्थिति में एक समस्या यह थी कि अगर कोई औरत ड्वाक्रा के समूह में शामिल होना चाहती है तो पहले उसे एम.ए.सी. फ़ेडरेशन में अपने लेन–देन का खाता निपटाना होगा जहां से अब तक बचत और ऋण का काम चलता था। पीस ने ड्वाक्रा में जाने वाली महिलाओं को एम.ए.सी. से ली गयी राशि लौटाने के लिए छह माह का समय दिया।

> स्वयं सहायता समूहों के आकार में जबर्दस्त समरूपता दिखायी देती है। 96% समूहों की सदस्य संख्या 20 से कम थी। 33% समूहों में 10 या उससे कम सदस्य थे।
>
> निरंतर सर्वेक्षण

एक समूह के साक्षात्कार में महिलाओं ने पीस के उपस्थित कार्यकर्त्ताओं को कहा था : "अगर आपने पहले बता दिया होता (कि दोहरी सदस्यता से परेशानी होगी) तो हम ड्वाक्रा में शामिल नहीं होते। अब आप बता रहे हैं कि दोनों समूहों की सदस्यता नहीं ली जा सकती। पहले आपने ही हमें ड्वाक्रा से जुड़ने के लिए कहा था। अब आप ही हमें दोनों में से किसी एक को चुनने के लिए कह रहे हैं। हम इस जंजाल से कैसे निकलें? हम कर्ज़ा कैसे लौटाएं?"

दोहरी सदस्यता छोड़ने की नीति लागू करते हुए पीस के कार्यकर्त्ता भी परेशान हैं। एक कार्यकर्त्ता का कहना था, "औरतें पिछले 2–3 साल से ड्वाक्रा समूह में बचत कर रही हैं। अब जब उन्हें लाभ मिलने का समय आया है तो हमें उनसे यह कहना पड़ रहा है कि आप को एक समूह छोड़ना होगा। इससे उन्हें बहुत बुरा लगेगा। और अगर उन्हें सरकारी ऋण मिल जाता है तो उसका ब्याज भी बहुत कम होगा।

ऐसे में अगर वे ड्वाक्रा को छोड़ देती हैं तो यह फायदा भी उनके हाथ से निकल जाएगा।" ज़ाहिर है पीस नैतिक आधार पर औरतों को यह चुनने में मदद दे रहा है कि उनके हित में क्या अच्छा है। "जो महिलाएं ड्वाक्रा में जाने का फ़ैसला ले चुकी हैं अगर हम उन्हें पीस के एस.एच.जी. में आने के लिए कहें तो वे कभी भी वापस आ जाएंगी। लेकिन हम ऐसा नहीं करेंगे क्योंकि यह अच्छी बात नहीं है।" पीस के मुताबिक, लगभग 20% महिलाओं ने ड्वाक्रा में शामिल होने के लिए 'उनके' समूह छोड़ दिए थे। (हमारी आखिरी फ़ील्ड विज़िट के समय ड्वाक्रा का वेलुगू में विलय किया जा रहा था।)

तमाम क्षेत्रों में समूहों की बहुतायत दिखायी देती है। हमने जिन संगठनों का दौरा किया वहां सक्रिय स्वयंसेवी संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं ने बताया कि सरकारी अधिकारी महिलाओं को अपने समूहों से जोड़ने के लिए ज़ोर लगा रहे हैं। इसके कारण एक से अधिक एस.एच.जी. की सदस्यता को बढ़ावा मिलता है। दूसरी तरफ औरतों को स्वयंसेवी संस्थाओं से जुड़ने और सरकारी समूहों से जुड़ने में फर्क दिखायी देता है। एक समूह की नेता ने कहा कि "सरकार से हमें फायदे मिल सकते हैं इसलिए हम उनके समूहों में शामिल होते हैं जबकि स्वयंसेवी संस्थाओं के साथ रिश्ता लंबा चलता है।" इस नेता ने एक स्वयंसेवी संस्था के समूह की सदस्य होते हुए सरकारी कार्यक्रम में शामिल होने की वकालत की थी लेकिन कुछ मामलों में समस्या तब पैदा होती है जब एक समूह का कर्ज़ा चुकाने के लिए कोई महिला दूसरे समूह से कर्ज़ा ले लेती है। ऐसे में ऋण–आधारित मॉडल का औचित्य खतरे में पड़ जाता है। शायद यही कारण है कि केयर जैसे कुछ संगठनों ने दोहरी सदस्यता के मामले में काफ़ी सख़्त रवैया अपनाया है। लेकिन गरीबों के लिए एक से अधिक समूहों की सदस्यता का परिणाम यह होता है कि उन्हें अलग–अलग स्रोतों से ज़्यादा लाभ मिलने लगते हैं और ऋण के कई स्रोत सामने आ जाते है। जिसके चलते वे ज़्यादा संसाधन भी हासिल कर सकती हैं या ज़्यादा कर्ज़े में भी फंस सकती हैं। लेकिन जहां संकट और अन्य ज़रूरतों से निपटने के लिए कर्ज़ा ही एक स्थिर जोखिम बना हुआ हो वहां इस तरह के संस्थागत रूपों तक पहुंच से गरीबों को जोखिमों से निपटने में कुछ मदद तो मिल ही जाती है।

एकाधिक समूहों से जुड़ने की परिघटना आम है। सरकार भी स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा बनाए गए समूहों की सदस्याओं को अपने समूहों में शामिल करने के लिए खींचती है और इस तरह समानांतर सदस्यता को बढ़ावा देती है।

एक से अधिक समूह की सदस्यता का फायदा ये भी है कि महिलाओं के सामने सूचना और एक्सपोज़र के कई स्रोत खुल जाते हैं। यह बात एस.जी.एस.वाई. से जुड़े एक स्वयं सहायता समूह की सदस्याओं ने बतायी जो एक समूह आधारित दुग्ध सोसायटी डेयरी फ़ेडरेशन की भी सदस्य हैं। उन्होंने कहा, "हम अपने काम और घर से बाहर नहीं निकल पातीं। इससे (एकाधिक सदस्यता) से हमें कम से कम तरह–तरह के लोगों से मिलने और तरह–तरह की चीज़ें सीखने का मौका तो मिल जाता है। मैं डेयरी ग्रुप के दो प्रशिक्षण कार्यक्रमों में जा चुकी हूं और वहां जो कुछ मैंने सीखा है उन्हें इन औरतों को बता सकती हूं। जब ये औरतें एस.जी.एस. वाई. ऋण के ज़रिए गाय–भैंस खरीद लेंगी तो वे भी

डेयरी ग्रुप की सदस्य बन सकती हैं और नई चीज़ें सीख सकती हैं।"

फ़ेडरेशंस के बारे में सोचना और उन्हें चलाना

अब हम इस बात की पड़ताल करेंगे कि औरतें फ़ेडरेशन जैसी संस्थागत प्रणालियों की कल्पना करने, उनका प्रबंधन संभालने और उनमें हिस्सेदारी करने में किस हद तक सक्षम हैं। हमारी नज़र में ये आयाम सशक्तीकरण का हिस्सा हैं और महत्त्वपूर्ण हैं। स्वयं सहायता समूहों का यह पहलू ऐसे संदर्भ की पड़ताल के लिए भी महत्त्वपूर्ण है जिसमें लोक संगठनों का निर्माण माइक्रो क्रेडिट, खासतौर से वेलुगू जैसी बड़ी एजेंसियों की घोषणाओं का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा रहा है। यह पहलू शिक्षा के संदर्भ में भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि लोक संस्थानों के निमार्ण से संबंधित किसी भी घोषित उद्देश्य के लिए इस बात की पड़ताल करना महत्त्वपूर्ण होता है कि ऐसी शैक्षिणक प्रक्रियाओं को किस हद तक बढ़ावा दिया गया है जिसके ज़रिए लोग ऐसे संस्थानों के बारे में सोचने और उन्हें चलाने के योग्य बन सकते हैं।

यहां हम दो परिस्थितियों के साक्ष्य पेश कर रहे हैं। पहला परिदृश्य एक ऐसे कार्यक्रम (पीस) से संबंधित है जिसमें विशेष रूप से फ़ंडिंग एजेंसी इस बात को मानती है कि स्वयंसेवी संस्था पर फ़ेडरेशन की निर्भरता कम होनी चाहिए। फ़ंडिंग एजेंसी का कहना है कि समुदाय की महिलाएं अपने हितों को सबसे अच्छी तरह खुद ही संभाल सकती हैं जबकि स्वयंसेवी संस्था के कुछ और उद्देश्य हो सकते हैं। कम से कम फिलहाल स्थिति ऐसी थी जिसमें एम.ए. सी.एस. बोर्ड सदस्याओं के क्षमता निर्माण के लिए बहुत प्रयास नहीं किए गए थे। दूसरा परिदृश्य भारी–भरकम ज़बानी जमाखर्च और सीमित क्षमता निर्माण वाला है। यह वेलुगू और मंडल समाख्या का उदाहरण है।

पीस में एम.ए.सी.एस. (फ़ेडरेशन) बोर्ड सदस्याओं के साथ साक्षात्कार के दौरान महिलाओं ने फ़ेडरेशन के साथ अपने बदलते संबंधों का विश्लेषण किया और उसमें अपनी भूमिका के बारे में बताया। "अब हालात बदल चुके हैं। पहले मैडम की ज़िम्मेदारियां ज़्यादा थीं और हमारे ऊपर कोई काम नहीं था। अब अलग बात है। हम भी ज़िम्मेदारी उठाते हैं। हमारी प्रतिबद्धता अब ज़्यादा है। अब हम और हमारी बचत ही सबसे अहम प्राथमिकता है। अगर एक भी सदस्य नहीं आती तो हम सब जाकर उससे पैसा ले आती हैं।" हालांकि महिलाओं ने बदले हुए श्रम–विभाजन का ज़िक्र किया जिसमें वे पहले से ज़्यादा ज़िम्मेदारी उठा रही हैं लेकिन यह फ्रेमवर्क भी प्रोत्साहक संगठन को 'मदद' देने वाला ही है। जिस तरह महिलाओं ने बचत और ऋण के मामले में अपने योगदान के ज़रिए अपने पतियों का बोझ कम करने की बात कही थी कुछ उसी तरह का भाव यहां भी दिखायी देता है। औरतों को लगता है कि वे प्रोत्साहक संगठन के बोझ को कम करने में मदद दे रही हैं। उपरोक्त वक्तव्य में यह भी महत्त्वपूर्ण है कि वे जिन ज़िम्मेदारियों की बात कर रही हैं वे मुख्य रूप से ऋण वसूली तक ही सीमित हैं।

पीस में जो हालात हैं उन्हें संस्थागत फ़्रेमवर्क के लिए क्षमता निर्माण की ज़रूरत के बारे में फ़ंडिंग एजेंसी की सोच के परिप्रेक्ष्य में ही समझा जाना चाहिए। इस ऐप्रोच में एक रैखिकता दिखायी देती है। कैश (Cashe) कार्यक्रम के ज़रिए सबसे पहले आर्थिक रूप से कुशल व्यवस्था विकसित करने और उसके बाद ही सदस्यों की सहभागिता व नेतृत्त्व विकास के ज़रिए एस.एच.जी. एवं फ़ेडरेशन की स्थापना का

कार्यक्रम तय किया गया था।[8] इस बात को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि कैश में संस्थानों के स्तर पर लोगों की हिस्सेदारी को जो महत्त्व दिया जाता है उसकी वजह यह है कि माइक्रो क्रेडिट के तर्क में खुद लोगों द्वारा चलाए जा रहे ऐसे विशेषज्ञ और लोकतांत्रिक संस्थानों की ज़रूरत पर ज़ोर दिया जाता है जो अपनी आर्थिक ज़रूरतों को खुद संभाल सकें। यह समझ कुछ बुनियादी सवाल खड़े करती है। क्या क्षमता निर्माण के माामले में भी रैखिक सोच अपनायी जा सकती है? ऐसा कैसे हो सकता है कि लोक संस्थानों की स्थापना तो कर दी जाए लेकिन आत्मविश्वास में वृद्धि, आलोचनात्मक मूल्यांकन, सत्ता की समझ, एकजुटता और परस्पर विश्वास निर्माण जैसी प्रक्रियाओं को बाद में चलाने का फ़ैसला कर लिया जाए?

इन प्रक्रियाओं के अभाव में औरतें इन संस्थाओं के प्रति स्वामित्व का भाव कैसे पैदा कर सकती हैं? भले ही प्रोत्साहक एजेंसियों की दृष्टि में इन संस्थानों को आर्थिक मामलों पर भी ध्यान केंद्रित क्यों न करना हो? हमारा मानना है कि स्वामित्व का सवाल केवल तभी उठ सकता है जब प्रोत्साहक संगठन की ओर से महिलाओं को स्वामित्व लेने के लिए प्रेरित किया जाता है।

वेलुगू के संदर्भ में ज़िला स्तरीय टीम और जेंडर संसाधन व्यक्ति (ज़िला स्तर) ने बताया कि संस्था निर्माण की प्रक्रिया बुनियादी सरंचना स्थापित करने की प्रक्रिया है। इसके बाद ही समुदाय के मर्द–औरतों को उन्हें अपनाने के लिए प्रेरित किया जाता है ताकि उनके ज़रिए वे विभिन्न गतिविधियों को हाथ में ले सकें। संस्था निर्माण की प्रक्रिया को स्वाभाविक ढंग से आगे बढ़ाने का एक तरीका यह भी हो सकता था कि गांव स्तर के स्वयं सहायता समूहों की फ़ेडरेशनों से मंडल स्तरीय फ़ेडरेशन खुद–ब–खुद विकसित हो जाती। लेकिन मंडल स्तरीय फ़ेडरेशन बनाने की प्रक्रिया नीचे से ऊपर की दिशा में नहीं बढ़ी। संघीय संरचना स्थापित करने पर यह ज़ोर एक निश्चित समय–सीमा के भीतर कार्यक्रम के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए ज़रूरी माना जाता है।

यह मान्यता भी साफ़ दिखायी दे रही थी कि गरीबों की संरचनाओं को गरीब ही अपनाएं और अपनी सदस्यता के आधार पर उसे अपने हित में चलाने का प्रयास करें भले ही उनके पास ऐसी प्रणालियों को चलाने का अनुभव न हो। मौजूदा अवसरों और संभावनाओं को देखते हुए यह मुद्दा नहीं उठा कि गरीब अपने लिए जो संस्थान खड़े कर सकते हैं उनका मुहावरा और स्वरूप क्या हो। फ़ेडरेशन और ग्राम संगठन की संरचना व भूमिका पहले से तय थी। इसलिए एक टिकाऊ और स्थिर शैक्षिक प्रक्रिया का अभाव था जिसके ज़रिए गरीब सदस्य संस्थागत प्रणाली की कल्पना कर सकें और उसका स्वामित्व हाथ में ले सकें। यह इस बात से ज़ाहिर हो जाता है कि महिलाएं हर स्तर पर बदलावों को संभालने के लिए परियोजना कार्यकर्त्ताओं का ही इंतजार करती हैं जबकि कामकाजी ज़िम्मेदारियां उन्हें सौंप दी गयी हैं। यानि अपेक्षा तो यही थी कि सरंचनाएं लोक स्वामित्व संस्थानों को जन्म दें लेकिन इस सपने को साकार करने के लिए कोई स्पष्ट रणनीति अस्तित्व में नहीं थी। इस प्रक्रिया को सुगम बनाने के लिए कोई योजना तैयार नहीं की गयी थी क्योंकि प्रबंधकीय भूमिकाएं लगातार परियोजना कार्यकर्त्ताओं के हाथों में थीं। इससे ऐसे संस्थानों के उद्देश्य को लेकर सवाल खड़े हो जाते

[8]यह राय जुलाई 2005 में यू.एन.डी.पी. द्वारा आयोजित एक बैठक में नाबार्ड के प्रबंध निदेशक ने व्यक्त की थी। उनका कहना था कि जिन समूहों ने माइक्रो क्रेडिट प्रयासों के ज़रिए आर्थिक सुरक्षा प्राप्त कर ली है वे अब सामाजिक एजेंडा के साथ आगे बढ़ सकते हैं। फील्ड में काम करने वाले कार्यकर्त्ताओं ने उनके इस तर्क पर कड़ा ऐतराज जताया था। उन लोगों का कहना था कि सामाजिक एजेंडा पर काम करने वाले समूह स्वयंसेवी संस्थाओं से जुड़े हुए हैं इसलिए वे तो पहले भी सामाजिक एजेंडा पर सक्रिय रहते थे। माइक्रो क्रेडिट व्यवस्था के शुरू होने से सामाजिक एजेंडा इस कदर क्षीण हो गया है कि अब स्वयं सहायता समूह ऐसे मुद्दों को केवल तभी उठा पाते हैं जब उन्हें इस बारे में आवश्यक इनपुट मिलते हैं।

क्षमता हासिल करने के लिए औरतों को पर्याप्त समय देने की बजाय शुरू से ही यह तय कर दिया गया है कि लंबे समय तक कार्यक्रम कार्यकर्त्ता ही कार्यक्रम को चलाएंगे।

हैं। ज़ाहिर है कि इस बारे में कोई खास चर्चा नहीं हुई थी कि मंडल सामाख्या जैसी संस्था की ज़रूरत क्या है। उसकी स्थापना के पक्ष में बस यही दलील दी गयी थी कि इससे चीज़ें खरीदने, कामों को किफायत से निपटाने और ऋण हासिल करने में मदद मिलेगी।

कार्यात्मक स्तर पर इसका आशय यह है कि प्रबंधन का काम लगभग पूरी तरह कार्यक्रम कार्यकर्त्ताओं के हाथों में छोड़ दिया गया है।[9] तकनीकी स्तर पर तो कार्यक्रम कार्यकर्त्ताओं को केवल सहायक भूमिका निभानी चाहिए। निर्णय लेने का अधिकार फ़ेडरेशन नेताओं के हाथों में होना चाहिए। इस तरह की कुछ पद्धतियां अस्तित्व में हैं भी। जैसे, कार्यकर्त्ताओं का वेतन फ़ेडरेशन की नेताओं के माध्यम से ही जारी होता है, सारे फैसले भी बैठकों में प्रस्ताव पारित करके ही लिए जाते हैं। लेकिन यह सिर्फ औपचारिक व्यवस्था है। कार्यक्रम कार्यकर्त्ता इन बैठकों में हमेशा उपस्थित रहते हैं। वे कोई खास चर्चा चलाए बिना मंजूरी के लिए इन मुद्दों को बैठक में पेश कर देते हैं। इन बैठकों में महिलाएं भी होती हैं। प्रबंधकों के मुताबिक वे इस एक्सपोज़र से काफ़ी कुछ सीख सकती हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि गहन चर्चा न होने के कारण इन फ़ैसलों के फायदे–नुकसानों को समझने का उनके पास कोई खास मौका नहीं होता।

मंडल सामाख्या के मिनट्स को पढ़ने (सहायक प्रबंधक और मंडल नेताओं की सहायता से) पर पता चलता है कि उसमें ऐसी भी प्रविष्टियां थीं जिनके बारे में औरतों को कुछ पता नहीं था। उनका कहना था कि उन विषयों पर कोई चर्चा नहीं हुई थी। प्रबंधक का दावा था कि अगर औरतें बैठकों में लगातार ध्यान दें और दोनों प्रमुख पदाधिकारियों की तरह बातों में हिस्सा लें तो उनके पास भी सीखने के पर्याप्त अवसर हैं। इन महिलाओं ने कार्यात्मक विवरणों के लिहाज़ से विभिन्न गतिविधियों के लिए अपनायी गयी प्रक्रियाओं के बारे में हमारे सवालों के सहज उत्तर दिए। उन्होंने स्वीकार किया कि उन्हें आर्थिक ब्यौरों के बारे में कुछ पता नहीं है और ज़्यादातर नियोजन व फैसले कार्यक्रम कार्यकर्त्ताओं द्वारा ही लिए जा रहे थे हालांकि वे महिलाओं को इस बारे में जानकारी ज़रूर दे देते थे। हमने महिलाओं से पूछा कि "अगर अगले एकाध साल भर में कार्यक्रम कार्यकर्त्ताओं को हटा लिया जाए तो क्या वे इन कामों को खुद कर पाएंगी?" उन्होंने संशय के साथ कहा, "लेकिन खाता–बही संभालने और फ़ैसले लेने के लिए हमें मदद तो चाहिए ही होगी।" महिलाएं इन भूमिकाओं को सीमित स्तर पर ही निभा सकें, इसके लिए भी उन्हें लगाातार इनपुट मुहैया कराने होंगे और एक उचित व्यवस्था विकसित करनी होगी। इस तरह के इनपुट्स और सहायता के अभाव में कार्यक्रम के भीतर टिकाऊपन की कमी औरतों के लिए फांसी का फंदा बन सकती है क्योंकि उनके पास उस संरचना और रूपरेखा का कोई विश्लेषण नहीं है जिसकी वजह से इन कामों को पर्याप्त रूप से करने के लिए औरतों की क्षमता बढ़ाने में दिक्कत आ रही है।

परियोजना की रूपरेखा इस धारणा पर आधारित है कि लम्बे दौर में औरतें इन ज़िम्मेदारियों को नहीं निभा पाएंगी। इसी धारणा के आधार पर महिलाओं को ये निपुणताएं हासिल करने के लिए पर्याप्त समय और अवसर मुहैया कराने की बजाय परियोजना में

[9]हालांकि संघमित्रा प्रायः उसी समुदाय से होते हैं लेकिन इस काम के लिए पुरुषों को ही चुना जाता है। समुदाय से बाहर के ज़्यादा पढ़े–लिखे लोगों को ऊंचे पदों पर नियुक्त किया जाता है। इन पदों पर दूसरे विभागों से डेपुटेशन पर आने वाले अधिकारियों को भी रखा जाता है।

शुरू से ही यह प्रावधान कर दिया गया है कि मौजूदा कार्यक्रम दल ही लम्बे दौर में महिलाओं की ओर से कार्यक्रम को चलाता रहेगा। प्रावधान के अनुसार कार्यकर्त्ताओं को परियोजना की बजाय फ़ेडरेशन से वेतन मिलेगा। इससे सी.आई.एफ. (समुदाय निवेश कोष) के लिए कार्यक्रम गतिविधियों के निर्धारण में जल्दबाजी का पता चलता है। सी. आई.एफ. योजना के आधार पर ही संसाधनों को फ़ेडरेशन के खातों में स्थानांतरित किया जाता है और इसके बाद यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि फ़ेडरेशन को इन कार्यकर्त्ताओं को लगातार 'नियुक्ति' पर रखना होगा। यहां आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं की स्वायत्तता के लिए संस्थानों के निर्माण पर नहीं बल्कि ऐसे परियोजना संसाधनों को ध्यान में रखकर संस्थान बनाने पर ज़ोर दिया जा रहा है जिनके ज़रिए प्रोत्साहक एजेंसी अपने कार्यकर्त्ताओं का पेट पालने के साधन विकसित कर सकती है।

स्वामित्व का सवाल केवल तभी उठता है जब प्रोत्साहक संगठन औरतों को स्वामित्व संभालने योग्य बनाने के लिए इच्छुक होता है।

लोक संस्थानों के निर्माण की ज़रूरत को देखते हुए ड्वाक्रा और वेलुगू के अनुभवों पर विचार करना दिलचस्प रहेगा। इन दोनों ही कार्यक्रमों में इस काम के लिए कोई उल्लेखनीय इनपुट नहीं दिए जा रहे हैं। हमने पाया कि ड्वाक्रा जैसे 'परंपरागत' कार्यक्रम की फ़ेडरेशन में स्वायत्तता की ज़्यादा संभावना थी। हालांकि वेलुगू कार्यक्रम में स्वायत्तता के बारे में ज़्यादा बड़े–बड़े दावे किए गए थे लेकिन वहां इसके लिए कम जगह दिखायी देती थी। ज़रूरी इनपुट्स के अभाव में फ़ेडरेशन के पास अपना एजेंडा तय करने के लिए ज़्यादा जगह नहीं होती। ज़रूरी इनपुट्स मुहैया कराए बिना अत्यन्त हस्तक्षेपवादी मॉडल की चाह, दोनों मिलकर औरतों की पहलकदमी की संभावना कुंद कर देते हैं।

हमारा यह भी निष्कर्ष है कि संस्थानों की स्थापना के बाद क्षमता निर्माण के मामले में किसी रैखिक प्रक्रिया की संभावना बाकी नहीं बचती। अभी जो संस्थान हैं उन्हें किसी भी सूरत में लोक संस्थान नहीं कहा जा सकता। अगर संस्थानों की कल्पना में लोगों को मदद नहीं दी जा रही है तो लोक संस्थानों के शब्दजाल का कोई मतलब नहीं है। अगर प्रोत्साहक एजेंसी आर्थिक स्वायत्तता को संस्थान के अपेक्षित लक्ष्य की श्रेणी में रखती है तो प्रक्रिया और भी मुश्किल हो जाती है। इससे यह मुद्दा महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि प्रोत्साहक एजेंसियां जनता की सहभागिता क्यों चाहती हैं। हमारा यह भी मानना है कि और ज़्यादा आर्थिक स्वायत्तता के सीमित एजेंडा को भी तब तक पूरा नहीं किया जा सकता जब तक सशक्तीकरण से संबंधित शैक्षिणक प्रक्रियाएं अस्तित्व में नहीं होंगी। ये चिंताएं ऐसे हालात में और भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं जहां फ़ेडरेशन पर फ़ोकस बढ़ता जा रहा है। इन्हें ऐसे निकायों के रूप में देखा जा रहा है जिनके साथ सरकार, बैंक और अन्य एजेंसियां सीधे सम्पर्क साध सकती हैं। हालांकि इन फ़ेडरेशनों के पास प्रतिनिधि निकाय के रूप में काम करने की भारी संभावनाएं हैं लेकिन ज़्यादातर जगह अभी यह लक्ष्य साकार नहीं हो पाया है। इन निकायों को लोक संस्थान मानने के प्रति सच्ची प्रतिबद्धता के अभाव और उसके फलस्वरूप पैदा होने वाले शैक्षिणक प्रक्रियाओं के अभाव में फेडरेशन्स भी असमानताओं को जन्म देती रहेंगी और प्रोत्साहक संस्थाओं पर

निर्भरता बनी रहेगी।

औरतों के जीवन के हर पहलू समूह के भीतर, परिवार के भीतर, बाज़ार के भीतर और संस्थानों के भीतर में गरीबी और सशक्तीकरण पर स्वयं सहायता समूहों के प्रभाव और उनके ज़मीनी हालात का आकलन करने के बाद अगले अध्याय में हम इस बात का जायज़ा लेंगे कि ये हालात ऐसे क्यों हैं। हम साक्षरता सहित उन सभी शैक्षिणक प्रक्रियाओं पर विचार करेंगें जिनको साकार नहीं किया जा रहा है।

स्वयं सहायता समूह, शिक्षा और साक्षरता : हस्तक्षेपों का आकलन

शैक्षणिक अवसर

वित्तीय एवं प्रबंधकीय आयामों पर फोकस

सीखने के अवसरों तक पहुंच

- संगठनों के कार्यकर्त्ता बनाम एस.एच.जी.
- नेताओं और सदस्यों की असमान पहुंच

शैक्षणिक इनपुट्स

- शैक्षणिक अवसर और आजीविका
- शैक्षणिक अवसर और अभिशासन
- जेंडर और सामाजिक मुद्दों से जुड़े अवसर
  - ♦ समूह का महत्त्व
  - ♦ परिवार और अर्थव्यवस्था में महिलाओं के योगदान
- आपसी सीख

साक्षरता की शैक्षणिक विषयवस्तु

- पीस / वेल्ड कार्यक्रम : प्रवेशिका (प्राइमर) का विश्लेषण

साक्षरता

महिलाओं की नज़र में साक्षरता का महत्त्व

- अधिक स्वायत्तता की चाह
- सम्प्रेषण क्षमता
- सूचना तक पहुंच
- शोषण से बचाव की संभावना
- 'चैकिंग' के लिए
- साक्षरता, नेतृत्त्व का आधार
- न्याय संबंधी प्रयासों से संबंध
- साक्षरता और विकेंद्रीकरण के बीच संबंध

साक्षरता प्रयास

- साक्षरता प्रयासों के स्वरूप से संबंधित चिंताएं
- दृष्टि का अभाव
- साक्षरता का स्तर
- उचित सामग्री का अभाव
- संगठनों की निम्न प्राथमिकता
- वित्तीय संसाधनों का अभाव
- साक्षरता के प्रयोग और टिकाऊपन हेतु इनपुट्स का अभाव
- नवसाक्षर महिलाओं की सहायता के मार्ग में चुनौतियां

साक्षरता की प्राथमिकता के अभाव के परिणाम

- सूचनाओं तक असमान पहुंच
- प्रोत्साहक संगठनों पर भारी निर्भरता
- नेता–सदस्या विभेद
  - ♦ नेतृत्व तक पहुंच
  - ♦ सूचनाओं तक पहुंच
  - ♦ प्रशिक्षण तक पहुंच
  - ♦ संसाधनों तक पहुंच
  - ♦ अन्य मंचों की सदस्यता
- साक्षर और असाक्षर सदस्याओं के बीच सत्ता संबंध

पिछले अध्याय में ज़मीनी हालात के विवरण से यह बात काफी स्पष्ट हो गयी थी कि अधिकांशतः स्वयं सहायता समूह न्याय और समता के मुद्दों को आगे बढ़ाने में कामयाब नहीं हो पा रहे हैं। ज़्यादातर मामलों में काम का अधिक बोझ औरतों पर रहता है, उन्हें परिवार में अपने अधिकारों को मनवाने में कठिनाई महसूस होती है, उनके पास वित्तीय लेन–देन के बारे में सीमित जानकारियां होती हैं, उनके पास आजीविका–सुदृढ़ीकरण संभावनाओं का सीमित एक्सपोज़र है, और उनकी प्रोत्साहक एजेंसियों पर भारी निर्भरता है। यह चिंताजनक स्थिति है। इन हालात को जन्म देने वाले तत्त्व कौन–से हैं? उन्हें बदलने के लिए क्या किया जाए जिससे उनमें गरीब औरतों की ज़रूरतों का समावेश किया जा सके? अब हम उन शैक्षणिक प्रक्रियाओं की पड़ताल करेंगे जिन तक एस.एच.जी. सदस्याओं को पहुंच बनानी थी। हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि एस.एच.जी. परिधि के ज़रिए उनके सशक्तीकरण न हो पाने के पीछे शैक्षणिक प्रक्रिया के स्वरूप और सीमा का असर तो नहीं है।

नेतृत्त्व, ऋण एवं शैक्षणिक अवसरों तक पहुंच को निर्धारित करने में साक्षरता की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। लेकिन टिकाऊ साक्षरता अवसरों की व्यवस्था बेहद कमज़ोर और अनियमित रही है।

साक्षरता को अकसर महत्त्वहीन, निचले दर्ज़े की, मुख्यधारा की चिंता माना जाता है। लेकिन निरंतर के कामों ने साक्षरता और सत्ता के बीच गहरे संबंधों की ओर बार–बार हमारा ध्यान आकर्षित किया है। हमारे निष्कर्षों से पता चलता है कि नेतृत्त्व, ऋण एवं शैक्षणिक अवसरों तक पहुंच को तय करने में साक्षरता बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है हालांकि यह भी सच है कि स्थायी साक्षरता अवसरों की स्थिति बेहद कमज़ोर और अस्थिर रही है। इसीलिए यह एक ऐसी कसौटी है जिसके ज़रिए एस.एच.जी. परिधि का आकलन किया जा सकता है। साक्षरता का मुद्दा एस.एच.जी./फेडरेशन तथा प्रोत्साहक एजेंसी के बीच संबंधों के सत्ता संबंधी आयामों के लिहाज़ से भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। प्रोत्साहक एजेंसियां किस हद तक साक्षरता में निवेश करती हैं इसी से पता चलता है कि वे किस हद तक अपनी सत्ता को छोड़ने के लिए तैयार हैं, किस हद तक अपने ऊपर निर्भरता को कम करने तथा उत्तरदायित्व व पारदर्शिता बढ़ाने के प्रति गंभीर हैं।

यह अध्याय सबसे पहले शिक्षा की हमारी व्यापक परिभाषा के अनुसार शैक्षणिक प्रक्रिया के विवरण से शुरू होता है। इसके बाद हम साक्षरता पर ध्यान केंद्रित करेंगे। पहले हिस्से में हमारा सवाल यह है : क्या महिलाओं को ऐसे शैक्षणिक अवसर मिल रहे हैं जिनके सहारे वे सशक्तीकरण में योगदान देने वाले फैसले, विश्लेषण और आकलन कर सकें? दूसरे हिस्से में हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि समूह के भीतर और समूहों के बीच बनने वाले संबंधों को साक्षरता किस तरह प्रभावित करती है और क्या एस.एच.जी. की परिधि टिकाऊ साक्षरता इनपुट्स उपलब्ध कराने में मददगार होती है या नहीं? आइए अब हम इन्हीं सवालों का विश्लेषण करें।

शैक्षणिक अवसर

इस भाग में हम एस.एच.जी. सदस्याओं को उपलब्ध कराए जा रहे शैक्षणिक अवसर और उनकी अनुपस्थिति पर विचार करेंगे। हमारा मुख्य फोकस उन

इनपुट्स पर है जो संकुचित आर्थिक एजेंडा की बजाय सशक्तीकरण और गरीबी उन्मूलन से संबंधित हैं। हमारा इरादा शैक्षणिक अवसरों की व्यवस्था में मौजूद अभावों और खामियों की पड़ताल करने के साथ–साथ इस बात की जांच करना भी है कि जो अवसर उपलब्ध कराए जा रहे हैं उनकी विषयवस्तु कैसी है। जो नहीं दिया जा रहा है उससे भी प्रोत्साहक एजेंसी की प्राथमिकताएं स्पष्ट होती हैं। साथ ही हम इस बात को भी समझना चाहते हैं कि जो अवसर और सामग्री उपलब्ध करायी जा रही है उसके ज़रिए किस तरह के वैचारिक आग्रहों को साकार किया जा रहा है और ये आग्रह किस प्रकार प्रोत्साहक संगठनों की विचारधाराओं को परिलक्षित करती हैं। इस क्रम में हमारे पास सघन, प्रक्रिया–केंद्रित इनपुट्स के कुछ उल्लेखनीय उदाहरण मौजूद हैं।

प्रशिक्षण में वित्तीय एवं प्रबंधकीय आयामों पर फोकस

स्वयं सहायता समूहों व फेडरेशंस को उपलब्ध कराए जा रहे इनपुट्स का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि उनमें वित्तीय एवं प्रबंधकीय मुद्दों पर ज़्यादा फोकस किया जा रहा है। जिन दस्तावेज़ों में ड्वाक्रा कार्यक्रम (पश्चिमी गोदावरी, आंध्र प्रदेश) से संबद्ध स्वयं सहायता समूहों 'बेसिक ओरिएंटेशन' के पाठ्यक्रम की विषयवस्तु का ब्यौरा दिया गया है उनमें सामूहिक क्रियाकलाप को कुशलतापूर्वक चलाने के अलावा और किसी चीज़ पर फोकस नहीं है।

'सामूहिक क्रियाकलाप के नियम' संबंधी मॉड्यूल की विषयवस्तु पूरी तरह इस बात से संबंधित है कि समूह की बैठकों में सदस्याओं की उपस्थिति नियमित हो और कर्ज़ की किस्त समय पर आती रहे। गुजरात में एस.जी.एस.वाई. द्वारा प्रोत्साहित स्वयं सहायता समूहों की नेताओं के लिए आयोजित प्रशिक्षणों में प्रबंधकीय आयामों पर फोकस रहा है। एस.एच.जी. सदस्याओं को रिकॉर्डकीपिंग, रेटिंग और उद्यम विकास का प्रशिक्षण दिया जाता है। अभी तक उन्हें केवल एक बार दो दिन का प्रशिक्षण दिया गया है जिसमें प्रतिदिन 4 घंटे काम होता था। यह प्रशिक्षण बुककीपिंग और रिकॉर्ड रखने से संबंधित था। प्रबंधन से संबंधित इनपुट्स के सीमित दायरे में भी सदस्याओं को ऋण और ग्रेडिंग की व्यवस्था के बारे में जानकारियां नहीं दी जा रही हैं।

स्वशक्ति ने राज्य स्तर पर प्रशिक्षण के लिए अस्मिता नामक संगठन से अनुबंध किया था। राज्य स्तर पर प्रशिक्षण का फोकस लगभग पूरी तरह वित्तीय आयामों, रिकॉर्डकीपिंग, ऋण जारी करने की प्रक्रिया आदि, पर रहा है। अस्मिता के संस्थापक (भूतपूर्व सरकारी कार्यकर्त्ता और अब उद्यमी) के मुताबिक प्रशिक्षण का एक छोटा–सा हिस्सा (10–15%) ग्रामीण विकास एवं स्वास्थ्य योजनाओं पर सरकारी कार्यक्रमों के बारे में जानकारी देने से संबंधित है। महिलाओं के साथ साक्षात्कारों में हमने पाया कि अस्मिता द्वारा प्रशिक्षित महिला नेताओं को पंचायतों में औरतों के लिए आरक्षण का पता तक नहीं था। इन प्रशिक्षणों में इस बात पर ज़ोर दिया जा रहा था कि मां और जन्म देने वाली के रूप में औरत की क्या भूमिका होती है। अर्थव्यवस्था या सार्वजनिक क्षेत्रों में उनकी भूमिकाओं का कोई विश्लेषण नहीं किया गया। महिलाओं ने जिन इनपुट्स के बारे में बताया वे स्वास्थ्य, साफ–सफाई और परिवार नियोजन से संबंधित थे। अस्मिता ने स्वशक्ति के लिए एक ग्रेडिंग प्रणाली तैयार की है जिसमें सामाजिक संकेतकों को शामिल नहीं किया गया है। इसलिए प्रशिक्षण और मूल्यांकन एजेंसी अपनी भूमिका यह

सुनिश्चित करने की मानती है कि वित्तीय कामकाज के लिहाज़ से समूहों का प्रबंधन कुशलतापूर्वक चलता रहे और बैंक अधिकारी उन्हें ऋणयोग्य मान लें। सहभागी संगठनों ने प्रशिक्षण और आकलन के इस सीमित नज़रिए पर आपत्ति व्यक्त की है।

अपने कार्यकर्त्ताओं को न्याय और समता से जुड़े एजेंडा उठाने से रोकने के अलावा इस प्रक्रिया से संकीर्ण भूमिकाओं को निभाने की क्षमता भी प्रभावित होती है क्योंकि कार्यकर्त्ताओं के क्षमता निर्माण की विषयवस्तु केवल वित्तीय आयामों पर केंद्रित है। स्वशक्ति से जुड़ी इनरेका संस्था के मामले में हमने पाया कि फील्ड स्तरीय कार्यकर्त्ता अकसर आदिवासी महिलाओं के बारे में अपनी ही सोच से बंधे दिखायी देते थे। वे अनुभवहीन हैं, उन्हें बैठकों का संचालन करने में परेशानी होती है और वे महिलाओं की समस्याओं को प्रभावी ढंग से संबोधित नहीं कर पाते थे। महिलाओं की आजीविका संबंधी समस्याओं से अनजान इन कार्यकर्त्ताओं के पास समुदाय का कोई सामाजिक या आर्थिक विश्लेषण नहीं था।

आनंदी के अलावा अन्य संगठनों के कार्यकर्त्ताओं को उपलब्ध कराए गए प्रशिक्षण अवसर मोटे तौर पर परियोजना गतिविधियों के क्रियान्वयन की रणनीतियों और कार्यक्रम की अवधारणाओं पर केंद्रित रहे हैं। इनके साथ स्थानीय वास्तविकताओं या परेशानियों का विश्लेषण प्रायः नहीं रहा है। इसका नतीजा यह होता है कि समस्याओं और संभावित विकल्पों के बारे में सोचने के मौके बहुत कम रह जाते हैं। प्रशिक्षण को प्रभावी क्रियान्वयन के लिए एक कामकाजी ज़रूरत के तौर पर देखा जाता है न कि परिवर्तन और रूपान्तरण की ओर बढ़ने वाली प्रक्रिया के रूप में। इसकी वजह से स्थानीय कार्यकर्त्ताओं की क्षमता पर गहरा असर पड़ता है और वे कार्यक्रम संबंधित निर्धारित

बहुत सारे समूहों को क्षमता निर्माण का एक भी मौका नहीं मिलता। सरकारी स्वयं सहायता समूहों में तो 47% समूहों की यही स्थिति है। स्वयं सहायता समूहों को उपलब्ध कराए गए क्षमता निर्माण इनपुट्स का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि इनमें 'समूह निर्माण', 'नेतृत्त्व विकास' और 'वित्तीय प्रबंधन एवं बुककीपिंग' पर सबसे ज़्यादा ज़ोर रहता है।

ऐसे शैक्षणिक इनपुट्स का प्रतिशत बहुत कम है जो आजीविका और आय संवर्द्धन से संबंधित हैं (9.3%)। प्राकृतिक संसाधनों तक पहुंच/प्रबंधन से संबंधित इनपुट्स केवल 11.4% थे। सबसे कम ध्यान 'जेंडर', 'स्वास्थ्य' और 'कानूनी अधिकारों' से संबंधित इनपुट्स पर रहा है। जब हम इनपुट्स का इस आधार पर विश्लेषण करते हैं कि कौन–से इनपुट्स कितने समूहों को मिले हैं तो पता चलता है कि सरकारी स्वयं सहायता समूहों को सीखने के जो इनपुट्स मिले हैं उनमें जेंडर से संबंधित इनपुट्स केवल 0.4% थे। स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा प्रोत्साहित स्वयं सहायता समूहों को जेंडर से संबंधित इनपुट्स 4.8% मिले हैं।

हमारे गुणात्मक अध्ययन के निष्कर्षों से पता चलता है कि समूह निर्माण और नेतृत्त्व विकास से संबंधित इनपुट्स जिनको सबसे ज़्यादा प्रदान किया गया है, उनमें प्रबंधन, कार्यकुशलता और अनुशासन पर ज़्यादा फोकस रहा है। इन शिक्षणों में न्याय और समता पर बहुत कम फोकस था।

निरंतर सर्वेक्षण

गतिविधियों के अलावा और कोई एजेंडा खड़ा नहीं कर पाते। यह ऐसी स्थिति है जिसके लिए स्थानीय कार्यकर्त्ता नहीं बल्कि संगठन ही ज़िम्मेदार है क्योंकि उनके पास इस बात की बहुत कम समझ होती है कि सशक्तीकरण की प्रक्रियाओं को कैसे बल देना चाहिए।

शैक्षणिक अवसरों तक पहुंच

संगठनों के कार्यकर्त्ता बनाम एस.एच.जी.

हमारे अध्ययन से इस आशय के स्पष्ट साक्ष्य मिले हैं कि शैक्षणिक अवसरों तक पहुंच समतापरक नहीं रही है। पहली बात, सभी कार्यक्रमों में निचले स्तर पर काम करने वाले कार्यकर्त्ताओं के मुकाबले वरिष्ठतम नेतृत्त्व के पास नज़रिए और उद्देश्यों के बारे में ज़्यादा स्पष्ट समझ होती है। यह बात स्वाभाविक भी है लेकिन समस्या यह है कि दोनों स्तरों के कार्यकर्त्ताओं और पदाधिकारियों के बीच समझ फासला बहुत ज़्यादा है जिससे समुदाय के स्तर पर काम बुरी तरह प्रभावित होता है। दूसरा, अध्ययन से पता चला कि कार्यकर्त्ताओं के क्षमता निर्माण प्रयास आवश्यकता के अनुरूप भले ही न हों लेकिन स्वयं सहायता समूहों के मुकाबले उनके क्षमता निर्माण को काफी ज़्यादा ध्यान दिया जाता है। यह सुनिश्चित करने के लिए प्रायः कोई संरचनागत रूपरेखा नहीं होती कि स्वयं सहायता समूहों की सदस्याओं को भी इस शिक्षण प्रक्रिया से लाभ पहुंचे। इसमें कोई शक नहीं कि कार्यकर्त्ताओं का क्षमता निर्माण भी महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए यहां हम एक पक्ष की क्षमता निर्माण संबंधी ज़रूरतों को दूसरे पक्ष की ज़रूरतों के खिलाफ खड़ा नहीं कर रहे हैं। हम सिर्फ ये कह रहे हैं कि अवसरों के स्वरूप में जो फासला है उसको स्वीकार किया जाए और उसे दुरुस्त किया जाए। ऐसी प्रणाली भी विकसित की जानी चाहिए जिसके सहारे समुदाय भी इन इनपुट्स से लाभ उठा सकें। तीसरी बात, स्वयं सहायता समूहों में अन्य सदस्याओं के मुकाबले नेताओं के पास ऐसे अवसरों तक पहुंच की संभावना ज़्यादा होती है। इस बात को विस्तार से हम बाद में उठाएंगे।

अध्ययन में पाया गया कि स्थानीय स्तर पर व्यापक क्षमता निर्माण की आवश्यकता को पर्याप्त मान्यता न देने की समस्या चारों सरकारी कार्यक्रमों में बनी हुई थी। राज्य स्तर पर हुई चर्चाओं से पता चला कि एस.जी.एस.वाई. में स्वास्थ्य एवं पंचायती राज सहित विभिन्न मुद्दों पर समूहों के विकास की संभावनाओं को लेकर चिंता महसूस की जा रही है लेकिन ज़िला या स्थानीय स्तर के कार्यकर्त्ताओं से इस बारे में कभी बात नहीं की गयी थी। बल्कि एक तालुका कार्यालय के कार्यकर्त्ता ने तो दिशानिर्देशों का हवाला देते हुए सख़्ती से कहा कि एस.जी.एस.वाई. सिर्फ ऋण एवं सब्सिडी आधारित कार्यक्रम है और उसकी भूमिका सिर्फ यह सुनिश्चित करने तक सीमित है कि महिलाएं नियमित रूप से पैसा बचाती रहें और बैंकों से उनके सीधे संबंध हों। साक्षात्कार के दौरान महिलाओं की स्थिति और उनके सशक्तीकरण से संबंधित अवसरों के बारे में उठाए गए सवालों को कार्यक्रम के दायरे से बाहर का बताया गया। इन सवालों को ग्रामीण विकास विभाग का भी नहीं बल्कि

सारे इनपुट्स औरतों की मां और प्रजनक वाली भूमिका पर केंद्रित होते हैं। उनमें इस बात का विश्लेषण नहीं किया जाता कि अर्थव्यवस्था या सार्वजनिक क्षेत्र में औरतों की भूमिकाएं क्या होती हैं।

केवल महिला एवं बाल विकास विभाग के आई.सी.डी. एस. कार्यक्रम का हिस्सा बताया गया।

निचले स्तर पर स्वयं सहायता समूहों के लिए इनपुट्स की उपेक्षा के फलस्वरूप एक ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है जिसमें महिलाओं के मुकाबले कार्यकर्त्ताओं पर ज़्यादा फोकस रहता है। यदि ज़िला अथवा ब्लॉक स्तरीय नेतृत्त्व खुद ही इस बारे में अनजान है कि महिलाओं का सशक्तीकरण करना ज़रूरी है तो एस.एच.जी. की सदस्याओं के लिए शैक्षणिक अवसरों तक पहुंच बनाना और भी मुश्किल हो जाता है।

वेलुगू कार्यक्रम में महिला फेडरेशनों के लिए एक मज़बूत क्षमता विकास रणनीति की बात कही गयी है। लेकिन इस कार्यक्रम में भी अध्ययन के लिए चुने गए एस.एच.जी. की सदस्याओं तथा गांव, मंडल व ज़िला स्तरीय कार्यकर्त्ताओं के साथ हुए साक्षात्कारों में पता चला कि शिक्षा प्रक्रिया के इनपुट्स सामान्य सदस्याओं की बजाय काडर को ध्यान में रखकर तैयार किए गए हैं। वेलुगू के कर्ताधर्ताओं की नज़र में काडरों का क्षमता निर्माण ज़रूरी है क्योंकि इससे यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि जिन लोगों को विभिन्न प्रक्रियाएं चलानी हैं वे उन्हें अच्छी तरह समझते हों ताकि वे गतिविधियों को असरदार ढंग से चला सकें। परंतु औरतों को मिलने वाले इनपुट्स के अभाव में इसका परिणाम यह होता है कि कार्यकर्त्ताओं पर निर्भरता खत्म होने का नाम ही नहीं लेती। इतना ही नहीं, प्रशिक्षण द्वारा जो अवधारणाएं प्रस्तुत की गयी हैं वे भी आर्थिक या सामाजिक सत्ता संरचनाओं को चुनौती नहीं देतीं। वे काडरों को निर्धनता पैदा करने वाली प्रक्रियाओं के बारे में सोचने और विश्लेषण करने के साधन मुहैया नहीं करातीं और न ही उन्हें प्रशिक्षक की क्षमता प्रदान करती हैं।

सभी स्तरों पर कार्यकर्त्ताओं के प्रारंभिक जेंडर ट्रेनिंग के साथ–साथ मुद्दा आधारित ट्रेनिंग का भी आयोजन किया गया है। समूह साक्षात्कारों में जेंडर से संबंधित समझ काफी कमज़ोर दिखायी दी। जेंडर प्रशिक्षण में हिस्सेदारी करने के बाद भी समुदाय कोऑर्डिनेटर्स की समझ स्पष्ट नहीं थी। वे औरतों को अनुत्पादक मानते हैं। उन्हें लड़कियों की उपेक्षा और अर्थव्यवस्था में औरतों की हालत के बीच कोई संबंध दिखायी नहीं देता।

अध्ययन में हमने जिस एस.एच.जी. को चुना था उसमें गोविंद (गांव स्तर का कार्यकर्त्ता) को जो इनपुट्स मुहैया कराये गये हैं उनके बारे में एस.एच. जी. सदस्याओं को कोई जानकारी नहीं दी गयी थी। उन्होंने महिलाओं को केवल साक्षरता और एकता, इन्हीं दो मुद्दों के बारे में बताया था। उम्मीद थी कि प्रशिक्षण में गोविंद जो कुछ सीखेंगे उसे कार्यक्रम से जुड़े समूह को 'स्थानांतरित' कर दिया जाएगा। लेकिन उन्होंने बताया कि महिलाओं पर काम का जितना बोझ है उसकी वजह से ऐसा करना संभव नहीं था (ग्रामीण महिलाओं के बीच काम करने वाली स्वयंसेवी संस्थाओं के अनुभवों से पता चलता है कि अगर प्रशिक्षण की विषयवस्तु और रूपरेखा उपयोगी हो तो महिलाएं दो–तीन दिन या उससे लंबे प्रशिक्षण कार्यक्रमों में हिस्सा लेने के लिए भी समय निकालने में नहीं हिचकिचाएंगी।) बाद में इस रणनीति को बदल दिया गया और अब नियमित बैठकों में ही यह 'इनपुट्स' दिए जाते हैं। महिलाओं ने जो कुछ बताया उसके आधार पर हमें इस आशय के कोई साक्ष्य नहीं मिले कि इस तरह का प्रशिक्षण लेने वाले काडर और महिलाओं के बीच ऐसा कोई आदान–प्रदान हो रहा है।

यह निश्चय ही चिंता की बात है क्योंकि यह समूह जेंडर के बारे में बिना किसी इनपुट्स के चलाया जा

यदि हम समूह निर्माण, नेतृत्त्व विकास और वित्तीय प्रबंधन/बुककीपिंग–इन तीनों क्षमता निर्माण इनपुट्स पर ध्यान दें जिन पर सबसे ज़्यादा ज़ोर दिया गया है तो पता चलता है कि इन प्रशिक्षण सत्रों में हिस्सा लेने वाली ज़्यादातर महिलाएं समूहों की नेता थीं। 42.3% समूह निर्माण प्रशिक्षण कार्यक्रम केवल नेताओं के लिए थे। क्षमता निर्माण अवसरों तक पहुंच के मामले में नेताओं को इस लिहाज़ से कई फायदे रहते हैं कि वे तुलनात्मक रूप से ज़्यादा साक्षर होती हैं और समूह की ज़्यादा साक्षर महिलाओं के पास ऐसे अवसरों तक ज़्यादा पहुंच होती है।

यदि हम सबसे अधिक उपलब्ध कराए गए इनपुट्स – समूह निर्माण, नेतृत्त्व विकास और वित्तीय प्रबंधन/बुककीपिंग – पर ध्यान दें तो पता चलता है कि मुख्य ज़ोर समूहों की साक्षर सदस्याओं पर ही रहा है। समूह निर्माण के 67.6% प्रशिक्षणों में ऐसी सहभागी थीं जो 'अधिकांशतः साक्षर' थीं। नेतृत्त्व विकार प्रशिक्षण में ऐसी महिलाओं की संख्या 78.2% थी। हालांकि क्षमता निर्माण कार्यक्रमों में यह फर्क कम था लेकिन था ज़रूर। जेंडर संबंधी इनपुट्स में 53.9% समूहों ने बताया कि उन्हें जो प्रशिक्षण मिला है उनमें ज़्यादातर साक्षर महिलाएं थीं। यह फर्क स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा चलाए जा रहे स्वयं सहायता समूहों में भी मौजूद था।

निरंतर सर्वेक्षण

रहा है जबकि इस कार्यक्रम में जेंडर को सामाजिक न्याय का एक महत्त्वपूर्ण आयाम घोषित किया गया था।

शैक्षणिक अवसरों तक नेताओं और सदस्याओं की असमान पहुंच

जिन स्वयं सहायता समूहों से साक्षात्कार लिए गए, उन सभी में नेताओं और सदस्याओं के बीच शैक्षणिक अवसरों तक पहुंच में भारी फासला था। एस.जी.एस. वाई. में तो यह फर्क गांधी नगर में 8 मार्च को होने वाली रैली के मामले में भी दिखायी दिया। इस रैली में सभी महिलाएं जाना चाहती थीं लेकिन तालुका अफसरों ने केवल नेताओं को ही जाने का मौका दिया। वेलुगू में क्षमता निर्माण पर जितना ज़ोर दिया जाता है उसे देखते हुए यह चिंता की बात है कि वहां भी सबसे पहले काडरों पर और उसके बाद समूह नेताओं पर ही ध्यान दिया जाता है। ज़ाहिर है कि यहां भी सीखने की जादुई दुनिया से साधारण सदस्याओं को बाहर कर दिया गया है। अब ड्वाक्रा, पश्चिमी गोदावरी में इस बात को रेखांकित किया जाने लगा है कि केवल नेताओं को इनपुट्स मुहैया कराने की भी अपनी समस्याएं हैं। इसलिए अब मूलभूत प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सभी सदस्याएं हिस्सा लेती हैं हालांकि कार्यक्रम चलाने वालों को यह अहसास बहुत देर से हुआ है। हमने जिस समूह का अध्ययन किया उसे इस क्रम में पहला अवसर, समूह शुरू होने के सात साल बाद 2003 में उपलब्ध कराया गया था।

स्वयंसेवी संस्थाओं (जिनमें स्वशक्ति को लागू करने वाला एन.जी.ओ. शामिल नहीं है) ने सदस्याओं को भी प्रशिक्षण अवसर उपलब्ध कराने के प्रयास किए हैं। पीस के अंतर्गत वेल्ड परियोजना के विषय में ऐसा किया गया है। जब हमने पीस में उपस्थित कैश टीम के लोगों से पूछा कि स्वयं सहायता समूहों के बारे में उनका सपना क्या है तो उन्होंने सबसे पहली बात यह कही कि "केवल नेताओं पर ही नहीं बल्कि सदस्याओं पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए, समूह नेताओं की तरह समूह सदस्याओं को भी सक्रिय होना चाहिए।"

आनंदी ने भी सभी सदस्याओं की क्षमता विकसित करने पर लगातार ज़ोर दिया है। वहां सीखने के समान अवसर उपलब्ध कराए गए हैं। आनंदी में प्रत्येक समूह से विभिन्न स्तर की महिलाएं प्रशिक्षण कार्यक्रमों में हिस्सा लेती हैं ताकि ज़्यादा से ज़्यादा सदस्याओं की क्षमता में इज़ाफा होता रहे।

शैक्षणिक अवसरों तक पहुंच के लिहाज़ से साक्षरता एक प्रमुख निर्धारक है जिसके बारे में आगे विस्तार से बात की गयी है। आनंदी के अनुभव भी यही दर्शाते हैं कि गरीबी के स्तर से काफी हद तक यह तय हो जाता है कि महिलाएं शैक्षणिक अवसरों तक पहुंच हासिल कर पाती हैं या नहीं। सीखने के विषय में असमानताओं को संबोधित करने के प्रति प्रतिबद्धता हाशिए पर खड़े लोगों को जोड़ने की एक व्यापक चिंता का परिणाम है।

आनंदी द्वारा प्रोत्साहित समूहों में एक नियम यह है कि कर्ज़ा हासिल करने और नेतृत्त्वकारी हैसियत तक पहुंचने के लिए संबंधित सदस्या का प्रशिक्षण की प्रक्रिया से गुज़रना ज़रूरी है। इससे एक तरफ तो यह पता चलता है कि प्रशिक्षण को कितना महत्त्व दिया जा रहा है और दूसरी तरफ इससे समानता का मुद्दा भी सामने आ जाता है जिस पर यह संगठन काफी संज़ीदा है। लेकिन दिक्कत यह है कि जो गरीब औरतें अपना एक दिन का वेतन भी छोड़ने की हालत में नहीं हैं वे प्रशिक्षण कार्यक्रमों में हिस्सा नहीं ले पातीं। इस परेशानी से निपटने के लिए एक विकल्प यह सुझाया गया है कि इस नियम को लागू करने में लचीलापन बरता जाए। कुछ लोगों का कहना था कि प्रशिक्षण में हिस्सेदारी सुनिश्चित करने के लिए महिलाओं को मज़दूरी का जो नुकसान होता है उसकी भरपाई के लिए उन्हें मुआवज़ा दिया जाए। इस प्रक्रिया से गुज़र चुकी पुरानी सदस्याओं को लगता है कि ऐसा करना ज़रूरी नहीं है बल्कि महिलाओं को खुद आगे आना चाहिए। इसी तरह के मुद्दे काडरों ने भी कई बार उठाए हैं क्योंकि उनके प्रशिक्षण का भी एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा समता के बारे में समझ विकसित करने पर केंद्रित रहा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि स्थानीय कार्यकर्त्ता प्रशिक्षण कार्यक्रमों में महिलाओं की हिस्सेदारी, ऋण तक पहुंच और नेतृत्त्व में हिस्सेदारी के मामले में चेतना जगाने का काम करते हैं। इससे लोकतांत्रीकरण के तौर पर समूहों के नेतृत्त्व में बदलाव की चाह मज़बूत होती जाती है।

शैक्षणिक इन्पुट्स

शैक्षणिक अवसर और आजीविका

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि स्वयं सहायता समूहों को ऐसे अवसर उपलब्ध नहीं कराए जा रहे हैं जिनके सहारे वे आजीविका सुदृढ़ीकरण गतिविधियों का चुनाव कर सकें। या उन्हें ऐसे इनपुट्स उपलब्ध नहीं कराए जा रहे हैं जिनके सहारे आयवर्द्धक गतिविधियां शुरू की जा सकें। फॉरवर्ड और बैकवर्ड जुड़ाव (जैसे और कच्चे माल या मार्किटिंग व्यवस्था से जुड़ाव) के अभाव की वजह से ऐसा हो रहा है। यहां हम इस बात पर और नज़दीक से विचार करेंगे कि आजीविका से संबंधित जो इनपुट्स उपलब्ध कराए जा रहे हैं वे कैसे हैं। जिस दस्तावेज़ में ड्वाक्रा कार्यक्रम से संबंधित स्वयं सहायता समूहों के 'बेसिक ओरिएंटेशन' के पाठ्यक्रम की विषयवस्तु दी गयी है और जो पश्चिमी गोदावरी में मंडल स्तर पर उपलब्ध कराया जा रहा है, उसमें सारा ज़ोर आय संवर्धन/सूक्ष्म उद्यमों पर ही रहा है (और प्राकृतिक संसाधनों से संबंधित गतिविधियों जैसी आजीविका सुदृढ़ीकरण संभावनाओं को अनदेखा किया जा रहा है)। इस मॉड्यूल में कच्चे माल, निपुणता, मार्केटिंग

और समूह बनाने के फायदे आदि के बारे में बताया गया है। इन लाभों को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि अब पैकेजिंग और मार्केटिंग का काम ज़्यादा बड़ी तादाद में किया जा सकता है। ज़िला स्तर पर टी.टी.डी.सी. (प्रशिक्षण एवं तकनीकी विकास केंद्र, डी.आर.डी.ए. का एक कार्यक्रम) की ओर से भी प्रशिक्षण

सीखने का रास्ता

वेलुगू समूहों में एस.एच.जी. नेताओं को सीधे–सीधे कोई प्रशिक्षण नहीं मिलता लेकिन सदस्याओं के मुकाबले उन्हें ज़्यादा एक्सपोज़र ज़रूर मिलता है। मंडल सामाख्या की नेताओं को देखने पर यह बात बिलकुल साफ हो जाती है। समूह नेताओं में से चुनी गयी ये महिलाएं अब सीखने और एक्सपोज़र संबंधी कार्यक्रमों के केंद्र में आ गयी हैं। सरकारी प्रतिनिधियों और दौरे पर आने वाले प्रतिष्ठित नागरिकों के साथ भी उन्हीं का ज़्यादा वास्ता रहता है। मॉडल को चालू रखने की ज़िम्मेदारी उन्हीं पर है इसलिए कार्यक्रम में उन्हें सभी ज़रूरी इनपुट्स मुहैया कराने की कोशिश की जाती है। इसी तरह स्वशक्ति में भी समूह स्तर पर सीखने के अवसरों में सारा ज़ोर नेताओं पर ही रहता है। वे स्वयंसेवी संस्था के कार्यालय में हर महीने चक्कर लगाती हैं और फील्ड एवं एक्सपोज़र विज़िट्स पर जा चुकी हैं। भले ही अन्य महिलाएं भी उनके साथ जाएं, सीखने की प्रक्रिया उन्हीं के इर्द–गिर्द घूमती है। समूह की अन्य महिलाओं के मुकाबले ज़्यादा शिक्षित और सशक्त सदस्याओं में से होने के नाते ये महिलाएं सीखने के अवसरों का ज़्यादा तेज़ी से फायदा भी उठा पाती हैं और अपने–अपने समूह को लाभ पहुंचाती हैं। उन पर ज़्यादा ध्यान क्यों दिया जाता है, इसका एक कारण यह बताया गया कि इससे बहुत कम समय में समूह को लाभ मिलने लगता है। मगर इससे कई अमूर्त परिणाम भी पैदा होते हैं। इस तरह की औरतें सूचना का केंद्र बन जाती हैं, समूह की अन्य महिलाओं के मुकाबले आंशिक रूप से बेहतर माली हालत में होती हैं और फलस्वरूप पूरे समूह और उसका एजेंडा तय करने में उनकी ज़्यादा चलती है। वे ज़्यादा जानकारियां हासिल कर पाती हैं और ज़रूरतों के हिसाब से फैसला ले पाती हैं जबकि समूह की सदस्याओं को वे इनमें से बहुत कम जानकारियां देती हैं। इसके बाद वे कायदे–कानून तय करने और समूह में अनुशासन थोपने की स्थिति में पहुंच जाती हैं। समूह की अन्य महिलाएं, खास तौर से संसाधनहीन महिलाएं न तो ऐसी हैसियत के लिए ज़ोर लगा पाती हैं और न ही नेतृत्त्वकारी महिलाओं के दबदबे को चुनौती दे पाती हैं। अगर वे ऐसा करें तो नेताओं की नज़र में गिर जाएंगी। यह नाज़ुक संतुलन हमारे साक्षात्कारों के दौरान शुरू में स्पष्ट नहीं था लेकिन जब कर्ज़ देने के नियमों पर चर्चा चली तो यह बात बिलकुल सामने आ गयी। हमने पाया कि एस.जी.एस.वाई. या स्वशक्ति, दोनों समूहों की महिलाएं नेता पर न तो इस बात के लिए उंगली उठा पा रही थीं कि उसने सबसे ज़्यादा कर्ज़ा कैसे ले लिया है और न ही किस्त न चुका पाने के लिए उसे कुछ कह पा रही थीं। ज़ाहिर है कि भविष्य में मिलने वाले लाभों की उम्मीद वर्तमान में समता के सिद्धांत को पहुंच रही ठेस पर भारी पड़ रही थी।

सरकार ने औरतों को ऐसी सूचनाओं का ग्राहक मान लिया है जिनका इस्तेमाल करते हुए वे सरकार के विकास संबंधी एजेंडा को पूरा करने का साधन भर बनकर रह जाती हैं।

आयोजित किए गए हैं। इन प्रशिक्षणों में केवल साड़ियों की रंगाई, कपड़ों की सिलाई, कढ़ाई और क्रोशिए से टोपियां बनाने के व्यवसायों के बारे में ही बताया जाता है। मौजूदा आजीविका विकल्पों को संबोधित करने और कार्यक्रम पर निर्भरता कम करने की संभावना वाले अन्य इनपुट्स में मशीनो के प्रदर्शन जैसी गतिविधियों को ही शामिल किया गया था। टी. टी.डी.सी. में जिन 24 मशीनों का प्रदर्शन किया गया उनमें बढ़ई के औज़ार, चरखे, मिर्च कूटने वाली मशीनों और नारियल जटा से रस्सी बनाने वाली मशीनें शामिल थीं। लेकिन औरतों को सिर्फ मशीनें दिखा देने का कोई खास फायदा नहीं था। यह बात एक स्वयं सहायता समूह के साथ साक्षात्कार में स्पष्ट हो गयी।

जब हमने महिलाओं से प्रशिक्षण के बारे में पूछा तो उन्होंने चुटकी लेते हुए कहा "अरे हमसे ये पूछो उन्होंने क्या–क्या कहा!" बार–बार पूछने पर उन्होंने जवाब दिया। बस इतना कहा : "हमें नहीं पता," और "हम वहां गए, चावल खाए और लौट आए!" बाद में उन्होंने बताया कि वहां उन्हें मशीनें तो दिखायी गयीं लेकिन उनके पास मशीनें खरीदने के लिए पैसा नहीं है। उन्हें 'बड़े कारोबार' करने का सुझाव दिया गया जो उनके पल्ले नहीं पड़ता। औरतों का कहना था कि प्रशिक्षकों को ऐसी चीज़ें दिखानी चाहिए जो ज़्यादा वास्तविक हों– "छोटी–छोटी चीज़ें, जो हम कर सकें।" साक्षात्कार के दौरान महिलाओं ने सूक्ष्म उद्यम संबंधी उन सारे विकल्पों को स्पष्ट रूप से खारिज़ कर दिया जो उन्हें प्रशिक्षण में सुझाए गए थे। उन सुझावों की व्यावहारिकता के बारे में महिलाओं के साथ संवाद की कोई प्रक्रिया ज़ारी नहीं रखी गयी थी।

चर्चा के दौरान हमने यह जानने का प्रयास किया कि महिलाओं को सूक्ष्म उद्यम का विकल्प व्यावहारिक क्यों नहीं लगता। हमने उनसे पूछा कि वे इनमें से किसी विकल्प में रिवॉल्विंग फंड का पैसा क्यों नहीं लगा सकतीं। जवाब में उन्होंने बताया कि ड्वाक्रा के अफसरों ने भी इन गतिविधियों को शुरू करने के लिए कहा था। महिलाओं ने जो कुछ बताया उसका निचोड़ यह था कि इन संभावनाओं को आगे बढ़ाने के लिए उनके साथ कोई गहरा संवाद नहीं चलाया गया था।

इसी तरह का अनुभव स्वशक्ति कार्यक्रम की महिलाओं का रहा। एक समूह नेता ने गुस्से में कहा, "वे लोग हममें से कुछ को आयवर्धक परियोजनाएं दिखाने ले गये थे। वहां हमने मोमबत्ती बनाने, मधुमक्खियां पालने, पत्तल बनाने, दुग्ध उत्पाद और ऐसी ही दूसरी चीज़ें बनाने की मशीनें देखीं। लेकिन कोई हमें समझाने वाला नहीं था। न हमने किसी चीज़ को छुआ न किसी चीज़ का इस्तेमाल किया। यह सब कुछ एक ही दिन में हो गया। तो फिर भला हम कैसे तय कर लें कि हमारे लिए क्या अच्छा है और हम क्या कर सकते हैं? हमें तो यह भी नहीं मालूम कि इन चीज़ों के लिए क्या करना चाहिए।" इसकी बजाय संगठन ने अपनी ही क्षमताओं के आधार पर तकनीकियों और बाज़ार तक पहुंच का प्रशिक्षण शुरू किया है ताकि महिलाओं को इकाई दर पर साल के पत्तों की पत्तलें बनाने के काम में लगाया जा सके। यह गतिविधि औरत सामूहिक रूप से कर पाए, इस पर न तो विचार किया गया है और न ही ऐसा सुझाव दिया गया है। इसका मतलब है कि संगठन और

उत्पादन की ऐसी पद्धतियों को नहीं अपनाया जा रहा है जिनमें सामुदायिक हिस्सेदारी और लाभों को अधिकतम स्तर तक बढ़ाया जा सकता है।

वॉशिंग पाउडर, साबुन, शैम्पू, अगरबत्ती, मोमबत्ती, पत्तल–इन विकल्पों के बारे में ड्वाक्रा और स्वयंसेवी संस्था के सालों के अनुभव से पता चलता है कि उनके लिए भारी प्रतिस्पर्धा झेलनी होगी, प्रोत्साहक एजेंसी पर निर्भरता रहेगी और लैंगिक छवियों को चुनौती देने की क्षमता कम होगी। यदि हम यह मान लें कि आय का कोई अतिरिक्त स्रोत न होने के मुकाबले यही गतिविधियां बेहतर हैं तो भी यह समस्या अपनी जगह है कि संगठन को महिलाओं के लिए इकाई दर मज़दूरी के अलावा और कोई भूमिका दिखायी नहीं देती। यह कार्यक्रम की कल्पना में सशक्तीकरण पर फोकस के अभाव की व्यापक समस्या का प्रतिबिंब है।

मौजूदा आजीविका विकल्पों (सूक्ष्म उद्यम नहीं) के सुदृढ़ीकरण की दृष्टि से उपलब्ध कराए गए इनपुट्स ऐसे रहे हैं जिनसे महिलाओं को कुछ खास सीखने का अहसास नहीं होता। हमने गुजरात में एक गांव की औरतों से कृषि संबंधी प्रशिक्षण के बारे में सुना था। इन महिलाओं को लगता था कि जो उन्हें प्रशिक्षण में 'पढ़ाया' गया उन सारे कामों को तो वे पहले से ही करती आ रही थीं। एकमात्र नयी बात कीटनाशकों के प्रयोग से संबंधित थी। लेकिन रासायनिक कीटनाशकों के फायदे–नुकसान या कीटनाशकों पर निर्भरता के कारण पैदा होने वाले कर्ज़ की आशंका के बारे में कोई चर्चा नहीं की गयी थी। इस मामले में खतरा यह है कि औरतों को सोच–विचार कर फैसले लेने की योग्यता प्रदान किए बिना कहीं व्यावसायिक हितों को प्रोत्साहन न दिया जाने लगे। इसी तरह का खतरा सरकारी कार्यक्रमों के बारे में सूचनाएं उपलब्ध कराने की प्रक्रिया में दिखायी देता है। इनमें ऐसे कार्यक्रमों की जानकारी दी जाती है जिनमें औरतों को जानकारियों को ग्रहण करने वाला ही माना जाता है। उनमें यही अपेक्षा की जाती है कि वे सरकार के विकास संबंधी एजेंडा को पूरा करने के लिए इन सूचनाओं के अनुसार काम करेंगी। महिलाओं को इस तरह की सूचनाओं के साथ आलोचनात्मक संवाद कायम करने का कोई साधन उपलब्ध न कराने से औरतों, उनके संसाधनों और उनके श्रम के उपयोगितावादी इस्तेमाल की आशंका और बढ़ जाती है।

स्वशक्ति कार्यक्रम तथा एस.जी.एस.वाई. कार्यक्रम में आय संवर्धन से संबंधित प्रशिक्षण की विषयवस्तु तुलनात्मक रूप से कुछ हद तक ज़्यादा सघन दिखायी दी। उसमें व्यावहारिकता आकलन की संभावना भी ज़्यादा थी। लेकिन स्थानीय औरतों को व्यावहारिकता के आकलन में जोड़ना महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाता। उनका जुड़ाव नई तकनीकियों के प्रशिक्षण और व्यावसायिक विचारों से संपर्क तक ही सीमित था।

अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया कि इस बेहद संकुचित दायरे से आगे बढ़ कर आर्थिक रूप से कमज़ोर तबके की महिलाओं के साथ सुदृढ़ीकरण वाले दृष्टिकोण की तरफ बढ़ने से फायदे होता है। मिसाल के तौर पर, सरकारी कार्यक्रमों के नेतृत्त्व के पास अक्सर गरीबी की जो मध्यमवर्गीय समझ दिखायी देती है वह वेल्ड कार्यक्रमों में हिस्सा ले चुकी एस.एच.जी. सदस्याओं की समझ से बिलकुल अलग थी। एक सहभागी महिला ने गरीबी की अपनी समझ इस तरह व्यक्त की – "आपके पास पैसा है, मेरे पास नहीं है। लोग आपकी बात सुनते हैं। अगर मैं बोलती हूं तो सब कहते हैं कि मैं घमंडी हूं। आप बोलती हो तो सब सुनते हैं। तो गरीबी का मतलब यही है कि कुछ लोग औरों से 'छोटे' हो जाते हैं।"

वेल्ड कार्यक्रम में हिस्सा लेने वाली एक सहभागी ने गरीबी के बारे में अपनी समझ इन शब्दों में व्यक्त की : "आपके पास पैसा है, मेरे पास नहीं है। लोग आपकी बात सुनते हैं। अगर मैं बोलती हूं तो सब कहते हैं कि मैं घमंडी हूं। आप बोलती हो तो सब सुनते हैं। तो गरीबी का मतलब यही है कि कुछ लोग औरों से 'छोटे' हो जाते हैं।"

एक और सहभागी ने कहा, "हम ज़िंदा नहीं रह सकते। हमारे पास पैसा नहीं है। हमारे पास कोई आमदनी, कोई उपज, कोई बरसात, कोई अच्छा मौसम, कोई वक्त का मौसम नहीं है। हमारे पास न साक्षरता है, न हमें पढ़ने के मौके मिले। हमारे मां–बाप अमीर नहीं थे। सब जात–बिरादरी की सोचते हैं, हम माला और मदिगा[1] हैं इसीलिए हम गरीब हैं और पिछड़े हैं। हमने किसी ज़माने में ऊंची जाति वालों के घरों में दासियों की तरह काम किया था। उन्होंने हमारे श्रम का शोषण किया। उन्होंने हमसे काम लिया पर पैसा एक नहीं दिया। हमें सदा गांव के नेता से, उन्हीं ऊंची जाति वालों से भारी–भरकम ब्याज पर कर्ज़ा लेने को मज़बूर किया जाता था। हमारे पास कोई ज़मीन नहीं थी, हम भिखारियों जैसे थे। इसीलिए ये गैरबराबरी और गरीबी है। ऊंची जाति के रेड्डियों ने कभी हमें चैन से नहीं जीने दिया। हम एक वक्त की रोटी के बदले उनके लिए काम करते रहे। वे दिन भर काम करवा के ज़रा–सा खाना देते थे। हमने उनके घरों में बंधुआ मज़दूरों की तरह काम किया है...। हमें सरकार से कोई मदद नहीं मिली, इसीलिए हमारे पास कोई ताकत नहीं है।"

गरीबी, शिक्षा और ज्ञान के बीच क्या संबंध है, इस बारे में इन महिलाओं की समझ बहुत साफ थी।

"जो अमीर हैं उनके पास समझदारी और तमीज़ नहीं होती। पर उनके पास ताकत और पैसा है इसलिए वे उसे ही अपना ज्ञान बताते हैं। पर हम तो गरीब हैं...। अमीरों की तरह हमारे पास भी बुद्धि है लेकिन वे कहते हैं कि हम दिमाग से भी गरीब हैं...। हम गरीब ज़रूर हैं पर हमारे पास धरती और कुदरत के बारे में बहुत ज्ञान है। हमारे पास बुद्धि भी है। लेकिन उसे पनपने का कोई मौका नहीं है। पढ़े–लिखे कुछ न कुछ कर लेते हैं...। अगर गरीब विद्यार्थी पास हो जाता है तो भी वह आगे नहीं पढ़ पाता। उसके पास पढ़ने को पैसे नहीं होते। हमारे मां–बाप हमारी पढ़ाई का खर्चा नहीं उठा पाते थे लेकिन हमें अपनी लड़कियों को पढ़ाना चाहिए। इसीलिए हम नाइट स्कूल चाहते हैं।"

यहां इस बात को संदर्भ में रखना ज़रूरी है कि हमने जो उग्र बातें सुनीं उनका ताल्लुक संभवतः पीस के कार्यक्षेत्र तेलंगाना इलाके में सक्रिय पीपुल्स वॉर ग्रुप (पी.डब्ल्यू.जी.) के राजनीतिक प्रभाव से भी रहा होगा। यह कहना भी मुश्किल है कि वेल्ड कार्यक्रम ने इस समझ को परिपक्वता देने में किस हद तक मदद दी है। वेल्ड की पाठ्य सामग्री में गरीबी की जो व्याख्या दिखायी देती है वह उतनी गहरी नहीं है जितनी इन महिलाओं की बातों में दिखायी देती है। वेल्ड की सामग्री में यह समझ पूरी किताबों में यहां–वहां फैली पड़ी है। बहरहाल, अध्ययन के दौरान हमने पीस से जुड़ी जिन अन्य एस.एच.जी. सदस्याओं के साक्षात्कार लिए थे उनके मुकाबले इन महिलाओं में ज़्यादा आत्मविश्वास, ज़्यादा जोश और समझदारी दिखायी दी। यह बात वेल्ड से जुड़ी महिलाओं तथा अन्य महिलाओं के बीच फर्क को स्पष्ट कर देती है।

[1] अनुसूचित जातियां।

हमारा मानना है कि महिलाओं के लिए नियमित मंचों पर उपलब्ध कराए जाने वाले कुछ इनपुट्स को अगर इस मौजूदा समझ के साथ जोड़ दिया जाए कि औरतें अपनी हैसियत के बारे में क्या सोचती हैं तो काफी मदद मिल सकती है।

पिछले अध्याय में हमने देखा कि किस तरह आनंदी का आजीविका से जुड़े सवालों के साथ काफी समग्रतावादी दृष्टिकोण रहा है। आनंदी का आजीविका के मौजूदा साधनों पर ज़्यादा फोकस रहता है। एक कार्यकर्त्ता ने कहा – "सबसे अच्छी चीज़ यह होगी कि निरंतर चलने वाली आजीविका सुरक्षा के लिए सूचना और सहायता दी जाए। उसके बाद समुदाय खुद इकट्ठा होकर मौजूदा विकल्पों को सुरक्षित करके नये प्रयास शुरू कर देंगे। जब तक उनके मौजूदा विकल्प सुरक्षित नहीं होंगे वे नये विकल्पों की पड़ताल कैसे कर सकते हैं?" यह व्यावहारिक सोच थी। यह सोच संगठन की शिक्षा के बारे में इस राय पर भी आधारित है कि उसके ज़रिए समुदायों को खुद अपना

समझ की स्पष्टता

"हमारी गरीबी सिर्फ हमारी समस्या नहीं है – सरकार को सोचना चाहिए कि उसकी कौन–सी बातों से हम गरीब होते जा रहे हैं। हमारे जंगल हमारे नहीं रहे, हमारा पानी छिन गया, हमारे बच्चों को हमारे खेतों में काम नहीं मिलता और दूर जाकर काम करना पड़ता है। थोड़े दिन में हमारे पास कुछ नहीं बचेगा। कुछ खाने को नहीं होगा। मेरा बेटा बीमार है। वह किसी रोग से बीमार नहीं है, ज़रा देखो उसे। जब अपने इर्द–गिर्द ये सब कुछ देखता है तो वो कैसे जिए और कैसे अपने बच्चों का पेट पाले?" जमुना सूखे, इक्का–दुक्का पौधों वाले खेतों और मरियल जानवरों की तरफ इशारा करते कहती है।

उसका कहना है कि उसके पति, दो बेटियां और एक पोता दिन भर तपती दोपहरी में जंगलों में महुआ बीनते हैं ताकि घर की आमदनी में कुछ सहारा मिले। खेतों में पानी न होने के कारण कुछ नहीं बचा है। पहले जंगलों से जो संसाधन मिल जाते थे अब वे भी या तो खत्म हो चुके हैं या उनके इस्तेमाल पर पाबन्दी लगा दी गयी है। परिवार के बहुत सारे सदस्यों को महीनों बाहर जाकर काम करना पड़ता है। पहले तो साल के कम–से–कम एक हिस्से के लिए खेतों से खाने की चीज़ें मिल जाती थीं।

"क्या आपको लगता है कि हम इच्छा से दूसरे स्थानों पर जाते हैं? ये सब कुछ इसलिए हो रहा है कि सरकार हमारी फिक्र नहीं करती हम आदिवासी और गरीब हैं इसलिए कोई हमारी परवाह नहीं करता। सिर्फ आनन्दी संस्था हमारी बात सुनती है और हमारी परेशानियों को सही अफसरों और महकमों तक पहुंचाने में मदद देती है। हमने ये सब कुछ सीख लिया है। अब हम बेईमान या शोषक अफसरों को घेरकर अपनी शिकायत उन्हें सुनाते हैं। हम चाहें तो उन्हें अदालत में भी घसीट सकते हैं!" वे ऐलानिया स्वर में कहती हैं। दोषी अफसरों का ज़िक्र इस संदर्भ में था कि एक बार औरतों ने खुद ही संगठन की एक सदस्या के साथ दुर्व्यवहार करने वाले वन विभाग के एक बदमाश अफसर के खिलाफ कार्रवाई का फैसला लिया था। औरतों ने अपने ही बूते पर तय किया कि उसके खिलाफ सख्त कार्रवाई होनी चाहिए, औरतों को लघु वन उत्पादों पर अधिकार मिलना चाहिए और सरकारी अफसरों के मनमानेपन पर अंकुश लगना चाहिए।

साक्षरता के साथ जुड़ाव का अभाव

तकरीबन सभी मामलों में आजीविका कार्यक्रमों और साक्षरता के बीच कोई जुड़ाव दिखायी नहीं देता था।

यह बात एस.एच.जी. को केंद्र में रखकर चलाए गए साक्षरता अभियान के कारण अकसर सुर्खियों में रहने वाले पश्चिमी गोदावरी ज़िले के सतत् शिक्षा कार्यक्रम में आजीविका के लिए किए जा रहे प्रयासों के बारे में भी सही है। मिसाल के तौर पर, डिटर्जेंट जैसे उत्पादों की तैयारी के बारे में सिखाते हुए पढ़ने–लिखने की चीज़ों का कोई इस्तेमाल नहीं किया जाता। किस चीज़ की कितनी मात्रा का इस्तेमाल होगा और डिटर्जेंट कैसे बनेगा, इसकी विधि ज़ोर–ज़ोर से पढ़कर सुना दी जाती है। जिन्हें लिखना आता है वे उसे लिख लेती हैं (और इस तरह नवसाक्षर महिलाएं पीछे छूट जाती हैं)। प्रौढ़ शिक्षा कार्यकर्त्ताओं को यह विधि राज्य संसाधन केन्द्र (जिसकी स्थापना प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में सहायता देने के लिए की गयी थी) की ओर से प्रकाशित की गयी एक पुस्तिका से पता चली थी और वही औरतों को इसके बारे में पढ़ा रहे थे। लेकिन उन्होंने यह पुस्तिका औरतों को नहीं दी। उनका कहना था कि पुस्तिका में बहुत सारी चीज़ों के बारे में बताया गया है इसलिए उसे औरतों को देने का कोई फायदा नहीं होगा। इस पुस्तिका के आधार पर चीज़ें तैयार करने के बारे में भी कोई कोशिश नहीं की गयी थी। अपने एक दौरे में हमने देखा कि डिटर्जेंट बनाने की विधि तो फोटोकॉपी कर ली गयी थी लेकिन उसकी भाषा और लिखने का ढंग ऐसा था कि नवसाक्षर उसे नहीं समझ सकते थे।

स्वशक्ति के मामले में गुजरात विद्यापीठ साक्षरता विस्तार कार्यक्रम की सहायता से एक साक्षरता कार्यक्रम शुरू किया गया है। उसकी विषयवस्तु और सामग्री पूरे राज्य के लिए विकसित किए गए नमूने की तर्ज़ पर है। उसमें मुख्यधारा की कृषि पद्धतियों के बारे में बताया गया है जो आदिवासी समुदायों के लिए अकसर उपयोगी नहीं होती। उसमें ऐसे सांस्कृतिक तौर–तरीकों का भी ज़िक्र आया है जो इस इलाके के लिए अनजाने और नए हैं। साक्षरता सामग्री में न तो यहां के लोगों के मुख्य व्यवसायों का उल्लेख है और न ही यहां की महिलाएं इस सामग्री में उल्लिखित फसलों को पहचान पाती हैं। वे फसलें उनके इलाके में पैदा ही नहीं होतीं।

जब शिक्षा सामग्री लोगों के लिए उपयोगी नहीं होती और उससे लोगों को अपनी ज़िंदगी से जुड़ी जानकारियां और दक्षता नहीं मिल पाती तो सारी मेहनत के बावजूद सीखने का यह अवसर बेकार चला जाता है।

सशक्तीकरण करना चाहिए न कि दीर्घकालिक समस्याओं के अल्पकालिक समाधान मुहैया कराने चाहिए। इस सोच के नतीजे दिखायी देने लगे हैं। महिलाएं वन उपज के मामले में वन विभाग के साथ, सूखा राहत व काम के बदले भोजन कार्यक्रम में मज़दूरी के सवाल पर सरकारी महकमे के साथ, और किस्त न चुका पाने या बड़ा ऋण पाने के लिए बैंकों के साथ आत्मविश्वास और ताकत के साथ सौदेबाज़ी करती हैं। ये सारे काम महिला फेडरेशन के ज़रिए हुए हैं। महिला फेडरेशन इन मांगों को अधिकार के रूप में पेश करती है और अपना पक्ष रखने के लिए महिलाएं तर्कसंगत पद्धति से बात करती हैं।

खाद्य सुरक्षा अभियान महिला संगठनों के विरोध के कारण ही शुरू किया गया था। महिला संगठनों को काम के बदले भोजन कार्यक्रम में कार्यस्थलों के चुनाव और मज़दूरों के चुनाव में सरकारी जवाबदेही के अभाव पर काफी एतराज था। एक क्लस्टर से उठी इन आपत्तियों और अन्य इलाकों में ऐसी ही स्थितियों को देखते हुए बाद में ये फैसला लिया गया कि और ज़्यादा जानकारियां इकट्ठा की जाएं और क्लस्टर स्तर पर बैठकें आयोजित करके पूरी समस्या के सारे आयामों को अच्छी तरह समझा जाए। इसके बाद क्लस्टर स्तर से महिलाएं इस प्रक्रिया को अपने–अपने गांवों तक ले जाने लगीं। समुदायों में इस बात को लेकर बड़ा गुस्सा था कि लगातार तीसरे साल सूखा पड़ने के बावजूद सरकार इस दिशा में पहले की तरह उदासीन ढंग से काम कर रही थी और कामों व लाभों के बंटवारे में सबसे निर्धन तबके के लोग हर बार पीछे छूट जाते थे। इन्हीं चर्चाओं को फेडरेशन की बैठकों में आगे बढ़ाया गया और निर्णयकारी पदों पर बैठे सदस्यों–क्लस्टर प्रतिनिधियों, समिति सदस्याओं, फेडरेशन सदस्याओं–से इस समस्या के समाधान के लिए सुझाव मांगे गए। इन दोनों स्तरों पर महिला नेता निर्णय प्रक्रिया का केंद्र बन चुकी हैं। उनकी सीख और अनुभव औरों से काफी ज़्यादा हैं। इस प्रक्रिया में संगठन की भूमिका काफी महत्त्वपूर्ण रही है। यह महिलाओं के साथ 'कदम से कदम मिलाकर चलने' की, उन्हें समस्याओं को परिभाषित करने, कारणों का विश्लेषण करने और परिभाषित करने में मदद देने की प्रक्रिया थी। इसमें संरचनागत, संस्थागत और अन्य कारकों को चिन्हित किया गया और समस्या को जन्म देने वाली ताकतों और उनकी भूमिकाओं को पहचाना गया।

जब अवधारणाओं और मुद्दों का विश्लेषण ज़रूरी हो गयी तो प्रशिक्षण की रूपरेखा तैयार की गयी। इन कार्यक्रमों में सूचनाओं और रणनीति का सुदृढ़ीकरण किया गया जिनमें महिलाओं व संगठन, दोनों ने अपना समय और संसाधन दिए। सीखने की प्रक्रियाओं के अभाव में ये कोशिशें संभव नहीं हो सकती थीं क्योंकि इससे महिलाओं को अपने अधिकारों को समझने और उनके लिए मिलकर आवाज़ उठाने की वैकल्पिक रणनीतियां मिलीं।

आनंदी से जुड़े समूहों ने आजीविका के क्षेत्र में स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों के अलावा शिक्षा से संबंधित चिंताओं को भी बार–बार उठाया है। एक सरपंच अपने गांव में स्कूल की हालत को लेकर बहुत चिंतित थी। स्थिति यह थी कि पाठशाला भवन की खस्ता हालत के कारण शिक्षक पंचायत के दफ्तर में बच्चों को पढ़ाता था। सरपंच ने तालुका अफसरों से गांव में स्कूल की इमारत बनवाने के लिए बार–बार दरख्वास्त दी लेकिन तालुका अधिकारी हर बार उसे यह कहकर टाल देता था कि उसे मालूम है इस गांव में सिर्फ चार बच्चे स्कूल जाते हैं। सरपंच ने अफसर को कहा कि आप एक बार स्कूल खोल दीजिए और फिर देखिए– "कितने बच्चे पढ़ने आते हैं।" सरपंच ने ज़िला स्तर तक इस मामले को उठाया और आखिरकार गांव में स्कूल की दरख्वास्त पर मंजूरी मिल गयी।

शैक्षणिक अवसर और अभिशासन

अध्ययन से पता चलता है कि इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों से सरकार को स्वयं सहायता समूहों की सदस्याओं को विभिन्न योजनाओं के बारे में जानकारियां प्रदान करने का मौका मिल जाता है। इससे सूचनाओं के प्रसार का काम आसान हो जाता है। ये कार्यक्रम एस.एच.जी. नेताओं को योजनाओं के क्रियान्वयन में शामिल करने का भी एक अच्छा साधन रहे हैं। इन नेताओं के माध्यम से महिलाओं को नसबंदी शिविरों में ले जाया जाता है,

गांव में वृक्षारोपण आदि के बारे में जानकारियों का प्रसार किया जाता है। इन कार्यक्रमों में अपनी हिस्सेदारी के बारे में नेताओं ने जो जानकारी दी उससे यह स्पष्ट था कि उन्हें सिर्फ इस्तेमाल किया जा रहा है। यह बात नेताओं को दिए जाने वाले इनपुट्स के स्वरूप से भी साबित होती थी। वेलुगू द्वारा प्रोत्साहित एस.एच.जी. से जुड़ी महिलाओं ने बताया कि समूहों में सरकारी कार्यक्रमों और लड़कियों की हालत पर तो जानकारी दी जाती थी लेकिन इस बारे में कभी चर्चा नहीं होती थी कि उचित मूल्य दुकानों में कितनी धांधली चल रही है और किस तरह उन्हें सब्सिडियों से वंचित किया जा रहा है। स्वशक्ति से जुड़े एस.एच.जी. की सदस्याओं और एस.जी.एस.वाई. से जुड़े समूह की सदस्याओं ने भी बताया कि उनके समूहों में सरकारी कामों में कम वेतन और जंगलात के कार्यकर्त्ताओं द्वारा ज़ोर–जबर्दस्ती जैसी समस्याओं पर कोई चर्चा नहीं हुई। ज़ाहिर है सरकार औरतों को नियोजन, फीडबैक या अपने कार्यक्रमों में उत्तरदायित्व सुनिश्चित करने की प्रक्रियाओं में सक्रिय रूप से शामिल नहीं करना चाहती। इससे सरकार का काम और मुश्किल हो जाएगा।

सरकार को महिलाओं तक संदेश पहुंचाने के लिए प्रशिक्षण और बैठकों के रूप में एक उपयोगी ज़रिया मिल गया है। बहरहाल, ऐसा भी नहीं है कि महिलाएं सभी जानकारियों को सरकारी निर्देशों के अनुसार ही लागू करती हों। उन्हें भी पता है कि कई जानकारियां उनके किसी काम की नहीं होतीं। मगर उन्हें जिस तरह की जानकारियां मुहैया करायी जा रही हैं उनके ज़रिए वे सोच–विचार कर फैसला नहीं ले सकतीं। उन्हें तो उपलब्ध करायी जा रही सेवाओं को चुपचाप स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

ड्वाक्रा समूह की सदस्याओं ने बताया कि मंडल विकास कार्यालय की ओर से उन्हें जिन मासिक बैठकों में बुलाया जाता है उनमें 'सफाई और हरियाली', पल्स पोलियो, कल्याण योजनाओं, परिवार नियोजन आदि शीर्षकों पर ही चर्चा होती थी। बैठकों में उन्हें इस बात के लिए तैयार किया जाता है कि वे अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों में भेजें और सरकारी अस्पतालों का इस्तेमाल करें। इस बारे में अधिकारी यह कारण बताते थे– "हम आपके बच्चों के लिए मास्टरों की तनख्वाह पर इतना खर्चा कर रहे हैं। फिर भी आप लोग अपने बच्चों को प्राइवेट स्कूलों में भेज रहे हैं – क्या यह बुरी बात नहीं है?" चर्चा के दौरान महिलाओं ने इस बात की तरफ संकेत किया कि उन्हें जिन कार्यक्रमों को अपनाने और बढ़ावा देने के लिए उकसाया जा रहा था वे लाज़िमी तौर पर हमेशा फायदेमंद नहीं होते। जब हमने पूछा कि महिलाओं ने पौध कार्यक्रम अपनाया है या नहीं तो उन्होंने कहा, "हां, मगर फायदा क्या है? बकरी आएगी और उन्हें खाकर चली जाएगी...।" हमने पूछा, "लेकिन क्या आप उनके चारों तरफ सुरक्षा का इंतज़ाम नहीं कर सकते?" उनमें से एक ने कहा, "सिर्फ धातु के कटघरे टिकते हैं...। स्कूल के पास जो पौधे लगाये थे वही ज़िंदा बचे हैं। वह भी इसलिए कि नीम के पेड़ थे जो इतने कड़वे होते हैं कि बकरी उन्हें खाती ही नहीं।" अपनी बात खत्म करते हुए उसने कहा, "मैंने तो ड्वाक्रा में जाकर यही सब कुछ सीखा है।" ज़ाहिर है इन मुद्दों को संबोधित करने या पौधों के चुनाव पर ज़्यादा चर्चा नहीं होती जिनके ज़रिए ऐसे इनपुट्स पर समुदाय का 'स्वामित्व' सुनिश्चित किया जा सकता है।

प्रशिक्षण और कार्यशालाओं के अलावा ड्वाक्रा के क्षमता निर्माण कार्यक्रम में परियोजना कार्यकर्त्ताओं की दो दिवसीय बैठकें भी आयोजित की जाती हैं जिनको ज़िला स्तरीय परियोजना निदेशक संबोधित करते हैं। साक्षात्कारों और इन बैठकों के मिनट्स को देखने पर

पता चला कि ये बैठकें मुख्य रूप से निगरानी और नियोजन के उद्देश्य पर केंद्रित थीं। इन बैठकों में सबसे ज़्यादा ज़िक्र नई योजनाओं के बारे में ओरिएंटेशन, प्रदर्शन मूल्यांकन (जिसको मापने के लिए मात्रात्मक मानक तय किए गए थे) और भविष्य के लक्ष्यों से संबंधित जानकारियां (जैसे, नाबार्ड की ओर से कितने ऋण वितरित किए जाने वाले हैं) का रहा।

ज़रूरत इस बात की है कि महिलाओं के क्षमता निर्माण के साथ उन्हें उपयोगी जानकारियां मुहैया करायी जाएं। अध्ययन में हमने पाया कि अगर उन्हें उपयोगी सूचनाएं उपलब्ध करा दी जाती थीं तो उनके क्षमता निर्माण पर ध्यान नहीं दिया जाता था। फलस्वरूप, गुजरात में स्वशक्ति को लागू करने वाली स्वयंसेवी संस्था इनरेका महिलाओं को जानकारियां

मुद्दों के परे प्रशिक्षण

आनंदी द्वारा खास मुद्दों पर दिए जा रहे प्रशिक्षण को संगठन द्वारा नेताओं को दिए जाने वाले प्रशिक्षणों के संदर्भ में समझा जाना चाहिए। नेताओं को उनकी भूमिकाओं और बढ़ती ज़िम्मेदारियों को ध्यान में रखते हुए व्यवस्थित और चरणबद्ध ढंग से प्रशिक्षण दिया गया है। सबसे पहले समूह की अवधारणा और शोषण की समस्या को संबोधित करने की पद्धति पर नेताओं का ओरिएंटेशन किया जाता है। दूसरे चरण में महिलाओं को समस्याओं का सामूहिक रूप से विश्लेषण करने और उनसे निपटने के लिए तैयार किया जाता है। तीसरे चरण में आजीविका से जुड़े मुद्दों पर ज़्यादा ज़ोर रहता है। इस क्रम में ऋण पर आधारित प्रयासों और आर्थिक कुशलक्षमता के बुनियादी मुद्दों के बारे में बताया जाता है। सागटाला क्षेत्र की नेता इस तरह के तीन चरणों से गुज़र चुकी हैं। समय–समय पर विभिन्न मुद्दों पर भी प्रशिक्षण आयोजित किए जाते हैं। उन समितियों के लिए भी शैक्षणिक अवसर आयोजित किए जाते हैं जिनसे वे नेता जुड़ी हुई हैं। जो समूह थोड़ा पुराने हो चुके हैं अब उनकी सदस्याओं में से दूसरी पंक्ति की नेताओं को चुनकर उन्हें प्रशिक्षित किया जा रहा है ताकि वे भी नेतृत्त्वकारी भूमिकाएं निभाने के योग्य हों। आशा की जाती है कि इससे गांवों में उनकी भी पैठ बढ़ेगी। इसी आधार पर अब फेडरेशन की नेता और क्लस्टर प्रतिनिधि दूसरे गांवों में जाकर समूह बनाने और काम शुरू करने का ज़िम्मा संभालने लगी हैं। पुरानी नेता समूहों को शुरुआती चरण में मदद देती हैं और बैठकों के संचालन में मार्गदर्शन करती हैं। इस प्रकार मौजूदा नेता महिलाएं फेडरेशन के दायरे को फैलाने और सुदृढ़ करने पर ध्यान दे सकती हैं जबकि अपने गांव का काम खुद दूसरी पंक्ति की नेता संभाल सकती हैं।

अब संगठन की ज़िम्मेदारियों के हिसाब से विभिन्न स्तरों पर प्रशिक्षण आयोजित किए जा रहे हैं। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम और इनपुट्स राजकोट ज़िले में अन्य स्वयंसेवी संस्थाओं के साथ आनंदी द्वारा हासिल किए गए अन्य अनुभवों पर भी आधारित हैं। राजकोट में आनंदी एक क्षमता विकास रणनीति के अनुसार काम करता है। वहां ब्लॉक स्तरीय कार्यकर्त्ताओं, ग्राम स्तरीय कार्यकर्त्ताओं और समुदाय सदस्यों के साथ–साथ पंचायतों के सदस्यों और नेताओं के लिए भी प्रशिक्षण आयोजित किए जाते हैं।

मुहैया कराने के लिए सरकारी विभागों के अधिकारियों को तो आमंत्रित करती है लेकिन संस्था ने ऐसी कोई प्रक्रिया शुरू नहीं की है जिसके ज़रिए महिलाएं स्थानीय स्तर पर अभिशासन का कोई मुद्दा उठाने के लिए भी अपनी क्षमताओं को मज़बूत कर सकें।

अभिशासन के सवालों पर आनंदी के शैक्षणिक एजेंडा में सरकारी योजनाओं के बारे में सूचनाएं मुहैया कराने से लेकर उनको हासिल करने के तरीके और विकास में सरकार की भूमिका के विश्लेषण तक बहुत कुछ शामिल है। महिलाओं को यह समझाने के लिए सरकारी विभागों में ले जाया जाता है कि विभिन्न फॉर्म और अन्य ज़रूरतों को कैसे पूरा किया जाता है। उन्हें ऐसे कार्यक्रमों में ले जाया जाता है जहां सरकारी अधिकारी उनसे बात करते हैं और महिलाएं अपने हितों के लिए आवाज़ उठा सकती हैं।

उदाहरण के लिए, स्वास्थ्य अभियान के दौरान महिलाओं को अपनी स्वास्थ्य समस्याओं का विश्लेषण करने और उन समस्याओं को परिवार की स्थिति, संसाधनों तक पहुंच, इलाके में रोज़गारों की स्थिति तथा भोजन व स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता के साथ जोड़ कर देखने के बारे में बताया गया। इस अभियान में महिलाओं को स्वास्थ्य सुविधाओं को सरकारी संसाधन फ्रेमवर्क और उन कारकों से जोड़ कर दिखाया गया जो सेवाओं तक पहुंच और सेवाओं के स्वरूप को प्रभावित करते हैं। इस विश्लेषण के फलस्वरूप और समाज व परिवार में तथा मज़दूर व आदिवासी होने के नाते उनकी स्थिति के विश्लेषण के आधार पर सदस्याओं ने इस बात को महसूस किया कि स्वास्थ्य सुविधाओं तक उनकी पहुँच क्यों नहीं है और किस तरह घटते प्राकृतिक संसाधनों और आय के कारण उनकी सेहत खराब होती जा रही है।

जैसा की आनंदी द्वारा अपनायी गयी प्रक्रिया से स्पष्ट हो जाता है, राजनीतिक जागरूकता का एजेंडा औरतों को विश्लेषण व मूल्यांकन के लिए तथा इस मूल्याकंन पर आधारित सामूहिक कार्रवाई करने के लिए महत्त्वपूर्ण सूचनाएं उपलब्ध कराने में मदद देता है। गरीब औरतों की हालत के लिए ज़िम्मेदार बुनियादी कारकों को समझने और न्याय, समानता व स्वायत्तता के लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए उन्हें संबोधित करने के लिए आलोचनात्मक मूल्यांकन और पहलकदमी की प्रक्रिया ज़रूरी होती है। शैक्षिणक इनपुट्स की रूपरेखा निर्धारित करते हुए आनंदी में इन दीर्घकालिक उद्देश्यों को ध्यान में रखा गया है। सीखने के इन अवसरों से गुज़रने के बाद महिलाएं सरकारी कार्यक्रमों तक पहुंच और बैंक मानकों में लचीलेपन के लिए पैरवी करने से लेकर वन कार्यकर्त्ताओं के हाथों उत्पीड़न और स्वास्थ्यकर्मियों द्वारा फीस वसूली का विरोध करने तक किसी भी मुद्दे पर कदम उठा सकती हैं। ऐसी प्रक्रिया के मुख्य सिद्धांत इस प्रकार थेः

- विश्लेषण आधार के तौर पर सूचनाएं और उनके स्रोत तक पहुंच उपलब्ध कराना।
- न्याय और समता को ठेस पहुंचाने वाली किसी भी गतिविधि में निहित नियमों और प्रक्रियाओं का विश्लेषण।
- विश्लेषण की सामूहिक रूप से समीक्षा के ज़रिए उसे एक अनिवार्य चरण के रूप में स्थापित करना या चुनौती देना। इससे सूचनाओं के

समूहों के प्रशिक्षण और ऑरिएंटेशन में राजनीतिक जागरूकता पर केंद्रित चीज़ों के न होने से औरतें बहुत सारी ताकतों के निशाने पर आ जाती हैं।

आदान–प्रदान और विश्लेषण की वैधता का आधार पैदा होता है

- निश्चित लक्ष्यों को प्राप्त करने और भूमिकाओं में स्पष्टता सुनिश्चित करने के लिए एक सामूहिक कार्ययोजना तैयार करना।
- दीर्घकालीक लाभों की प्राप्ति हेतु सौदेबाजी व कार्रवाई की सही रणनीतियों का चयन करना।

जेंडर और सामाजिक मुद्दों से संबंधित इनपुट्स

हमने ड्वाक्रा, पश्चिमी गोदावरी में उपलब्ध एक प्रशिक्षण दस्तावेज़ और एक साक्षात्कार का विश्लेषण किया। इस कार्यक्रम में कार्यकर्त्ताओं के मानव संसाधन विकास को काफी महत्त्व दिया जाता है। यह प्रशिक्षण ए.पी.ए.आर.डी. (आंध्रप्रदेश ग्रामीण विकास अकादमी) द्वारा संचालित किया जा रहा है। ए.पी.ए.आर.डी. सभी स्तरों पर ड्वाक्रा के कार्यकर्त्ताओं को इनपुट्स मुहैया कराता है। इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों में गरीबी के बारे में समझ विकसित करने और महिला सशक्तीकरण के महत्त्व पर ज़ोर दिया जाता है। लेकिन स्फूर्ति सेविका[2] के साथ साक्षात्कार में हमने पाया कि महिला सशक्तीकरण की बात अभी भी यांत्रिक समझ पर ही आधारित है। इन प्रशिक्षणों में गरीबी का विश्लेषण करते हुए उसके लिए अभी भी गरीबों को ही ज़िम्मेदार ठहराया जाता है। यह स्फूर्ति सेविका इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों में हिस्सा ले चुकी है। साक्षात्कार के दौरान जो बातें सामने आयीं वही ड्वाक्रा कार्यक्रम से जुड़े स्वयं सहायता समूहों के लिए पश्चिमी गोदावरी ज़िले में मंडल स्तर पर लिये जाने वाले 'बेसिक ओरिएंटशन' की विषयवस्तु में भी दिखायी देती थीं।

अध्ययन के दौरान बहुत सारे साक्षात्कारों में 'कलेक्टिव' के महत्त्व पर काफी ज़ोर दिया गया। जब हमने इस बात को समझने का प्रयास किया कि कलेक्टिव यानी समूह क्यों महत्त्वपूर्ण है तो कई सदस्याओं, खास तौर से सरकारी कार्यक्रमों की नेताओं और कार्यकर्त्ताओं ने बताया कि अगर महिलाएं व्यक्तिगत स्तर पर प्रयास करने की बजाय समूह में इकट्ठा होकर प्रयास करें तो उन्हें ज़्यादा फायदा होगा।

स्फूर्ति सेविका के साथ साक्षात्कार से यह स्पष्ट हो गया था कि यद्यपि इस प्रशिक्षण से उसे नई अधारणाएं समझने में मदद मिली है लेकिन इस प्रशिक्षण की सोच भी सशक्तीकरण की नई संकुचित अवधारणा से भिन्न नहीं है। सशक्तीकरण से संबंधित शब्दों का तो बार–बार ज़िक्र आता था लेकिन जब हमने ये समझने का प्रयास किया कि इन शब्दों को किन अर्थों में प्रयोग किया जा रहा है तो कई महत्त्वपूर्ण बातें सामने आयी है।

स्फूर्ति सेविका ने बताया कि एस.एच.जी. का मकसद महिलाओं का आर्थिक और सामाजिक सशक्तीकरण करना होता है। इसके अलावा व्यक्तिगत स्तर पर काम करने की जगह समूह से जोड़ने में भी फायदा रहता है क्योंकि सामूहिक रूप से ज़्यादा काम किया जा सकता है। जब हमने इस बात को और विस्तार से समझना चाहा तो उसने बताया कि ड्वाक्रा किसी एस.एच.जी. की सभी सदस्याओं को 10–10 हजार रुपये नहीं दे सकता लेकिन पूरे समूह को इतनी राशि दी जा सकती है। इसी तरह की दलील एस. जी.एस.वाई. और वेलुगू के कार्यकताओं ने दी। वेलुगू से जुड़ी सदस्याओं ने समूह के फायदे गिनाते हुए कहा कि यह एक सामूहिक मंच है जिसके ज़रिए वित्तीय संसाधनों का वितरण और संग्रह किया जा सकता है। एस.जी.एस.वाई. कार्यकर्त्ता का कहना था– "अब समूह की अवधारणा आने से हमारी सिरदर्दी कम हो गयी है। अगर औरतें नियमित रूप से पैसा

2 सामूहिक मंच है जिसके ज़रिए वित्तीय संसाधनों का वितरण

'समूह'

आनंदी समूह से जुड़ी महिलाओं के लिए समूह की अवधारणा पूर्वनिर्धारित एजेंडा से पहले ही अस्तित्व में आ चुकी थी। इस अवधारणा के अनुसार उनकी नज़र में समूह न्याय के लिए सामूहिक कार्रवाई और संघर्ष का मंच था। गांव व फेडरेशन के स्तर पर समूह की प्रक्रियाओं और कार्रवाइयों को इसी नज़र से देखा जाता है। इसीलिए आर्थिक मामलों में भी महिलाएं समूह को परस्पर सहायता का मंच ही मानती हैं। "क्योंकि हम पहले से ही एक–दूसरे की मदद कर रही हैं और अपने घर में, काम पर, ठेकेदारों से और सरकार से इंसाफ के लिए लड़ रही हैं इसलिए हमारे लिए तो यह भी अपनी ताकत दिखाने का ही एक और मौका है।"

औरतें वित्तीय आयामों को सामूहिक कार्रवाई पर केंद्रित अपने प्रयासों का केवल एक हिस्सा मानती हैं। उनके लिए यह पूरी प्रक्रिया का केंद्रबिंदु नहीं है। संगठन के इनपुट्स और नारीवादी अधिकारों के एजेंडा की स्पष्ट अभिव्यक्ति उनके लिए सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धांत हैं। उनकी नज़र में कर्ज़ लेने–देने का मुद्दा अनुशासन की बजाय एक–दूसरे के दर्द को समझने की प्रक्रिया का हिस्सा है। वे बताती हैं, "जब कोई औरत अपने चार बच्चों का ही पेट नहीं भर पा रही तो कर्ज़ वापसी के लिए उसे दबाने का क्या मतलब है?" एक महिला नेता ने बताया कि पिछले चार महीने से कविता ने कर्ज़े की किस्त नहीं भरी है। "जब उसके पास पैसा होगा वह दे देगी। उसका आदमी बाहर गया हुआ है (काम करने के लिए), उसका ससुर टोकरियां बनाता है और घर चलाने में मदद देता है। वह घरवालों का पेट भरने के लिए रोज़ महुआ बीनने जाती है। जब दो वक्त की रोटी का जुगाड़ करने में हम सबकी हालत इतनी खराब हुई जा रही है तो हम उसी पर कैसे दबाव डालें?" जमुना बहन ने बताया। फेडरेशन लीडर कविता के दर्द को समझते हुए भी अपनी बात कहते हुए एहतियात बरतती हैं। उनका संगठन विभिन्न क्षेत्रों में अधिकारों के लिए आवाज़ उठाने वाले एक वृहत्तर मंच के तौर पर काम करता है और उसी में से कुछ महिलाएं बचत गतिविधियों से भी जुड़ी हुई हैं। लेकिन यह संगठन इन दोनों बातों के बीच कोई भेद नहीं करता। शायद इसीलिए विभिन्न मुद्दों पर उनकी गोलबन्दी काफी बड़ी रहती है।

देती–लेती रहें तो वे चाहे जिस बारे में बात करें।" स्वशक्ति की ज़िला कोऑर्डिनेटर की राय तो और भी साफ थी– "समूह बनाने की आड़ में कोई भी उसका अपने फायदे के लिए इस्तेमाल कर सकता है।" हम अनुसंधानकर्ताओं की ओर संकेत करते हुए उनसे कहा– "आप उन्हें अपना नारीवाद पढ़ा सकती है, हम उन्हें उद्यम और व्यवसाय के बारे में बता सकते हैं, स्वास्थ्य विभाग वाले अपने संदेश दे सकते हैं। एक बार समूह बन जाने के बाद कोई भी उसका अपने फायदे के लिए इस्तेमाल कर सकता है।" समूह में शामिल औरतों को ध्यान में रखते हुए इस तरह की जोड़–तोड़ के बारे में इस मझौले स्तर की कार्यकर्त्ता ने जो कुछ कहा वह भले ही थोड़ा नाटकीय हो लेकिन चिंता में डालने वाला ज़रूर है। इसका मतलब यह है कि समूहों के प्रशिक्षण और ओरिएंटेशन में राजनीति जागरूकता पर केंद्रित विषयवस्तु के न होने से बहुत

सारी ताकतें महिलाओं को आसानी से अपने मंसूबों का निशाना बना सकती हैं।

सशक्तीकरण की अवधारणाओं से सतही स्तर का जुड़ाव इन अवधारणाओं के सटीक अर्थों को समझने की प्रक्रिया में और स्पष्ट हो गया। स्फूर्ति सेविका ने बताया कि समूह का एक महत्त्वपूर्ण फायदा उसकी 'एकता' मे निहित होता है। एकता क्यों महत्त्वपूर्ण है, इस बारे में जानने के लिए हमें उसके साथ काफी समय और ज़ोर लगाना पड़ा। आखिरकार उसने कहा कि जो काम व्यक्ति अकेला नहीं कर सकता उसे पूरा समूह मिलकर कर सकता है। इस पर हमने पूछा कि ऐसी कौन–सी चीज़ है जो समूह को करनी चाहिए। एक बार फिर उसे यह समझाने में परेशानी हुई कि वह क्या कहना चाहती है। आखिरकार उसने जो उदाहरण दिया वो यह था कि जब आदमी अपने पैमाने पर बचत करता है तो थोड़ा पैसा बचा सकता है, जब मिलकर बचत की जाती है तो ज़्यादा पैसा बचाया जा सकता है। इसके बाद उस पैसे को व्यक्तिगत लाभ के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

कलेक्टिव के फायदों की यह पुनर्परिभाषा एस.एच.जी. सदस्याओं के प्रशिक्षणों मे दिखायी पड़ती है। स्वयं सहायता समूहों के 'बेसिक ओरिएंटेशन' की विषयवस्तु में आय संवर्धन/सूक्ष्म उद्यम वाले मॉड्यूल से पता चलता है कलेक्टिव किस वजह से फायदेमंद होते हैं। उसमें बताया गया कि अब पैकेजिंग और मार्केटिंग बड़े पैमाने पर की जा सकती है।

इन प्रशिक्षणों में कलेक्टिव को किस तरह परिभाषित किया जा रहा है, उससे माइक्रो क्रेडिट का व्यापक तर्क सामने आ जाता है। इसमें कलेक्टिव का आशय ऐसे समूह से होता है जो बचत और ऋण से संबंधित व्यक्तिगत हित पर आधारित हो। इस तर्क से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्तिगत अनुभव से

संगठन नेता : "हम भी अब चीज़ों को वैसे नहीं देखते जैसी वे दिखती हैं बल्कि सारी परतों को हटाकर असली चीज़ को समझना चाहते हैं।"

सामाजिक विश्लेषण एवं सामूहिकता की ओर ले जाने वाली शैक्षणिक प्रक्रियाओं का अभाव क्यों है।

आपसी सीख

आनंदी द्वारा सीखने के बारे में जो तरीका अपनाया गया है उसमें एक–दूसरे से सीखने पर ज़ोर है। नए समूहों के लिए सीखने की पद्धति मुख्य रूप से पुराने समूहों के साथ मेलजोल पर आश्रित रहती है। इस प्रक्रिया में ऐसे समूहों की मदद ली जाती है जो पहले प्रशिक्षण हासिल कर चुके हैं और अब नए समूहों का मार्गदर्शन कर सकते हैं। पुराने समूहों से जुड़ी महिलाओं का कहना है कि उन्हें विकास की प्रक्रियाओं को समझने और उनमें बदलाव लाने के लिए दूसरे स्थानों पर महिला संगठनों के साथ मेलजोल और एक्सपोज़र विज़िट्स के लिए ले जाया जाता है। फैलोशिप कार्यक्रमों के ज़रिए कार्यकर्त्ताओं के प्रशिक्षण में एक–दूसरे से सीखने की शिक्षा रणनीति को अपनाया गया है। इस तरह के कार्यक्रमों के बाद होने वाले मार्गदर्शन और ब्रीफिंग व डीब्रीफिंग की प्रक्रियाओं तथा उसके बाद होने वाले विश्लेषण से महिलाओं की राजनीतिक समझ पुख्ता करने में काफी मदद मिली है। विभिन्न मुद्दों और व्यापक स्थितियों के बारे में उनकी समझ इन गतिविधियों से काफी निर्धारित होती है। जैसा कि संगठन की एक नेता ने कहा, "जब हम कहीं जाते हैं तो वहां बहुत सारी चीज़ें देखते हैं परंतु जाने से पहले बहुत सारी तैयारियां भी करते हैं। जो

कुछ देखा और अनुभव किया, उस पर वापस लौटने के बाद तथा विज़िट्स के दौरान सुबह–शाम को गहन चर्चा होती है। अब हम चीज़ों को सिर्फ वैसे नहीं देखते जैसी वे दिखायी देती हैं। हम बहुत सारी परतों को हटाकर उनकी असलियत को समझने की कोशिश करते हैं।"

महिलाओं के बीच एक–दूसरे से सीखने की शिक्षा की प्रक्रिया को बढ़ावा देने के लिए अन्य प्रोत्साहक संगठनों की तरफ से बहुत कम कोशिशें की गयी हैं। पश्चिमी गोदावरी में चलाए जा रहे ड्वाक्रा कार्यक्रम में फेडरेशन सदस्या ने कहा कि "जब हम औरतें बैठती हैं तो अपने अनुभव बांटती है। यही हमारे सबक होते हैं।" यह वक्तव्य हिंसा संबंधी मुद्दों पर अध्ययन में सामने आए साक्ष्यों की पुष्टि करता है। हो सकता है महिलाएं ऐसे मुद्दों को उठाती हों लेकिन वे प्रोत्साहक संगठनों की 'सहायता के कारण' नहीं बल्कि 'उसके बावजूद' ऐसे कदम उठाती रही हैं। यह बात हमारे इस निष्कर्ष की पुष्टि करती दिखायी देती है कि महिलाएं किसी परिधि का जिस तरह इस्तेमाल करती हैं उससे बदलाव के कुछ–न–कुछ सकारात्मक तत्त्व सामने आते हैं।

एक्सपोज़र विज़िट और आदान–प्रदान कार्यक्रम 'मौसमी बहार' बन गए हैं। सारी परियोजनाओं में प्रशिक्षण के लिए एक विकल्प ऐसी विज़िट का ही होता है क्योंकि ऐसे मौके पर सीखने की ज़िम्मेदारी सिखाने वालों की बजाय सीखने वालों के ऊपर डाल दी जाती है। संगठन और परियोजनाओं की तरफ से यह सुनिश्चित करने के लिए विरले ही कभी प्रयास किया जाता है कि मुद्दा आधारित प्रेक्षण, डीब्रीफिंग और फीडबैक पर आधारित सुनियोजित प्रक्रिया के ज़रिए इन संभावनाओं का अधिकतम दोहन किया जाए। अध्ययन में शामिल किए गए ज़्यादातर उदाहरणों में महिलाएं ऐसी यात्राओं और विज़िट्स पर प्रेरणा और एक्सपोज़र के लिए ही गयी हैं। इन यात्राओं के लिए न तो उनकी कोई तैयारी होती है और न उनके पास कोई एजेंडा होता है। उदाहरण के लिए, जब वेलुगू समूह की नेताओं को इलाके के दूसरे एस.एच.जी. आधारित माइक्रो क्रेडिट संस्थानों के दौरे पर ले जाया गया तो वहां उन्हें ऐसा कुछ दिखायी नहीं दिया जो औरों को बताने लायक हो। उनके साथ जो आदान–प्रादान हुआ उसके लिए कोई खास मेहनत नहीं की गयी थी। अगर मेहनत की जाती तो वे अपने अनुभवों के प्रेक्षण को ज़्यादा बेहतर ढंग से व्यक्त कर पातीं या यह आकलन कर पातीं कि इस यात्रा से उन्हें क्या फायदा पहुंचा है। "हम परियोजना अधिकारियों के साथ गए थे। सारी चर्चा वे आपस में करते थे, हम बस देखती रहती थीं।" जब हमने उस प्रक्रिया का वर्णन जानना चाहा तो औरतों के पास इससे ज़्यादा कहने के लिए कुछ नहीं था कि वहां के समूहों ने "बहुत बचत कर ली है और वहां नियमों का सख्ती से पालन किया जाता है।"

स्वयं सहायता समूहों के लिए सीखने का एक संभावित स्रोत फेडरेशन भी हो सकती थी। मगर सरकारी कार्यक्रमों में फेडरेशन की भूमिका को बहुत संकुचित ढंग से परिभाषित किया गया है। इस परिभाषा के मुताबिक फेडरेशन की ज़िम्मेदारी यह है कि वह स्वयं सहायता समूहों पर नज़र रखे। इन कार्यक्रमों में सरकारी अधिकारी भी स्वयं सहायता समूहों को कम–से–कम ज़िम्मेदारी सौंपते है जिससे उनके लिए सीखने की संभावना व अवसर और सीमित हो जाते हैं।

साक्षरता की शैक्षणिक विषयवस्तु

एस.एच.जी. की परिधि साक्षरता कार्यक्रमों की विषयवस्तु को किस तरह प्रभावित करती है? इस

सवाल का जवाब देने के लिए हम पीस द्वारा लागू किए गए वेल्ड कार्यक्रम का विश्लेषण करेंगे। वेल्ड कार्यक्रम में सामाजिक परिवर्तन की स्पष्ट व्याख्या की गयी है और उसे साक्षरता से जोड़ कर दिखाया गया है। इस कार्यक्रम का साक्षरता के ज़रिए समता और सामाजिक परिवर्तन के घोषित दावों के आधार पर मूल्यांकन किया जा सकता है और यह दिखाया जा सकता है कि तमाम नेक इरादों के बावजूद एस.एच.जी. मॉडल का तर्क सामग्री की विषयवस्तु को ज़रूर प्रभावित करता है। इससे ऐसे कार्यक्रमों के कारण तमाम सीमाओं के बावजूद सशक्तीकरण पर पड़ने वाली सकारात्मक संभावनाओं को समझने का भी मौका मिलता है।

पीस द्वारा लागू किए जा रहे वेल्ड कार्यक्रम में साक्षरता, आजीविका और महिला सशक्तीकरण को एक–दूसरे से जोड़ने का उद्देश्य व्यक्त किया गया है। यहां वेल्ड कार्यक्रम की पाठ्य पुस्तकों (प्रवेशिका) की विषयवस्तु का विश्लेषण करने के साथ–साथ इस कार्यक्रम में हिस्सा ले चुकी महिलाओं के साथ हुए साक्षात्कारों का भी विश्लेषण किया जाएगा।

बचत और ऋण

प्रवेशिका की विषयवस्तु में बचत और ऋण की जो समझ पेश की गयी है वह मुख्य रूप से दोनों के वित्तीय आयामों पर केंद्रित है। जहां बचत की अवधारणा को पहली बार समझाया जाता है वहां बताया गया है कि व्यक्तिगत स्तर पर बचत करना अच्छी बात है लेकिन इतना ही काफी नहीं है। अगर मिलकर बचत की जाए तो ज़्यादा पैसा बचाया जा सकता है। जब बचतों को बैंक में जमा कराया जाता है तो उससे देश, समूह और व्यक्ति, सबको फायदा होता है। इस तरह 'स्वयं सहायता' तथा कलेक्टिव की अवधारणाओं को वित्तीय लाभों की तराजू में तौल दिया गया है। बाद के एक मॉड्यूल में स्वयं सहायता समूह बनाने के लिए एक–दूसरे के दर्द को समझने, एकता, आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास का तर्क दिया गया है। लेकिन यह बात साफ नहीं है कि एस.एच.जी. में शामिल हो जाने से ये सारी बातें कैसे साकार हो सकती हैं। प्रवेशिका में सामूहिक कार्रवाई के कुछ उदाहरण भी दिए गए हैं। जैसे, किसी ऐसी महिला के पति से कैसे बात की जाए जो शराबी है और अपनी पत्नी को पीटता है। पुस्तक के पाठों का फोकस कार्यकुशलता और एस.एच.जी. के सही प्रबंधन पर ज़्यादा है। इस बारे में चर्चा नहीं है कि कोई एस.एच.जी. सामाजिक मुद्दों को उठाने का साधन कैसे बन सकता है। एक जगह ये कहा गया है कि बैठकों में "हम अन्य चीज़ों (बचत और ऋण के अलावा) के बारे में भी बात करते हैं" लेकिन इन अन्य चीज़ों का मतलब क्या है, यह स्पष्ट नहीं किया गया है।

आश्चर्य की बात नहीं है कि इस पाठ्य सामग्री में सारा फोकस इसी बात पर है कि एस.एच.जी. सदस्याओं को अपनी साक्षरता क्षमता का इस्तेमाल अपने वित्तीय लेन–देन में करने के लायक बना दिया जाए। इस सामग्री में वित्तीय व्यवस्था से संबंधित जानकारियों में इज़ाफे पर ज़ोर दिया गया है। उसमें बताया जाता है कि बैंक क्या होता है। ब्याज दर का

अध्ययन में शामिल किए गए ज़्यादातर मामलों में औरतें एक्सपोज़र के लिए जा चुकी हैं लेकिन इस बारे में न तो उनकी कोई तैयारी थी और न ही उनका कोई खास एजेंडा था।

हिसाब माहवार की बजाय सलाना स्तर पर क्यों लगाया जाता है, बचत व ऋण की ब्याज दर अलग–अलग क्यों होती है, आदि। साक्षरता का संबंध रिकॉर्ड कीपिंग, रसीद बनाने, बही–खाता रखने आदि कामों के साथ ही दिखायी देता है। इस सामग्री में एस.एच.जी. सदस्याओं की समझ में इज़ाफे पर ज़ोर नहीं दिया जाता जिसके सहारे वे बचत और ऋण के अलावा अन्य क्षेत्रों में भी अपनी क्षमता बेहतर कर सकें। हालांकि इस सामग्री में जेंडर जैसे मुद्दों का भी उल्लेख किया गया है और श्रम विभाजन, स्वास्थ्य आदि के साथ उसके संबंधों को भी सामने रखा गया है लेकिन इस विश्लेषण में गहरायी का अभाव अकसर दिखायी देता है।

तीन प्रारंभिक साक्षरता प्रवेशिकाओं में ऐसे बहुत सारे चित्र हैं जिनके ज़रिए फैसिलिटेटर जेंडर से जुड़े मुद्दों पर चर्चा खड़ी कर सकते हैं। एक जगह काम, वेतन, बचत और उस पर नियंत्रण के मामले में औरतों और मर्दों की स्थिति की तुलना की गयी है। चित्रों के दोनों समूहों में फर्क सिर्फ इतना ही है कि एक में स्त्री का चित्र बनाया गया है दूसरे में पुरूष का, इसलिए ये चित्र भी अपने आप में पर्याप्त नहीं हैं। उनके साथ जो लिखित सामग्री है वह भी भ्रामक है। मसलन, जहां यह समझाने की कोशिश की गयी है कि बचत पर औरत का कोई नियंत्रण नहीं होता वहां इस बात का ज़िक्र नहीं है कि यह स्थिति क्यों पैदा होती है। इन चित्रों के आधार पर फैसिलिटेटर को केवल इस चीज़ के बारे में चर्चा चलानी होती है कि आप अपनी बचत के पैसे का किस तरह इस्तेमाल करती हैं? आप अपनी बचत का और किस तरह इस्तेमाल कर सकती हैं? काम, वेतन, बचत या उस पर नियंत्रण में जो भिन्नता है उसके बारे में कोई सवाल नहीं उठाया गया है। इन सवालों के स्वरूप से पता चलता है कि महिलाओं को पैसे बचाने और कर्ज़ा लेने के लिए ही प्रोत्साहन किया जा रहा है।

गरीबी, आजीविका और विकास

प्रवेशिकाओं में महिलाओं को टिकाऊ और जैविक कृषि से संबंधित संभावनाओं से परिचित कराने का प्रयास तो किया गया है लेकिन उन्हें आजीविका की अन्य संभावनाओं के बारे में नहीं बताया गया है। उदाहरण के लिए, प्रवेशिका के जिस भाग में महिलाओं को संभावनाओं और सीमाओं का विश्लेषण, संसाधनों की मैपिंग आदि के बारे में सिखाने का प्रयास किया गया है वहां आजीविका को सूक्ष्म उद्यम के रूप में सीमित कर दिया गया है। विश्लेषण का उद्देश्य मौजूदा कामों या प्राकृतिक संसाधनों का विश्लेषण करना नहीं है। उसका मकसद नए उत्पादों और नई सेवाओं की पहचान करने के लिए ही है। इनमें से किसी भी पद्धति को पढ़ाने से औरतों के वर्तमान जीवन की आजीविका के कामों का विश्लेषण या महत्त्व सामने नहीं आता।

पाठ्यक्रम में विकास एवं गरीबी संबंधी प्रमुख चिंताओं का कई जगह ज़िक्र आया है। लेकिन किसी खास पहलू के विवरण और विश्लेषण में महत्त्वपूर्ण तत्त्व अकसर छुट जाते हैं। मिसाल के तौर पर, आय से संबंधित मॉड्यूल में विस्थापन, औद्योगिकरण और पैसों पर आधारित अर्थव्यवस्था जैसी परिघटनाओं का

सामग्री में एस.एच.जी. सदस्याओं को इस योग्य बनाने पर बहुत ज़ोर है कि वे अपनी साक्षरता क्षमता का इस्तेमाल अपने आर्थिक लेन–देन को चलाने में करने लगें।

ज़िक्र तो किया गया है लेकिन पानी और ज़मीन जैसे संसाधनों तक पहुंच के बुनियादी मुद्दों को नहीं उठाया गया है। ज़मीन तक असमान पहुंच का ज़िक्र तो है लेकिन केवल 'किसान' वाले मॉड्यूल में है।

आय वाले मॉड्यूल के अवधारणात्मक भाग के आखिर में यह समाधान सुझाया गया है कि हमें अपनी ज़रूरत से ज़्यादा खर्चा न करके पैसा बचाने की कोशिश करनी चाहिए। आमदनी में कमी और भारी गैर–बराबरी के संभावित विश्लेषण को इस बात पर सीमित कर दिया गया है कि औरतें बचत करने के लिए राज़ी हो जाएं। सारी ज़िम्मेदारी व्यक्ति के कंधों पर डाल देने की प्रवृत्ति रोज़गार वाले मॉड्यूल में भी दिखायी देती है। औद्योगिकरण के कारण आ रहे बदलावों का विवरण देने के बाद कहा गया है कि विस्थापन के कारण शहरों की जनसंख्या बढ़ रही है जिससे शहरी इलाकों में ज़्यादा बीमारियां फैलने लगी हैं। यह मॉड्यूल इस समस्या के लिए न केवल ग्रामीण गरीबों को ज़िम्मेदार ठहराता है बल्कि इस स्थिति को बदलने की ज़िम्मेदारी भी उन्हीं के ऊपर डाल देता है।

ज़ाहिर है कि जिन्होंने यह पाठ्यक्रम तैयार किया है वे विकास के बारे में मुख्यधारा की कुछ आलोचनाओं से परिचित हैं। परंतु महिलाओं को जो जानकारियां दी जा रही हैं वे टुकड़ों में हैं और कई जगह भ्रामक हैं। उदाहरण के लिए, मॉड्यूल में रासायनिक खाद के इस्तेमाल के कई उदाहरण दिए गए हैं। इनमें से कुछ में यह कहा गया है कि रासायनिक खाद का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। एक जगह तो यह भी बताया गया है कि रासायनिक और प्राकृतिक खाद का अनुपात 60% और 40% होना चाहिए। यहां इस बारे में कुछ नहीं बताया गया है कि यह अनुपात किस आधार पर निकला है। दूसरी जगह ये बताया गया है कि प्राकृतिक खाद अच्छे होते हैं क्योंकि प्राकृतिक चीज़ें अच्छी होती हैं। परंतु रासायनिक खाद के खतरों का उल्लेख कहीं नहीं है। उम्मीद यह की गयी है कि औरतें प्राकृतिक खाद के इस्तेमाल की सलाह को चुपचाप मान लेंगी हालांकि उन्हें इस बारे में कोई जानकारी नहीं दी गयी है कि बुनियादी तौर पर रासायनिक खाद का इस्तेमाल क्यों नहीं करना चाहिए जबकि बाज़ार की ताकतें रासायनिक खाद को सबसे अनिवार्य बताती हैं। आधुनिक कृषि पद्धतियों के लाभदायक या हानिकारक आयामों से संबंधित सूचनाओं का अभाव विकास के बारे में एक व्यापक गैर–आलोचनात्मक नज़रिए से उपजा है। किसान को साक्षरता हासिल करने के लिए प्रेरित किया जा रहा है ताकि वह बाज़ार में आने वाले बदलावों के बारे में पढ़ सके और ऐसे बदलावों के बारे में सीख सके जो उसे अपने आचरण में लाने हैं।

पीस संस्था के लिए टिकाऊ कृषि एक महत्त्वपूर्ण विषय रहा है। संस्था के संस्थापक तथा निदेशक की इसमें विशेष रुचि है। इसीलिए हमें यहां कुछ ऐसी महिलाएं ज़रूर मिलीं जिन्होंने वेल्ड और पीस के साथ अपने संपर्कों के ज़रिए अपनी कृषि पद्धतियों में काफी परिवर्तन कर लिया है। हमने जो सामूहिक साक्षात्कार लिए उनके आधार पर लगता है कि ऐसी औरतों की संख्या बहुत बड़ी नहीं है लेकिन कुछ महिलाएं ऐसी थीं जिनका संगठन के कार्यकर्त्ताओं ने अकसर ज़िक्र किया। एक लिहाज़ से ये महिलाएं इस कार्यक्रम की 'आदर्श किसान' हैं। उनमें से एक पोचम्मा भी थीं।

इनके अलावे कुछ और भी सकारात्मक पहलू थेः वेल्ड सहभागियों ने हमें बताया कि उन्होंने पूंजी और महाजनों के बारे में चर्चा की थी। "तब हमें यह पता चला कि पैसे का हिसाब कैसे लगाया जाता है, महाजन ब्याज का हिसाब कैसे लगाता है, वह कितना कर्ज़ा दे रहा है और उसे कितना फायदा हो रहा है।

बदलाव ....

पोचम्मा ने बताया कि अपने परिवार के लिए रोज़ी–रोटी का इंतज़ाम करने की ज़िम्मेदारी सदा उसी पर रही है। उसका आदमी तो बस सफेद कपड़े पहनकर नेताओं के साथ घूमने निकल जाता था। पेट पालने के लिए पोचम्मा बकरियां बेचती थी। जब वह वेल्ड की कक्षाओं में आयी तो उसे खेती करने की संभावना समझ में आने लगी। उसकी किताब में एक अध्याय खेती के बारे में था जिसमें घर के भीतर औरत के काम के बोझ के बारे में भी बताया गया था। वह बताती है, "उस सबक में शब्द तो बहुत कम थे लेकिन उन पर चर्चा खूब हुई थी।" यहीं से उसे यह समझ में आने लगा कि वह अपनी आमदनी में इज़ाफे के लिए क्या–क्या कर सकती है। उसने खेती करने का फैसला लिया। उसे आमदनी की ज़रूरत तो थी लेकिन इसके लिए पहले खर्चा करना ज़रूरी था। इस बारे में उसने अपने पति से बात की और सुझाव दिया कि अगर कुछ बकरियों को बेच दिया जाए तो वह अपने बंजर ज़मीन में खेती कर सकती है। शुरुआत में उसका पति तैयार नहीं था लेकिन आखिरकार पोचम्मा ने उसे राज़ी कर लिया। दो बकरियां बेचकर उसने दो बैल खरीदे और खेती करने लगी। पोचम्मा को सारा समय खेती में लगाना पड़ता था इसलिए बकरियों को चराने की ज़िम्मेदारी उसके पति को संभालनी पड़ी। वह बताती है, "खेत पर तो आदमी बहुत कम काम करते हैं। ज़्यादा काम औरतों को ही करना पड़ता है।" उसके पति ने सिर्फ जुताई के समय मदद दी। बाकी काम पोचम्मा ने खुद संभाला। पोचम्मा को खेतों की देखभाल करनी थी इसलिए दोनों ने अपने काम बांट लिए थे। अब उसका पति सफेद कपड़े पहनकर नहीं घूम सकता था। उसे भी ज़िम्मेदारी समझ में आने लगी थी। उन्होंने खेती में पैसा जो लगा दिया था। अब उसे भी काम करना पड़ा। पोचम्मा काम के बारे में उससे बहस करती और अपने बच्चों की परवरिश की ज़रूरतों के बारे में ज़ोर देती है।

इसके बाद हमने उनसे सवाल पूछना शुरू किए। जब हम सवाल पूछने लगे तो उन्हें मानना पड़ा कि उन्हें हमसे फायदा हो रहा है।"

वेल्ड में हिस्सा लेने वाली एक महिला ने कक्षाओं और अपने व्यक्तित्व में आए बदलावों के बीच सीधा संबंध बताया। "कक्षाओं में जाने से हम एक जगह आए। इन कक्षाओं के शुरू होने से पहले हम महाजनों से बहुत डरते थे। अब हमारा डर निकल चुका है। पहले वे हम पर ताने मारते थे। अब हम घरेलू हिंसा जैसे मामलों पर भी काम करते हैं। जब ऊंची जाति के एक आदमी ने हमारे साथ की एक औरत को पीटा तो इस बारे में पंचायत के आदमियों से भी जाकर हमने बात की थी।" इन उपलब्धियों को इस तथ्य से भी जोड़ कर देखा जाना चाहिए कि कार्यक्रम के कारण महिलाएं भौतिक रूप से एक–दूसरे के नज़दीक आ रही हैं।

वेतन

एक प्रवेशिका में रोज़गार वाले पाठ का एक हिस्सा न्यूनतम वेतन और समान वेतन से संबंधित था। इस पाठ पर चली चर्चा के बाद ही गोलापल्ली गांव में समान वेतन का संघर्ष शुरू हुआ था। पहले यहां

आदमियों को 40 रुपए और औरतों को 20 रुपए दिहाड़ी मिलती थी। महिलाओं के संघर्ष के कारण उनकी तनख्वाह 20 रुपए से बढ़ा कर तीस रुपए तो कर दी गयी लेकिन फिर भी यह राशि पुरुषों को मिलने वाली राशि से कम थी। लेकिन महिलाओं ने इसके बारे में कोई आपत्ति व्यक्त नहीं की। बल्कि चर्चा के दौरान कुछ महिलाओं ने यह भी कहा कि पुरुषों की आय इसलिए ज़्यादा है क्योंकि वे महिलाओं से ज़्यादा काम करते हैं। कई अन्य अवसरों पर उन्होंने कहा कि औरत–मर्द, दोनों समान रूप से कठिन परिश्रम करते हैं। इस अंतर्विरोध की एक वजह यह थी कि महिलाएं अपने घरेलू काम को नहीं गिन रही थीं। चर्चा में दूसरा उलझाने वाला पहलू खेतों की जुताई से संबंधित था। जब हमने उनसे पूछा कि उन्हें ऐसा क्यों लगता है कि औरतें खेत नहीं जोत सकतीं तो ललिता (एक 'आदर्श किसान' जो अपने पति के साथ जेंडर संबंधों को पुनर्निर्धारित करने में काफी सफल दिखायी देती है) ने कहा कि "नहीं मैडम, हम ऐसा नहीं कर सकते। ये तो बहुत कठिन काम है। इसे तो आदमी ही कर सकते हैं। हम बैलों को नहीं बांध सकते, जुताई नहीं कर सकते और बैलों को नहीं संभाल सकते। यह हमारे बस की बात नहीं है।" इस जवाब की तुलना पहली प्रवेशिका के पहले अध्याय से की जानी चाहिए जिसमें एक महिला को खेत जोतते हुए दिखाया गया है। वेतन के लिए अपने संघर्ष में महिलाएं इस सोच का मुंहतोड़ जवाब नहीं दे पायीं कि औरतें मर्दों जितना कठिन परिश्रम नहीं कर सकतीं। ऐसा लगता है कि वे खुद भी इस बात से सहमत नहीं थीं।

वेतन के लिए चले संघर्ष में औरतें इस सोच का मुंहतोड़ जवाब नहीं दे पाईं कि औरतें मर्दों की तरह हाड़तोड़ मेहनत नहीं कर पातीं। लगता था कि वे खुद भी इस बात से पूरी तरह से सहमत नहीं थीं।

जेंडर के आधार पर वेतन में भेदभाव को समझना इसलिए और ज़रूरी हो जाता है कि यह संघर्ष सिर्फ वेतनभोगी मज़दूरों और ज़मींदारों के बीच ही नहीं है। दरअसल, बेहतर वेतन के संघर्ष में शामिल महिलाओं में कई ऐसी भी थीं जिनके पास ज़मीन भी है और जो दिहाड़ी पर मज़दूरी भी करती हैं। यानी यह 'दुश्मन' को रज़ामंद करने का मामला ही नहीं था। यह तो घर के भीतर ही हितों के टकराव का मामला था।

कुल मिलाकर ऐसा लगता है कि प्रवेशिका की विषयवस्तु और वेल्ड सेंटर में एक साथ इकट्ठा होने के अवसर मिलने से औरतों को असमान वेतन के नाम पर हो रहे अन्याय को पहचानने तथा कार्रवाई करने की ताकत मिली है। लेकिन असमान वेतन के मुद्दे पर पहल जेंडर आधारित श्रम विभाजन के गहन विश्लेषण पर आधारित नहीं थी। इस तरह के विश्लेषण से औरतों को अपने दावे और अच्छी तरह पेश करने तथा संघर्ष में मज़बूती से आगे बढ़ने की ताकत मिल सकती थी।

वेल्ड कार्यक्रम में हिस्सेदारी से औरतों को मिले अनुभवों के बारे में जानने तथा शैक्षणिक सामग्री का विश्लेषण करने पर हमें यही दिखायी देता है कि यद्यपि प्रवेशिकाओं में और स्पष्ट दृष्टिकोण दिखायी देना चाहिए था लेकिन फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि वेल्ड के अंतर्गत सीखने वाली महिलाओं तथा पीस से जुड़ी अन्य एस.एच.जी. सदस्याओं के बीच उल्लेखनीय फर्क था। इस बात का ताल्लुक संभवतः इस बात से है कि वेल्ड के ज़रिए औरतों को नियमित रूप से मिलने–जुलने का मौका मिला है। वेल्ड कार्यक्रम की एप्रोच भी ऐसी थी कि सामाजिक मुद्दों पर होने वाली

चर्चा को जगह और प्रोत्साहन मिल जाता था। इसके साथ ही प्रवेशिका में दिए गए इनपुट्स से महिलाओं को अपनी स्थिति समझने, खास तौर पर दलित महिलाओं को जातीय और वर्गीय उत्पीड़न को समझने में काफी मदद मिली है। अपनी तमाम अच्छाइयों और सीमाओं के बावजूद अगर महिलाओं को एक नियमित मंच पर शैक्षणिक अवसर उपलब्ध कराए जाएं और हाशियाइ औरतों की अपनी हैसियत के बारे में मौजूदा समझ, दोनों को एक साथ लेकर चला जाए, तो महत्त्वपूर्ण बदलाव लाए जा सकते हैं।

साक्षरता

शिक्षा के व्यापक दायरे से अब हम साक्षरता की ओर बढ़ते हैं। निरंतर सर्वेक्षण से स्वयं सहायता समूहों और साक्षरता के बीच कई चौकाने वाले संबंध सामने आते हैं।

इन आंकड़ों को कैसे समझा जाए? इस भाग में यह समझने का प्रयास किया गया है कि एस.एच.जी. सदस्याओं में साक्षरता का स्तर कम क्यों है और उसके क्या परिणाम निकलते हैं। पहला, हमने महिलाओं के जीवन में साक्षरता के महत्त्व को उन्हीं के शब्दों में समझने और दर्ज़ करने का प्रयास किया है ताकि हम जान सकें वे साक्षरता को किन अर्थों में देखती हैं। इन नज़रियों के प्रस्थान बिंदु के आधार पर हमने एस.एच.जी. का इस्तेमाल करने वाले सरकारी प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों और प्रोत्साहक एजेंसियों द्वारा लागू किए जा रहे साक्षरता कार्यक्रमों के स्वरूप की पड़ताल की है। इसके बाद हमने साक्षरता कार्यक्रमों की सीमा और स्वरूप के परिणामों का अध्ययन किया है।

साक्षरता का महत्त्व : महिलाओं की राय

साक्षरता के बारे में महिलाओं ने जो दृष्टिकोण व्यक्त किए उनमें से कई महिला साक्षरता के क्षेत्र में काम करने वाली हमारे जैसी कार्यकर्त्ताओं और शोधकर्ताओं के लिए नए नहीं थे। हमारा मानना है कि साक्षरता से संबंधित 'मानक' अभिव्यक्तियों को विश्लेषित विखंडित किया जाना चाहिए और उन्हें सत्ता के संबंध में स्थित किया जाना चाहिए– चाहे वह सत्ता साक्षर और असाक्षर के बीच असमानता के रूप में हो, चाहे महिलाओं के लिए नई भूमिकाएं मुहैया कराते हुए सशक्तीकरण में साक्षरता की भूमिका से संबंधित हो, चाहे सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक हस्तक्षेप के रूप में साक्षरता की ओर हो और चाहे साक्षरता की उस भूमिका के बारे में हो जो इन भूमिकाओं तक पहुंचने में बाधा के रूप में सामने आती है।

ज़्यादा स्वायत्तता की चाह

वेलुगू से संबंधित एस.एच.जी. की सदस्याओं के साथ साक्षात्कार में एक सदस्या ने कहा कि "कभी–कभी सफर के दौरान जब हम किसी से बस के बारे में पूछते हैं तो लोग हमें धमका कर भगा देते हैं। वे कहते हैं, 'भागो यहां से, क्यों तंग कर रहे हो।' अगर हमें पढ़ना आता होता तो हमें औरों पर निर्भर रहने की ज़रूरत नहीं पड़ती।" इसी समूह की महिलाओं ने कई बार कहा कि "शिक्षा के बिना हम तो अंधे हैं।" साक्षरता और शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले अकसर दलील देते हैं कि यह साक्षरता के बारे में मुख्यधारा की सत्ता–केंद्रित समझ को आत्मसात करने का परिणाम है। कुछ हद तक यह बात सही है। लेकिन औरतों की राय में बात सिर्फ इतनी ही नहीं है। उन्होंने बताया कि अगर वे बस का नम्बर पढ़ना सीख जाएं तो उन्हें "कोई बेवकूफ नहीं बना सकता। बस हमारे सामने से निकल जाती है और हमें पता ही नहीं चलता कि कौन–सी बस जा रही है। हमें औरों पर निर्भर रहना पड़ता है, हमें हरेक से पूछते रहना पड़ता है। अगर

आप पढ़ सकते हैं तो आप आसानी से यात्रा कर सकते हैं। आप कहीं भी रह सकते हैं। अगर आप पढ़े–लिखे हैं तो नए लोगों से बात कर सकते हैं।" बस का नम्बर पढ़ने की काबीलियत दरअसल इससे कहीं ज़्यादा बुनियादी चीज़ की तरफ इशारा करती हैः ये औरतें निर्भर नहीं रहना चाहतीं, और, कि साक्षरता से स्वायत्तता में इज़ाफा होता है।

साक्षरता और कम निर्भरता के बीच इस अपेक्षित संबंध की अभिव्यक्ति परिवार, एस.एच.जी., बैंक, एन.जी.ओ., सभी क्षेत्रों से संबंधित थी। व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ–साथ इसमें प्रोत्साहक एजेंसी के साथ अपनी स्वायत्तता का अहसास भी था। आनंदी से जुड़ी एक फेडरेशन सदस्या ने कहा कि "अगर हम साक्षर होते तो हमारे खाते, हमारे मिनट्स उसी महीने में लिखे जा सकते थे। अभी तो आनंदी के कार्यकर्त्ता ही लिखते हैं. ..। हम साक्षर नहीं हैं इसलिए हमें इन कार्यकर्त्ताओं की ज़रूरत पड़ती है।" हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि साक्षरता का एक प्रतीकात्मक महत्त्व भी है जो मौजूदा सत्ता को संबंधों और आकांक्षाओं के रूप में देखता है। पीस से जुड़ी फेडरेशन की एक सदस्या ने कहा कि "अगर हम पढ़े–लिखे हों तो गांव में ही अपने खाते पढ़ सकते हैं। हमें पीस में क्यों आना पड़े? हम चीज़ों को दूसरे ढंग से करते हैं। हम बाहर से कर्ज़ ले सकते हैं। हम खाते संभाल सकते हैं, अर्ज़ी दे सकते हैं और बैंक से जुड़े दूसरे काम कर सकते हैं।"

साक्षर व्यक्ति के रूप में हम इस बात पर अकसर ध्यान नहीं दे पाते कि हमारे रोज़मर्रा के जीवन में साक्षरता किस कदर फैली हुई है। जिन औरतों ने सीमित ही सही, थोड़ी–बहुत साक्षरता हासिल कर ली है वे इस फैलाव से अच्छी तरह परिचित हैं। उन्होंने कहा कि अब यह जानकर उन्हें ताकत का अहसास होता है कि सामने क्या लिखा हुआ है। भले ही वे उसका मतलब न जानती हों। ड्वाक्रा एस.एच.जी. की एक सदस्यता ने कहा कि "पहले हम कागज़ पर कुछ लिखा देखते थे तो हमारे लिए उसका कोई मतलब नहीं था। दुकानदार कागज़ में चीज़ें लपेट कर देते थे। उन पर तो अक्षर ही अक्षर भरे रहते थे। मैं सोचती थी कि पता नहीं ये क्या चीज़ है। लेकिन अब मैं कुछ अक्षरों को पहचान सकती हूं।"

संप्रेषण की क्षमता

साक्षात्कारकर्ताः क्या आपको वेल्ड सहभागियों और अपने बीच कोई फर्क दिखायी देता है?

एस.एच.जी. सदस्या (जो वेल्ड सहभागी नहीं है)ः फर्क तो ज़रूर होगा। उन्होंने गाने, शब्द और बहुत सारी चीज़ें सीखी हैं। वे तो समझदार हो गयी हैं। हम उनकी तरह चीज़ें नहीं जानते।

साक्षात्कारकर्ताः ऐसी कौन–सी चीज़ें हैं जो वेल्ड में जाने वाली महिलाओं को आती हैं लेकिन आप नहीं कर सकते?

एस.एच.जी. सदस्याः वे मुद्दों और घटनाओं के बारे में बेहतर बोल सकती हैं। वे चिट्ठी लिख सकती हैं, अपील को समझ सकती हैं, बैठक में क्या हुआ ये समझ सकती हैं।

साक्षात्कार के इस अंश से पता चलता है कि नवसाक्षर महिलाओं के जीवन में साक्षरता से जो बदलाव आया है उनमें संप्रेषण क्षमता का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। हम कही हुई बातों को इस अर्थ में नहीं देख रहे हैं कि साक्षरता तक पहुंच के फलस्वरूप ये बदलाव आ ही जाएंगे बल्कि हम यह देखना चाहते हैं कि ये ऐसे गुण हैं जिन्हें साक्षरता के साथ जोड़ कर ही देखा जाता है। यह बात न केवल नज़रिए के हिसाब से महत्त्वपूर्ण है बल्कि ये देखते हुए इसके ठोस भौतिक माइने भी हैं कि मुख्यधारा के समाज में जो

साक्षर है उन्हें ही ज़्यादा 'सुना' जाता है। यह बात अध्ययन के दौरान असाक्षर और साक्षर, दोनों तरह की महिलाओं ने कई बार कही।

सूचना तक पहुंच

साक्षर महिलाओं को इस लिहाज़ से महत्त्वपूर्ण माना जाता है कि वे सूचनाएं हासिल कर सकती हैं और उन्हें असाक्षर महिलाओं तक पहुंचा सकती हैं। स्वयं सहायता समूहों की असाक्षर सदस्याएं साक्षर महिलाओं को बैठक, प्रशिक्षण आदि अवसरों पर हासिल हुई सूचनाएं बांटने के लिए अकसर कहती हैं। ज़मीन जैसे अन्य संसाधनों के विपरीत साक्षरता के मामले में हम पाते हैं कि औरतें इस संसाधन को अपनी पहुंच के भीतर यानि संभव मानती हैं। यह बात ऊपर उल्लिखित उस स्थिति से मिलती–जुलती दिखायी देती है जिसमें असाक्षर महिलाएं समूह की साक्षर महिलाओं से सूचनाओं की मांग करके ही संतुष्ट दिखायी देने लगती हैं।

शोषण से बचाव

साक्षरता के बारे में अकसर सुनायी देने वाला वक्तव्य यह थाः "अगर हम साक्षर हों तो हमें कोई गुमराह नहीं कर सकता... हम शोषण से बच सकते हैं।" यहां एक बार फिर साक्षरता एक प्रतीकात्मक अर्थ में सामने आती है। इसके ज़रिए लोगों को ताकतवर तबके के (जो प्रायः साक्षर होते हैं) हाथों शोषण से बचने की क्षमता मिल जाती है। यह बात असाक्षर महिलाओं के ज़हन में मौजूद इस बात से भी स्पष्ट रूप से जुड़ी हुई है कि असाक्षरता की उनकी समझ सत्ता की अवधारणा पर आधारित है।

आनंदी समूह की एक महिला ने कहा कि "हमें अनपढ़ माना जाता था। हम उपज की कम कीमत देने वाले व्यापारी से भी बहस नहीं कर सकते थे। न हमें सही वेतन मिलता था और न हम हाज़िरी के रजिस्टर में यह देख पाते थे कि उसमें हमारी कितनी तनख्वाह दर्ज़ हुई है। अब अपने संगठन के सहारे और नेताओं के साक्षर हो जाने के चलते सब हमें जानते हैं। सरकारी ठेकेदार भी हम से डरते हैं। अब कोई हमें बेवकूफ बनाने की हिम्मत नहीं कर सकता। अब हम शोर मचा सकते हैं।"

'चैकिंग' की योग्यता

साक्षरता, सत्ता और पारदर्शिता के बीच क्या संबंध है इस बारे में महिलाओं की समझ बिल्कुल साफ थी। उदाहरण के लिए, यह बात तब भी दिखायी दी जब नवसाक्षर महिलाओं ने कहा कि अब दुकानदार उन्हें बेवकूफ नहीं बना सकते। सत्ता और साक्षरता के बीच यही संबंध घर के मामले में भी बताया गया।

- एस.एच.जी. सदस्याओं में से 39.3% पढ़ और लिख सकती हैं। यह संख्या 46.6% के ग्रामीण महिलाओं के राष्ट्रीय औसत से बहुत कम है।
- एस.एच.जी. सदस्याओं में से बहुत सारी सिर्फ अपना दस्तखत कर सकती हैं (लगभग 28 %)।
- दस्तखत करने की काबिलियत से लेकर समूहों के भीतर साक्षरता के तमाम स्तर दिखायी देते हैं। साक्षर एस.एच.जी. सदस्याओं में से एक बड़ी संख्या ऐसी महिलाओं की थी जो काफी ऊंची साक्षरता हासिल कर चुकी हैं। एस.एच.जी. सदस्याओं में से लगभग 30% छठी से दसवीं कक्षा तक औपचारिक शिक्षा प्राप्त कर चुकी हैं।

निरंतर सर्वेक्षण

पीस से जुड़े एस.एच.जी. की सदस्या ने कहा कि "अगर आदमी पढ़ा–लिखा हो और हम भी साक्षर हों तो हम समझ सकते हैं कि वे कैसे हिसाब लगा रहे हैं। वरना तो जब भी वे बाज़ार जाएंगे, वे जो कहें हमें मानना पड़ेगा।"

इसी प्रकार एस.एच.जी. के मामले में साक्षरता के महत्त्व को यह जानने की सुरक्षा के अर्थ में व्यक्त किया गया कि जो पैसा संभालते हैं वे उनके साथ धोखा नहीं कर रहे हैं। वेलुगू से जुड़ी एस.एच.जी. सदस्याओं ने कहा कि, "हम बुककीपर और अकाउंटेंट

बचपन के अभाव की भरपाई

कई महिलाओं ने कहा कि बड़ी उम्र में साक्षरता के मौके मिलने से बचपन में ऐसा मौका न मिलने की भरपाई हो गयी है। बहुत सारी महिलाओं ने बचपन के इस अभाव को गरीबी का परिणाम बताया। पीस से जुड़ी एक एस.एच.जी. सदस्या ने कहा, "जब हम छोटे थे तो हमारे मां–बाप ने हम पर ध्यान नहीं दिया। अब 'सर' (पीस के निदेशक) हमारी देखभाल कर रहे हैं।" आनंदी से जुड़ी एक फेडरेशन सदस्या ने कहा, "मैं बचपन में स्कूल जाती थी। लेकिन जब मेरी मां मरी तो मैं पहली कक्षा में थी। उसके बाद किसी को मेरी पढ़ायी में दिलचस्पी नहीं बची। अगर मैं दूसरी–तीसरी कक्षा तक पढ़ लेती तो बहुत अच्छा होता। लेकिन मैं क्या कर सकती हूं? मुझे यह बात बहुत देर से समझ में आयी।"

बचपन में निषेध के तीखे अनुभवों का एक परिणाम यह है कि अब ये औरतें अपने बच्चों को शिक्षा के अवसर दिलाने में कोई कमी नहीं छोड़ना चाहतीं। जब एस.जी.एस.वाई. से जुड़े समूह में सक्रिय एक महिला ने कहा कि "मैं तो अनपढ़ हूं पर अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए पूरा पैसा देती हूं" तो यह इस बात का संकेत था कि वह अपने जीवन में साक्षरता के अभाव की भरपाई करने के लिए यह सुनिश्चित करना चाहती है कि उसके बच्चों को शिक्षा ज़रूर मिले। वेल्ड से जुड़ी एक सहभागी ने भी कहा कि "हमारे मां–बाप तो हमें पढ़ाने का खर्चा नहीं उठा पाए पर हमें तो अपनी बेटियों को पढ़ाना चाहिए। इसीलिए हम नाइट स्कूल चाहते हैं।" शिक्षा तक लड़कियों की पहुंच में पक्षपात को उनके ऊपर काम के बोझ से भी जोड़कर देखा गया। "लड़कियां काम के बोझ से जल्दी बुढ़ा जाती हैं। इसीलिए हमें उन्हें स्कूल ज़रूर भेजना चाहिए। लड़कियों के लिए साक्षरता बहुत ज़रूरी है ताकि वे आत्मनिर्भर बन सकें, दुनिया में क्या चल रहा है यह जान सकें। शादी के बाद वे अपने बच्चों के लिए भी इस काबीलियत का इस्तेमाल कर सकती हैं।"

बच्चों को पढ़ाने की चाह शिक्षा और व्यक्ति के भौतिक सुधार के बीच संबंधों से भी मज़बूत हुई है। पीस एस.एच.जी. की एक सदस्या ने कहा कि "मेरा बेटा कभी नहीं पढ़ता था। अब मैं उसे स्कूल भेजती हूं और समय पर फीस देती हूं। मुझे लगता है कि मेरे बच्चों को वह काम नहीं करना चाहिए जो मैं कर रही हूं। अब मैं शिक्षा का महत्त्व जान गयी हूं।" एस.जी.एस.वाई से जुड़े एक समूह की सभी सदस्याएं अपने बच्चों को कम–से–कम प्राथमिक शिक्षा दिलाने के लिए पूरा ज़ोर लगा रही हैं। समूह की महिलाओं ने कहा कि वे नहीं चाहतीं कि उनके बच्चों को भी अपने मां–बाप की तरह खटना पड़े। वे अपने बच्चों को आरामदेह ज़िंदगी देना चाहती हैं।

पर भरोसा तो करते हैं लेकिन अगर साक्षर औरतें वहां (फेडरेशन में) जाएं तो ज़्यादा अच्छा रहता है। साक्षर नेता अच्छी होती है लेकिन हमारे पास तो साक्षर लोग हैं ही नहीं। हम क्या कर सकते हैं? अगर वे कुछ गलत भी करते हैं तो हमें सुनना पड़ता है। अगर नेता साक्षर होती तो वे सारी बातें लिखकर ले आती और हमें बताती।"

पीस में हमने पाया कि वेल्ड कार्यक्रम में हिस्सा ले चुकी नवसाक्षर एस.एच.जी. सदस्याएं और बुककीपिंग के प्रशिक्षण में हिस्सा ले चुकी महिलाएं अगर बुककीपिंग नहीं सीख पातीं थी तो भी वे कम–से–कम खातों को तो जांच ही सकती थीं। ऐसी ही एक सहभागी ने बताया कि वह खातों पर लगातार नज़र रखती है। उसने एक ऐसी घटना भी बतायी जब उन्हें बुककीपर से बहस करनी पड़ी क्योंकि बुककीपर ने उन्हें बचत जमा करने की पर्ची तो दी थी लेकिन पैसा उनकी पासबुक पर नहीं चढ़ाया था। चौथी कक्षा तक पढ़ी और वेल्ड कार्यक्रम में हिस्सा ले चुकी पीस से जुड़ी एक और समूह नेता ने कहा कि "मैं बचत के रजिस्टर, हरेक की पासबुक और रसीदबुक चैक करती हूं। मैं यह देख लेती हूं कि सब कुछ सही ढंग से लिखा गया है या नहीं। मैं हिसाब जांचती हूं। मैं ये देखती हूं कि रमेश (पीस का एक वरिष्ठ कार्यकर्त्ता) ने सब कुछ ठीक से लिखा है या नहीं।"

हालांकि एस.एच.जी. सदस्याओं ने साक्षरता का महत्त्व ज़्यादातर बुककीपर्स और एकाउंटेंट्स पर नज़र रखने के मामले में ही गिनवाया लेकिन हमें ऐसे साक्ष्य भी मिले जिनसे पता चलता है कि यह बात समूह नेताओं के मामले में भी सच है। एस.एच.जी. सदस्याओं ने यह बात बैठक में सीधे हमसे नहीं कही लेकिन इस बारे में अप्रत्यक्ष संकेत ज़रूर थे। पश्चिमी गोदावरी ज़िला प्रौढ़ शिक्षा एसोसिएशन से जुड़े अफसर ने बताया कि एस.एच.जी. सदस्याएं नेताओं को प्रायः शक की नज़र से देखती हैं। उन्हें शक रहता है कि नेता ने सारा पैसा जमा करा दिया है या नहीं।

साक्षरता, नेतृत्त्व के आधार के रूप में

निरंतर सर्वेक्षण से यह स्थापित करने के लिए महत्त्वपूर्ण साक्ष्य मिले हैं कि एस.एच.जी. नेतृत्त्व के लिए साक्षरता एक महत्त्वपूर्ण मानक है। 69% समूह नेता पढ़ और लिख सकते हैं जबकि सदस्याओं की साक्षरता दर 39. 3% थी। जब एस.एच.जी. सदस्याओं से पूछा गया कि वे किस आधार पर अपने नेताओं का चुनाव करती हैं तो उन्होंने साक्षरता को सबसे प्रमुख आधार बताया। ज़्यादातर समूहों ने जिन अन्य मानकों का उल्लेख किया उनमें दो प्रमुख थे : एक, खाते संभालने की काबिलियत और दूसरा, बैंक अधिकारियों से बात करने की क्षमता। उल्लेखनीय है कि ये दोनों मानक भी साक्षरता से जुड़े हुए हैं क्योंकि खाते रखने के लिए महिलाओं को साक्षरता की ज़रूरत होती है और बैंक अधिकारियों से बातचीत के लिए भी आमतौर पर साक्षर महिलाओं को ही ज़्यादा उपयुक्त माना जाता है।

गुणात्मक अध्ययन के हमारे निष्कर्षों से नेताओं के चयन में साक्षरता के महत्त्व की पुष्टि होती है। वेलुगू से संबद्ध एस.एच.जी. की महिलाओं ने साक्षरता को संस्था चला सकने के मौकों से जोड़ कर बताया। पीस से जुड़े एस.एच.जी. की सदस्याओं ने बताया कि उन्होंने अपनी नेता इस आधार पर चुनी है, "कि वह बैठकों में पढ़े–लिखे व्यक्ति की तरह बोल सकती है और औरतों के लिए कुछ अच्छा करने में हमारा नेतृत्त्व करेगी।" उन्होंने यह भी कहा कि वह पढ़ी–लिखी है इसलिए समूह के खाते संभाल सकती है। "वे चीज़ों को ज़्यादा तेज़ी से चलाती हैं क्योंकि वे शिक्षित हैं। उन्हें अर्जी लिखने के लिए, सरकारी

नोटिस पढ़ने के लिए, कोई नोटिस लिखने के लिए किसी का इंतज़ार नहीं करना पड़ा। अशिक्षित व्यक्ति को किसी और पर, किसी शिक्षित व्यक्ति पर निर्भर रहना पड़ता है।"

नेतृत्त्व की योग्यता के रूप में साक्षरता के महत्त्व की यह समझ नेतृत्त्व के स्तर के हिसाब से अलग–अलग थी। मिसाल के तौर पर, वेलुगू से जुड़े स्वयं सहायता समूहों की सदस्याओं को लगता है कि साक्षरता मंडल स्तर की फेडरेशन (मंडल सामाख्या) का नेतृत्त्व संभालने के लिए तो महत्त्वपूर्ण है लेकिन ग्राम स्तरीय फेडरेशन के नेतृत्त्व के लिए इसका इतना महत्त्व नहीं है। इसलिए ग्राम स्तरीय फेडरेशन की महिलाओं ने कहा कि "अगर औरत पढ़ी–लिखी हो तो मंडल सामाख्या में हुई सारी चर्चा को लिख सकती है और आकर हमें बता सकती है।" महिलाएं मंडल सामाख्या को एक ऐसी जगह मानती हैं जहां अधिकारियों, औपचारिक संस्थानों आदि से बातचीत करनी पड़ती है जिसके लिए महिलाओं को शिक्षित होना चाहिए। इस बात पर सहमति थी कि ग्राम स्तरीय फेडरेशन के नेतृत्त्व के लिए भी साक्षरता महत्त्वपूर्ण है लेकिन जिन महिलाओं से हमने बात की उन्होंने कहा कि "हां, ज़रूरी है लेकिन वहां (मंडल सामाख्या में) और भी बहुत सारे काम करने पड़ते हैं, कई लोगों से मिलना पड़ता है इसलिए वहां की बातों को समझने और वहां बात करने के लिए इंसान को ज़्यादा पढ़ा–लिखा होना चाहिए।" फेडरेशन के स्तर पर साक्षरता के महत्त्व की कुछ और वजहें भी बतायी गयीं। जैसे, फेडरेशन में चिट्ठियां पढ़नी और समझनी पड़ती हैं। फेडरेशन के स्तर पर पैसे का लेन–देन ज़्यादा होता है, खाते जटिल होते हैं और उनको संभालने के लिए ज़्यादा दिमाग लगाना पड़ता है। मंडल स्तरीय फेडरेशन की सदस्याओं ने भी इस सोच को दर्शायाः "अगर हम न बताएं तो औरतें हम पर इल्ज़ाम लगाती हैं। वे हमसे हर बात पूछती हैं और न बताएं तो कहती हैं कि तुम्हें कुछ पता ही नहीं है कि वहां क्या हो रहा है।"

एस.एच.जी. नेतृत्त्व के लिए साक्षरता सबसे उल्लेखनीय कसौटी थी। 69% समूह नेता लिखना–पढ़ना जानती हैं जबकि सदस्याओं में साक्षरता का स्तर केवल 39.3% था। नेता का चुनाव करते हुए एस.एच.जी. सदस्याएं जिन मानकों पर सबसे ज़्यादा ध्यान देती हैं उनमें महिलाओं ने साक्षरता को सबसे अहम पैमाना बताया।

निरंतर सर्वेक्षण

नेतृत्त्व के स्तर के हिसाब से साक्षरता का सापेक्ष महत्त्व वेलुगू से जुड़ी फेडरेशन के विभिन्न स्तरों पर भी दिखायी देता है। मंडल स्तर पर साक्षर सदस्याओं का अनुपात गांव स्तर की फेडरेशन के मुकाबले काफी ज़्यादा था। गांव की फेडरेशन में 14 में से केवल 2 सदस्याएं साक्षर थीं। फेडरेशन के स्तर पर नवसाक्षर सदस्या भी अध्यक्ष तो बन सकती है लेकिन सचिव का काम नहीं कर सकती क्योंकि सचिव को वित्तीय लेन–देन भी संभालना पड़ता है। यह बात प्रोत्साहक संगठनों के कार्यकर्त्ताओं ने भी कही कि महिलाएं साक्षर नेताओं को ज़्यादा पसंद करती हैं। एस.जी.एस.वाई. समूह में ग्राम सेवक ने ही साक्षर नेताओं को चुना है क्योंकि उसे लगता है कि नेता को रिकॉर्ड संभालना ज़रूर आना चाहिए। महिला सदस्याओं ने भी उसके इस चयन पर मंजूरी दे दी थी।

न्याय के लिए प्रयासों से संबंध

एस.एच.जी. सदस्याओं ने नेताओं की भूमिका के अनुसार साक्षरता के महत्त्व के साथ–साथ सामाजिक

खुलती संभावनाएं

साक्षरता के महत्त्व के बारे में जो औरतों ने कहा है उसे हम ज्यों का त्यों नहीं ले सकते। ऐसा नहीं है कि औरतों के साक्षर हो जाने के कारण अब दुकानदारों ने उन्हें ठगना बंद कर दिया है। ऐसा भी नहीं है कि अगर औरतें साक्षर हो जाएंगी तो उन्हें प्रोत्साहक एजेंसी से पूरी स्वायत्तता मिल जाएगी। ज़रूरी बात यह है कि साक्षरता के चलते ये बदलाव संभावनाओं की परिधि में आ गए हैं।

अध्ययन से मिले साक्ष्य बताते हैं कि साक्षरता के प्रतीकात्मक इस्तेमाल के अलावा उसके इस्तेमाल और खास परिस्थितियों में उसके महत्त्व की भी जांच की जानी चाहिए। हो सकता है कि नवसाक्षर महिला साक्षरता की अपनी क्षमता को बिलकुल उसी प्रकार प्रयोग न कर रही हो जिस प्रकार साक्षरता प्रदान करने वालों ने उसके इस्तेमाल की अपेक्षा की थी। लेकिन हो सकता है कि वह जिस तरह उसका प्रयोग कर रही हो उसे वो सशक्तीकरण का स्रोत मानती हो।

मिसाल के तौर पर, पीस से जुड़े एस.एच.जी. की नेता सभी की पासबुक्स और बही–खाता (लेजर) पढ़ती है (जिसको बुककीपर लिखता है)। नेता बही नहीं लिखती लेकिन उसने कहा था कि वह "खाते संभालती है"। जब हमने पूछा कि इसका क्या मतलब है तो उसने बताया कि "बैठकों में मैं हिसाब लगाती हूं, कभी–कभी मैं मन ही मन में हिसाब लगा लेती हूं और बाद में उसे दर्ज़ कर देती हूं। मैं बुककीपर ट्रेनिंग में दो बार जा चुकी हूं। तीसरी बार मैं नहीं जा पायी क्योंकि उसी समय मुझे बच्चा हुआ था।" साक्षरता से जुड़े इन कामों के साथ–साथ वह मिनट्स भी पढ़ती है हालांकि मिनट्स लिखती नहीं है (क्योंकि इसके लिए लिखने की इतनी क्षमता होनी चाहिए कि व्यक्ति बोलने वालों की रफ़्तार से लिख सके)। वह चिट्ठियां पढ़ती है और अपने बच्चों की स्कूल की किताबें पढ़ती है। चीज़ें खरीदने और उपज को बाज़ार में बेचने के समय वह इस बात का हिसाब लगा लेती है कि उसे फायदा हो रहा है या नहीं। जब हमने पूछा कि क्या वह हाज़िरी भी लिखती है तो उसने कहा, "हां। कभी–कभी...एक बार मैंने किया था।" हालांकि बाद में हमने पाया कि हाज़िरी बुककीपर ही दर्ज़ करता है लेकिन गौर करने वाली बात यह थी कि इस महिला के कहने में एक आत्मविश्वास था, इस बात का अहसास कि अब वह इन कामों को कर सकती है, भले ही हमेशा न करती हो।

न्याय के एजेंडा को आगे बढ़ाने के लिए भी साक्षरता को महत्त्वपूर्ण बताया। पीस से जुड़े एस.एच.जी. की एक सदस्या ने हमसे बताया कि उसकी राय में साक्षरता और शिक्षा का क्या मतलब है: "अगर हम वर्णमाला का एक अक्षर सीखते हैं तो उससे हमें दूसरा अक्षर सीखने में मदद मिलती है। फिर इन्हीं अक्षरों से जांच करने, हिसाब लगाने और अपनी बात कहने में मदद मिलती है। ये अक्षर हमें मामलों को सुलझाने में मदद देते हैं।"

आनंदी की फेडरेशन से जुड़ी जिन 18 सदस्याओं से हमने बात की उनमें से 12 असाक्षर थीं। महिलाओं ने कई ऐसे उदाहरण दिए जब अपनी सक्रियता के दौरान उन्हें साक्षरता की ज़रूरत महसूस होती थी। उन्होंने बताया कि उन्हें पुलिस आदि विभागों से संपर्क

करने के लिए लिखित दस्तावेज़ों को संभालना पड़ता था। मिसाल के तौर पर, महिलाओं ने बताया कि उन्हें एफ.आई.आर. पढ़ना आना चाहिए क्योंकि तभी पता चल सकता है कि किस पर कौन–सी धारा लगायी गयी है। न्याय समिति (अन्याय के मामलों में हस्तक्षेप करने वाली समिति) ने यह भी बताया कि चूंकि महिलाएं असाक्षर हैं इसलिए उन्हें यह पता लगाने के लिए भी सामूहिक कार्रवाई करनी पड़ती है कि पुलिस ने किस व्यक्ति पर कौन–सी धारा और कानून लगाए हैं और किसी को क्यों गिरफ्तार किया है। बाद में वे इन जानकारियों को फिर भूल जाती हैं। "फिर हमने अंक सीखे और थोड़ा–थोड़ा लिखना सीखा। इसके बाद हमने पुलिस से सवाल पूछने शुरू किए और उन्हें मज़बूर किया कि वे साफ–साफ बताएं कि किस मामले में कौन–सा कानून लगाया गया है। धीरे–धीरे हमने कानून और नियमों को लिखना भी सीख लिया। इस तरह हम ऐसी कानूनी जानकारियों का ज़रिया बन गये। जब कोई पुलिस वाला सही धारा नहीं लगाता था या किसी को फायदा पहुंचाने के लिए तथ्यों को छिपाता था तो हम उसको भी धमका देते थे। इन चर्चाओं से यह साफ था कि उनकी सक्रियता ने उनके लिए साक्षरता की ज़रूरत और बढ़ा दी है।

असाक्षर फेडरेशन सदस्याओं ने कहा कि "जब हम वन अधिकारी से मिलते हैं तो हम उससे लिख कर मांग नहीं कर सकते। हमें बात करनी पड़ती है।" कमला साक्षर है। उसने कहा, "हम सरकारी अफसर की नेमप्लेट नहीं पढ़ सकते हैं...। हमने बहुत काम किया है लेकिन हमें ऐसे व्यक्ति की ज़रूरत रहती है जो हमारे लिए अर्ज़ी या प्रस्ताव लिख सके। दफ्तरों में सब कुछ लिख कर देना पड़ता है और यहीं हम मार खा जाते हैं।" महिलाओं को अच्छी तरह पता है कि वे जिस माहौल में काम कर रही हैं वह साक्षरता का माहौल है। मुख्यधारा की ताकतों के साथ जो सत्ता समीकरण बने हुए हैं उनमें इन महिलाओं के पास साक्षरता का अभाव एक बड़ा मुद्दा बन जाता है।

साक्षरता और विकेंद्रीकरण के बीच संबंध

स्वयं सहायता समूहों के आने से अकाउंटिंग, बुककीपिंग, मिनट्स लिखना, ये सब नए काम पैदा हुए हैं। इन समूहों को चलाने के लिए ज़रूरी अन्य गतिविधियां भी बदल गयी हैं जिनकी वजह से साक्षरता की मांग बढ़ रही है। आनंदी से जुड़ी फेडरेशन की साक्षर सदस्याओं ने दस्तावेज़ीकरण और रिकॉर्ड–कीपिंग की आवश्यकता भी व्यक्त की। फेडरेशन अपनी बैठकों और ऋण आधारित गतिविधियों के रिकॉर्ड रखने के अलावा अनाज ऋण वसूली का रिकॉर्ड भी रखती है। "पहले हम उनका (कार्यकर्त्ताओं का) इंतज़ार करते थे, लेकिन अब हममें से ही कोई लिख लेती है।" इन कामों को कर सकने की क्षमता से उनमें गर्व का भाव पैदा हुआ है। फेडरेशन की एक सदस्या ने कहा, "मेघी को देखो, वह कलम तक नहीं पकड़ सकती थी। पर अब वह बैठक के रिकॉर्ड रखती है और न केवल दफ्तर में बल्कि बैंक वालों के सामने बात भी कर लेती है।" साक्षरता हासिल करने के लिए अन्य महिलाएं भी इतनी ही उत्सुक हैं मगर वे ऐसा नहीं कर पाईं, "क्योंकि हमने उतनी मेहनत नहीं की जितनी उसने की है। वह अकेली है (एकल महिला) लेकिन अब वह इतने सारे लोगों को संभाल सकती है। उसे किसी का डर नहीं है।"

नियमित कामों के दस्तावेज़ीकरण के लिए साक्षरता की ज़रूरत पर ज़ोर देते हुए आनंदी से जुड़ी फेडरेशन की सदस्याओं ने कहा कि साक्षरता के चलते उनकी याददाश्त पर इतना ज़ोर नहीं पड़ेगा। "कई बैठकों में तो 30–30 औरतें होती हैं। वे तरह–तरह के

मुद्दे उठाती हैं। कई बार हम कुछ बातें भूल जाते हैं। ये ज़रूरी है कि वहां चर्चा में उठने वाली सारी बातों को हम लिख लें।" यह घटना इस बात को स्पष्ट कर देती है कि जब गतिविधियों का फैलाव होता है और महिलाओं को उनमें नेतृत्त्व देना पड़ता है तो साक्षरता का महत्त्व कितना बढ़ जाता है।

साक्षरता प्रयास

अध्ययन में जिन 6 एस.एच.जी. कार्यक्रमों को चुना गया था उनमें से खासतौर से एन.जी.ओ. आधारित समूहों – आनंदी और पीस – ने स्वयं सहायता समूहों की सदस्याओं को ध्यान में रखते हुए साक्षरता कार्यक्रम तैयार किए थे। आनंदी ने यह काम प्रायोगिक, छोटे पैमाने पर किया है। पीस ने वेल्ड कार्यक्रम को लागू किया था। जैसा कि पीछे ज़िक्र किया जा चुका है, वेल्ड अंतर्राष्ट्रीय स्वयंसेवी संस्था वर्ल्ड एजुकेशन का एक कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम में सहभागी संगठनों द्वारा क्रियान्वित किए जा रहे एस. एच.जी. कार्यक्रमों के भीतर साक्षरता, सशक्तीकरण और आजीविका के बीच संपर्क कायम करने की कोशिश की जा रही है।

सरकारी एस.एच.जी. कार्यक्रमों में स्वशक्ति, गुजरात ने अपने समूह के लिए एक विशेष साक्षरता कार्यक्रम शुरू किया था। इस कार्यक्रम के लिए सामग्री गुजरात विद्यापीठ (प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में एक प्रतिष्ठित संस्थान) ने उपलब्ध करायी थी और उसमें कार्यक्रम की हिस्सेदारी कम थी। अन्य कार्यक्रमों में साक्षरता का काम ज़िला प्रशासन द्वारा चलाए जा रहे मौजूदा सरकारी प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों पर छोड़ दिया गया है। इन कार्यक्रमों से महिलाओं को जोड़ने के लिए अलग–अलग सीमा तक प्रयास किए गए हैं। पश्चिमी गोदावरी में ड्वाक्रा के कार्यक्रमों में एस.एच.जी. और साक्षरता कार्यक्रमों के बीच ऐतिहासिक रूप से गहरा संबंध रहा है। एस.एच.जी. सदस्याएं अक्षर महिला कार्यक्रम का केंद्रबिंदु थीं। यह इस आबादी को ध्यान में रखते हुए शुरू किया गया एक प्रौढ़ शिक्षा अभियान था। लेकिन फिलहाल दोनों के आपसी संबंध कमज़ोर हैं। एस.जी.एस.वाई. में प्रौढ़ शिक्षा और एस.एच.जी. कार्यक्रम के बीच संबंध विकसित करने की ज़िम्मेदारी स्वयं सदस्याओं पर छोड़ दी गयी है। वेलुगू इन दोनों प्रयोगों के बीच की श्रेणी में आता है। वेलुगू में ऐसी महिलाओं के लिए साक्षरता कार्यक्रम चलाया गया है जो इससे पहले के सरकारी साक्षरता अभियानों का लाभ नहीं उठा पायी थीं।

उपरोक्त साक्षरता प्रयासों का संक्षिप्त विवरण परिशिष्ट तीन में दिया गया है। यहां हम साक्षरता और एस.एच.जी./माइक्रो क्रेडिट मॉडल के बारे में हमारे निष्कर्षों से निकलने वाली मुख्य चिंताओं को चिन्हित करेंगे।

साक्षरता कार्यक्रमों में मुख्य चिंता

दृष्टि का अभाव

एस.एच.जी. प्रोत्साहक एजेंसियां महिला साक्षरता को तभी महत्त्व देती हैं जब आय संवर्धन और ऋण संबंधी

"कुछ बैठकों में 30–30 औरतें होती हैं। वे तमाम तरह के मुद्दों पर चर्चा करती हैं। कभी–कभी हम कुछ बातें भूल जाते हैं। इसके लिए ज़रूरी है कि जिन पर चर्चा हुई हो उन सभी चीज़ों को लिख लिया जाए।" जब गतिविधियों में फैलाव आता है तो साक्षरता का महत्त्व और बढ़ जाता है।

प्राथमिक फोकस का लक्ष्य हासिल कर लिया जाता है। लेकिन इसके बावजूद सारा ज़ोर साक्षरता की कामकाजी और संकीर्ण परिभाषा पर ही रहता है जिसे अकसर दस्तख़त कर पाने की क्षमता तक सीमित कर दिया जाता है। साक्षरता की यह अवधारणा इस बारे में महिलाओं की अपनी सोच से बिल्कुल विपरीत पड़ती है। इस बारे में हम प्रस्तुत अध्याय के पहले भाग में ही चर्चा कर चुके हैं। यहां तक कि आनंदी, वेलुगू और स्वशक्ति जैसे कार्यक्रमों में भी, जहां सशक्तीकरण तथा अधिकारों के बीच विमर्श के स्तर पर संबंध दिखायी देता है, वहां भी इस बारे में कोई स्पष्ट समझ दिखायी नहीं देती कि साक्षरता को औरतों के लिए कैसे सार्थक बनाया जाए, उसे कैसे टिकाए रखा जाए और स्वयं सहायता समूहों की गतिविधियों तथा साक्षरता प्रयासों के बीच संबंध कैसे कायम किया जाए।

साक्षरता का प्राप्त स्तर

6 में से 3 कार्यक्रमों (एस.जी.एस.वाई., स्वशक्ति और वेलुगू) में साक्षरता उपलब्ध कराने की अवस्था से ही समस्याएं शुरू हो गयी हैं। जहां साक्षरता को बहुत कम महत्त्व दिया जाता है और फलस्वरूप वित्तीय एवं पाठ्यक्रम संबंधी सामग्री के अभाव पर ध्यान नहीं दिया जाता। वहां वॉलंटियर बहुत उत्साह से काम नहीं करते। वे महिलाओं द्वारा व्यक्त की जाने वाली प्राथमिकताओं को शुरुआत से ही आगे नहीं बढ़ाते और अकसर कक्षाएं बंद कर दी जाती हैं। नतीजा यह होता है कि महिलाएं बहुत मामूली साक्षरता हासिल कर पाती हैं। ज़्यादातर केवल दस्तखत करने के लायक बन पाती हैं। इसमें "थोड़ी–सी साक्षरता" मुहैया कराने की सोच हावी दिखायी देती है। यह पद्धति न केवल नाकामयाब रही है बल्कि हमारे अनुभव से पता चलता है कि यह महिलाओं के लिए हानिकारक भी हो सकती है।

समुचित सामग्री का अभाव

शिक्षकों का कहना है कि साक्षरता के एजेंडा को आगे बढ़ाने की प्रेरणा मुख्य रूप से एक जैसे सामाजिक–आर्थिक हालात से आए लोगों को इस योग्य बनाने की इच्छा से पैदा होती है कि वे साक्षरता का लाभ उठाकर गरीबी या शोषण के हालात पर अंकुश लगाने में कामयाब हो जाएं।

लेकिन साक्षरता पाठ्यक्रम की विषयवस्तु में ऐसा कुछ दिखायी नहीं दिया। उदाहरण के लिए जो सामग्री इस्तेमाल की जा रही थी वह गुजरात विद्यापीठ द्वारा शुरू की गयी थी जिसमें गरीबी तथा जेंडर संबंधी चिंताओं के बारे में कुछ नहीं था। गुजरात विद्यापीठ के कार्यकर्त्ताओं का कहना था कि स्वशक्ति कार्यक्रम की ज़रूरतों के हिसाब से इस सामग्री में कोई बदलाव नहीं किए गए थे और न ही कोई अतिरिक्त सामग्री तैयार की गयी थी।

संगठनों की निम्न प्राथमिकता

खासतौर से स्वयंसेवी संस्थाओं के मामले में हमने पाया कि यद्यपि साक्षरता को महत्त्व दिया जा रहा है

साक्षरता की एक बेहद उपयोगितावादी और संकुचित परिभाषा यह है कि इंसान दस्तखत करना सीख जाए। यह बात साक्षरता के बारे में औरतों की सोच से बिलकुल अलग है। वे साक्षरता को सत्ता तक पहुंचने का साधन मानती हैं।

लेकिन यह अनिवार्य सांगठनिक प्राथमिकता का विषय नहीं है।

महिला नेताओं और विभिन्न समितियों की सदस्याओं के लिए साक्षरता शिविर चलाने का आनंदी के पास एक सफल रिकॉर्ड रहा है। इस शिविर का मकसद महिलाओं को साक्षर करना और सशक्तीकरण के मार्ग पर आगे बढ़ाना था। इसके लिए विशेष रूप से साक्षरता सामग्री तैयार की गयी। उसमें महिलाओं द्वारा आमतौर पर इस्तेमाल किए जाने वाले शब्दों और चीज़ों का ही सहारा लिया गया था। जिन महिलाओं से हमने बात की उन्होंने बताया कि साक्षरता शिविर में उन्होंने न्याय, अधिकार, ज़मीन, पानी और जंगल जैसे शब्दों का बार–बार इस्तेमाल किया था। काम के उद्देश्यों के साथ–साथ गीत और कविताएं भी पाठ्यक्रम का हिस्सा थीं। इस कार्यक्रम की सफलता का एक हिस्सा इस बात से भी तय होता है कि इस नई क्षमता का इस्तेमाल करने के लिए महिलाओं को नये अवसर भी मुहैया कराये गये हैं। साक्षरता का प्रयोग करते हुए महिलाओं ने अब बैठकों के मिनट्स लिखना, रिपोर्टें लिखना, बैनर लिखना और अभियान सामग्री तैयार करना शुरू कर दिया है। न्याय समिति की महिलाओं ने ऐसी घटनाओं के बारे में बताया जब उन्होंने प्रशिक्षण के दौरान उपलब्ध कराए गए इनपुट्स का इस्तेमाल किया है, खासतौर से ऐसे प्रशिक्षणों में जो अपराधों और कानून की खास धाराओं से संबंधित थे। नाटक टीम की कुछ सदस्याओं ने बताया कि अब वे स्क्रिप्ट भी लिखने लगी हैं।

महिलाओं ने साक्षरता के महत्त्व को जिस तरह से व्यक्त किया उसके बावजूद आनंदी इन साक्षरता कार्यक्रमों को टिकाये रखने में सफल नहीं हो पाया है। इसके लिए ज़रूरी था कि नियमित रूप से संसाधन उपलब्ध कराए जाते लेकिन संगठन ऐसा नहीं कर पाया।

संसाधनों का अभाव

सरकारी और गैर–सरकारी साक्षरता कार्यक्रमों की एक गंभीर समस्या वित्तीय संसाधनों से संबंधित थी। जिन महिलाओं ने साक्षरता हासिल करने के लिए अपना समय और ऊर्जा दी है, उनकी प्रतिबद्धता के लिहाज़ से संसाधनों का अभाव एक भारी चिंता की बात है। यह बात इसलिए और भी चिंताजनक हो जाती है कि साक्षरता एक ऐसी क्षमता है जिसमें सीखने की एक खास लय होती है। जब एक बार यह लय टूट जाती है तो नये माहौल या परिवेश में उसे पटरी पर लाना बहुत मुश्किल होता है। साक्षरता एक ऐसी क्षमता है जिसको नष्ट होने से बचाने के लिए उसका लगातार इस्तेमाल करना ज़रूरी है। संसाधनों का अभाव क्या नुकसान पहुंचा सकता है, इस बात का सबसे अच्छा उदाहरण पीस के अनुभवों में दिखायी देता है।

स्वयं सहायता समूहों की सदस्याओं को वेल्ड के ज़रिए साक्षरता, सूचना और सामाजिक–आर्थिक मुद्दों पर चर्चा की जगह हासिल हुई। वेल्ड से जुड़ी औरतों के साथ समूह चर्चा में हमने देखा कि इन मुद्दों पर उनकी समझदारी और दिलचस्पी समूह की अन्य सदस्याओं के मुकाबले बेहतर थी। वेल्ड से जुड़ी महिलाएं लैंगिक न्याय के मुद्दों को उठाने में भी ज़्यादा सक्रिय दिखायी दीं।

लेकिन परियोजना अवधि खत्म होने वाली थी इसलिए पीस इस कार्यक्रम को जारी रखने के लिए संसाधनों की व्यवस्था नहीं कर पा रहा था। इस सिलसिले में पीस ने केयर फंडिंग एजेन्सी से संपर्क किया जिसने अंततः कैश कार्यक्रम के रूप में इस माइक्रो क्रेडिट कार्यक्रम को मदद का आवश्वान दे दिया न की वेल्ड कार्यक्रम को। इस कार्यक्रम को अचानक बंद कर देने पर पीस की ओर से वेल्ड

कार्यक्रम की फंडिग एजेन्सी के प्रति कड़ा असंतोष व्यक्त किया गया। गोलबंदी की आवश्यकता और कार्यक्रम के क्रियान्वयन में विलंबों में नष्ट हो चुके समय को देखते हुए इस परियोजना के लिए समय पर्याप्त नहीं था। पीस के निदेशक का कहना था, "जब औरतें पढ़ना चाहती थीं, ज़्यादा सीखने को तैयार थीं तो उन्होंने कार्यक्रम बंद कर दिया। हमने उनसे आग्रह किया कि वे कार्यक्रम जारी रखें। लेकिन उन्होंने कहा कि अब वे इसके लिए पैसा नहीं देंगे। कुछ पैसा बचा हुआ था इसलिए मैंने परियोजना को 6 माह के लिए और बढ़ा दिया। अगर हमारे पास ज़्यादा सेंटर एवं ज़्यादा समय होता तो कार्यक्रम और कामयाब हो सकता था।"

वेल्ड के सहभागियों को यह भी लगता था कि कक्षाओं के लिए तैयार होने और साक्षरता में दिलचस्पी पैदा करने में उन्होंने जितना समय लगाया उसको देखते हुए कार्यक्रम बंद होने से उनकी सीखने की प्रक्रिया को बड़ा झटका लगा है। वेल्ड में हिस्सा ले चुकी एक महिला ने कहा, "वे लोग पढ़ाते थे, मैं जैसे–तैसे सीख लेती थी। आमदनी वाला पाठ बड़ा मज़ेदार था। फिर हमने कुछ जोड़–घटाव किया। मुझे अंकों में मज़ा आने लगा। मैं घटाना और जमा करना सीखने लगी। फिर सेंटर बंद कर दिया गया।" हमने कार्यकर्त्ताओं और महिलाओं, दोनों से पूछा था कि क्या वे परियोजना खत्म होने के बाद साक्षरता को कायम नहीं रख सकते थे? दोनों के जवाबों से यह स्पष्ट हो गया कि ऐसा करना संभव नहीं था।

साक्षरता के इस्तेमाल और टिकाऊपन के लिए इनपुट्स का अभाव

लगभग सभी कार्यक्रमों में साक्षरता प्रयासों का टिकाऊपन सुनिश्चित करने के लिए कोई प्रावधान नहीं किए जा रहे हैं। जहां ऐसा करने की ज़रूरत रेखांकित की जा चुकी है वहां भी अपेक्षित प्रयास दिखायी नहीं देते। मिसाल के तौर पर, स्वशक्ति में इनपुट्स को जारी रखने या टिकाये रखने या संगठन का काम दूसरे गांवों में फैलाने की योजना के बारे में संगठनों के साथ कोई चर्चा नहीं हुई थी।

दस्तखत से ज़्यादा नहीं

आंध्र प्रदेश में राज्य सरकार के प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को वेलुगू कार्यक्रम से जोड़ने की कोशिश की जा रही है ताकि एस.एच.जी. समूहों की सदस्याओं को भी साक्षरता प्रदान की जा सके। इसका मकसद वेलुगू के ज़रिए उन महिलाओं तक पहुंचना था जो प्रौढ़ शिक्षा अभियान में छूट गयी थीं। लेकिन हमारे फील्ड वर्क से पता चला कि समूहों में बहुत सारी महिलाएं अभी भी वस्तुतः असाक्षर हैं। उन्होंने संपूर्ण साक्षरता अभियान के माध्यम से बहुत कम लिखना–पढ़ना सीखा है। फिर भी, छूट गयी महिलाओं को लाभ पहुंचाने के लिए किए जा रहे प्रयासों में उन पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। मंडल साक्षरता अधिकारी ने हमें बताया कि इस अभियान में केवल ऐसी महिलाओं को ही शामिल किया जा रहा है जो अपना नाम भी नहीं लिख सकतीं। समूहों की महिलाएं इस बात से काफी खफा थीं। उनका कहना था कि "हमें इस बात की सज़ा दी जा रही है कि हम अपना नाम लिखना जान गयी हैं।" एक सदस्या ने कहा कि "विडंबना यह है कि वेलुगू के अफसरों ने ही यह ऐलान किया था कि 'वेलुगू की कोई भी औरत' बैंक में अंगूठे का निशान नहीं लगाएगी।"

स्वशक्ति कार्यक्रम में मान लिया गया था कि यह गतिविधि सहभागी स्वयंसेवी संस्था द्वारा चलायी जाएगी और उसी संस्था को मौजूदा कार्यक्रमों का टिकाऊपन भी सुनिश्चित करना होगा। दूसरी तरफ स्वयंसेवी संस्थाओं ने भी ऐसा करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की और कहा कि एक समग्र साक्षरता कार्यक्रम शुरू करने के लिए एक नई परियोजना ही चलानी पड़ेगी। लेकिन यह प्रस्ताव भी साकार रूप नहीं ले पाया क्योंकि अन्य फंडिंग एजेंसियों की योजना में महिला साक्षरता को बहुत कम प्राथमिकता दी जाती है। ऐसी दृष्टि के अभाव में साक्षरता एक ऐसे अल्पकालिक लक्ष्य में सिमट कर रह जाती है जिसके लिए सशक्तीकरण के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए टिकाऊपन की आवश्यकता पर ज़ोर नहीं दिया जाता।

जब सशक्तीकरण के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण इनपुट्स के बारे में पूछा गया तो सर्वेक्षण में शामिल की गयी स्वयंसेवी संस्थाओं से जो जवाब मिले वे घटती बारंबारता के लिहाज़ से इस प्रकार थे : साक्षरता, कलेक्टिव/समूह निर्माण, कानूनी अधिकारों के बारे में जानकारी, स्वास्थ्य शिक्षा, आय संवर्द्धन/आजीविका विकास। साक्षरता की घोषित चाह के बावजूद ज़्यादातर महिलाओं को सिर्फ अपना नाम लिखना सिखाया जा रहा था। साक्षर सदस्याओं को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है कि वे औरों को साक्षर बनाएं। संगठनों के लोग महिलाओं को अन्य साक्षरता कार्यक्रमों से जोड़ने के लिए प्रोत्साहित कर रहे थे। मात्र लगभग 9% मामले ऐसे थे जहां संगठनों ने साक्षरता शिक्षक की नियुक्ति की है।

निरंतर सर्वेक्षण

औरतें साक्षरता प्रयासों को जारी रखें, इसके लिए तरीके ढूंढना मुश्किल है। इसका एक आसान जवाब यह है कि एस.एच.जी. सदस्याओं को शैक्षणिक विषयों से जोड़े बिना उन्हें आय संवर्धन गतिविधियों में शामिल कर लिया जाए। स्वशक्ति में और कुछ हद तक ड्वाक्रा में ऐसा हो चुका है। महिला प्रेरक (ग्राम स्तर की सतत् शिक्षा कार्यकर्त्ता) ने खुद चार महीने तक साक्षरता कक्षाएं चलाईं और बाद में स्वयं सहायता समूह में कैटरिंग तथा पापड़–बड़ी बनाने की आय संवर्धन गतिविधियों से जोड़ दिया। वह सारे खाते संभालती थी और भुगतान का हिसाब रखती थी। पूरा समूह इस उद्यम में केवल मज़दूरी करता था।

साक्षरता की उपलब्धियों को मापने के लिए एक साक्षरता प्रारूप तैयार किया गया है। इस प्रारूप के ज़रिए स्वयं सहायता समूहों की साक्षरता कक्षाओं में दाखिला लेने वाली औरतों की साक्षरता क्षमता को मापा जाता है लेकिन यह पैमाना भी उपलब्धियों और लक्ष्यों को संख्याओं में समेट देता है और उसे स्वशक्ति कार्यक्रम के संकेतकों में शामिल नहीं किया जाता है। साक्षरता संकेतकों की निगरानी का काम इस बात तक सीमित रहता है कि प्रतिभागियों ने प्रवेशिकाओं को पढ़ने के लिए कितनी क्षमता हासिल कर ली है। उन्हें पढ़ने–लिखने को कोई और चीज़ नहीं दी जाती है। इसीलिए, यह देखने के लिए भी कोई प्रयास नहीं किया गया है कि इस क्षमता का अभी भी इस्तेमाल किया जा रहा है या नहीं। और अगर अभी भी इस्तेमाल हो रहा है तो उसको और टिकाऊ बनाने के लिए क्या किया जाना चाहिए। इनरेका संस्था के फील्ड एरिया में हमने जिन तीन गांवों की महिलाओं से बात की वे इस बात को लेकर चिंतित थीं कि ऐसे अवसर न होने के कारण वे दोबारा निरक्षर होती जा रही हैं।

पश्चिमी गोदावरी का अनुभव इस लिहाज़ से महत्त्वपूर्ण है कि वहां स्वयं सहायता समूहों को साक्षरता से जोड़ने का प्रयास किया गया और साक्षरता के चरण में यह एक सफल प्रयोग था। लेकिन यह कार्यक्रम भी महिलाओं में साक्षरता की क्षमता कायम रखने के अवसर उपलब्ध नहीं करा पाया।

महिलाएं अपनी साक्षरता को टिकाये रखने और इस्तेमाल करने में इस तरह सक्षम हों कि इससे स्वयं सहायता समूहों के साथ उनके संबंध मज़बूत होने लगें और यह संबंध अधिकाधिक स्वायत्तता और पारदर्शिता की तरफ बढ़े, इस बात के महत्त्व को देखते हुए अगले भाग में हम यह परखेंगे कि अपनी साक्षरता क्षमताओं का इस्तेमाल करने में नवसाक्षर महिलाओं को कैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है और उनके पास क्या संभावनाएं हैं।

नवसाक्षर महिलाओं के सामने चुनौती

हमें जो साक्ष्य मिले उनसे पता चलता है कि साक्षरता संबंधी प्रयासों से मोटे तौर पर ऐसी महिलाओं को फायदा पहुंच रहा है जो पहले ही कुछ साल औपचारिक शिक्षा प्राप्त कर चुकी थीं। साक्षरता कार्यक्रमों में उन्हें अपनी पुरानी क्षमताओं को पुनर्जीवित या मज़बूत करने का मौका मिला है। ऐसी महिलाएं इस क्षमता का इस्तेमाल करने में भी कामयाब रही हैं। हालांकि यह बात सच है कि जिन महिलाओं को पहले ही स्कूल जाने का मौका मिल चुका था वे साक्षरता को पुनर्जीवित और प्रयोग कर पाने में ज़्यादा कामयाब रही हैं लेकिन इस बात पर ध्यान देना भी महत्त्वपूर्ण है कि इन क्षमताओं का इस्तेमाल व्यक्तिगत परिधि तक ही सीमित है। उदाहरण के लिए, पश्चिमी गोदावरी में कई सदस्याओं ने बताया कि वे घर पर किताबें, चिट्ठियां पढ़ लेती हैं और खाते संभालने लगी हैं। लेकिन जब 'सार्वजनिक' परिधि की बात आयी तो एस. एच.जी. में उनके पास पासबुक भरने या समूह के खाते संभालने का आत्मविश्वास नहीं है। उन्होंने कहा कि वे ऐसी महिलाओं की उपस्थिति में घबरा जाती हैं जिनके पास उनसे ज़्यादा औपचारिक शिक्षा रही है। यह स्थिति तब है जबकि अपने 'निजी' दायरे में वे इससे भी ज़्यादा साक्षरता क्षमता का प्रयोग कर रही थीं।

जब हम ऐसी महिलाओं पर विचार करते हैं जिनके पास ज़्यादा औपचारिक शिक्षा रही है, तो महिलाओं को अपनी साक्षरता क्षमता का इस्तेमाल करने के योग्य बनाने से संबंधित चुनौतियां फौरन नज़र में आ जाती हैं। अध्ययन के दौरान जिन महिलाओं से बात की गयी उनमें से किसी ने भी नहीं कहा कि वह एस.एच.जी. से संबंधित किसी चीज़ के लिए कुछ लिखती है। उदाहरण के लिए, पश्चिमी गोदावरी में एक एस.एच.जी. की नेता ललिता छठी कक्षा तक पढ़ी हुई है और समूह की अन्य सदस्याओं के मुकाबले बहुत ताकतवर है, लेकिन वह भी बैंक का फॉर्म तक नहीं भरती। गौरतलब बात यह है कि पश्चिमी गोदावरी की साक्षरता प्रवेशिका में बैंक का फॉर्म भी शामिल किया गया था। शिक्षा सामग्री में इस फॉर्म का समावेश एक अच्छी बात थी। लेकिन जैसा कि ललिता जैसी महिलाओं के उदाहरणों से स्पष्ट है, जो व्यक्ति तकनीकी रूप से फॉर्म भरना 'जानता है' उसे सचमुच फॉर्म भरने के स्तर तक लाने के लिए सिर्फ साक्षरता के स्तर पर ही नहीं बल्कि पद्धति के स्तर पर भी प्रयास करने होंगे।

दूसरी तरफ आनंदी से जुड़ी एस.एच.जी. की सदस्या पद्मा इस बात का उदाहरण है कि यदि किसी प्रतिभागी को अपने रोज़ाना कामकाज में साक्षरता क्षमता का इस्तेमाल करने में मदद दी जाए तो उसके जीवन में कितना फर्क आ सकता है। पद्मा

साक्षरता को कायम रखने में विफलता

पश्चिमी गोदावरी ज़िला अपने वयस्क साक्षरता कार्यक्रम की सफलता के लिए अकसर सुर्खियों में रहा है। वर्ष 2000 में यहां अक्षर महिला कार्यक्रम के नाम से प्रौढ़ शिक्षा अभियान शुरू किया गया था। यह कार्यक्रम ज़िला प्रौढ़ शिक्षा एसोसिएशन द्वारा शुरू किया गया था। स्वयं सहायता समूहों को 'लक्ष्य' बनाने की नीति के कारण इस कार्यक्रम को बेहद रचनात्मक और प्रभावशाली माना गया था। इसे 'समूह आधारित पद्धति' का नाम दिया गया जो पहले वाले संपूर्ण साक्षरता अभियान से भिन्न था। संपूर्ण साक्षरता अभियान में समूचे असाक्षर समुदाय को साक्षर बनाने का प्रयास किया जाता था। नए कार्यक्रम में साक्षरता को समुदाय के एक विशेष हिस्से यानि स्वयं सहायता समूहों पर फोकस किया। समूह के भीतर से ही सीखने वालों को चिन्हित किया गया। वॉलंटियर्स के प्रशिक्षण, शिक्षा सामग्री आदि की लागत समूह ने वहन की थी। वॉलंटियर्स को समूह द्वारा ही चुना गया था। वॉलंटियर आमतौर पर समूह की ही किसी सदस्या की बेटियां होती थीं। साक्षरता के लिए स्वयं सहायता समूहों के इस्तेमाल की रणनीति सरकार के लिए बहुत उपयोगी साबित हुई है। इस प्रक्रिया में सीखने वालों और वॉलंटियर्स को इकट्ठा करने में तो कामयाबी मिली ही है, खर्चा भी सीखने वाली महिलाओं के वित्तीय संसाधनों में से ही किया गया है।

अध्ययन के दौरान किए गए साक्षात्कारों और द्वितीयक स्रोतों का अध्ययन करने पर पता चलता है कि इस कार्यक्रम को एक अभियान की भावना से चलाया गया था। आंध्र प्रदेश का पश्चिमी गोदावरी ज़िला पिछले चार साल से बिना अनुदानों के सतत् शिक्षा कार्यक्रम चला रहा है। अनुदान इसलिए नहीं है क्योंकि राष्ट्रीय साक्षरता मिशन से अनुदान जारी होने में विलंब हो रहा है। यहां इस बात पर ध्यान देना ज़रूरी है कि पश्चिमी गोदावरी का अनुभव देश के बहुत सारे अन्य ज़िलों से भिन्न नहीं है जहां केंद्र या राज्य सरकार से मिलने वाले अनुदानों के जारी होने में अकसर विलंब होता रहता है। यहां का अनुभव इस मायने में अनूठा है कि यहां सामुदायिक सहभागिता और स्वामित्व की रणनीति के तहत सरकार पर निर्भरता कम करने के लिए समुदाय से ही अनुदान जुटाने का प्रयास किया गया है। माना जाता है कि पश्चिमी गोदावरी में पहले भी बिना अनुदानों के काम इसीलिए जारी रहा था क्योंकि कार्यक्रम को अभियान की तर्ज़ पर चलाया जा रहा था।

लेकिन इसमें कुछ बुनियादी समस्याएं हुई थीं। सतत् शिक्षा कार्यक्रम की ग्राम स्तरीय कार्यकारी समिति के साथ साक्षात्कारों में समिति के सदस्यों से हमने पूछा कि नवसाक्षर महिलाएं अपनी साक्षरता क्षमता का क्या इस्तेमाल कर रही हैं। इसके जवाब में सिर्फ एक सदस्य ने केवल इतना कहा कि "उसने नहीं देखा कि नवसाक्षर महिलाएं साक्षरता का क्या करती हैं।" समिति के सदस्यों ने यह भी कहा कि उन्होंने एस.एच.जी. सदस्याओं के बीच साक्षरता के इस्तेमाल को बढ़ावा देने के लिए कोई कदम नहीं उठाए हैं।

हालांकि कम–से–कम योजना के स्तर पर कुछ गतिविधियां ऐसी हैं जिनका मकसद यह

सुनिश्चित करना है कि सीखने वाले साक्षरता का इस्तेमाल करें। मगर विडंबना है कि यह सुनिश्चित करने के लिए एक व्यापक रणनीति अभी भी नहीं है कि नियोजित साक्षरता लक्ष्यों को कैसे बनाए रखा जाए। मिसाल के तौर पर, अक्षर संक्रान्ति कार्यक्रम चरण VI, 2003 के लिए तैयार की गयी कार्ययोजना में पश्चिमी गोदावरी के लिए ऐसा कोई ज़िक्र नहीं है कि अब तक जिन लोगों को साक्षर बनाया गया है उनकी साक्षरता को कायम रखने के लिए क्या किया जाएगा। एक समस्या यह थी कि यद्यपि अक्षर महिला कार्यक्रम एस.एच.जी. और साक्षरता के बीच अंतर्संबंधों पर आधारित है लेकिन फिलहाल शैक्षणिक कार्यक्रम और उस विभाग के बीच कोई पारस्परिक, संस्थागत संपर्क नहीं है जिसके ज़रिए शिक्षा के टिकाऊ मौके निरंतरता से प्रदान किए जा सकें।

कभी स्कूल नहीं गयी। लेकिन अब वह रजिस्टर में अपनी क्लस्टर बैठक की रिपोर्टें लिख सकती है। उसे कभी–कभी कोऑर्डिनेटर लता से बस थोड़ी–बहुत सलाह लेनी पड़ती है। वह अकसर शिकायतें लिखती है और न्याय समिति की सदस्या के रूप में एफ.आई.आर. की अर्ज़ी लिखती है। साक्षरता क्षमता हासिल कर चुकी आनंदी की फेडरेशन सदस्याएं अन्य स्वयं सहायता समूहों की सदस्याओं के मुकाबले अपनी साक्षरता का इस्तेमाल करने के प्रति ज़्यादा इच्छुक दिखायी दीं। और ज़्यादा प्रशिक्षण के ज़रिए वे अपनी क्षमता में भी सुधार लाना चाहती थीं।

अपनी नई दक्षता को इस्तेमाल करने के बारे में आत्मविश्वास का अभाव इस धारणा से भी उपजा है कि वे 'सही ढंग से' नहीं लिख सकती। जिन महिलाओं ने पांचवी कक्षा तक पढ़ाई की है उनका भी यही कहना था। माइक्रो क्रेडिट के संदर्भ में इस सोच के नतीजे और भी गंभीर हो सकते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि माइक्रो क्रेडिट प्रक्रिया के कई कामों को करने के लिए साक्षरता एवं अंकगणित संबंधी पहलुओं के लिए सटीक समझ होना ज़रूरी है। लेकिन ऐसे कामों में गलती का डर अन्य 'सार्वजनिक' दायरों में साक्षरता के इस्तेमाल के मुकाबले बहुत ज़्यादा परेशान करता है। एस.जी.एस.वाई. समूह की एक महिला (दसवीं 'पास') ने कहा कि "ये हिसाब–किताब का मामला है। छोटी–सी गलती भी सबको लड़ाई में झोंक देगी।"

पीस के एक कार्यकर्त्ता ने भी इसी तरह की राय व्यक्त की। उसने कहा, "अगर औरतें सही ढंग से नहीं लिखती हैं तो समूह में समस्याएं खड़ी हो जाती हैं। वे पर्ची सही लिखने की कोशिश कर रही हैं। लेकिन जब उनसे मिनट्स लिखने के लिए कहा गया तो वे हिचकिचाने लगीं। इसके बाद बुककीपिंग और बही–खाते का सवाल आया। उनके लिए काम जारी रखना मुश्किल हो गया था। तो उन्होंने काम छोड़ दिया। अगर समूह के खाते अच्छी तरह नहीं रखे जाएंगे तो हंगामा हो जाएगा।"

माइक्रो क्रेडिट कार्यक्रम में खाते संभालने की जो व्यवस्था की गयी है उसमें यह सुनिश्चित किया गया है कि कार्यक्रम अधिकारी बहुत सारे समूहों के आंकड़ों का एक साथ विश्लेषण कर सकें और उन्हें एक जगह संकलित कर सकें। इस वजह से भी बुककीपिंग की प्रक्रिया जटिल हुई है। इसके कारण नवसाक्षर और यहां तक कि पर्याप्त औपचारिक शिक्षा प्राप्त कर चुकी महिलाएं भी ऐसी ज़िम्मेदारी लेने से कतराती हैं। दूसरी तरफ जहां समूहों को खुद अपने खाते संभालने की अनुमति और प्रोत्साहन मिलता है और जहां इस

औरतों को लिखने–पढ़ने की अपनी क्षमताओं पर यकीन नहीं था। माइक्रो क्रेडिट संबंधित साक्षरता क्षमता के लिए सटीकता भी ज़रूरी थी। अधिकारियों की इस मान्यता से स्थिति और गंभीर हो गयी थी कि नवसाक्षर औरतें इन कामों को नहीं कर सकतीं।

तरह के मानकीकरण का दबाव नहीं होता (जैसे आनंदी) तो उन समूहों में सदस्याएं भी यदा–कदा कार्यकर्त्ताओं से थोड़ी–बहुत मदद लेकर खाते और बुककीपिंग का काम संभाल लेती हैं। जब ये समूह बैंक ऋण के लिए प्रयास करते हैं, तो उस समय भी यह सहायता उपलब्ध रहती है। इसीलिए एस.एच.जी. ऋण गतिविधियों को कुशलतापूर्वक चलाने के लिए खुद संगठनों की तरफ से जो जटिल पद्धतियां विकसित की गयी हैं उनके कारण भी इन कामों को संभालने की महिलाओं की क्षमता पर विपरीत असर पड़ता है।

अपनी क्षमताओं में महिलाओं का आत्मविश्वास जितना कम है और माइक्रो क्रेडिट संबंधी साक्षरता कार्यों में सटीकता की जैसी उम्मीद की जाती है, उसमें अधिकारियों की इस धारणा ने स्थिति और जटिल बना दी है कि कम पढ़ी–लिखी औरतें इस तरह के काम नहीं कर सकतीं। दरअसल पश्चिमी गोदावरी की एक एस.एच.जी. की पहली नेता को यह विश्वास था कि वह लिख सकती है लेकिन बैंक अधिकारियों ने उसे कुछ करने ही नहीं दिया। वे सारा कागज़ी काम खुद कर लेते थे। इसका नतीजा यह हुआ कि वह खुद भी यह मानने लगी और गांव की अन्य महिलाओं को भी ऐसा लगने लगा कि वह काम नहीं संभाल पाएगी।

ज़िला प्रौढ़ शिक्षा एसोसिएशन, पश्चिमी गोदावरी के जिस अधिकारी से हमने बातचीत की उन्हें खुद इस बारे में संदेह था कि क्या एस.एच.जी. की

रिकॉर्ड–कीपिंग के लिए साक्षरता के इस्तेमाल को बढ़ावा देने की संभावना

बुककीपिंग के अलावा, साक्षरता के इस्तेमाल का एक महत्त्वपूर्ण विषय रिकॉर्ड–कीपिंग से संबंधित है। इस प्रक्रिया में मिनट्स आदि दर्ज़ किए जाते हैं। न केवल नवसाक्षर महिलाओं के संदर्भ में बल्कि समूह के कामकाज में पारदर्शिता की ज़रूरत को देखते हुए भी यह एक उल्लेखनीय आयाम है। यहां हम ड्वाक्रा से संबद्ध एक एस.एच.जी. के साथ हुए साक्षात्कार के कुछ अंश प्रस्तुत कर रहे हैं :

साक्षात्कारकर्ता: क्या आप बैठक के मिनट्स लिखती हैं?

सदस्या: पहले लिखते थे अब नहीं लिखते। हम एक डायरी रखते थे (जिसमें आखिरी एन्ट्री अगस्त 2000 की थी)। पहले हमारे पास कोई रजिस्टर नहीं थे। बाद में उन्होंने हमें दिए और हम लिखने लगे. .. फिर उन्होंने रोक दिया। उस डायरी को देखिए। हमने 50 रुपए में खरीदी थी... (यह इस बात का संकेत है कि जब कार्यक्रम की तरफ से उन्हें यह मदद मिलनी बंद हो गयी तो मिनटिंग को महत्त्वपूर्ण मानते हुए उन्होंने खुद डायरी खरीद ली थी।)

साक्षात्कारकर्ता: इस पर इतना पैसा खर्च करने के बाद भी उसे आपने एक तरफ क्यों रख दिया? आप उसका इस्तेमाल क्यों नहीं करतीं?

सदस्याः हमें पता ही नहीं था कि चीज़ें कैसे लिखनी हैं...। आप हमें बताइए कैसे लिखना चाहिए...। बस इतना ही, हमें किसी ने बताया ही नहीं कि कैसे लिखा जाता है...। पहले शांतम्मा (ड्वाक्रा की फील्ड कार्यकर्त्ता) आया करती थीं पर हमने उनसे कभी लिखने का ढंग पूछा ही नहीं और फिर तो हमारे पास रजिस्टर भी नहीं रहा। वह अपने ही रजिस्टर में लिखकर चली जाती थीं... हमने भी कभी उनसे नहीं पूछा।

(यानि कार्यक्रम की ओर से मिनट्स लिखने के लिए कोई प्रयास नहीं किए गए, कार्यक्रम की ओर से आने वाली कार्यकर्त्ता ही यह काम करती थी जिसके फलस्वरूप इन महिलाओं के पास अपना कोई रिकॉर्ड नहीं है। ये महिलाएं साक्षर हैं लेकिन उन्हें यह काम करने के लिए मदद की ज़रूरत है।)

साक्षात्कारकर्ताः आप में से चार–पांच पढ़ और लिख सकती हैं। आप जो कुछ बात करती हैं उसी को लिखना क्यों नहीं शुरू कर देती हैं? क्या अब से आप ऐसा करेंगी? मैं ऐसा इसलिए कह रही हूं क्योंकि मान लीजिए आपके ज़हन में कोई शंका है या कोई समस्या या कोई कठिनाई है... ऐसे समय पर पता होना चाहिए कि आपने कब क्या कहा था, क्या हुआ था... बाद में वही काम आएगा जिसे आप लिखकर रख लेंगी। इसलिए अगर आप इन बातों को लिखकर नहीं रखेंगी तो आपको कैसे पता चलेगा।

सदस्याः हूं...।

('शांति के समय' तो उन्होंने पासबुक को भी महत्त्व नहीं दिया लेकिन जब भरोसा टूटा तो वही पासबुक इतनी महत्त्वपूर्ण हो गयी कि वे नेताओं से उसे छीन कर ले गयीं। इसे एक ऐसा दस्तावेज़ माना जाता है जिसके ज़रिए महिलाएं यह पता लगा सकती हैं कि नेताओं ने उनको धोखा तो नहीं दिया है।)

साक्षात्कारकर्ताः मैं यह इसलिए पूछ रही हूं क्योंकि मैं जानना चाहती हूं कि आपमें से किस–किसको यह जानने में दिलचस्पी है कि पासबुक में दरअसल क्या लिखा है?

सदस्याः कायदे में हमें देखना चाहिए था कि पासबुक में क्या लिखा है जिससे ये पता चल जाता कि वे कोई गबन तो नहीं कर रहे हैं।

साक्षात्कारकर्ताः यह पता लगाना भी ज़रूरी है कि हम कितना पैसा जमा कर रही हैं और समूह ने कुल मिलाकर कितनी बचत कर ली है।

सदस्याः उन्होंने कहा था कि वे इस बात पर गौर करेंगी। अगर किसी को मालूम नहीं होता है तो वे उनसे पता करवाती हैं 'जिन्हें' गणित आता है...।

साक्षात्कारकर्ताः आपमें से कितनी सदस्याएं खातों को देखती हैं? कितनी जानती हैं कि पासबुक में क्या है?

सदस्याः सभी जानती हैं; एक बार एक पासबुक में जब 'उन्हें' लगा कि कुछ गड़बड़ी है तो 'उन्होंने' उसकी जांच करवाई और पता चला कि उसमें कोई गड़बड़ी नहीं थी। फिर 'उन्होंने' हमें पासबुक लौटा दी लेकिन कहा कि हम उन्हें दोबारा पैसा चुकाने के बाद फिर देख लें और तब से हमने पासबुक नहीं दी है। हम दस की दस वहां गयीं और इस बारे में पूछा; और 'उन्होंने' कहा कि क्योंकि आपने बुक्स नहीं दी हैं इसलिए हम क्या कर सकते थे?

(यह इस बात का एक और साक्ष्य है कि रिकॉर्ड्स का कितना महत्त्व होता है। जब अफसरों ने उनके खाता रजिस्टर नहीं लौटाए तो सारी महिलाएं उनके पास जा पहुंची। लेकिन जब इसके बावजूद खाता रजिस्टर नहीं मिले तो वे लाचार हो गयीं।)

नवसाक्षर महिलाएं खाते संभाल सकती हैं। उन्होंने अंदाज़ा लगाकर कहा कि 30–40% महिलाएं ऐसा कर सकती हैं। उन्होंने कहा कि 30–40% महिलाएं पासबुक भी संभाल सकती हैं। लेकिन क्योंकि असाक्षर एस.एच.जी. सदस्याओं द्वारा साक्षरता का प्रयोग ज़िला प्रौढ़ शिक्षा एसोसिएशन द्वारा विकसित की गयी निगरानी प्रणाली का हिस्सा नहीं है इसलिए उसके पास अपने इन अनुमानों के समर्थन में कोई आंकड़े नहीं थे। न ही चित्तूर में वेलुगू के कार्यकर्त्ताओं या प्रौढ़ शिक्षा अधिकारियों ने स्वयं सहायता समूहों की सदस्याओं के बीच साक्षरता क्षमता का कोई अनुमान लगाया था। उन्होंने रिकॉर्ड कीपिंग और पासबुक भरने का काम गांव स्तर के कार्यकर्त्ता पर छोड़ा हुआ था जो समूह की बजाय केवल कार्यक्रम अधिकारियों के प्रति जवाबदेह था। वस्तुतः समूह की नवसाक्षर और साक्षर महिलाएं कभी अकाउंट बुक्स देखने की या उन्हें कैसे संभाला जाता है, यह जानने के लिए मांग करने की भी हिम्मत नहीं जुटा पायीं।

साक्षरता कार्यक्रमों में सक्रिय कोई भी व्यक्ति ऐसी स्थिति में नहीं था जो बता सके कि एस.एच.जी. सदस्याओं में से वास्तव में किस स्तर तक बुककीपिंग क्षमता हासिल कर सकती हैं। खाते संभालने और बुककीपिंग के कामों में साक्षरता और अंकगणित का कई ढंग से इस्तेमाल करना पड़ता है। सबसे पहले तो यह पता लगाने के लिए साक्षरता और अंक ज्ञान के उपयोगों को अलग–अलग करना होगा कि किस स्तर की शिक्षा के सहारे कौन–से काम किए जा सकते हैं। शिक्षा पद्धति के स्तर पर भी रचनात्मक ढंग से सोचना होगा ताकि यह समझा जा सके कि बहुत कम शिक्षा पाने वाली महिलाओं को खाते और बुककीपिंग से संबंधित कामों को संभालने लायक बनाने के लिए सीखने–सिखाने की कौन–सी पद्धतियां असरदार रहेंगी। ये पद्धतियां उन उल्लेखनीय अंक–ज्ञान संबंधी क्षमताओं पर आधारित होनी चाहिए जो असाक्षर लोगों के पास पहले से हैं। यह बात भारत और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर किए गए अनुसंधानों में दिखायी देती है।

इस सारे ब्यौरे का मतलब है कि हमें कार्यकर्त्ताओं की क्षमताओं में निवेश करना होगा जिससे विभिन्न कामों और विभिन्न स्तर के प्रतिभागियों के लिए उचित साक्षरता पैकेज तैयार किया जा सके। प्रोत्साहक एजेंसियां प्रायः ऐसा निवेश नहीं करना चाहतीं। वेलुगू कार्यक्रम के ब्लॉक प्रबंधक के शब्दों में, ये एजेंसियां "असली काम करते रहना" चाहती हैं भले ही इससे समूह की स्वायत्तता खत्म हो जाए।

निरंतर साक्षरता इनपुट्स की बजाय 'थोड़ी–सी साक्षरता' मुहैया करा देने का परिणाम यह होता है कि समूह ये दावा कर सकते हैं कि उनके सदस्यों के साक्षरता स्तर में सुधार हुआ है क्योंकि जो दस्तखत करना जान जाते हैं उन्हें भी साक्षरों की श्रेणी में दर्ज़ कर लिया जाता है। साक्षरता को कम प्राथमिकता में रखना आश्चर्य की बात नहीं है। इससे औरतों की ज़रूरतों के प्रति महत्त्व का अभाव दिखायी देता है हालांकि माइक्रो क्रेडिट प्रक्रिया में अपेक्षाकृत महिलाएं ही केंद्र में होती हैं। यदि प्रोत्साहक एजेंसियां लोक संस्थानों की स्थापना के प्रति वाकई प्रतिबद्ध हैं और महिलाओं को अपने संसाधनों का स्वामित्व एवं नियंत्रण संभालने के लायक बनाना चाहती हैं तो साक्षरता में निवेश करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं है। लेकिन मौजूदा स्थिति यह है कि यहां ज़्यादा से ज़्यादा सिर्फ दिखावटी प्रयास किए जा रहे हैं जिनके गंभीर परिणामों के बारे में नीचे जानकारी दी गयी है।

साक्षरता की कम प्राथमिकता के परिणाम

नेता–सदस्या विभाजन

नेतृत्त्व तक पहुंच

निरंतर सर्वेक्षण में साक्षरता और एस.एच.जी. नेतृत्त्व तक पहुंच के बारे में चौंकाने वाले निष्कर्ष सामने आए हैं। सर्वेक्षण से पता चलता है कि समूहों के नेतृत्त्व में जाति, धर्म और वर्ग आदि का प्रतिनिधित्व होता है। लेकिन साक्षरता के स्तर से पता चलता है कि स्वयं सहायता समूहों के नेतृत्त्व में ज़्यादा साक्षर सदस्याओं को ज़्यादा प्रतिनिधित्व मिलता है। स्वयं सहायता समूहों की 69% नेता पढ़ और लिख सकती हैं जबकि सदस्याओं में यह प्रतिशत केवल 38 रहा है। सरकारी स्वयं सहायता समूहों में यह फर्क और भी ज़्यादा दिखायी देता है। इन समूहों में लिख और पढ़ सकने वाली नेताओं की संख्या 76% पायी गयी। स्वयं सहायता समूहों की नेताओं में केवल 6% असाक्षर थीं (जिनमें ऐसी महिलाएं भी शामिल हैं जो दस्तखत भी नहीं कर सकतीं)। सदस्याओं में असाक्षरों की संख्या 32% थी। इसका मतलब यह है कि साक्षरता और नेतृत्त्व, दोनों एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं और इनके आधार पर ही समावेश और बेदखली तय होती है।

प्रशिक्षण तक पहुंच

अध्ययन में यह दर्शाने वाले साक्ष्यों की कोई कमी नहीं थी कि नेताओं के पास प्रशिक्षण अवसरों तथा अन्य शैक्षणिक अवसरों तक लगभग एकाधिकारिक पहुंच है। एस.जी.एस.वाई. से जुड़े समूह में केवल नेताओं को ही बुककीपिंग और रिकॉर्ड संभालने का प्रशिक्षण मिला था। उन्हें उनकी साक्षरता क्षमता के कारण ही चुना गया था। अन्य सदस्याएं इस बात से परिचित थीं और उन्हें इसका औचित्य समझ में आता था। लेकिन उनको यह भी लगता था कि उन्हें अन्य गतिविधियों में हिस्सेदारी करने का मौका नहीं देना गलत बात है। "मोडासा में रिकॉर्ड और खाते लिखने का प्रशिक्षण आयोजित किया गया था। जो साक्षर हैं उनको उसमें भेजा गया, इसमें कोई दिक्कत नहीं है। लेकिन गांधी नगर में जो मेला हुआ (8 मार्च की रैली जिसके लिए तालुका स्तर के अधिकारियों ने केवल नेताओं को ही जाने का मौका दिया) उसमें तो हमें बस बैठकर सुनना ही था...। उसमें हम सबको जाना चाहिए था।"

समूह साक्षात्कार के दौरान वेलुगू से जुड़ी फेडरेशन की नेताओं के साथ हमने एक गतिविधि का आयोजन किया जिसके ज़रिए हमने आवाजाही के स्वरूप और साक्षरता से उसके संबंध को समझने का प्रयास किया। इस गतिविधि के आधार पर यह स्पष्ट था कि फेडरेशन की एकमात्र असाक्षर नेता सोसम्मा की आवाजाही सबसे कम थी। उनकी आवाजाही का एक उदाहरण यह था कि उन्हें भारतीय खाद्य निगम के गोदाम से चावल उठा कर उसके वितरण का काम सौंपा गया था जबकि बाज़ार सर्वेक्षण जैसे अन्य कार्यक्रमों में हिस्सा लेने वाली महिलाओं को बंगलौर और चेन्नई तक जाने के मौके मिले थे। पश्चिमी गोदावरी में ड्वाक्रा कार्यक्रम के अधिकारी भी इस बात

साक्षरता को कम प्राथमिकता देना माइक्रो क्रेडिट अवधारणा में औरतों की ज़रूरतों को महत्त्व न दिए जाने का प्रतीक है। अगर प्रोत्साहक एजेंसियां लोक संस्थानों की स्थापना और महिलाओं को संसाधनों पर नियंत्रण स्थापित करने के योग्य बनाने के प्रति संज़ीदा हैं तो उन्हें साक्षरता में ज़रूर निवेश करना चाहिए।

को मानने लगे हैं कि नेताओं तथा अन्य सदस्याओं के बीच सीखने के अवसरों में समानता नहीं है और पिछले कई सालों से ऐसा दिखायी दे रहा है। इस अहसास के कारण हाल ही में नीति में बदलाव किया गया है। अब सभी सदस्याओं को प्रशिक्षण दिया जाने लगा है।

नेताओं को सीखने के ज़्यादा मौके मिलते हैं, इसका आंशिक कारण यह है कि बाहर के लोगों के साथ नेताओं का मेलजोल ज़्यादा रहता है। सरकारी अधिकारियों और बैंक अधिकारियों से उनकी बातचीत ज़्यादा होती है। उदाहरण के लिए, एस.जी.एस.वाई. द्वारा प्रोत्साहित समूह की सभी सदस्याएं बैंक के साथ होने वाले संवादों में हिस्सा लेना चाहती थीं लेकिन अब केवल नेता और रीता (समूह की ज़्यादा पढ़ी–लिखी महिला, जो नेता नहीं है) ही पैसा जमा कराने बैंक में जाती हैं। समूह साक्षात्कार में रीता ने काफी दिलचस्पी दिखायी। यहां तक कि जो महिलाएं बैठक में मौजूद नहीं थीं उन्होंने उनके बारे में भी जानकारियां दीं। जहां तक समूह के नेताओं की नज़र में रीता की हैसियत की बात है तो यह ज़ाहिर था कि वे उनकी मदद चाहती थीं। पढ़ी–लिखी 'बाहरी' दुनिया के साथ संबंध बनाने के लिए उन्हें उनकी ज़रूरत थी। समूह की बचत का पैसा जमा कराने रीता दोनों नेताओं के साथ बैंक जाती हैं। इससे पहले नेताओं ने बैंक अधिकारियों के साथ बैठकों के लिए उन्हें साथ चलने को भी कहा था। हालांकि रीता समूह की ज़्यादातर सदस्याओं से छोटी हैं लेकिन समूह में उनका सिक्का चलता है क्योंकि उन्हें पढ़ी–लिखी माना जाता है।

वित्तीय प्रबंधन और नेतृत्त्व विकास से संबंधित प्रशिक्षणों में 40% से ज़्यादा समूहों से केवल समूह नेताओं ने हिस्सा लिया था। लगभग 25% समूहों में ऐसे ज़्यादातर प्रशिक्षणों में केवल नेता ही उपस्थित थीं। इसका मतलब है कि नेतृत्त्व विकास और वित्तीय प्रबंधन से संबंधित प्रशिक्षण कार्यक्रमों में समूह नेताओं की हिस्सेदारी लगभग 65% तक थी।

निरंतर सर्वेक्षण

संसाधनों तक बेहतर पहुंच

नेताओं को सिर्फ सूचनाओं तक ही नहीं बल्कि वित्तीय संसाधनों तक भी बेहतर पहुंच मिलती है। वेलुगू से जुड़े स्वयं सहायता समूह में हमने पाया कि समूह की असाक्षर महिलाएं ज़्यादा पढ़ी–लिखी महिलाओं से इसलिए डरी रहती थीं कि कहीं वे समूह के संसाधनों को न हड़प लें। एस.जी.एस.वाई. समूह में भी हमने पाया कि ऋण की पहली खेप नेताओं को ही मिली थी। बाकी सदस्याओं ने इस पर सवाल नहीं उठाया। बाद में महिलाओं ने अनौपचारिक रूप से हमें बताया कि सब इसलिए खामोश रहे क्योंकि नेताओं ने इतनी कोशिशें करके सारे काम जो किए थे। दोनों नेताओं पर बहुत दिनों से कर्ज़ा बकाया है लेकिन इस बात की चर्चा नहीं है। पश्चिमी गोदावरी में भी प्रेरक ने हमें बताया कि समूह नेताओं में काफी भ्रष्टाचार फैला हुआ है। उनकी राय में यह एक महत्त्वपूर्ण कारण था जिसके चलते समूह नेता उन्हें अपने समूह के किसी काम में शामिल नहीं होने देना चाहती हैं। समूह की सदस्याओं ने नेताओं पर खुलेआम भ्रष्टाचार के आरोप लगाए। अविश्वास का स्तर इतना ज़्यादा था कि उन्होंने न केवल नेताओं से बैंक की पासबुक मांगी बल्कि वे उन्हें छीन कर ले गयीं और पासबुक लौटाने से ही इनकार कर दिया।

एक तरफ हम नेताओं के हाथों में सत्ता का केन्द्रीकरण देखते हैं और दूसरी तरफ नेता–सदस्या

- बड़े कर्ज़े पाने वालों में 46% समूहों की नेता हैं और 54% शेष सदस्याएं हैं।
- बड़े ऋण लेने वाली महिलाओं में से 68% साक्षर समूह नेता हैं और 38% समूह की साक्षर महिलाएं हैं।

निरंतर सर्वेक्षण

विभाजन के कारण कई मायनों में नेता 'अकेली' भी रह जाती हैं।

अन्य मंचों की सदस्यता

नेताओं को न केवल संसाधनों तक ज़्यादा पहुंच मिलने की संभावना रहती है बल्कि उन्हें दूसरे मंचों की भी सदस्यता की संभावना ज़्यादा रहती है। उदाहरण के लिए, पश्चिमी गोदावरी में फेडरेशन (एम.ए.सी.एस.) की नेताओं के पास सामान्य सदस्याओं के मुकाबले अन्य मंचों की सदस्यता पाने की संभावना ज़्यादा थी। कई एम.ए.सी.एस. नेताओं ने कहा कि वे अन्य मंचों से भी जुड़ी हुई हैं। उनमें से एक रेडक्रॉस की सदस्य हैं, एक सतत् शिक्षा की प्रेरक हैं, एक वॉर्ड की सदस्य होने के साथ–साथ ग्राम शिक्षा समिति की भी सदस्या हैं। एक नेता सरकार द्वारा चलाए जा रहे Streeshakti.com कंप्यूटर सेवा कार्यक्रम के लिए प्रशिक्षण ले रही हैं। कुछ नेताओं के पास मिड डे मील योजना के ठेके हैं। एक नेता पंचायत नेता के साथ मिलकर टेलरिंग सेंटर चला रहीं थी। इन अवसरों तक पहुंच का संबंध साक्षरता से भी दिखायी देता है। एम.ए.सी.एस. की जो नेता ज़्यादा साक्षर हैं उनके पास अन्य मंचों से जुड़ने की ज़्यादा संभावना दिखायी देती है।

अकसर ऐसा होता है कि अन्य मंच केवल नेताओं को ही अपनी सदस्यता के लिए आमंत्रित करते हैं। उदाहरण के लिए, पीस से जुड़े स्वयं सहायता समूह की नेता गीता ने बताया कि उन्हें शिक्षा समिति की सदस्य बनने का न्यौता दिया गया था। समूह की और किसी सदस्या को यह निमंत्रण नहीं मिला। हालांकि उन्होंने सदस्यता लेने से इनकार कर दिया लेकिन और किसी सदस्या को समिति में शामिल होने के लिए कहा भी नहीं गया था।

साक्षर और असाक्षर सदस्याओं के बीच सत्ता संबंध

अध्ययन से वर्गीय और जातीय असमानताओं के आधार पर स्वयं सहायता समूहों की साक्षर और असाक्षर सदस्याओं के बीच सत्ता संबंधों की भी समझ उजागर होती है। हालांकि इस बारे में कोई सीधा समीकरण दिखायी नहीं दिया (साक्षरता के आधार पर असंतोष नहीं था और सत्ता की अभिव्यक्ति हमेशा ठोस नहीं होती) लेकिन पैटर्न साफ दिखायी दे रहा था। हावभाव से लेकर साक्षरता स्तर में असमानता के भौतिक नतीज़ों तक ये बातें साफ दिखायी दे रही थीं। उदाहरण के लिए, एस.जी.एस.वाई. समूह की पढ़ी–लिखी महिलाओं में से एक, माया, ने साक्षर/असाक्षर सत्ता संबंधों के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारियां दीं। माया ने समूह शुरू होने के कुछ समय बाद सदस्यता ली थी। एक प्रकार से उन्होंने एक ऐसी महिला की जगह सदस्यता ली थी जो हर महीने बचाने की स्थिति में नहीं थीं। समूह में शामिल होने के लिए माया ने वह राशि भी जमा करायी जो शुरू से सदस्यता लेने की स्थिति में उन्हें जमा करानी पड़ती। माया ने कहा, "हम (पढ़ी–लिखी महिलाएं) औरतों को सिखाने की कोशिश करती हैं लेकिन वे सीखना ही नहीं चाहतीं। पढ़ी–लिखी महिलाओं ने ही यह समूह शुरू किया था।" इस पर समूह की एक असाक्षर महिला ने कहा, "यह

शिखर पर अकेले

शारदा पीस से जुड़ी है और उसे 'स्टार' किसान माना जाता है। लेकिन वह खेती का काम नहीं कर पा रही है क्योंकि उसकी माली हालत ऐसी है कि वह खेती में पैसा नहीं लगा सकती। उसकी वित्तीय समस्या आंशिक रूप से यह है कि उसके पति ने एक बिजली मिस्त्री के पास हैल्पर का काम किया था जिसकी उसे मज़दूरी नहीं मिली है। पंचायत पर भी उसका पैसा बकाया है। शारदा के पति की इच्छा है कि पंचायत के साथ उसके कामों को पक्का कर दिया जाए। शारदा ने इन समस्याओं को समूह के सामने उठाया है लेकिन उसके मुताबिक, "वे इसकी फिक्र नहीं करतीं क्योंकि यह मेरी समस्या है। यह हरेक की समस्या नहीं है।" बैठक में ही एक सदस्या ने इस बात को गलत बताया। उसने कहा कि शारदा ने इस बारे में कभी कुछ नहीं बताया वरना वे सरपंच से इस बारे में ज़रूर बात करतीं। हमारे पास इस दावे की सच्चाई जानने का कोई ज़रिया नहीं था लेकिन यह बात उत्सुकता पैदा करती है कि अगर शारदा ने समूह से इस बारे में बात नहीं की थी तो यह सवाल उठता है कि उसने ऐसा क्यों नहीं किया।

हमें अच्छी तरह पता है कि शारदा ने पीस से कोई मदद नहीं मांगी थी। जब इस बारे में हमने उससे पूछा तो उसने कहा कि उसे कभी यह बात सूझी ही नहीं। हमारे लिए यह आश्चर्यजनक बात थी क्योंकि इस गांव में पीस के कई सदस्य आते हैं। वे या तो यहां काम करते हैं या यहीं रहते हैं। शारदा ने कहा कि पहले वह अपने पति के काम के बारे में सोच कर दुखी रहती थी क्योंकि बिजली के खम्भों पर चढ़ना जोखिम का काम होता है। अब परेशानी आर्थिक स्थिति को लेकर है। उसने बताया, "हम तो गांव छोड़कर भी नहीं जा सकते" क्योंकि एक गाय अब भी बची है (बाकी दो उन्हें बेचनी पड़ीं) जिससे उन्हें थोड़ी–बहुत आमदनी हो जाती है।

शारदा को कोई मदद नहीं मिल पा रही है। यह बात ऐसे संदर्भ में और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है जिसमें उसने समूह की अन्य सदस्याओं को बहुत बार मदद दी थी। सरकारी योजनाओं का लाभ दिलाने के लिए उसने गांव में औरों की भी मदद की थी।

पढ़ी–लिखी महिला (माया) बाद में शामिल हुई थी। 2–3 महीने बाद। उसने 90 रुपए दिए... और जुड़ गयी।" इस बातचीत में भी साक्षरता के साथ सत्ता संबंधों का भाव मौजूद था। इसके बाद हुई बातचीत के नीचे दिए गए अंशों से पता चलता है कि असाक्षर महिलाओं को अच्छी तरह मालूम है कि पढ़ी–लिखी महिलाएं क्या फायदा उठा रही हैं।

मीरा (एक असाक्षर सदस्या): समूह की नेता बनने के लिए पढ़ा–लिखा होना ज़रूरी है।

मधु: जो नेता बने वह समझदार और तजुर्बेकार होनी चाहिए–सिर्फ शिक्षा आपको नेता नहीं बना सकती।

मीरा: तुम्हारे पास पढ़ाई–लिखाई है इसलिए तुम यह कह सकती हों–तुम्हीं बैठकों में जाती हो और तुम्हीं बैंक जाती हो।

पश्चिमी गोदावरी में अधिकारियों ने साक्षरता और सत्ता के बीच निहित संबंधों को स्पष्ट अभिव्यक्ति दी। मंडल की प्रौढ़ शिक्षा शाखा के एक अधिकारी का मानना था कि एस.एच.जी. नेता 'स्वार्थी' हैं और उन्हें

इसी में फायदा दिखायी देता है कि असाक्षर सदस्याएं साक्षर न बन पाएं ताकि उनकी सत्ता बनी रहे। कुछ इसी तरह की राय ज़िला प्रौढ़ शिक्षा एसोसिएशन के एक अधिकारी की थी जिन्होंने कहा कि साक्षर एस. एच.जी. नेता नवसाक्षर सदस्याओं को अपनी साक्षरता क्षमता का इस्तेमाल नहीं करने देंगी, भले ही नवसाक्षरों को खातों का प्रशिक्षण भी क्यों न दे दिया जाए।

इस बारे में कुछ उदाहरण बुजुर्ग असाक्षर महिलाओं की प्रतिक्रिया से भी संबंधित थे। सोसम्मा मंडल सामाख्या की पुरानी, दलित, असाक्षर सदस्या हैं। वह वेलुगू से जुड़े मंडल सामाख्या की नेता हैं। वह बताना चाहती थीं कि असाक्षर होने के बावजूद उनके पास क्या–क्या काबिलियत है। उन्होंने बताया कि वह बिल्कुल ठीक–ठीक गिनकर और हिसाब लगाकर बता सकती हैं कि कितने समूहों को चावल ऋण योजना के तहत अनाज दिया जा चुका है। यहां तक कि वह यह भी बता सकती थीं कि किस समूह पर कितना बकाया है। अपनी क्षमता का यह हवाला उन्हें इसलिए देना पड़ा क्योंकि समूह की कम उम्र, ज़्यादा पढ़ी–लिखी महिला नेता उन्हें चिढ़ाती हैं। उन्होंने गुस्से में कहा कि पढ़ी–लिखी औरतें घमंडी होती हैं। उन्हें लगता है कि मंडल सामाख्या नेतृत्त्व में जो महिला पदाधिकारी हैं वे अपनी शिक्षा की वजह से ही उन पदों पर पहुंची हैं। दूसरी तरफ वह इस वरिष्ठ नेतृत्त्व का हिस्सा नहीं बन पायीं हालांकि उनकी राय

सूचना के अधिकार को साकार करना

साक्षर सदस्याओं के पास ज़्यादा सूचनाओं की संभावना रहती है। साक्षात्कार के दौरान एस.एच.जी. से जुड़ी श्री नामक एक सदस्या आत्मविश्वास से लैस और हाज़िर जवाब दिखायी दी। उसे लोग 'आदर्श' किसान मानते हैं। वह वेल्ड कार्यक्रम में हिस्सा ले चुकी है। श्री के पास काफी जानकारियां थीं। उसे समूह की बचत और कर्ज़ों का पता था। उसे फेडरेशन से मिले ऋण और बचत का अनुपात मालूम था। उसे फेडरेशन द्वारा वसूल की जाने वाली ब्याज दर और समूह द्वारा चुकायी जाने वाली ब्याज दर के बीच फर्क पता था। जब हमने पूछा कि क्या समूह की बुककीपर लीना के पास उससे भी ज़्यादा जानकारियां हैं तो श्री ने कहा, "वह तो बस लिखती है। मैं भी पहले बुककीपिंग कर चुकी हूं।" उसने बताया कि बुककीपर जो भी लिखती है वह उसे ज़रूर पढ़ती है। यहां इस बात को ध्यान में रखना ज़रूरी है कि श्री ने बुककीपर ट्रेनिंग में हिस्सा लिया था और भले ही वह बुककीपर की भूमिका निभाने के लिए ज़रूरी क्षमता हासिल नहीं कर पायी लेकिन उसने खाते जांचने का यह महत्त्वपूर्ण काम ज़रूर संभाल लिया है। उसकी बातचीत से साफ दिखायी देता था कि इस अनुभव से उसका सशक्तीकरण हुआ है। एस.एच.जी. की अन्य सदस्याओं के मुकाबले श्री के पास बहुत ज़्यादा जानकारियों का होना इस बात की ओर भी संकेत करता है कि इसका संबंध वेल्ड में उसकी हिस्सेदारी के ज़रिए मिली साक्षरता से भी है। इसका ताल्लुक शायद इस बात से भी है कि किसान के रूप में उसे इनपुट्स और अवसरों के ज़रिए एक खास आत्मविश्वास मिला है।

में उन्होंने भी फेडरेशन के लिए उतने ही महत्त्वपूर्ण काम किए हैं।

गुणात्मक अध्ययन में शैक्षणिक स्थिति, जाति और वर्ग के बीच सीधा संबंध दिखायी दिया। चित्तूर में वेलुगू से जुड़े एस.एच.जी. की ज़्यादा पढ़ी–लिखी महिलाएं पिछड़ी जाति समुदायों से थी। यह पैटर्न फेडरेशन स्तर पर और भी साफ दिखायी देता है। मंडल सामाख्या में सदस्याओं की औसत पारिवारिक आमदनी 8,000 रुपए से भी ज़्यादा थी। यह बात शैक्षणिक स्तर से भी जुड़ी दिखायी देती है (खासतौर से स्वयं सहायता समूहों की तुलना में)। 20 में से 16 सदस्याएं चौथी कक्षा से बारहवीं कक्षा तक पढ़ चुकी हैं। पढ़ी–लिखी महिलाओं में से ज़्यादातर पिछड़ी जाति की युवा महिलाएं हैं। दलित सदस्या ज़्यादा उम्र की और अधिकांशतः असाक्षर हैं। पश्चिमी गोदावरी में भी हमने पाया कि समूह नेताओं में से 57% के पास औपचारिक स्कूली शिक्षा थी और उनमें 'ऊंची' जातियों का अतिप्रतिनिधित्व था।

पर्याप्त साक्षरता अवसरों के अभाव का मतलब है कि सत्ता ज़्यादा पढ़ी–लिखी, युवा महिलाओं के हाथों में केंद्रित होने लगती है जो प्रायः 'उच्चतर' जातियों और समाज के ज़्यादा संपन्न तबकों से होती हैं।

सूचनाओं तक असमान पहुंच

हालांकि स्वयं सहायता समूहों में वित्तीय लेन–देन पर बहुत ज़्यादा ज़ोर रहता है लेकिन इस दायरे में भी हम पाते हैं कि सदस्याओं को अपनी बचतों के बारे में मूलभूत वित्तीय जानकारियां तक नहीं होतीं। इस तरह की सूचनाएं ज़्यादा से ज़्यादा समूह नेताओं के पास होती हैं और वे प्रायः साक्षर होती हैं।

जब हमने वेलुगू से जुड़ी ग्राम स्तरीय फेडरेशन की सदस्याओं से वित्तीय जानकारियों के बारे में बात की तो उनके बीच काफी भ्रम दिखायी दिया।

सदस्या 1 (असाक्षर): "ओह... गाय... नहीं? हरेक के 9000? ... (आवाज़ में ज़्यादा आत्मविश्वास है) सिर्फ बैलों के लिए 9000, नहीं? बैल और बैलगाड़ी के 16,000।"

साक्षात्कारकर्ता: 16,000?

सदस्या 2: "इतना नहीं। वे पूरे पैसे की बात कर रही हैं।"

सदस्या 1: "मुझे ये सारी चीज़ें नहीं मालूम। मुझे तो बस इतना ही पता है।"

साक्षात्कारकर्ता: तुम्हारी आमदनी का ज़रिया क्या है?

नेता: "बचत, बैंक से लोन, सी.आई.एफ.[1] और वी.ओ. (गावं स्तरीय फेडरेशन) की सदस्यता फ़ीस। हमें प्रति किलोग्राम 60 पैसे उस चावल पर मिलता है जो हम चावल ऋण योजना के तहत बांटते हैं।"

इसके बाद यह चर्चा चल पड़ी कि प्रति किलोग्राम 60 पैसे मिलते हैं या 25 पैसे।

साक्षात्कारकर्ता: "तुम्हें चावल बांटने के लिए कितना मिला?"

कोई स्पष्ट जवाब नहीं था।

पीस से जुड़े एस.एच.जी. के साथ साक्षात्कार के दौरान बैठक के बीच में ही एक महिला बोली, "आप लोग इतने सारे सवाल पूछ रही हैं, मैं पूछना चाहती हूं कि हमसे ब्याज किस दर पर लिया जाता है।" बैठक में मौजूद कार्यकर्त्ता ने हमें बताया कि वह इसलिए ऐसा पूछ रही है क्योंकि वह समूह में नयी है और उसे इस बारे में नहीं मालूम है।

सदस्य को संबोधित करते हुए नेता: "क्या ये ऐसे सवाल पूछने का समय है? तुमने पहले क्यों नहीं पूछा? पहले तुम क्या कर रही थीं? मैंने तुम्हें पहले भी यह बताया था, सुबह भी बताया था।"

साक्षात्कारकर्ता: अगर वह दोबारा पूछ ही रही है तो फिर से बता दो...।

[1]सी.आई.एफ. (CIF) – कम्यूनिटी इनिशियेटिव फन्ड। यह वेलुगू कार्यक्रम द्वारा संचालित एक फन्ड है जिसे समुदाय आय उपार्जक गतिविधियों के लिए इस्तेमाल कर सकता है।

कार्यकर्त्ताः ब्याज ही नहीं बल्कि लेट फीस (विलंब शुल्क) भी आपकी सामूहिक राशि में जाता है। तुम्हारा पैसा कहीं नहीं जाता।

सदस्य को संबोधित करते हुए नेताः सुनो वो क्या कह रहे हैं। जब मैंने तुम्हें बताया था तो तुम्हें यकीन नहीं था।

ज़ाहिर है इस चर्चा से तनाव पैदा हुआ और स्पष्ट हो गया कि इस तरह की सूचनाओं का आदान–प्रदान भी सत्ता संबंधों को प्रतिबिंबित करता है। ऐसा लग रहा था मानो समूह नेता और कार्यकर्त्ता एक तरफ हैं और पूछने वाली सदस्या दूसरी तरफ हैं। जब चर्चा आगे बढ़ी तो पता चला कि नेता के अलावा केवल एक सदस्या को समूह की बचत के बारे में पता था। बाकी सदस्याओं को सिर्फ अपनी–अपनी बचत की जानकारी थी। तीन सदस्याओं को यह पता था कि समूह को बचत पर क्या ब्याज दर मिल रही है।

अध्ययन में पाया गया कि ज़्यादातर बैंक की पासबुक और अन्य दस्तावेज़ नेताओं के पास रहते हैं। सदस्याओं की अपनी–अपनी पासबुक भी अकसर नेता के ही कब्ज़े में रहती है।

प्रोत्साहक संगठनों पर भारी निर्भरता

नेता–सदस्या विभाजन के लिहाज़ से साक्षरता की स्थिति के परिणामों को समझने के बाद अब हम ये देखेंगे कि समूह/फेडरेशन नेतृत्त्व तथा प्रोत्साहक संगठनों के कार्यकर्त्ताओं (जिन्हें नियमानुसार समूहों/फेडरेशनों के 'तहत' काम करना चाहिए) के बीच बनने वाले संबंधों पर साक्षरता के स्तर से क्या फर्क पड़ता है।

समूह साक्षात्कार के दौरान वेलुगू समूह की महिलाओं से आग्रह किया गया कि वे अपनी एक बैठक चलाने का अभिनय करें। बैठक के इस रोल प्ले में समुदाय कार्यकर्त्ता (वेलुगू का ग्राम स्तरीय कार्यकर्त्ता) बैठक के मिनट्स लिख रहा था। बैठक के आखिर में उन्होंने जो मिनट्स लिखे, उनको पढ़कर सुनाए जाने पर पता चला कि उन्होंने केवल वित्तीय लेन–देन को दर्ज़ किया था। बैठक में हुई बाकी सारी बातें मिनट्स में शामिल नहीं थीं। हालांकि दो महिलाएं साक्षर थीं लेकिन किसी ने मिनट्स नहीं पढ़े। न ही किसी ने मिनट्स में कुछ जोड़ने के लिए कहा।

शिखा, ग्राम स्तरीय फेडरेशन की सचिव है। शिखा असाक्षर है इसलिए दस्तावेज़ीकरण के लिए समुदाय कार्यकर्त्ता (सी.ए.) पर निर्भर रहती है। उसे ग्राम संगठन की बैठकों का ब्यौरा याद रहता है। किस गतिविधि में संगठन की सक्रियता कैसी थी, वह इस बारे में भी बता सकती है लेकिन वह इस बारे में नहीं बता सकती कि किस गतिविधि में ग्राम संगठन की किस–किस सदस्या ने हिस्सा लिया था, उस पर कितनी लागत आयी थी, कितना वितरण हुआ था, आदि। इन सारे विवरणों के लिए उसे सी.ए. पर निर्भर रहना पड़ता है। अपने समूह की ओर से वह औरों से खुद बात कर सकती है लेकिन जब सी.ए. से बात

नेता के अलावा केवल एक सदस्या को समूह की बचत की राशि के बारे में पता था। अन्य सदस्याओं को सिर्फ अपनी–अपनी बचत के बारे में जानकारी थी। तीन सदस्याओं को यह पता था कि समूह अपनी बचतों पर कितनी ब्याज दर देता है।

करने की बारी आती है तो उसे लगता है कि उससे रिकॉर्ड्स के लिए पूछना ठीक नहीं होगा क्योंकि ऐसा करना अविश्वास की निशानी माना जाएगा।

यह स्थिति तब है जबकि परियोजना अधिकारी भी जानते हैं कि इस क्षेत्रा में संसाधनों का गबन हो चुका है और ज़िला स्तरीय जेंडर रिसोर्स पर्सन की ओर से महिलाओं को सलाह दी जाती रही है कि वे अपनी बचत खुद जमा कराया करें और अपनी पासबुक समुदाय कार्यकर्त्ता के पास छोड़ने की बजाय अपने ही पास रखा करें। जेंडर रिसोर्स पर्सन राधा ने सादू मंडल, नरिया दल ग्राम पंचायत का एक उदाहरण हमें बताया। वहां नारायण नाम का समुदाय कार्यकर्त्ता था। एस.एच.जी. ने एक ट्रैक्टर खरीदेने का फैसला लिया था लेकिन किसी भी सदस्या को ट्रैक्टर चलाना या उसकी मरम्मत करना नहीं आता था। उन्होंने वेलुगू अधिकारियों के पास अपना आवेदन भेजा। राधा ने समूह के सुझाव पर आपत्ति व्यक्त की थी। उसने इसलिए अपनी सहमति नहीं दी क्योंकि उसकी राय में ट्रैक्टर को संभालना संभव नहीं था। नारायण को लगता था कि महिलाओं के नाम पर वह ट्रैक्टर खरीद लेगा और पांचों सदस्याओं को 10–10 हज़ार रुपए और 2–2 भैंस देकर छुट्टी पा लेगा। उसने सारी सदस्याओं से दस्तखत भी करवा लिए। डी.पी.आई.पी. ने मवेशी खरीदने पर मंजूरी दे दी। मिनट्स में उसने 'ट्रैक्टर' लिखा और खरीद लाया। महिलाएं इंतज़ार करती रहीं और बार–बार पूछती रहीं कि उनके मवेशी कब आएंगे। इस बारे में उन्होंने वेलुगू के अधिकारियों के पास शिकायत भेजी। वहां से प्रतिनिधि आए और मामले की जांच करके गए। नारायण से ट्रैक्टर छीन लिया गया और उसे बर्खास्त कर दिया गया। जब वेलुगू के अधिकारियों ने उससे पूछा तो उसने कहा कि ट्रैक्टर इसलिए खरीदा गया क्योंकि सारी सदस्याएं ट्रैक्टर खरीदना चाहती थीं। उसने मिनट्स पर सबके दस्तखत भी दिखा दिए। समूह की सदस्याओं ने कहा कि हमने तो उस पर विश्वास करके दस्तखत कर दिए थे। इस तरह यह ट्रैक्टर वेलुगू के लिए सिरदर्द बन गया।

इसी तरह की निर्भरता की स्थिति वेलुगू मंडल सामाख्या फेडरेशन में भी दिखायी दी। मंडल सामाख्या की 20 में से 16 सदस्याएं चौथी से बारहवीं कक्षा तक पढ़ी हुई हैं। यहां मुद्दा उन प्रक्रियाओं में निवेश करने का भी है जिनके सहारे भिन्न साक्षरता स्तर नव साक्षर से लेकर हाई स्कूल या स्नातक तक वाली सदस्याओं को अपनी साक्षरता का आत्मविश्वास से इस्तेमाल करने का साहस मिले और उनकी आत्मनिर्भरता कम हो सके। लेकिन कार्यक्रम की ओर से सदस्याओं को अपनी मौजूदा साक्षरता क्षमता का इस्तेमाल करने के योग्य बनाने के लिए कोई प्रयास नहीं किए जा रहे थे। फिलहाल कई काम ऐसे हैं जो मंडल सामाख्या फेडरेशन के कार्यकर्त्ता करते हैं हालांकि उन्हें फेडरेशन नेताओं को करना चाहिए था। मिसाल के तौर पर, चावल ऋण योजना में कई काम ऐसे हैं जिनके लिए साक्षरता ज़रूरी है––जैसे मांग का आकलन करना, खरीदते समय वजन और रिकॉर्ड्स की जांच करना, इस बात का हिसाब लगाना कि प्रति गांव कितना चावल वितरित किया जाएगा, किस्तों का हिसाब लगाना, डिलीवरी का मानचित्र तैयार करना आदि। अगर इस तरह के कामों को फेडरेशन नेता करने लगें तो कार्यकर्त्ताओं पर निर्भरता काफी कम हो जाएगी, नेताओं के सीखने की प्रक्रिया तेज़ी से आगे बढ़ेगी और महिलाएं इन प्रक्रियाओं में ज़्यादा से ज़्यादा संख्या में शामिल होने लगेंगी। इन कामों को सीखने के लिए कोई रणनीति अस्तित्व में नहीं थी।

पीस के संदर्भ में भी यह साफ दिखायी दिया कि प्रोत्साहक संगठन पर निर्भरता बहुत ज़्यादा है। एम.ए.

सी.एस. (फेडरेशन) सदस्याओं के साथ समूह साक्षात्कार में हमें बताया गया कि "अभी तक हम 'सर' (निदेशक, पीस) से फैसले लेने के लिए कहते रहते हैं।"

फेडरेशन की एक और सदस्या ने कहा, "अगर संगठन नहीं होगा तो समूह खत्म हो जाएंगे। वे पीस से इसलिए डरते हैं क्योंकि अगर किसी को किस्त चुकाने में मुश्किल आती है तो वे मदद कर देते हैं। बाद में वे मदद नहीं करेंगे। अगर संगठन नहीं होगा तो औरतें जवाबदेह नहीं होंगी। अंकुश और संतुलन की व्यवस्था खत्म हो जाएगी। अब हम महिलाओं से कह सकते हैं कि हम उनके खिलाफ अभियान चलाने वाले हैं। यह ऐसे ही चलता है।"

फेडरेशन की प्रोत्साहक संगठन पर भारी निर्भरता केयर के स्थानीय कार्यकर्त्ता की बातों से भी साबित हुई। इस कार्यकर्त्ता ने कहा कि "फिलहाल एम.ए.सी.एस. के सालाना रिटर्न प्रबंधकों द्वारा जमा कराए जा रहे हैं लेकिन रिटर्न कब जमा कराने हैं, कैसे जमा कराने हैं, इन चीज़ों के बारे में सदस्याओं को कुछ नहीं पता।" उल्लेखनीय बात है कि यह फंडिंग एजेंसी का सिर्फ एक प्रतिनिधि है जिसने प्रोत्साहक संगठन और एस.एच.जी. के बीच एक सत्ता समीकरण को तथा उसमें साक्षरता की भूमिका को इतने स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया था। केयर से संबद्ध कैश कार्यक्रम के प्रतिनिधि का मानना था कि साक्षरता से जागरूकता में इज़ाफा होता है। फिलहाल इस बात का खतरा बना हुआ है कि स्वयंसेवी संस्थाएं भी समुदाय की सदस्याओं का शोषण कर सकती हैं, कार्यकर्त्ताओं के वेतन जुगाड़ने के नाम पर उनकी दलील थी कि स्वयंसेवी संस्थाएं समुदाय का हिस्सा नहीं हैं। समुदाय आधारित संस्थानों को प्रबंधकीय कार्यों को भी हाथ में लेना चाहिए और बाहरी संपर्क भी स्थापित करने चाहिए जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, कैश कार्यक्रम में जो पद्धति अपनायी जा रही है, वह इन कड़े शब्दों के विपरीत दिखायी देती है। कैश कार्यक्रम की पद्धति में स्वयं सहायता समूहों और संघीय संगठनों की क्षमता पर फोकस करने से पहले उनकी वित्तीय कुशलता सुनिश्चित की जाती है। समूहों, नेताओं और प्रोत्साहक एजेंसी के बीच संबंधों का एक आयाम यह है कि अकसर नेता एजेंसी के प्रतिनिधि की तरह काम करती थीं। स्वयंसेवी संस्थाओं के मामले में यह बात और ज़्यादा दिखायी दी। उदाहरण के लिए, ऊपर हमने जिस साक्षात्कार का ज़िक्र किया है, जिसमें समूह की एक सदस्या ने ब्याज दर के बारे में पूछा था, उसमें समूह नेता ही संगठन और समूह के बीच संपर्क के रूप में काम कर रही थी। लेकिन वह सिर्फ 'दोनों के बीच' नहीं बल्कि कई मायनों में संगठन की 'प्रतिनिधि' थी। प्रोत्साहक एजेंसियां भी केवल नेता से संपर्क करना ज़्यादा 'फायदेमंद' और आसान मानती हैं। इसमें जो आसानी दिखायी देती है वह आंशिक रूप से इसलिए है कि नेता ज़्यादा साक्षर होती हैं और एक तरह से इस प्रक्रिया में नेताओं की साक्षरता/शिक्षा स्तर के कारण वर्गीय विभेदों से ज़्यादा आसानी से निपटा जा सकता है।

सदस्याएं अपनी साक्षरता क्षमता का इस्तेमाल कर सकें, इसके लिए प्रयास नहीं किए जा रहे थे। कार्यकर्त्ता ऐसे कई काम कर रहे थे जिन्हें फेडरेशन की नेतागण भी आराम से कर सकती थीं।

माइक्रो क्रेडिट का तर्क

पद्धतियों और धारणाओं को समझना

- उपयोगिता : एस.एच.जी. औरतों को निशाना क्यों बनाते हैं?
- मुक्त बाज़ार
- क्रमबद्धता
- समरूपता बनाम समानता
- वित्तीय मामलों पर फोकस
- समाजिक मुद्दों की पुनर्परिभाषा
- 'सशक्तीकरण अपने आप हो जाता है'

संस्थागत निकायों के लिए माइक्रो क्रेडिट के लाभ

- प्रोत्साहक एजेंसियों को होने वाले लाभ
- सरकार को होने वाले लाभ
- बैंकों को होने वाले लाभ
- कंपनियों को होने वाले लाभ

पद्धतियों और धारणाओं को समझना

इस रिपोर्ट की शुरुआत में हमने कहा था कि समूहों और कार्यक्रमों का चुनाव करते हुए हमने इस बात का ध्यान रखा है कि उनमें सभी तरह के कार्यक्रमों का प्रतिनिधित्व हो और यह अध्ययन किसी एक इलाके की केस स्टडी बनकर न रह जाए और हम माइक्रो क्रेडिट क्षेत्र के व्यापक विमर्श और आचरण को समझ सकें। अगर हम माइक्रो क्रेडिट और विकास के विमर्श को समझना चाहते हैं और इस समझदारी का इस्तेमाल जेंडर और विकास के दायरे को प्रभावित करने के लिए करना चाहते हैं तो यह बहुत ज़रूरी है कि हम खास उदाहरणों से आगे बढ़कर व्यापक नज़रिए और विमर्श को विश्लेषण करें।

इस अध्याय में हम इस सफर को ज़मीनी हकीकत से विमर्श के स्तर पर ले जाना चाहते हैं। पिछले अध्याय में हमने देखा था कि किस तरह स्वयं सहायता समूहों और माइक्रो क्रेडिट से सशक्तीकरण और आजीविका जैसी मूल अवधारणाएं निर्मित की जा रही हैं। इन बदलती परिभाषाओं से देश की करोड़ों औरतों की ज़िंदगी पर गहरा असर पड़ रहा है। इसीलिए ज़रूरी है कि हम सिर्फ ऋण परिघटना के ब्यौरों की बात न करें बल्कि विकास के विमर्श पर उससे जो गहरा असर पड़ रहा है उसको भी समझें। जिस तरह माइक्रो क्रेडिट प्रक्रिया काम करती है उसके बारे में हमने क्या समझा है? माइक्रो क्रेडिट की वे कौन–सी खासियतें, या वह कौन–सा तर्क है जिस पर इस क्षेत्र में काम करने वाली किसी भी ताकत को ज़रूर ध्यान देना चाहिए?

इस अध्याय में माइक्रो क्रेडिट के तर्क की रूपरेखा पेश की गयी है। यहां हमने अपनी पड़ताल से उभरी तस्वीर के टुकड़ों को एक–दूसरे से जोड़ने की कोशिश की है। खासतौर से हमने प्रोत्साहक एजेंसियों के नज़रिए को औरतों की राय के सामने रखने का प्रयास किया है। हम इस बात पर ज़ोर देना चाहते हैं कि अध्ययन के शुरुआत में हमारे पास कोई सैद्धांतिक फ्रेमवर्क नहीं था। ये ऐसे पैटर्न हैं जो अध्ययन के दौरान हमारे सामने आए हैं। ये पैटर्न माइक्रो क्रेडिट के क्षेत्र में सक्रिय विभिन्न संगठनों के बीच समानताओं से उपजे हैं। हमारा मानना है कि ये पैटर्न स्वयं सहायता समूहों की दैनिक हकीकत को निर्धारित करने वाले माइक्रो क्रेडिट की अन्तर्वस्तु हैं। अध्याय के दूसरे हिस्से में हमने इस बात पर विचार किया है कि स्वयं सहायता समूहों के क्षेत्र में विभिन्न संस्थागत निकायों को क्या फायदे पहुंच रहे हैं। यह संयोग की बात नहीं है कि इस तरह के पैटर्न न केवल मौजूद हैं बल्कि वे बेहद ताकतवर निहित स्वार्थों पर आधारित हैं। यदि हम यह कहना चाहते हैं कि माइक्रो क्रेडिट परिघटना शक्तिशाली ताकतों के लिए महिला सशक्तीकरण और गरीबी उन्मूलन संबंधी विराट दावों से बढ़कर कुछ और भी है तो

हमारे लिए इन पैटर्न्स और उनके पीछे निहित कारकों को समझना बहुत ज़रूरी हो जाता है।

उपयोगिताः स्वयं सहायता समूह औरतों को ही निशाना क्यों बनाते हैं?

साबरकांठा के सहायक ज़िला मजिस्ट्रेट की राय में आई.आर.डी.पी. (एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम) में कर्ज़े डूबने के कारण जो समस्याएं आ रही थीं, उन्हें दूर करने के लिए इस कार्यक्रम में औरतों को केंद्र में रखना एक व्यावहारिक और विवेकसंगत समाधान था। महिलाओं पर निशाना साध कर इस कार्यक्रम में कर्ज़ वापसी का लक्ष्य सुनिश्चित किया गया है क्योंकि "औरतें कहीं नहीं जा सकतीं, उनको आसानी से पकड़ा जा सकता है। वे भाग नहीं सकतीं, घर नहीं छोड़ सकतीं; उन्हें कर्ज़ा लौटाने के लिए आसानी से मजबूर किया जा सकता है क्योंकि उन्हें शर्म का अहसास जल्दी हो जाता है और कर्ज़ा न चुकाने को वे घर की इज़्ज़त पर कलंक मानती हैं।" यानी औरतों को इसलिए केंद्र में नहीं रखा गया क्योंकि उनके हित महत्त्वपूर्ण हैं, उन्हें इसलिए चुना गया क्योंकि उनकी मज़बूरियां हैं।

जब मंडल परिषद् विकास अधिकारी (ड्वाक्रा का प्रभारी अधिकारी) से हमने पूछा कि स्वयं सहायता समूहों का क्या महत्त्व है तो उन्होंने कहा था, "आमतौर पर महिलाएं घर में खाली बैठी रहती हैं...। महिलाओं को भी हिस्सा लेना चाहिए। इस तरह से राज्य का भी विकास होगा।" साक्षात्कार में भी उसने इस बात को दोहराया कि "औरतें घर में पड़ी सोती रहती हैं।" यही नज़रिया एस.जी.एस.वाई. के ग्राम सेवक का था जिन्होंने कहा कि "जो औरतें कुछ नहीं करतीं और खाली बैठी रहती हैं उन्हें हमारे कार्यक्रम में काम दिया गया है। ताकि वे भी अपने परिवारों को मदद दे सकें।" ये वक्तव्य इस धारणा पर आधारित हैं कि औरतों के पास 'फालतू वक्त' होता है और उनकी मुख्य भूमिका घर चलाने और मदद देने तक सीमित है। अपनी दलीलों में कार्यकर्त्ताओं या अधिकारियों ने इस बात का ज़िक्र नहीं किया कि औरत की ज़िंदगी में ऋण और बचत तक स्वतंत्र पहुंच का इतना महत्त्व क्यों होता है। चाहे ड्वाक्रा हो या एस.जी.एस.वाई., सब जगह इसी बात पर ज़ोर दिया जा रहा था कि इससे परिवार को फायदा होगा। औरतों को फायदा हो न हो।

ड्वाक्रा, पश्चिमी गोदावरी के मामले में अफसरों ने न केवल परिवार के लिए बल्कि राष्ट्र के लिए भी औरतों की उर्जा के सदुपयोग के फायदों का ज़िक्र किया। जब हमने पेडापाडू मंडल के मंडल परिषद् विकास अधिकारी से पूछा कि स्वयं सहायता समूह बनाने की ज़रूरत क्यों पड़ी तो उनका कहना था किः "ज़रूरत इस बात की है कि औरतों को भी शिक्षा, स्वास्थ्य और पर्यावरण जैसे मुद्दों पर सामाजिक

"औरतों... को आसानी से ढूंढ़ा जा सकता है। न तो वे भाग सकती हैं न घर छोड़ सकती हैं। उन्हें कर्ज़ा लौटाने के लिए आसानी से मज़बूर किया जा सकता है क्योंकि शर्म का अहसास उन्हें ज़्यादा सताता है। कर्ज़ा न चुका पाने से उन्हें घर की इज्ज़त को ठेस लगने का दुःख होता है," ए.डी.एम. साबरकांठा, गुजरात।

जागरूकता की गतिविधियां चलाने के लिए ढाला जाए। उनमें सही आदतें विकसित की जाएं। औरतों की ताकत को बरबाद क्यों होने दिया जाए? हमें मैनपावर का सही ढंग से इस्तेमाल करना पड़ेगा। गतिविधियों और बचत के ज़रिए औरतें परिवार की आमदनी में हाथ बंटा सकतीं है। अगर परिवार अच्छी हालत में होगा तो इससे देश को भी फायदा होगा।" इन टिप्पणियों में औरतों के अब तक के योगदान और विकास के क्षेत्र में उनके अधिकारों का निषेध स्पष्ट दिखायी देता है। ये वक्तव्य उनकी भूमिका के बारे में बेहद उपयोगितावादी समझ पर आधारित हैं। इनमें इस बात को भी मान्यता दी जा रही है कि स्वयं सहायता समूहों के ज़रिए महिलाएं जो आय हासिल करेंगी उनसे परिवार की आय में सिर्फ पूरक योगदान ही होगा। कहने का मतलब यह है कि वे परिवार के मुख्य आयअर्जक व्यक्ति के रूप में पुरुष की हैसियत को चुनौती नहीं देंगी।

ग्रामीण विकास आयुक्त ने हमसे यह बात कही : "हमने पाया है कि स्वयं सहायता समूहों और ग्रामीण विकास में महिलाओं की सहभागिता से हमें विकास के निर्धारित लक्ष्यों को जल्दी हासिल करने में मदद मिलती है। एस.एच.जी. के ज़रिए उन तक ज़्यादा अच्छी तरह संदेश पहुंच जाते हैं और वे बच्चों की शिक्षा और परिवार नियोजन जैसी चीज़ों की अहमियत समझने लगती हैं।" उन्होंने लक्ष्यों को हासिल करने के लिए औरतों को पढ़ाने के तरीकों में भी फर्क बताया। उनका कहना था कि यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है कि महिलाएं पढ़ने की काबीलियत हासिल करें जिससे वे सूचनाओं का ज़्यादा आसानी से इस्तेमाल कर सकें। लिखने की क्षमता विकसित करने में जितना ज़ोर लगाना पड़ता है, वह व्यर्थ है क्योंकि सूचनाओं के प्रसार का लक्ष्य तो केवल पढ़ने की क्षमता से ही हासिल हो जाता है। इस प्रकार औरतें और उनकी शिक्षा सरकारी लक्ष्यों को हासिल करने का साधन बन जाती हैं। वे खुद फैसला लेने की क्षमता से लैस व्यक्ति की जगह केवल ग्राहक और लाभान्वित बनकर रह जाती हैं।

स्वशक्ति कार्यक्रम में इनरेका संस्था को नए इलाकों में अपना काम फैलाने का विकल्प दिया गया। क्योंकि इनरेका के पास महिला समूहों के बीच काम करने का अनुभव नहीं था इसीलिए उसे सीखने के अवसर भी मुहैया कराए गए। इसमें औरतों पर फोकस के लिए कोई वैचारिक प्रयास नहीं था। नेतृत्त्व के मुताबिक तथ्य यह था कि इस परियोजना से उन्हें अपनी पहुंच बहुत जल्दी एकदम ज़मीनी स्तर तक फैलाने में मदद मिली है। संगठन की मुख्य प्राथमिकता अभी भी आदिवासी बच्चों को शैक्षणिक अवसर उपलब्ध कराना ही है लेकिन जैसा कि समन्वयक ने स्वीकार किया, अगर महिलाओं पर फोकस करने के लिए ही आर्थिक सहायता मिलती है तो रणनीति में यह बदलाव

"स्वयं सहायता समूहों में औरतों की हिस्सेदारी से विकास के लक्ष्यों को जल्दी से जल्दी हासिल करने में मदद मिलती है। एस.एच.जी. के माध्यम से कोई भी संदेश महिलाओं तक ज़्यादा प्रभावी ढंग से पहुंच जाता है और वे बाल शिक्षा व परिवार नियोजन जैसी चीज़ों का महत्त्व समझने लगती हैं," ग्रामीण विकास आयुक्त।

भी किया जा सकता है, "और अगर एक बार उनका विश्वास जीत लें तो औरतों को किसी भी एजेंडा के लिए राज़ी करना आसान होता है।" इस प्रकार महिलाएं संसाधनों तक पहुंच का साधन बन जाती हैं। उनकी अपनी ज़रूरतों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। इनरेका कार्यक्रम दल के अनुसार बचत और ऋण एक ऐसी योजना की तरह है जिसमें संगठन के ओवरहैड खर्चे बहुत कम रहते हैं और यह लोगों तक पहुंचने का एक उपयोगी तरीका है। यह खुद ब खुद अपने लिए साधन उत्पन्न करने वाली योजना है। इसीलिए इतने सारे संगठन एस.एच.जी. आधारित कार्यक्रम अपना रहे हैं। इसके लिए देखभाल की ज़्यादा ज़रूरत नहीं पड़ती और उनसे कई निशानें सध जाते हैं। साथ ही संगठनों को ज़मीनी स्तर पर पहचान और जगह मिल जाती है जो इनरेका के पास अब तक नहीं थी। इसीलिए इनरेका स्वयं सहायता समूहों को एक ऐसी सहज पद्धति के रूप में देखता है जिसके ज़रिए विकास संबंधी और 'सांस्कृतिक' एजेंडा को आगे बढ़ाया जा सकता है। यह प्रयोग न तो मूल एजेंडा को बाधित करता है न ही उसमें ढील आने देता है। संगठन को महिलाओं की ज़रूरतों को सम्बोधित करने या उनकी चिन्ताओं को प्राथमिकता में शामिल करने की ज़रूरत भी नहीं पड़ती। इस तरह माइक्रो क्रेडिट एक रणनीति के तहत पैठ बनाता है और जेंडर व सत्ता के क्षेत्र में यथास्थिति को अस्त–व्यस्त किए बिना अन्य एजेंडा के लिए मंच मुहैया करा देता है।

पीस जैसी स्वयंसेवी संस्थाओं में हमें एक ऐसी स्थिति की जटिलता प्रतिबिम्बित होती है जिसमें ऊपर थोपे गए माइक्रो क्रेडिट के तर्क और विवशताओं के विपरीत संगठन के पास सामाजिक न्याय के क्षेत्र में काम करने की चाह और एक सांगठनिक इतिहास रहा है। पीस सदस्यों का कहना था कि वे महिलाओं के बीच इसलिए काम कर रहे हैं "क्योंकि बच्चों की शिक्षा कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए समुदाय की मदद चाहिए थी। हमें महिलाओं के बीच इसलिए काम करना था ताकि उन्हें अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए प्रेरित किया जा सके।" कई अन्य लोगों का दावा था कि वे "औरतों के बीच काम कर रहे हैं ताकि हम उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, लड़कियों और श्रम संबंधी मुद्दों पर काम कर सकें।" इसी साक्षात्कार में हमने जेंडर असमानता की मान्यता पर आधारित राय भी देखी। "हमने सोचा था कि बचत और ऋण के सहारे औरतों के पास संसाधन आ जाएंगे, उनके पास अपनी सम्पत्ति होगी जो खासतौर से बुढ़ापे में काम आएगी क्योंकि बूढ़ों की मदद के लिए कोई व्यवस्था नहीं है।" और अंत में हमने जेंडर आधारित न्याय की एक स्पष्ट अभिव्यक्ति भी सुनीः "आदमियों की शिक्षा या राजनीतिक सत्ता कितनी भी हो, वे ज़्यादा ताकतवर होते हैं और संसाधनों तक उनकी ज़्यादा पहुंच होती है। इसीलिए औरतों को प्राथमिकता देना ज़रूरी था। उनकी हालत में सुधार लाना ज़रूरी था। औरतों की कोई पहचान नहीं होती। अगर आदमियों को कर्ज़ा मिलता है तो वे घर में पैसा नहीं देते। पैसे से जुड़े संसाधन औरतों के पास नहीं पहुंच पाते। अगर वे बचत करें तो कर्ज़ा पा सकती हैं। अगर वे कर्ज़ा लें तो उन्हें कुछ फायदा हो सकता है। इससे अपनी ही नज़र में उनका महत्त्व भी बढ़ेगा और आत्मविश्वास भी।"

महिलाओं के बीच काम करने के लिए बचत और ऋण क्यों महत्त्वपूर्ण हैं, इसके जवाब में आयी इन व्याख्याओं से पता चलता है कि बचत और ऋण की भूमिका को सशक्तीकरण के साथ जोड़कर तो देखा जा रहा है लेकिन संगठन की रणनीति के रूप में इस पर पर्याप्त चर्चा और व्याख्या नहीं हुई है। इस समझ

की सीमाएं कार्यक्रम संबधी प्रयासों में भी दिखायी देती है। इन प्रयासों में शैक्षणिक अवसरों को बहुत मामूली हैसियत मिलती है। इसके पीछे निहित एक कारक यह है कि फंडिंग एजेंसियां वित्तीय कार्यकुशलता को सबसे ज़्यादा महत्त्व देती हैं।

आनंदी संगठन बचत और ऋण को अपने एजेंडा में शामिल करना ज़रूरी मानता है। संगठन का एजेंडा गरीब आदिवासी औरतों की ज़िंदगी में मौजूद सामाजिक–आर्थिक असमानताओं को संबोधित करने पर केंद्रित है। हालांकि घर के भीतर श्रम विभाजन के लिहाज़ से आदिवासी महिलाओं की स्थिति आंशिक रूप से बेहतर है, मगर ज़मीन और अन्य कृषि वस्तुओं के स्वामित्व एवं परिवार की मुख्य चिंताओं पर निर्णय प्रक्रिया जैसे विषयों में गहरी असमानता दिखायी देती है। संगठन का प्रयास है कि महिलाओं को ऋण मिले और वे विभिन्न प्रयासों की अगली कतार में दिखायी दें। संगठन का मानना है कि इससे न केवल महिलाओं की अपनी नज़र में उनकी छवि बेहतर होगी बल्कि समुदाय के स्तर पर भी उनका सम्मान बढ़ेगा। दूसरी तरफ, उनका संसाधनों पर नियंत्रण भी ज़रूर बढ़ेगा। हालांकि यह भी बचत का एक उपयोगितावादी नज़रिया हो सकता है लेकिन इसे संगठन की विचारधारा और लैंगिक न्याय के लक्ष्य को हासिल करने के लिए इस्तेमाल की जा रही विभिन्न रणनीतियों से बल मिल रहा है। यह बल आनंदी की सोच में उस समय भी मौजूद था जब उसके कामों में माइक्रो क्रेडिट जैसी चीज़ दूर–दूर तक दिखायी नहीं दे रही थी।

सरकारी कार्यक्रमों में महिलाओं को इस आधार पर निशाना नहीं बनाया जा रहा है कि उनका क्या–कुछ दांव पर लगा हुआ हैः चाहे बेहतर कर्ज़ वापसी की बात हो, चाहे परिवार/समुदाय/राष्ट्र का

इनरेका नामक एन.जी.ओ. के मुताबिक बचत और ऋण एक ऐसी स्ववित्तपोषित योजना की तरह है जिनमें संगठन के लिए कोई ओवरहैड लागत नहीं आती और लोगों तक पहुंचने का उपयोगी साधन मिल जाता है।

कल्याण हो, चाहे विकास संबंधी संदेशों का प्रसार हो या ज़्यादा तेज़ी से ज़्यादा परिवारों तक पहुंचने की बात हो। जब प्रोत्साहक एजेंसी की विचारधारा में महिला सशक्तीकरण के प्रति प्रतिबद्धता बहुत स्पष्ट होती है तभी वह माइक्रो क्रेडिट इस उपयोगितावादी सोच से परे जा पाता है।

मुक्त बाज़ार

अध्यन के आधार पर हमें लगता है कि माइक्रो क्रेडिट परिघटना एक स्वछंदतावादी पद्धति का अनुसरण कर रही है। मुक्त बाज़ार सिद्धांत की तरह यह परिघटना भी गहरी जड़ें जमाए बैठी संरचनागत असमानताओं की उपेक्षा करती है और इस धारणा पर आधारित है कि सभी लोग एक 'खुली बाज़ार' व्यवस्था में समान रूप से हिस्सा ले सकते हैं। इसीलिए मिसाल के तौर पर, महिलाओं को पैसा देकर मान लिया जाता है कि वे स्वाभाविक रूप से विकास और आयवर्धक गतिविधियों में सक्रिय हो जाएंगी चाहे उनके रास्ते में संस्थागत और सामाजिक बाधाएं कैसी भी क्यों न हों या ऐसे फैसले लेने के लिए उनके पास सीखने के अवसर हों या न हों।

जब ड्वाक्रा अधिकारियों से यह पूछा गया कि कुछ खास आयवर्धक परियोजनाओं को ही क्यों चुना गया तो जवाब मिला कि यह चुनाव तो औरतों ने ही

कार्यक्रमों का दावा है कि महिलाएं खुद तय कर सकती हैं कि कब कौन–सा मुद्दा उठाया जाएगा। कई विकल्पों में से चुनने की योग्यता हासिल करने की राह में जो रुकावटें हैं उन्हें अनदेखा कर दिया गया।

किया है। यह प्रक्रिया 'ज़रूरतों पर आधारित' थी। हो सकता है यह बात तथ्यतः सही हो लेकिन मुद्दा यह है कि अगर औरतों से पूछा भी गया था तो हमें इस बात को रेखांकित करना चाहिए कि उनकी प्रतिक्रियाएं उनको अब तक मिले एक्सपोजर, उनके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक हालात से तय होंगी। ऐसे में यह आश्चर्य की बात नहीं है कि महिलाओं ने पापड़ और अगरबत्ती उत्पादन जैसे विकल्पों का ही 'चुनाव' किया।

महिलाओं द्वारा किए गए 'चुनावों' को कैसे समझा जाए? जैसा कि अध्याय एक में हमने कहा था, हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि वे किन चीज़ों में से चुनाव कर रही हैं और क्या उनके सामने सार्थक विकल्प मौजूद हैं। शक्तिशाली पितृसत्तात्मक मूल्य–मान्यताओं के रहते और विभिन्न विकल्पों के बारे में जानकारियों व व्यावहारिकता के बारे में बताए बिना ऐसे चुनावों को 'सचेत' चुनाव नहीं कहा जा सकता और उनके आधार पर विकास संबंधी कार्यक्रमों की योजना नहीं बनायी जा सकती। औरतों को ज़रूरी इनपुट्स उपलब्ध कराए बिना और सचेत चुनाव की क्षमता विकसित किए बिना उनसे सिर्फ ये पूछ लेना कि वे कौन–से विकल्पों को चुनना चाहती हैं। इसमें बाज़ार के सिद्धांत की अभिव्यक्ति ही दिखायी देती है। मुक्त व्यापार की सोच न्याय और क्षमता के संदर्भ में भी दिखायी देती है जहां कार्यक्रमों का दावा है कि वे खुद तय कर सकती हैं कि कब और कौन–सा मुद्दा उठाया जाएगा। इस प्रसंग में एक बार फिर इस बात को अनदेखा कर दिया जा रहा है कि विभिन्न विकल्पों में से चुनने की योग्यता हासिल करने के रास्ते में क्या–क्या बाधाएं मौजूद हैं।

आइए पीस का ही उदाहरण लें। केयर फंडिंग एजेन्सी के वरिष्ठ पदाधिकारी ने कहा कि "चाहे जिन मुद्दों का चुनाव किया जाए, उनका चुनाव लोगों को अपने संदर्भ में खुद ही करना चाहिए।" एक लिहाज़ से यह बात व्यक्ति–केंद्रित विकास की सोच के अनुरूप दिखायी देती है लेकिन इस वक्तव्य को पीस के अनुभवों के संदर्भ में समझा जाए तो बेहतर होगा। पीस जिन समुदायों के बीच काम कर रहा है, उनकी महिलाएं पहले शराब विरोधी संघर्षों और दलित अधिकार आंदोलनों में सशक्त कार्रवाइयां करती थीं। हाल ही में उन्होंने पीस के ज़रिए लागू किए जा रहे वेल्ड कार्यक्रम में हिस्सा लिया था। पीस ने उन्हें इस कार्यक्रम में लाने के लिए मेहनत भी की थी। केयर के कैश कार्यक्रम के दबाव ऐसे हैं कि उससे विकल्पों का चुनाव करने की औरतों की क्षमता पर गंभीर असर पड़ता है। कैश कार्यक्रम में टिकाऊपन की नीति सबसे महत्त्वपूर्ण है जिसके लिए बैंक से जुड़ाव की आवश्यकता होती है। बैंक लिंकेज के लिए ज़िला कलेक्टर से सत्यापित चाहिए होता है। पीस की ओर से किसी भी तरह की सरकार विरोधी कार्रवाई में हिस्सेदारी के फलस्वरूप संगठन टिकाऊपन के रास्ते पर नहीं चल सकता। सामाजिक एजेंडा को निर्धारित करने में स्वयंसेवी संस्थाओं के महत्त्व को देखते हुए स्वयं सहायता समूहों की महिलाओं की सक्रियता पर इन बातों से सीधा असर पड़ता है। यहां तक कि साक्षरता के मामले में भी, यद्यपि महिलाएं अपना प्रयास

गरीबों के बारे में नज़रिया

मुद्दा सिर्फ यह नहीं है कि स्वयं सहायता समूहों में औरतों को किस तरह देखा जाता है, मुद्दा यह है कि इन समूहों में गरीबों को किस तरह देखा जाता है। ड्वाक्रा, पश्चिमी गोदावरी के परियोजना निदेशक बचत और गरीबी को इस तरह देखते हैं: "आमदनी खर्चे से ज़्यादा है। गरीब चाहें तो बचा सकते हैं। अगर आदमी 'बुरी आदतों' का शिकार हो तो क्या किया जा सकता है?" एस.जी.एस.वाई. ग्राम सेवक की राय थोड़ी बेहतर थी : "गरीब इसलिए गरीब हैं क्योंकि वे काम ही नहीं करना चाहते। हम उन्हें काम देते हैं, सरकार उन्हें फायदे देती है। अगर वे इन चीज़ों का सही ढंग से इस्तेमाल करते तो न जाने कहाँ पहुंच गए होते। लेकिन वे कुछ नहीं करते। उनमें से कुछ, खासतौर से आदमी तो बस पड़े रहते हैं। कुछ नहीं करते। वे इसी लायक हैं। हमारी तो नौकरी है इसलिए करनी पड़ती है। लेकिन अगर इसे सड़कों के निर्माण और अन्य बुनियादी चीज़ों पर खर्च करें तो इसी पैसे को ज़्यादा अच्छी तरह इस्तेमाल कर सकते हैं । खैर, छोड़िए उन्हें क्या पता हम इनके लिए क्या–क्या कर रहे हैं। उन्हें लगता है कि सरकार उन्हें लाकर सब कुछ दे देगी। ये लोग लड़–झगड़कर अपना पैसा और वक्त बरबाद कर देंगे। इन पर अपना समय खराब करने का क्या फायदा। इसीलिए मैं तो सिर्फ नेताओं को बुलाता हूँ और उन्हें ही चीज़ें समझाकर फारिग हो जाता हूँ।"

तालुका विकास अधिकारी की बातचीत में कुछ हमदर्दी का भाव था। उनका मानना था कि गरीब लोग संसाधनों के अभाव की वजह से गरीब हैं। लेकिन वे इस बात से भी सहमत थे कि जब तक 'ये लोग' अपनी आदतें और तौर–तरीके नहीं बदलेंगे तब तक उन्हें चाहे कितना भी कर्ज़ा दे दीजिए उनकी हालत सुधरने वाली नहीं है। अधिकारी महोदय का कहना था कि 'ये लोग' न तो संसाधनों की कमी के बारे में और न ही अपने रवैये के बारे में परवाह करते हैं।

सरकारी अफसरों की सोच में गरीबों और उनके हालात के प्रति एक उदासीनता का भाव भी दिखायी देता था। इन अफसरों में कार्यक्रम के निर्धारित प्रारूप की सीमाओं से परे जाकर रचनात्मक प्रयास करने या गरीबों को संसाधनों व दक्षता तक पहुंच में सहयोग करने की इच्छाशक्ति नहीं है। एक जगह एस.जी.एस.वाई. के पांच समूहों की नेताओं ने आय संवर्धक अफसरों की पड़ताल के लिए निपुणता प्रशिक्षण की मांग की थी। ग्राम सेवक ने कंधे उचका कर उनसे कहा था, "वैसे भी ज़्यादा आमदनी का तुम क्या करोगी? क्या इससे तुम्हारे जीने का ढंग बदल जाएगा? हमने तुम्हारे लिए पहले ही गतिविधियां चुन ली हैं। सरकार तय कर देगी कि तुम लोग क्या कर सकते हो।" ग्राम सेवक और अन्य लोगों की टिप्पणियों में जातीय भावनाएं भी निहित थीं : "अगर हम इन सारे कार्यक्रमों के ज़रिए उनकी मदद करते रहें तो भी वे जो हैं, वही रहेंगे।" जिस तरह की राय जेंडर के बारे में थी कुछ उसी प्रकार की राय विकास के क्षेत्र में गरीबी और गरीबों के बारे में फैली हुई है। माइक्रो क्रेडिट के तर्क में इस तरह की सोच को चुनौती नहीं दी जाती है और कई बार ये प्रवृत्तियां खतरनाक रूप में सामने आती हैं। ऊपर जो उद्धरण दिए गए हैं उनसे साफ है कि बहुत सारे कार्यक्रम प्रशासकों की नज़र में गरीबी के लिए गरीब ही ज़िम्मेदार हैं।

जारी रखना चाहती थीं लेकिन पीस के पास अपने कार्यक्रम को समेटने के अलावा और कोई विकल्प नहीं था। इस अनुभव से स्पष्ट है कि महिलाओं के चयन को व्यापक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक हालात से काट देना असंभव है।

अध्ययन से फंडिंग एजेंसियों की हस्तक्षेपवादी रणनीति साफ दिखायी देती है। कैश कार्यक्रम के सहभागी क्षमता आकलन उपकरण (पार्टनर्स कैपेसिटी असेसमेंट टूल) में कहा गया है कि "...सहभागी संगठनों को 'अलाभकारी समाज परिवर्तन लाने वाले' की जगह 'लाभ–हेतु टिकाऊ माइक्रो फाईनेन्स सेवा प्रदान करने वाले' की भूमिका अपनानी होगी।" यहां संगठन के पास 'स्वतंत्र चयन' का अधिकार दिखायी नहीं देता। क्रियान्वयन एजेंसी से भी बढ़कर फंडिंग एजेंसियां बेहद हस्तक्षेपवादी भूमिका निभाती हैं जबकि समुदाय के स्तर पर वे 'एस.एच.जी. सदस्याएं जो चाहें' की सोच को बढ़ावा देती हैं। हालांकि आज के संदर्भ में यह भी गौर करने वाली बात है कि 'सहभागी' पद्धतियों के संदर्भ में फंडिंग एजेंसी की इच्छा, स्वयंसेवी संस्था की इच्छा और एस.एच.जी. की इच्छा, इनको एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। यह इसलिए है क्योंकि एजेंसियां उस प्रक्रिया को बड़ी आसानी से चला पाती हैं जिसके ज़रिए यह अभिव्यक्त होता है कि क्या 'इच्छित' है।

मुक्त व्यापार या अहस्तक्षेप की रणनीति समूह के पास मदद के लिए आने वाली औरतों के संदर्भ में भी दिखायी दी। हमने देखा कि यह सोच नीचे के स्तर पर, यहां तक कि फेडरेशन और एस.एच.जी. के स्तर तक फैली हुई थी। तर्क यह है कि मदद तभी दी जाएगी अगर महिलाएं खुद मदद के लिए आ रही हों। अगर वे मदद के लिए आगे नहीं आती हैं तो मदद करने का सवाल पैदा नहीं होगा। मिसाल के तौर पर, जब हमने एस.एच.जी. के एजेंडा के बारे में सवाल पूछे तो पीस द्वारा प्रोत्साहित एस.एच.जी. की सदस्याओं का कहना था कि "औरतें अपनी समस्याएं लेकर हमारे पास आती ही नहीं।" जब हमने यही सवाल फेडरेशन सदस्याओं से पूछा तो उन्होंने कहा कि "अगर ऐसे मामले समूहों के सामने आते हैं तो हम उनके बारे में बात कर सकते हैं। वरना हम प्रभावित औरत की तरफ से खुद कैसे काम कर सकते हैं? जब तक वो सामने नहीं आएगी तब तक हम कुछ नहीं कर सकते। जब वही हमारी मदद नहीं चाहती तो हम उस पर कैसे ध्यान देंगे? ऐसा नहीं हो सकता। मान लीजिए कल वो मुकर जाए और कहे कि यह उसका निजी मामला है और हमें दखल नहीं देना चाहिए, तो?" यह लगभग वैसी ही बात है जैसी संगठन नेतृत्त्व ने इस बारे में हमें कही थी कि वे समूहों की मदद केवल तभी कर सकते हैं जब समूह खुद न्याय और समानता के मुद्दे लेकर उनके पास आएं।

इन बयानों पर इस लिहाज़ से विचार किया जाना चाहिए कि मदद के लिए महिलाएं खुद किसी मंच से संपर्क क्यों नहीं करतीं और इन मंचों तक पहुंचने के लिए औरतों को किन प्रक्रियाओं की ज़रूरत है। एक बार फिर हम देखते हैं कि यहां भी मुक्त व्यापार की पद्धति काम कर रही है। औरतों की ज़िंदगी में इन मुद्दों को संबोधित करने की राह में कौन–से मसले और बाधाएं हैं, इस बात का पता लगाने की बजाय कार्यक्रम की सोच इस बात पर केंद्रित रहती है कि "अगर समस्या होगी तो औरतें आगे आएंगी ही।" इसका मतलब यह है कि संगठनों ने खुद को सामाजिक परिवर्तन के लिए सहयोगी परिस्थितियां उपलब्ध कराने की ज़िम्मेदारी से मुक्त मान लिया है।

यह समझ उससे कहीं ज़्यादा हानिकारक है जितनी यह सतही तौर पर दिखती है। खासतौर से

परिवार के संदर्भ में तो औरतों के लिए इस बात को स्वीकार करना भी काफी कठिन होता है कि वह समस्या में है और उसे मदद के लिए किसी के पास जाना चाहिए। उसे यह अहसास दिलाने के लिए परस्पर विश्वास और जानकारी होनी चाहिए कि अगर वह चाहेगी तो उसे ज़रूर मदद मिलेगी। स्वयं सहायता समूह, फेडरेशन और प्रोत्साहक एजेंसियां यह मानकर नहीं बैठ सकतीं कि सब कुछ अपने आप हो जाएगा। उन्हें इस बात का संदेश देना होगा कि संबंधित मंच ऐसे मुद्दों को उठाने के लिए तैयार है। लैंगिक न्याय के अन्य प्रकार के मामलों की तरह यहां भी महिलाओं को इस बात का अहसास कराने के लिए उचित प्रक्रियाओं की ज़रूरत है कि उनके अधिकारों का हनन हो रहा है।

इसी तरह की एक अपेक्षा यह है कि महिलाओं को गांव में चलने वाली अन्य विकास प्रक्रियाओं में 'खुद–ब–खुद' शामिल हो जाना चाहिए। यह बात पीस द्वारा लागू किए जा रहे एक जलागम कार्यक्रम में दिखायी दी जिसे बाद में अन्य कार्यक्रमों के साथ जोड़ दिया गया था। पुराने वाले वॉटर शेड कार्यक्रम के साथ समस्या यह थी कि उसकी समितियों में शामिल होने के लिए पुरुषों की तरह महिलाएं आगे नहीं आ रही थीं। इसी कारण कार्यक्रम के कर्ताधर्ताओं ने तय किया कि जो महिलाएं जलागम कार्यक्रम में हिस्सा नहीं ले रही हैं उनके बीच स्वयं सहायता समूहों का गठन किया जाए। पीस के परियोजना कोऑर्डिनेटर ने कहा, "हमने स्त्री–पुरुष, दोनों को ही शामिल होने का निमंत्रण दिया था। लेकिन वही हुआ जो आमतौर पर होता है। आदमी आ जाते हैं लेकिन वे औरतों को साथ नहीं लाते। वे औरतों को आने के लिए प्रोत्साहित ही नहीं करते।" साक्षात्कारकर्ताओं ने पूछा "तो आपने इस बात पर ज़ोर नहीं दिया कि यदि महिलाएं नहीं होंगी तो कार्यक्रम को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता?" इस पर परियोजना कोऑर्डिनेटर का जवाब था कि "उन्हें स्वेच्छा से आगे आना चाहिए।"

क्रम बद्धता

वेलुगू में जेंडर के सवाल पर भारी महत्त्व दिया गया है। कार्यक्रम के लिए जेंडर प्रशिक्षण की रूपरेखा ए. पी.एम.ए.एस. (आंध्र प्रदेश महिला अभिवृद्धि सोसायटी) ने तैयार की थी। यह एक प्रमुख संस्था है जो अनुसंधान करती है और एस.एच.जी. कार्यक्रमों के क्षमता निर्माण में सक्रिय है। कार्यक्रम शुरू होने के दो साल बाद इस मुद्दे पर काम शुरू किया गया। स्वशक्ति, गुजरात में हमने पाया कि पहले दो साल तक इनरेका संस्था के परियोजनाकर्मियों का सबसे बड़ा एजेंडा बचत और ऋण ही था। आखिरकार तीसरे साल में उन्होंने उद्यम विकास और सामाजिक चिंताओं पर भी ध्यान देना शुरू किया हालांकि इसके बाद भी ज़्यादा ज़ोर वित्तीय एजेंडा पर ही बना हुआ था।

ये उदाहरण माइक्रो क्रेडिट के तर्क में निहित एक खास तरह की क्रमबद्धता की ओर संकेत करते हैं। जहां शैक्षणिक अवसर और क्षमता निर्माण अवसर उपलब्ध कराना भी कार्यक्रम के लक्ष्यों में शामिल है

रुकावटों का पता लगाने की बजाय कार्यक्रम चलाने वालों का रवैया यही होता है कि "अगर कोई समस्या आती है तो औरतें उसे उठाएंगी ही।" कार्यक्रम चलाने वाले सामाजिक परिवर्तन के लिए सहयोगी परिस्थितियां मुहैया कराने की ज़िम्मेदारी से खुद को आज़ाद रखते हैं।

वहां भी उन्हें संगठन के कामों में काफी देर से शामिल किया जाता है और तब भी उनकी हैसियत बचत और ऋण के केंद्रीय एजेंडा के मुकाबले हाशियाई ही रहती है। ऋण गतिविधियों पर इस ज़ोर को अकसर इस आधार पर सही ठहराया जाता है कि औरतें पहले अपनी आर्थिक ज़रूरतों को पूरा करना चाहती हैं और वे इसके बाद ही सीखने और अन्य अवसरों का लाभ उठाना चाहती हैं। उनके लिए गैर–आर्थिक मुद्दे आर्थिक दशा में सुधार के बाद आते हैं। हमने केयर के जिस वरिष्ठ पदाधिकारी का साक्षात्कार लिया, उनका कहना था, "अगर आपको यह भरोसा नहीं है कि अगले वक्त का खाना कहां से मिलेगा तो शिक्षा का अपने आप में कोई मतलब नहीं रहता।" यहां तीन मान्यताएं निहित दिखायी दे रही हैं। पहली, कि औरतों के पास ज़रूरतों का एक क्रम होता है जिसमें वे शिक्षा को प्राथमिकता में नहीं रखतीं (यह बात शिक्षा के बारे में महिलाओं द्वारा कही गयी बातों के बिल्कुल विपरीत दिखायी देती है)। दूसरी, बचत और ऋण गतिविधियों में शामिल अधिकांश महिलाएं बहुत गरीब हैं (जिनके पास अगले वक्त के भोजन का भी इंतज़ाम नहीं है)। सच्चाई यह है कि ऋण और बचत कार्यक्रमों में निर्धनतम तबकों को तो शामिल ही नहीं किया जा रहा है। तीसरी और संभवतः सबसे महत्त्वपूर्ण मान्यता यह है कि संसाधनों तक पहुंच और नियंत्रण के लिए महिलाओं को शिक्षा देने से कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

आनंदी का प्रयोग इसके विपरीत दिखायी देता है। वहां संगठन की विचारधारा और शैक्षणिक अवसरों ने महिलाओं को आजीविका से संबंधित अपनी चिंताओं को संबोधित करने के योग्य बना दिया है। आनंदी के प्रयोग से यह स्पष्ट रूप से स्थापित हो जाता है कि शैक्षणिक अवसरों तक पहुंच से गरीब औरतों पर गहरा असर पड़ता है। आनंदी ने गतिविधियों के बारे में सोचने, उनकी योजना बनाने और उनको क्रियान्वित करने की प्रक्रिया में महिलाओं को केंद्र में रखा है। इन प्रयासों से पहले संगठन ने नियोजित प्रशिक्षण कार्यक्रमों, योजना बैठकों, कार्यशालाओं और सरकारी व अन्य अधिकारियों के साथ बातचीत तथा विभिन्न रणनीतियों का पता लगाने के लिए अन्य संगठनों के कार्यक्षेत्रों के दौरे जैसे इनपुट्स उपलब्ध कराए थे।

समरूपता बनाम समानता

माइक्रो क्रेडिट की परिघटना समूहों को 'समरूपता' के सिद्धांत पर काम करने को विवश करती है। समरूपता या एकरूपता बहुत सारी परिधियों में स्पष्ट दिखायी पड़ रही है : समान बचत, ब्याज दर और किस्त अदायगी, जाति, वर्ग और भाषा के स्तर पर समरूपता तथा समूहों की धार्मिक बनावट या रोज़–ब–रोज़ की गतिविधियों का तरीका, सारी चीज़ों में समरूपता दिखायी देती है। हमने जिन कार्यक्रमों का अध्ययन किया (आनंदी को छोड़कर) उन सभी में किसी भी समूह की सभी सदस्याएं मासिक बचत के रूप में बराबर राशि चुकाती हैं और सभी से एक जैसी दर पर ब्याज वसूल किया जाता है। पहचान के आधार पर समरूपता को कर्ज़ वापसी के लिए सह–सदस्याओं की ओर से दबाव सुनिश्चित करने के लिए महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, समरूपता के कारण सबसे गरीब महिलाएं किनारे पर छूट जाती हैं। स्वयं सहायता समूहों की जिन सदस्याओं से बात की गयी उनमें से ज़्यादातर ने आर्थिक और सामाजिक हैसियत के लिहाज़ से समूह में कोई भिन्नता स्वीकार नहीं की। इन असमानताओं को उजागर करने और समूह के भीतर नियोजन के लिये उनसे निपटने की ज़रूरत किसी को महसूस नहीं

समान बचत जैसे मानकों का इस्तेमाल करते हुए समूह को समान अवसरों वाली परिधि के रूप में पेश किया जा रहा है। ऐसे में समानता, समरूपता बन जाती है। लेकिन समरूपता का मतलब होता है कि समूह खुद पर अनुशासन रखे और नियमों का पालन करे।

होती थी और न ही इसके लिए कोई साधन अपनाए गए थे। डर यह था कि कहीं इससे समूह में मतभेद और तनाव पैदा न हो जाए।

एकसमान बचत जैसे मानकों का इस्तेमाल करते हुए समूह को आम समाज के विपरीत समान अवसरों वाली और लाभदायक परिधि के रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश की जाती है। ऐसे में समानता को समरूपता का दर्ज़ा दे दिया जाता है। समूह को अनुशासित रखने और बिना किसी भेदभाव के नियमों का पालन करने के लिए समरूपता को एक आंतरिक विशेषता के रूप में देखा जाता है।

आनंदी 'समरूपता' के इस सिद्धांत का अपवाद दिखायी देता है। यहां शुरुआत में बचत और ऋण कार्यक्रम से बचने की कोशिश की गयी थी क्योंकि तब ऐसा लगता था कि यह कार्यक्रम समूहों की संस्कृति को बदल सकता है और सदस्याएं परस्पर हमदर्दी व सहायता की बजाय कहीं भौतिक फायदे–नुकसान के चक्करों में पड़कर न रह जाएं। इसीलिए यह संगठन अभी भी समानता के लिए काम करना ही सबसे महत्त्वपूर्ण मानता है।

हालांकि समूहों ने अन्य ज़िम्मेदारियां भी ली हुई हैं लेकिन आनंदी के प्रतिनिधि यह सुनिश्चित करने के प्रयास करते हैं कि समूह समानता के मुद्दों को लगातार उठाते रहते हैं और उनके फैसले न्याय व समानता के सिद्धांतों पर आधारित हों। यह बात एक गरीब औरत द्वारा ऋण के लिए दिए गए आवेदन के विषय में संगठन के एक प्रतिनिधि द्वारा किए गए हस्तक्षेप से स्पष्ट हो जाती है। इस महिला ने किसी महाजन से कर्ज़ा लिया था जिसे चुकाने के लिए उसने समूह से कर्ज़ा मांगा। इस आवेदन को समूह ने फेडरेशन के पास भेज दिया था। समूह इस अर्ज़ी पर कर्ज़ा नहीं दे सकता था क्योंकि कर्ज़ की प्राथमिकता में पहले फेडरेशन का खाद्य ऋण लौटाना ज़रूरी था ताकि रियायती ब्याज दर की समय सीमा हासिल की जा सके। फलस्वरूप, उपलब्ध संसाधनों के अभाव में समूह ने उसके मामले को विचारार्थ फेडरेशन के पास भिजवा दिया।

कुछ फेडरेशन नेताओं का मानना था कि इस आवेदन पर विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि यह महिला कर्ज़ चुकाने के लिए कर्ज़ा मांग रही है जबकि फेडरेशन के नियमों के हिसाब से केवल स्वास्थ्य और शैक्षणिक कामों के लिए ही कर्ज़ा दिया जा सकता है। संगठन के कार्यकर्त्ता ने फेडरेशन सदस्याओं के बीच चली बातचीत को चुपचाप सुना और सिर्फ यह कहने के लिए एक बार दखल दिया कि संबंधित महिला जिस कर्ज़े को चुकाने के लिए कर्ज़ा मांग रही है वह भी स्वास्थ्य संबंधी ज़रूरतों के लिए ही लिया गया था और क्योंकि उसके सारे विकल्प बंद हो चुके हैं इसलिए वह फेडरेशन के पास आखिरी उम्मीद के साथ आयी है। उसका समूह उसकी ज़मानत ले सकता है और अगर फेडरेशन उसे कर्ज़ा नहीं देगी तो उसे दोबारा उन्हीं शोषक महाजनों के पास जाना पड़ेगा जिनके खिलाफ लड़ने के लिए यह व्यवस्था खड़ी की गयी थी। यह सुनने के बाद एक और नेता ने कहा, "याद करो हमने जो पिरामिड बनाया था

(प्लॉटिंग एक्सरसाइज़ की थी)। यह औरत भी सबसे निचले घेरे से है। अगर आज हम उसकी मदद करने का रास्ता नहीं ढूंढ पाए तो हर कमज़ोर औरत का भरोसा टूट जाएगा।"

वित्तीय मामलों पर फोकस

पहले अध्याय में हमने देखा था कि किस तरह ज़्यादातर स्वयं सहायता समूहों के एजेंडा में सामाजिक न्याय और समानता के मुद्दे शामिल नहीं हो पाते। यहां हमारी दलील यह है कि ऐसा ज़्यादातर प्रोत्साहक एजेंसियों द्वारा अपनाए जा रहे संकीर्ण वित्तीय एजेंडा पर ज़रूरत से ज़्यादा फोकस का परिणाम है। कार्यक्रमों में अपने काम को आंकने और निगरानी के लिए जो संकेतक इस्तेमाल किए जाते हैं उनसे परियोजना की प्राथमिकताओं को अच्छी तरह समझा जा सकता है। यही संकेतक बताते हैं कि समूह की गतिविधियों की दिशा क्या रही है और भविष्य में कौन से काम आने वाले हैं। पश्चिमी गोदावरी के मंडल परिषद् विकास अधिकारी (एम.पी.डी.ओ.) ने 'अच्छी तरह चल रहे समूह' को परिभाषित करते हुए नियमित बचत, नियमित बैठक, मिनट्स रजिस्टर व अन्य रजिस्टरों की मौजूदगी और आंतरिक ऋण लेन–देन (समूह के भीतर ऋण के लिए बचत का इस्तेमाल) आदि मानक गिनवाए थे। लेकिन जब एम.पी.डी.ओ. ने स्वयं सहायता समूहों से मिलने वाले फायदों के बारे में कहा तो उन्होंने "रोज़गार, आर्थिक/वित्तीय स्वतंत्रता, आत्मविश्वास, बाहरी लोगों के साथ संबंध। और हां, शिक्षा" को भी इस परिभाषा में जोड़ दिया। माइक्रो क्रेडिट के संकेतकों और उसके कथित फायदों के बीच कोई तालमेल नहीं है। संकेतकों में समानता और सामाजिक न्याय के एजेंडा के प्रति संज़ीदगी का अभाव साफ दिखायी देता है। यह मामला वित्तीय

संसाधन, ज़िंदगी और ज़मीन

महिलाओं ने अपनी स्थिति में आए बदलावों को भी कई स्तरों पर परिभाषित किया। उन्होंने अपने शोषण को एक राजनीतिक और सामाजिक मुद्दा बताया और उसे आर्थिक समीकरणों से जोड़कर पेश किया। "पहले वे (बाहर के लोग – व्यापारी, दुकानदार, ठेकेदार) सोचते थे कि हम कुछ नहीं हैं। वे आते थे और कुछ भी उठा कर चल देते थे। उन्हें कभी महसूस ही नहीं हुआ कि हम भी सब कुछ समझते हैं या कभी सवाल पूछ सकते हैं। वे हमें सताते थे क्योंकि हम आदिवासी हैं, पुलिस वाले फर्ज़ी मामलों में आदमियों को उठाकर ले जाते थे। हम अपने संसाधनों से अपना खर्चा भी नहीं चला पाते थे। वे हमारा माल उठाकर ले जाते थे और हमें दो कौड़ी मिलती थी। फिर भी हम उन पर उंगली नहीं उठा सकते थे। अब स्थिति अलग है। हम उन्हें अपना माल नहीं ले जाने देते, हम जब चाहते हैं तब बेचने जाते हैं। फॉरेस्ट गार्ड और व्यापारियों को पता है कि हम अब बहुत सारी चीज़ें जान गए हैं और जब चाहें आंदोलन खड़ा कर सकते हैं। अब हम अकेले नहीं हैं इसलिए कोई हमसे पहले जैसा बरताव नहीं कर सकता। और अब हम उन पर निर्भर भी नहीं हैं। हम एक–दूसरे की मदद करते हैं, संगठन से मिलने वाली मदद हमें यह अहसास देती है कि अगर हम साथ काम करें तो संसाधनों, ज़मीन और ज़िंदगी पर अपना नियंत्रण मज़बूत करने के नए तरीके सीख सकते हैं।"

स्वशक्ति में निगरानी और मूल्यांकन प्रभारी का मानना था कि सशक्तीकरण के संकेतकों को शामिल करने से कार्यक्रम विकृत हो जाएगा। "अगर हम ऐसी चीज़ें सिखाने लगेंगे तो पूरा समाज बिखर जाएगा। न मूल्य बचेंगे और न संस्कृति। हम जो भी करें, उससे हमारी परिवार व्यवस्था नहीं टूटनी चाहिए।"

बनाम सामाजिक न्याय संकेतकों का नहीं है बल्कि इस अहसास का है कि ये दोनों सवाल एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं और स्वयं सहायता समूह गरीब औरतों की ज़रूरतों और हितों पर समग्र दृष्टि से काम कर पा रहे हैं या नहीं, इस बात पर नज़र रखने के लिए बेहतर उपाय किए जाने चाहिए। हमारा मानना है कि सामाजिक न्याय के संकेतकों का अभाव माइक्रो क्रेडिट के दबावों से पैदा हुए असंतुलन का संकेतक है।

पश्चिमी गोदावरी ज़िले में ड्वाक्रा की तीन मासिक निगरानी बैठकों में निगरानी के लिए अपनाए गए मानदंड इसी तरह के थे। उनमें इन चीज़ों को शामिल किया गया था : रिकॉर्ड रखना, बचत में तेज़ी, समूह की बैठकों में नियमितता, प्रस्ताव पारित करना, बैंक से संपर्क और दीपम गैस सिलेंडरों तक पहुंच (आंध्र प्रदेश में एस.एच.जी. की सदस्यता के लाभ के रूप में गैस कनेक्शन पा लेने का सबसे ज़्यादा बार उल्लेख आया[1])।

गैर–वित्तीय संकेतकों को शामिल करने का भारी विरोध किया जाता है। स्वशक्ति में निगरानी एवं मूल्यांकन का राज्य स्तरीय कार्मिक प्रभारी इस बात पर अड़े हुए थे कि औरतों की हैसियत को मापने वाले संकेतकों को शामिल करने से कार्यक्रम विकृत हो जाएगाः "अगर हम ऐसी चीज़ें सिखाने लगेंगे तो पूरा समाज ढह जाएगा। हमारी न कोई संस्कृति बचेगी और न कोई मूल्य। हम जो भी करें, हमारी परिवार व्यवस्था टूटनी नहीं चाहिए।" उनको लगता था कि संसाधनों के सदुपयोग की भौतिक उपलब्धियों को मापना और सरकारी विभागों के साथ संबंध कायम करना ज़्यादा ज़रूरी है "क्योंकि ये ऐसे लक्ष्य हैं जो हमारे समाज का निर्माण करेंगे।" उन्होंने जो भय व्यक्त किया वह आंखें खोल देने वाला है। यानी, इस बात का अहसास जड़ें जमाने लगा है कि सशक्तीकरण की प्रक्रिया मौजूदा यथास्थिति को गंभीर चुनौती दे सकती है।

इस व्यक्ति को विकास की कसौटी पर समूहों के लिए ग्रेड जारी करने के लिए सर्वेक्षण की रूपरेखा तैयार करने का ज़िम्मा भी सौंपा गया था। उसकी ग्रेडिंग व्यवस्था में न्याय और समता जैसे आयामों को लगभग पूरी तरह नज़रअंदाज़ कर दिया गया है जबकि कार्यक्रम के उद्देश्यों में सशक्तीकरण की चाह का उल्लेख मौजूद है। इस कार्यक्रम में जिस एकमात्र गैर–वित्तीय संकेतक को शामिल किया गया वह मौजूदा सरकारी स्वास्थ्य एवं शिक्षा कार्यक्रमों तक पहुंच से संबंधित था। बाद में, समूहों की महिलाओं ने हमें बताया कि जब मूल्यांकन करने वाले आये थे तो उन्होंने बचत और ऋण के अलावा और किसी मुद्दे पर चर्चा नहीं की थी।

आनंदी टीम की सदस्याओं ने बताया कि उन्होंने निगरानी फ्रेमवर्क में सामाजिक परिवर्तन और विकास के मानकों को शामिल करने के लिए काफी दबाव डाला था लेकिन स्वशक्ति के व्यापक परियोजना डिज़ाइन में इस बात को शामिल नहीं किया गया। हालांकि आंतरिक स्तर पर इस तरह की प्रक्रियाएं चल रही थीं।

1 यहां तक कि दीपम योजना का काम भी समस्याओं में फंसा हुआ है। इस योजना से गरीबों को फायदा मिलना चाहिए था लेकिन वे भी अपने गैस कनेक्शन पैसे वालों को बेच देते हैं क्योंकि गरीबों को ऊर्जा के परंपरागत स्रोतों के मुकाबले गैस सिलेंडर कहीं ज़्यादा मंहगा पड़ता है।

उन्होंने बताया कि वे अपने समूहों की नियमित रूप से निगरानी करते हैं जिससे यह पता लगाया जा सके कि कितने समूह वास्तव में स्वायत्त ढंग से काम कर सकते हैं और अपनी ज़रूरतों के लिए सरकारी अफसरों से सम्पर्क कर सकते हैं, स्थानीय नेताओं से अपनी ज़रूरतों पर बात कर सकते हैं और परिवार के भीतर शोषण की स्थितियों औरतों की तरफ से दखल दे सकते हैं। उनका मानना था कि ये संकेतक भी वित्तीय आंकड़ों जितने ही प्रासंगिक थे। फेडरेशन की एक सदस्या का कहना था, "आखिरकार मकसद तो यही है कि औरतों को सामने लाया जाए और उन्हें अपने अधिकारों के लिए लड़ने में सक्षम बनाया जाए।"

स्वशक्ति जैसे कार्यक्रमों में सामाजिक संकेतकों को इस्तेमाल न करने के लिए काम के बोझ और निगरानी प्रक्रिया में व्यस्तता का हवाला दिया जाता है। यह स्थिति तब है जबकि स्वशक्ति में महिलाओं की स्थिति में बदलाव को एक लक्ष्य के रूप में मान्यता दी गयी है। वेलुगू और एस.जी.एस.वाई. जैसे कार्यक्रमों में सामाजिक मानकों को शामिल न करने का ये कारण बताया जाता है कि ये मुख्य रूप से गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम हैं और महिलाओं को मिलने वाले लाभ रणनीति का केंद्रीय विषय नहीं बल्कि केवल सहायक विषय होते हैं। वेलुगू से जुड़े एक अधिकारी ने कहा कि "अगर महिलाओं को हमारी रणनीतियों के कारण फायदे हो रहे हैं तो यह अच्छी बात है। लेकिन हमारा काम तो गरीबी उन्मूलन करना है और हमें इसी बात को मापने और इसी पर नज़र रखने का काम मिला है।"

प्रोत्साहक संगठनों के एजेंडा में वित्तीय मामलों का दबदबा स्वयं सहायता समूहों के आत्ममूल्यांकन में भी दिखायी देता है। जब पीस द्वारा प्रोत्साहित एस. एच.जी. की सदस्याओं से पूछा गया कि उनके समूह में क्या अलग है, तो उन्होंने कहा कि "हम लोग नियमित रूप से बचत करते हैं। देर से आने वालों के लिए हमने जुर्माने का इंतज़ाम किया है, हम एकजुट हैं, हम समय का ख्याल रखते हैं, हम मिलकर ज़िम्मेदारियां निभाते हैं हर महीने एक महिला को गाना होता है...।" यानि खुद को अन्य समूहों से अलग मानने की सबसे पहली कसौटी यही थी कि उन्होंने अपने समूह में जुर्माने का नियम लागू कर दिया है।

वित्तीय कार्यकुशलता को बेहिसाब महत्त्व दिया जाता है और जहां सामाजिक न्याय के संकेतकों को अपनाया जाता है वह अस्पष्ट ढंग से किया जाता है। उंडाराजवरम के मंडल परिषद् विकास अधिकारी ने स्वयं सहायता समूहों से महिलाओं को मिलने वाले लाभों पर अपनी राय देते हुए दीपम गैस सिलेंडर कनेक्शन, आवास ऋण और मिड डे मील्ज़ योजना जैसे लाभों का स्पष्ट रूप से ज़िक्र किया। लेकिन जब सामाजिक बदलाव कि बात चली तो उन्होंने सिर्फ इतना कहा : "भूमिकाओं में बदलाव आ रहा है। अब औरतें आत्मनिर्भर हैं।" इन दावों के समर्थन में कोई साक्ष्य पेश करने की ज़रूरत महसूस नहीं की गयी।

जब सशक्तीकरण का सवाल आता है तो यह अस्पष्टता संदर्भ समूहों के मामले में भी दिखायी देने लगती है। मिसाल के तौर पर, आंध्र प्रदेश में ए.पी. एम.ए.एस. का उदाहरण लिया जा सकता है। जब समूहों की गुणवत्ता को मापने की बारी आयी तो एक संकेतक जागरूकता का था जिसे 'एस.एच.जी. अवधारणा की समझ' के रूप में परिभाषित किया गया था। इसी प्रकार गुजरात में एस.जी.एस.वाई. और स्वशक्ति कार्यक्रम को प्रशिक्षण एवं मूल्यांकन मुहैया कराने वाले संगठन ने भी सशक्तीकरण को संसाधन तक पहुंच की प्रक्रिया और इस पहुंच के स्रोतों के बारे में महिलाओं की जागरूकता के रूप में ही परिभाषित

किया था। संगठन के एक वरिष्ठ प्रशिक्षक ने तो यह भी स्वीकार किया कि "जब हम महिला सशक्तीकरण को परिभाषित करते हैं तो उसका आशय इससे ज़्यादा होना चाहिए। उनकी भौतिक और राजनीतिक जागरूकता, जिससे उन्हें असंतुलन को दुरुस्त करने में मदद मिले। लेकिन एस.एच.जी. आधारित कार्यक्रमों में हमें इसे आर्थिक दायरे तक ही सीमित रखना पड़ेगा। वरना हमारे पास बहुत सारी चीज़ें हो जाएंगी।"[2] वेलुगू के आला पदाधिकारी भी इस बात से अवगत हैं कि आर्थिक परिभाषा और महज़ आर्थिक संकेतकों को अपनाना सही नहीं है लेकिन कार्यक्रम के दायरे और समय सीमा को देखते हुए यह ज़रूरी है: "उन सामाजिक आयामों का अन्य लोग फॉलोअप कर सकते हैं। हमें अपना फोकस नहीं छोड़ना चाहिए वरना ऐसे कसे हुए कार्यक्रम से हम कोई नतीज़ा नहीं निकाल पाएंगे।"

अस्पष्टता की यह समस्या तब और बढ़ जाती है जब एक ही कार्यक्रम में कुछ संकेतक बहुत अच्छी तरह परिभाषित होते हैं और दूसरी तरफ सशक्तीकरण के संकेतक उलझे हुए नज़र आते हैं। मसलन, कैश निगरानी एवं मूल्यांकन फ्रेमवर्क में एक उपखंड 'जेंडर से जुड़े मुद्दे और उनके मानदंड व जांच–बिंदु' के नाम से है। यह एक उल्लेखनीय अंश है और इसमें 'काम के भार में कमी' जैसे महत्त्वपूर्ण लैंगिक आयामों को भी शामिल किया गया है। लेकिन जब हम लॉगफ्रेम परिणाम संकेतकों और चरांकों पर ध्यान देते हैं तो पता चलता है कि सशक्तीकरण के सारे मुद्दे 'निर्णय प्रक्रिया में सदस्याओं की सहभागिता' वाले उपभाग में समेट दिए गए हैं जिसमें 'सामाजिक एवं आर्थिक मुद्दों पर सदस्याओं की सहभागिता' को तो शामिल किया गया है लेकिन इसका ठोस रूप में क्या मतलब है ये कहीं स्पष्ट नहीं किया गया है। आश्चर्यजनक बात नहीं कि यही विरोधाभास सबसे स्पष्ट रूप से (अध्ययन में चुने गए छह कार्यक्रमों में) पीस के मामले में दिखायी देती है जिसे कैश से सहायता मिल रही है।

सामाजिक मुद्दों की पुनर्परिभाषा

महिलाओं के बारे में उपयोगितावादी नजरिया माइक्रो क्रेडिट के उस तर्क से गहरे तौर पर जुड़ा हुआ है, बल्कि उससे पैदा होता है, जिसकी हम इस अध्याय में व्याख्या कर रहे हैं। इस आशय का उपयोगितावादी तर्क अकसर दिया जाता है कि औरतों की शिक्षा और पहलकदमी के एजेंडा में 'शिक्षा, स्वास्थ्य और पर्यावरण जैसे सामाजिक मुद्दों' को भी शामिल कर लिया जाता है, इसलिए औरतों को कुछ लाभ पहुंच सकता है। इस तर्क को ऐसे साक्ष्यों के आधार पर चुनौती दी गयी है जिनसे पता चलता है कि इन क्षेत्रों में महिलाएं जो कर रही हैं वह सरकार के उपयोगितावादी एजेंडा के अनुरूप और उसी तक सीमित है। उदाहरण के लिए, स्वास्थ्य के क्षेत्र में महिलाएं टीकाकरण अभियानों और जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रमों में तो हिस्सा लेती हैं पर उन्हें सोच–समझकर फैसला लेने या एजेंडा तय करने का मौका नहीं मिलता। दरअसल सामाजिक मुद्दों को तेज़ी से पुनर्परिभाषित किया जा रहा है। अधिकार व

सामाजिक मुद्दों को पुनर्परिभाषित किया जा रहा है। अधिकार व समता से जुड़ी बुनियादी चिंताओं को उठाए बिना उन्हें सेवाएं मुहैया कराने के रूप में देखा जा रहा है।

[2]यह जानकारी हमें गुजरात में स्वशक्ति कार्यक्रम के ज़िला कोऑर्डिनेटर्स और अन्य कार्यक्रमों के अधिकारियों से मिली थी। विभिन्न महकमों की तरफ से ऐसी बहुत सारी अधिसूचनाएं जारी की जा चुकी हैं जिनमें ये बताया गया है कि सरकार के विकास के एजेंडा में स्वयं सहायता समूहों को क्या भूमिका निभानी चाहिए।

सामाजिक परिवर्तन के बदलते अर्थ

सामाजिक परिवर्तन को पुनर्परिभाषित किया जा रहा है। इसके लिए जिन संकेतकों का इस्तेमाल किया जा रहा है वे समाजिक परिवर्तन के नए अर्थों पर आधारित हैं।

एक ज़िला स्तरीय ड्वाक्रा दस्तावेज़ में सामाजिक संबंधों को इस प्रकार मापा गया है:

सामाजिक संबंध (सोशल लिंकेज)

संकेतक	प्रतिशत
स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या	99.62%
परिवार नियोजन	90%
बच्चों का टीकाकरण	100%
पेयजल की सुविधा	60%

समानता की बुनियादी चिंताएं उठाए बिना उन्हें केवल सेवाएं मुहैया कराने के रूप में देखा जा रहा है।

क्या है और क्या होना चाहिए, इसके बीच फर्क स्वशक्ति से जुड़े इनरेका कार्यक्रम की एक एस.एच.जी. सदस्या के बयान से साफ हो गया। उसने कहा कि "वे लोग (कार्यक्रम कार्यकर्त्ता) हमें सब्ज़ियां खाने के लिए कहते हैं और हमारे बच्चों को टीके लगे हैं या नहीं इस बात की जांच करते हैं, पर वे आकर यह नहीं देखते कि हमारे खेतों में खाने की कोई चीज़ है भी या नहीं, या सिस्टर (ए.एन.एम. नर्स) गांव में कभी आती भी है या नहीं। हमने तो इन लड़कियों (इनरेका की ओर से आने वाली कार्यकर्त्ताओं की ओर संकेत है) को भी कहा हुआ है लेकिन कोई नहीं आता। आप पहली हैं जो हमारे गांव में आकर टिकी हैं। इसीलिए सब लोग ये जानने को उतावले हैं कि आप लोग क्यों यहां ठहरी हैं और हमसे आपको क्या चाहिए।"

'सशक्तीकरण खुद–ब–खुद हो जाता है'

कैश की मदद से उड़ीसा में चल रही एक स्वयंसेवी संस्था की यह केस स्टडी आंखें खोल देने वाली है। इस केस स्टडी में अकसर व्यक्त की जाने वाली यह मान्यता बड़ी अच्छी तरह पकड़ में आती है कि ऋण तक पहुंच और फलस्वरूप आय में वृद्धि से ही सशक्तीकरण का मार्ग खुल जाएगा। इस मान्यता में सशक्तीकरण की एक आसान परिभाषा अपनाई गयी है। इस अवधारणा में दहेज की समस्या से निपटने की कोई ज़रूरत महसूस नहीं की गयी है। सास–ससुर को खुश रहना ही चाहिए – अब उन्हें दहेज के लिए बहू को तंग करने की भी ज़रूरत नहीं है!

आर्थिक और सामाजिक मुद्दों को जितनी सफाई से और जिस कदर चिंताजनक ढंग से एक–दूसरे से अलग किया जा रहा है उससे माइक्रो क्रेडिट के प्रोत्साहकों को यह दावा करने का मौका मिल जाता है कि अगर आर्थिक सशक्तीकरण हो जाएगा तो सामाजिक सशक्तीकरण भी होने लगेगा। इस पृथक्करण से यह तर्क और मज़बूत होता है कि बदलाव खुद–ब–खुद आ जाएगा।

उपरोक्त साक्ष्यों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वयं सहायता समूहों के विमर्श में सशक्तीकरण का मतलब कुछ भी हो सकता है। उसमें 'आर्थिक' सशक्तीकरण और 'सामाजिक' सशक्तीकरण के बीच

'आर्थिक' सशक्तीकरण और 'सामाजिक' सशक्तीकरण के बीच झूठा भेद कर दिया गया है। आर्थिक सशक्तीकरण को 'वित्तीय' लेन–देन पर सीमित कर दिया गया है। 'वित्तीय' के भीतर भी सारा ज़ोर बचत की क्रिया पर है।

एक झूठा विभाजन किया गया है। बल्कि 'आर्थिक' सशक्तीकरण के भीतर भी सारी बात 'वित्तीय' पर सीमित कर दी गयी है। मानो इतना ही काफी नहीं था, 'वित्तीय' आयामों में भी सारा ज़ोर सिर्फ बचत करने पर है। सशक्तीकरण के बारे में बात करते हुए प्रोत्साहक एजेंसियां आमतौर पर इस आखिरी और सबसे संकुचित परिभाषा का ही सहारा लेती दिखायी देती हैं। हालांकि वित्तीय मामलों के संकुचित दायरे में भी ऋणों तक पहुंच और आय में वृद्धि का आकलन किया जाना चाहिए लेकिन यह भी हमेशा विमर्श का हिस्सा नहीं होता।

सशक्तीकरण के विमर्श में ये बेहद खतरनाक बदलाव हैं और ये माइक्रो क्रेडिट के तर्क और व्यवहार से गहरे रूप से जुड़े हुए हैं।

यह अध्ययन इस नए विमर्श को हर स्तर पर चुनौती देता है:

- ज़मीनी हकीकत से पता चलता है कि सशक्तीकरण खुद–ब–खुद नहीं हो रहा है।
- आर्थिक और सामाजिक को एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। अगर हम इस द्वैध को स्वीकार करना चाहें तो भी आर्थिक सशक्तीकरण की सोच महज़ वित्तीय लेन–देन से कहीं ज़्यादा

एक सफलता गाथा

सुमित्रा का परिवार बहुत छोटा था। वह गंजम ज़िले के हिंजलीकट ब्लॉक में स्थित बुरुपड़ा गांव में अपने पति और सास–ससुर के साथ रहती थी। उसके पास गांव के बाहर चौथाई एकड़ की ज़मीन के अलावा कुछ खास नहीं था। इसे पट्टे का आधा हिस्सा खेती के लायक नहीं था। जितने हिस्से में खेती होती है उससे परिवार का पेट नहीं पाला जा सकता था। उसका पति साल में 200–250 दिन खेत मज़दूरी करके थोड़ी–बहुत मज़दूरी लाता था। उसे 30–35 रुपए दिहाड़ी मिलती थी। इस तनख्वाह से ये लोग जैसे–तैसे अपना गुजारा चलाते थे। और तो और, शादी के बाद से ही सुमित्रा पर दहेज के लिए दबाव पड़ रहा था। उसके सास–ससुर उस पर इल्ज़ाम लगाते थे कि वह दहेज नहीं लाना चाहती। बी.एम.ए.एस.एस. द्वारा कैश कार्यक्रम के साथ मिलकर शुरू किया गया मां तारिणी नामक स्वंय सहायता समूह सुमित्रा की ज़िंदगी में वरदान बनकर आया। समूह ने आर्थिक और समाजिक दोनों लिहाज़ से सुमित्रा को आगे बढ़ने में मदद दी। सुमित्रा जुलाई 2000 में मां तारिणी स्वयं सहायता समूह से जुड़ी थी। इसके लिए भी उसे अपने घरवालों के विरोध का सामना करना पड़ा। सुमित्रा को कपड़े सीना आता था इसलिए उसने कर्ज़ा (2,000 रूपए) लेकर मशीन खरीदी। जनवरी 2001 में उसने एस.एच.जी. से कर्ज़ा लिया था। वह गांव में कपड़े बेच कर कर्ज़ा चुकाने लगी। आज वह गांव की लड़कियों को सिलाई का पेशेवर प्रशिक्षण देती है। सुमित्रा ने अब रेडीमेड कपड़ों की दुकान खोल ली है। अब उसके सास–ससुर का रवैया बदल गया है। न केवल परिवार में बल्कि गांव में भी सब लोग सुमित्रा को इज़्ज़त की नज़र से देखते हैं। यह घटना इस बात की पुष्टि करती है कि आर्थिक सशक्तीकरण भी अकसर लोगों को सामाजिक संकटों से उबार सकता है।

अब उसके सास–ससुर कहते हैं "दहेज की परवाह किसे है। उसने तो हमारा नाम रौशन कर दिया है।"

व्यापक रहेगी। उसमें संसाधनों पर महिलाओं के नियंत्रण जैसे मुद्दों को उठाना पड़ेगा। हम देख चुके हैं कि किस तरह औरतों के पास कर्ज़ के पैसे के इस्तेमाल से संबंधित फैसले लेने का अधिकार भी नहीं होता और यह बात परिवार के भीतर जेंडर आधारित सत्ता संबंधों से बुनियादी तौर पर जुड़ी हुई है।

- वित्तीय बदलावों के लिहाज़ से भी यह एजेंडा पूरा होता दिखायी नहीं देता। वित्तीय बदलावों के तीन आयाम हैंः महिलाएं बचत करें, ऋण तक उनकी पहुंच हो और उनकी आमदनी में इज़ाफा हो। पहले अध्याय में हमने देखा था कि समूह के रूप में महिलाएं बचत करने लगेंगी या नहीं, इस बात को कितने निश्चय से कहा जा सकता है (चाहे वे समूह के रूप में मिलती हों या नहीं) कि ऋण तक उनकी पहुंच या उससे आमदनी में इज़ाफे को स्वाभाविक मानकर नहीं चला जा सकता।

विमर्श में आ रहे ये बदलाव सरकार और अन्य संस्थागत ताकतों के हितों की पूर्ति करते हैं। अगर सरकार सशक्तीकरण को परिभाषित न करे तो सरकार को जबावदेह नहीं ठहराया जा सकता है। इसके अलावा, यदि यह अपेक्षा कि जाती है कि सशक्तीकरण और गरीबी उन्मूलन अपने आप होने लगेगा तो सरकार को अन्य कार्यक्रमों में पैसा लगाने या नीतियों में ऐसे बदलाव करने की ज़रूरत नहीं रहेगी जिनके ज़रिए इन हालात को पर्याप्त रूप से संबोधित किया जा सकता है या उन्हें संबोधित करने के लिए महिलाओं के क्षमतावर्द्धन में खर्च किया जा सकता है। अब हम इस बात का विश्लेषण करेंगे कि संस्थागत ताकतों को एस.एच.जी. परिघटना से किस तरह फायदा पहुंच रहा है।

माइक्रो क्रेडिट से संस्थागत ताकतों को होने वाले लाभ

माइक्रो क्रेडिट के जिस आयाम पर सबसे कम चर्चा होती है वह इस बात से संबंधित है कि इससे जुड़ी बहुत सारी ताकतों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष स्तर पर क्या–क्या लाभ मिलते हैं। यह जानना क्यों महत्त्वपूर्ण है कि सरकार, स्वयंसेवी संस्थाओं या बैंकों को माइक्रो क्रेडिट से किस तरह फायदा हो रहा है? इसका एक स्पष्ट कारण है : अगर हम बात को समझ लें कि इन ताकतों को किस तरह और क्या लाभ पहुंच रहे हैं तो यह भी समझ सकते हैं कि वे माइक्रो क्रेडिट का एक खास तरीका ही क्यों अपनाते हैं। कहने का मतलब ये है कि इन ताकतों को इसी बात में फायदा है कि चीज़ें वैसी ही रहें जैसे वे हैं क्योंकि प्रायः उन्हें कुछ खास परिस्थितियों में ही ज़्यादा फायदा हो सकता है। मिसाल के तौर पर मौजूदा तरीके में बदलाव करने – एस.एच.जी. कार्यक्रमों में क्षमता निर्माण को एक अनिवार्य भाग के रूप में देखने या समूह के भीतर ज़्यादा कमज़ोर लोगों की ज़रूरतों को मान्यता देने – से उनके मुनाफे में कमी आ सकती है और मुमकिन है उनका खर्चा भी बढ़ जाए। यही कारण रहे हैं जिनकी वजह से ये ताकतें किसी और ढंग से काम करना पसंद नहीं करतीं। अगर हम माइक्रो क्रेडिट के मौजूदा फोकस और विमर्श को प्रभावित करना चाहते हैं तो हमें उसकी मौजूदा बनावट में छिपी लागत–लाभ संरचना को भी समझना चाहिए।

प्रोत्साहक एजेंसियों को मिलने वाले लाभ

पीस को फंडिंग देने वाली एजेंसी केयर के एक आला पदाधिकारी का कहना था कि "जेंडर को संबोधित करने की कुछ सीमाएं हैं। जागरूकता पैदा करने के लिए वित्तीय लागतें वहन करनी पड़ती हैं। दूसरी तरफ

समुदाय आधारित मंचों को खुद अपने दम पर कायम रहना भी सीखना चाहिए। कैश भी डी.एफ.आई.डी. से मिलने वाली फंडिंग पर कायम है। डी.एफ.आई.डी. माइक्रो फाईनेन्स को सहायता देना चाहता है। कैश/पीस जो भी काम करेंगे वह इसका हिस्सा होगा। जेंडर और आजीविका के लिए अलग से कोई अनुदान नहीं है।" यह बात वेलुगू अफसर के उस तर्क से मिलती–जुलती है जिसमें उसने कहा था कि उनके पास आजीविका–केंद्रित आत्मनिर्भर संस्थानों की स्थापना का एक स्पष्ट लक्ष्य है। इसलिए परिभाषा के हिसाब से सामाजिक विकास जैसी उन बातों पर ध्यान केंद्रित करना गलत होगा जो अपने आप टिकी न रह सकें; ऐसी चीज़ें जिनके लिए कार्यकर्त्ताओं की तरफ से लगातार इनपुट्स और सहायता की ज़रूरत रहती है।

टिकाऊपन के तर्क की वजह से जो बदलाव अनिवार्य हो गए हैं वे हमेशा गरीबों के हित में नहीं होते।

वेलुगू मंडल अधिकारी का कहना था कि "वेलुगू कार्यक्रम भी आखिरकार एक समयबद्ध कार्यक्रम है। अगर हम इन सारे पचड़ों में पड़ेंगे तो हम अपना एजेंडा ही पूरा नहीं कर पाएंगे।" जब हमने यह पूछा कि कार्यक्रम में जिस तरह के संस्थागत विकास पर ध्यान दिया जा रहा है, क्या वह सामाजिक सशक्तीकरण इनपुट्स के अभाव में परियोजना अवधि पूरी हो जाने के बाद भी जारी रह पाएगा तो इन अधिकारी ने बेबाक शब्दों में कहाः "यह हमारा काम नहीं है। इसे औरों को करने दीजिए", और "आखिरकार, विकास तो एक लम्बी प्रक्रिया होता है। यह कोई आखिरी कार्यक्रम तो है नहीं। इसके बाद अन्य कार्यक्रम भी आएंगे। इस समस्या के बारे में उन्हें सोचने दो। अभी तो हम इसी (आजीविका) के बारे में बात कर सकते हैं।" जब हमने जेंडर टीम की भूमिका के बारे में जानना चाहा तो उन्होंने कहा कि "उन्हें भी कोशिश करने दीजिए, लेकिन हमें तो अपने काम पर ही फोकस रखना होगा।" हमने पूछा कि इन इनपुट्स में मदद देने के लिए और कोई संगठन भी मौजूद है कि नहीं तो उन्होंने इस बारे में अपनी अनभिज्ञता व्यक्त कर दी।

इस फ्रेमवर्क के भीतर महिला शिक्षा में निवेश को अकसर स्वयं सहायता समूहों की अपेक्षित भूमिका प्रोत्साहक एजेंसी के लिए संसाधन जुटाने या बचाने के खिलाफ माना जाता है। जैसा कि एस.जी.एस.वाई, स्वशक्ति और ड्वाक्रा के मामले में स्पष्ट था, सिर्फ इतने ही संसाधनों का निवेश किया जा रहा है जिनके आधार पर यह सुनिश्चित किया जा सके कि समूह कम–से–कम बचत और ऋण लेने–देने के स्तर तक पहुंच जाए। स्वयं सहायता समूहों के गठन और प्रोत्साहन की प्रकिया बहुत तेज़ गति से चलायी जा रही है। इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि सहायता की ज़रूरत कितनी है और उनकी समझ कैसी है। समूहों को एक वित्तीय निकाय की हैसियत ग्रहण करवाने के लिए मात्र तेज़ रफ्तार और समूहों का होना ज़रूरी है। उनका स्तर और रफ्तार ऐसी सघन शैक्षणिक प्रक्रियाओं के लिए उपयुक्त नहीं होती जिनके लिए नियोजन और समय की ज़रूरत होती है। इसकी बजाय महिलाएं अपनी ही गलतियों से सीखती हैं और समूह नेताओं के ओरिएंटेशन में न्यूनतम निवेश किया जाता है ताकि प्रोत्साहक संगठनों पर उनकी निर्भरता बनी रहे और वे स्वायत्त ढंग से काम करने की स्थिति में न पहुंचे। ज़्यादा–से–ज़्यादा समूहों को प्रोत्साहित करने का दबाव काफी हद तक संगठन के इन दबावों से पैदा होता है कि वे ज़्यादा–से–ज़्यादा आय अर्जित करें।

माइक्रो क्रेडिट ने स्वयंसेवी संस्थाओं को स्थायित्व प्रदान करने में मदद दी है। स्वयंसेवी संस्थाओं के माध्यम से वितरित किए जाने वाले ऋण में सेवा शुल्क के समावेश से यह सुनिश्चित किया जाता है कि संस्थाएं इस कार्य को एक व्यावहारिक और लाभदायक विकल्प के रूप में गंभीरता से लें। यह एक ऐसा संदर्भ है जिसमें फंडिंग एजेंसियां स्वयंसेवी संस्थाओं को अधिक–से–अधिक टिकाऊपन की ओर बढ़ने के लिए उकसाती हैं। इस रुझान से बड़ा मुद्दा यह उठता है कि गरीबों, हाशियाई समुदायों के बीच काम करने वाली स्वयंसेवी संस्थाओं को अपनी रणनीतियों और पद्धतियों में टिकाऊपन की आवश्यकता का समावेश करना चाहिए या नहीं। टिकाऊपन के तर्क के कारण ज़रूरी हो जाने वाले बदलाव हमेशा गरीबों के हित में भी होंगे इस बारे में विश्वास से कुछ नहीं कहा जा सकता।

अकसर ऐसा होता है कि हस्तक्षेपों के स्तर में इज़ाफे को उन सहायक प्रक्रियाओं के ऊपर प्राथमिकता दी जाती है जिन्हें समूहों के स्तर पर चलाया जाना चाहिए। बनाए गए समूहों की संख्या जितनी ज़्यादा होगी, स्वयंसेवी संस्थाओं को सरकारी कार्यक्रमों या फंडिंग एजेंसियों से उतने ही ज़्यादा संसाधन मिलेंगे। स्वयं सहायता समूहों को शुरू करने और मदद देने में स्वयंसेवी संस्थाओं को जो लागत वहन करनी पड़ती है वह समूहों के वित्तीय लेन–देन की मात्र और स्तर बढ़ने के साथ घटने लगती है। गुजरात में स्वशक्ति कार्यक्रम से जुड़ी स्वयंसेवी संस्थाओं के लोग अपने प्रयासों की उपादेयता साबित करने के लिए लेन–देन की मात्र और प्रसार के आंकड़ों का हवाला देने का लालच नहीं छोड़ पाते। बैंक प्रतिनिधि भी बड़े कार्यक्रमों द्वारा प्रोत्साहित किए जा रहे समूहों को कर्ज़ा देने के प्रति ज़्यादा इच्छुक रहते हैं क्योंकि ऐसे कार्यक्रमों में कर्ज़ वापसी निश्चित होती है।

एस.जी.एस.वाई. समूहों को मिले ऋण की मात्रा में गिरावट आयी है क्योंकि समूहों को सुचारु रूप से चलाने के लिए आवश्यक इनपुट्स के अभाव में कर्ज़ों के इस्तेमाल की क्षमता नहीं बनी है।

सरकार को होने वाले फायदे

अनुदानों तक पहुंच

अगले पन्ने पर दी गयी टेबल से पता चलता है कि गुजरात में एस.जी.एस.वाई. समूहों की संख्या 2001 और 2003 के बीच 9,635 से बढ़कर 88,817 तक जा पहुंची (साबरकांठा ज़िले में यह संख्या 1,136 से बढ़कर 5,921 तक पहुंच गयी थी)। कार्यक्रम को इतनी तेज़ी से इसलिए फैलाया गया क्योंकि राज्य सरकार ने 1,00,000 समूह बनाने का लक्ष्य तय किया हुआ था। लेकिन समूहों को मिलने वाली ऋण सहायता की मात्रा में कमी आयी है। समूहों को सही ढंग से काम–काज चलाने के लिए ज़रूरी इनपुट्स नहीं मिले हैं जिसके कारण वे ऋण लेने की सीमित क्षमता ही हासिल कर पाए हैं। 2004 में तो समूहों को और भी कम कर्ज़े दिए गए। इससे संकेत मिलता है कि बैंक इन समूहों को पहले से कम कर्ज़ा दे रहे हैं। ज़िला स्तरीय अफसरों ने बताया कि पूरे राज्य में बैंक अधिकारी समूहों को कर्ज़ा देने का विरोध कर रहे हैं हालांकि कर्ज़ा देना उनका दायित्व है। बैंक अधिकारियों का कहना है कि जब तक सरकारी कार्यक्रमों में जारी किए गए पिछले कर्ज़े वापस नहीं आ जाएंगे तब तक वे नए कर्ज़े नहीं देंगे। राज्य सरकार ने बैंकों की इस सोच का समर्थन किया है। बल्कि सरकार इन समूहों को इस बात के लिए प्रोत्साहित कर रही है कि वे बकाया कर्ज़ों की वसूली में मदद करें।

हमने पाया कि एस.जी.एस.वाई. के तहत राज्य सरकारों को स्वयं सहायता समूह बनाने के लिए केंद्र सरकार से संसाधन पाने का आसान मौका मिल जाता है। सहायता लेने के बाद बहुत सारे स्वयं सहायता समूहों को अव्यावहारिक घोषित कर दिया जाता है। एस.जी.एस.वाई. कार्यक्रम के लिए अनुदान की व्यवस्था केंद्र और राज्य सरकार की तरफ से 75:25 के अनुपात में की जाती है। राज्य सरकार को केंद्र सरकार से मिलने वाला अनुदान तीन किस्तों में मिलता है। पहली किस्त समूह निर्माण के समय, दूसरी किस्त समूह की ऋण योग्यता के आकलन के समय (जब समूह को बैंक के साथ संपर्क विकसित करने के लिए क्षमता विकास इनपुट्स की पहली खेप दी जाती है) और तीसरी उस समय दी जाती है जब समूह–ऋण के लिए सब्सिडी को मंजूरी मिल जाती है।

गुजरात में हमने राज्य स्तर के जिन एस.जी.एस.वाई. अधिकारियों से बात की वे इस योजना से लाभ उठाने के लिए सरकार द्वारा अपनायी गयी रणनीति के बारे में स्पष्ट थे। पहले चरण में ही केंद्र सरकार से भारी संसाधन हासिल कर लेने के लिए राज्य सरकार ने पूरे राज्य में स्वयं सहायता समूहों के गठन के लिए बहुत सारी स्वयंसेवी संस्थाओं को काम पर लगा दिया था। स्वयंसेवी संस्थाओं को प्रति समूह के हिसाब से भुगतान किया जाता था। लेकिन इस बात की संभावना बहुत कम थी कि ऐसे समूह शुरुआती अवधि के बाद टिके रह पाएंगे क्योंकि राज्य स्तरीय अधिकारियों की तरफ से उन्हें कोई खास मदद नहीं दी जा रही थी। स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा समूह बना दिए जाने के बाद उन समूहों को चलाने की ज़िम्मेदारी राज्य सरकार के विभागों की थी। इन विभागीय प्रतिनिधियों (ग्राम सेवक) से अपेक्षा की जाती थी कि वे हर क्लस्टर में 10–12 समूहों को सहायता देंगे। ये ग्राम सेवक मुख्य रूप से कृषि विभाग से लिए गए थे और उनकी भूमिकाओं में ग्रामीण विकास संबंधी कार्यभारों को हाल ही में शामिल किया गया था। विकास अधिकारियों और ग्राम सेवकों की तालुका स्तरीय एक बैठक में पता चला कि औसत के स्तर पर ज्यादातर ग्राम सेवक अपने–अपने क्लस्टर में एक–दो समूहों को ही टिकाने में कामयाब हुए हैं। एक क्लस्टर में जीवित रह पाने वाले समूहों की अधिकतम संख्या 4 पायी गयी।

एस.एच.जी. परिघटना से राज्य सरकारों को ऐसे वित्तीय संसाधनों पर कब्जा करने का अच्छा मौका मिल गया है जिन्हें तमाम उम्मीदों के बावजूद स्वयं सहायता समूहों को उपलब्ध नहीं कराया जाता है। हमारे अध्ययन के लिहाज़ से यह दर्शाना महत्त्वपूर्ण है कि स्वयं सहायता समूहों के कारण सरकार को कितना फायदा हो रहा है क्योंकि इन अतिरिक्त वित्तीय संसाधनों को इकट्ठा कर लेने की चाह अकसर स्वयं सहायता समूहों के प्रभावी क्रियान्वयन और जीवित रहने की क्षमता को सुनिश्चित करने के लिए शैक्षणिक अवसरों या क्षमता निर्माण इनपुट्स में किसी भी तरह के निवेश के अभाव के रूप में सामने आती है।

ज़िम्मेदारियों से छुटकारा पाना

सरकार का दावा है कि माइक्रो क्रेडिट से औरतों का सशक्तीकरण और गरीबी का खात्मा हो रहा है। इन दावों के सहारे सरकार को महिला सशक्तीकरण और गरीबी उन्मूलन के लिए अन्य कार्यक्रमों को लागू करने या नीतिगत स्तर पर बदलाव लाने के लिए उतने उत्तरदायित्व की ज़रूरत महसूस नहीं होती। जिस संदर्भ में प्रोत्साहक एजेंसियां काम कर रही हैं, उससे पता चलता है कि ऐसे अधिकारों का व्यापक उल्लंघन

हो रहा है जिन पर सरकार को ध्यान देना चाहिए था। क्रियान्वित किए जाने वाले बहुत सारे उपायों में से कुछ यह थे – न्यूनतम या समान वेतन से संबंधित कानूनों को सख्ती से लागू किया जाए; सार्वजनिक वितरण व्यवस्था के सही क्रियान्वयन के ज़रिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जाए और टिकाऊ साक्षरता एवं सतत् शिक्षा कार्यक्रम चलाए जाएं।

माइक्रो क्रेडिट की आड़ में सरकार को अपनी प्रतिबद्धताओं के लिए अपर्याप्त निवेश को सही ठहराने का मौका मिल जाता है जबकि गरीब औरतें अपने संसाधनों की बचत करती रहती हैं जिस पर यह माइक्रो क्रेडिट परिघटना फल–फूल रही है। इससे सरकार को यह दिखाने का मौका मिल जाता है कि वह विकास कर रही है जबकि विकास का सारा बोझ गरीबों के ऊपर चला जाता है जो अपने संसाधनों के सहारे इस काम को अंजाम दे रहे हैं।

गरीबों की वृहत्तर ज़रूरतों को पूरा न करने और खुद एस.एच.जी. कार्यक्रमों के भीतर कम निवेश के कारण सरकार को जो बचत होती है उसके अलावा इन समूहों के रूप में सरकार को बहुत सारे नीतिगत और कार्यक्रम संबंधी लक्ष्यों को हासिल करने के लिए असंख्य निःशुल्क मज़दूर भी मिल जाते हैं।

स्वयं सहायता समूहों को किस–किस तरह के कामों में इस्तेमाल किया जा रहा है, इस बात को गुजरात की स्थिति से समझा जा रहा है[3]:

- स्वास्थ्य संबंधी संदेशों का प्रचार करने और परिवार नियोजन लक्ष्यों को हासिल करने के लिए एस.एच.जी. प्रमुख साधन बन गए हैं। परिवार नियोजन साधनों को अपनाने से महिलाओं और उनके परिवारों को सरकारी कार्यक्रमों में प्राथमिकता के आधार पर लाभ मिलता है (तिंतोई में एस.जी.एस.वाई. समूह की महिलाओं को लगता है कि उन्हें इसीलिए कर्ज़े नहीं मिल रहे हैं क्योंकि उन्होंने परिवार नियोजन मानकों को अच्छी तरह नहीं अपनाया था)।
- महिला एवं बाल विकास विभाग ने आई.सी.डी.एस. कार्यक्रम के मातृ समूहों, स्वयंसिद्ध और अन्य योजनाओं में हिस्सेदारी के लिए महिलाओं के स्वयं सहायता समूहों को चुना है। स्थानीय स्तर के महिला एवं बाल विकास कार्यकर्ताओं का एक लक्ष्य यह था कि वे सेवाओं की डिलीवरी और मॉनिटरिंग में महिलाओं की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए स्वयं सहायता समूहों का गठन करें।
- शिक्षा विभाग ने लड़कियों के दाखिले के लिए

गुजरात में एस.जी.एस.वाई. समूहः 2001–2004

साल	एस.एच.जी.		ऋण		सब्सिडी	
	गुजरात	साबरकांठा	गुजरात	साबरकांठा	गुजरात	साबरकांठा
2001	9635	1136	784.20	131.13	510.12	76.66
2003	88817	5921	693.89	86.79	413.70	54.28
2004	90161	5928	320.33	67.05	198.92	44.61

स्रोत : आयुक्त कार्यालय, ग्रामीण विकास विभाग, अगस्त 2004

समुदाय को गोलबन्द करने तथा शिक्षा समिति के सदस्यों का चुनाव करने के लिए स्वयं सहायता समूहों को चुना है। शिक्षा समितियों में महिलाओं की भूमिका प्रायः रूढ़ जेंडर छवियों पर आधारित होती है। सायरा ब्लॉक में एक गांव की महिलाओं ने बताया कि उन्हें शिक्षा समिति की सदस्य तो बना लिया गया है उनकी ज़िम्मेदारी यही है कि वे शिक्षा विभाग के अधिकारियों के आने से पहले स्कूल को साफ करें। अधिकारियों के साथ होने वाली बैठकों में उन्हें आमंत्रित नहीं किया जाता है। एक सदस्या ने कहा कि "औरतें बैठकों में नहीं जातीं। हमें तो बस साफ–सफाई की ज़िम्मेदारी सौंप दी गयी थी। आदमी लोग अफसरों के साथ बैठकर चाय पीते हुए बात कर रहे थे।"

- ग्रामीण विकास विभाग के जलागम विकास (वॉटर शेड) कार्यक्रम के श्रम कार्यों में महिलाओं की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए महिला एस. एच.जी. बनाने का लक्ष्य तय किया गया है। सिंचाई विभाग महिलाओं के स्वयं सहायता समूहों को ट्रेडल पम्प सैट्स की मार्केटिंग का काम सौंपना चाहता है।
- पानी एवं बिजली के बिल आदि की वसूली के लिए भी समूहों का इस्तेमाल किया जा रहा है। उन्हें डूब चुके कर्ज़ों की वसूली के लिए भी इस्तेमाल किया जाता है। एस.जी.एस.वाई. में यही दिखायी दिया।
- राज्य स्तर पर जिन अफसरों से बात की गयी उन्होंने फौरन ऐसी 16 अधिसूचनाएं गिना दीं जिनमें सरकारी कार्यक्रमों में स्वयं सहायता समूहों पर प्राथमिकता के आधार पर फोकस की बात कही गयी थी।

आंध्र प्रदेश में हमने पाया कि कई बार एस.एच.जी. सदस्याओं को सरकार ऐसे कामों के लिए भी इस्तेमाल करती है जो उनके लिए हानिकारक होते हैं। नीचे हमने पश्चिमी गोदावरी ज़िले में ड्वाक्रा से जुड़े एक एस.एच.जी. की महिलाओं के साथ हुए साक्षात्कार के अंश दिए हैं :

साक्षात्कारकर्ताः आपने कहा था कि आप लोग परिवार नियोजन ऑपरेशनों और नेत्र शिविर आदि के लिए लोगों को भेजती हैं। आपने ये फैसले खुद लिए थे या किसी ने आपको सलाह दी थी?

सदस्याः एम.डी.ओ. (ग्रामीण विकास विभाग में तैनात मंडल विकास अधिकारी) बुलाकर हमसे पूछता है कि क्या गांव में ऐसा कोई है जिसे यह ऑपरेशन कराना है और हम किसी न किसी को ढूंढ़ लाती हैं। वह हमारे पास संदेश भिजवा देता है कि हमें कितने लोग ढूंढ़ने हैं। कई बार वह नेता के घर भी आता है।

साक्षात्कारकर्ताः आप लोगों से क्या कहती हैं? क्या आप ऑपरेशन के कारण होने वाली समस्याओं के बारे में भी बता देती हैं? क्या बताती हैं आप उन्हें?

सदस्याः हम उन्हें बताती हैं कि एक–दो से ज़्यादा बच्चे पैदा करना बहुत मुश्किल काम है...। लोग यह

सरकारी सेवाओं के क्रियान्वयन या निगरानी में एस.एच.जी. मुफ्त श्रम उपलब्ध कराते हैं लेकिन निर्णय प्रक्रिया में उनका कोई दखल नहीं होता। इस प्रकार सरकार उन भूमिकाओं की ज़िम्मेदारी से बच जाती है जो उसे उठानी चाहिए। औरतें सरकारी सेवाओं में सब्सिडी बन गयी हैं।

सोचकर चिंता में पड़ जाते हैं कि औरतों को तमाम तरह की परेशानियां हो सकती हैं (नसबंदी के कारण) ...इसलिए फिर हम कुछ महिलाओं का 'बड़ा ऑपरेशन' (हिस्टेरेक्टॉमी–जिसमें बच्च्दानी को निकाल दिया जाता है) करवा देते हैं।

साक्षात्कारकर्ताः क्या यह बहुत महंगा नहीं पड़ता?

सदस्याः हां महंगा तो है। सरकारी अस्पतालों में भी इस पर 1500 रुपए खर्चा होता है। ऑपरेशन (नसबंदी) के बाद बहुत सारी औरतों को दिक्कत होती है और वे बीमार पड़ जाती हैं। तब उन्हें बड़ा ऑपरेशन (हिस्टेरक्टॉमी) करवाना पड़ता है।

सरकार ने स्वयं सहायता समूहों को जनसंख्या नियंत्रण एजेंडा के लिए महिलाओं को गोलबंद करने के निर्देश तो जारी कर दिए हैं लेकिन उसने यह ज़िम्मेदारी लेना ज़रूरी नहीं समझा कि नसबंदी के कारण औरतों की सेहत को नुकसान न पहुंचे। इसका नतीज़ा यह होता है कि औरतों को हिस्टेरेक्टॉमी जैसा जटिल और महंगा ऑपरेशन करवाना पड़ता है। लगता है कि गर्भनिरोध की सुरक्षित पद्धतियां और साधन मुहैया कराने के बारे में सरकार की ज़िम्मेदारी को लेकर समूह के भीतर कोई चर्चा नहीं हुई थी। इसी तरह के हिस्टेरेक्टॉमी ऑपरेशनों के बारे में पीस से जुड़ी ग्राम स्तरीय फेडरेशन की सदस्याओं ने भी बताया था।

स्वयं सहायता समूहों को इन विभिन्न तरीकों से अपने कामों में शामिल करने से राज्य सरकार को यह दिखाने का बहाना मिल जाता है कि वह महिलाओं को विकास की प्रक्रिया में शामिल करने के लिए कितने ज़ोर–शोर से काम कर रही है। हालांकि यह सक्रियता एक सकारात्मक रुझान भी हो सकती है लेकिन इसको जन्म देने वाले कारण ऐसे हैं कि यह रुझान अनिवार्य रूप से महिलाओं के हित में दिखायी नहीं देता। जैसा जनसंख्या नियंत्रण प्रयासों में दिखायी देता है, कई बार तो यह हिस्सेदारी औरतों के लिए हानिकारक भी होती है। साक्ष्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वयं सहायता समूहों को सरकारी योजनाओं को लागू करने या सरकारी सेवाओं पर निगरानी के लिए निःशुल्क श्रम करने के बारे में स्पष्ट निर्देश जारी किए गए हैं। यह चिंता की बात है कि इसके बावजूद नियोजन या निर्णय प्रक्रिया में महिलाओं को कोई जगह नहीं दी जा रही है। एक बार फिर यहां भी घरेलू दायरे में महिलाओं द्वारा किए जाने वाले अदृश्य श्रम को ही विस्तार प्रदान करते हुए रूढ़ छवियों के अनुसार भूमिकाएं निभाने की अपेक्षा की जा रही है। सशक्तीकरण की दिशा में महिलाओं की मूलभूत ज़रूरतों को संबोधित करने की बात तो छोड़ ही दीजिए, सरकार महिलाओं के बारे में रूढ़ विचारों और धारणाओं को भी न केवल इस्तेमाल करती है बल्कि पुष्ट करती है। इस प्रकार सरकार को ऐसी भूमिकाएं निभाने से भी मुक्ति मिल जाती है जिनकी ज़िम्मेदारी उसी के ऊपर है और जिनमें औरतों की हिस्सेदारी से वस्तुतः सरकार को ही सब्सिडी मिल जाती है।

स्वयं सहायता समूह वोट बैंक के रूप में सरकार को स्वयं सहायता समूहों से जो भौतिक बचत होती है उसके अलावा अब हम एक और उल्लेखनीय लाभ पर विचार करेंगे। यह लाभ स्वयं सहायता समूहों को राजनीतिक दलों द्वारा वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल करने पर सामने आता है। अध्ययन के दौरान जिन समूहों से बात की गयी, उन सभी ने बताया कि राजनीतिक दल उन्हें अपना वोट बैंक मानते हैं। उन्होंने बताया कि राजनेता पंचायती राज, विधानसभा व लोकसभा के चुनावों के लिए कई बार उनके पास आ चुके हैं।

आंध्र प्रदेश में स्वयं सहायता समूहों का इतिहास ज़्यादा लंबा और प्रसार ज़्यादा विस्तृत रहा है। इसको

सभी समूहों को इस बात का अहसास था कि राजनीतिक दल उन्हें अपना वोट बैंक मानते हैं। राजनेताओं ने पंचायती राज चुनावों से लेकर राष्ट्रीय स्तर के चुनावों के लिए उन्हें अपनी ओर खींचने का प्रयास किया है।

देखते हुए यहां महिलाओं के समर्थन की चाह भी ज़्यादा तीखी दिखायी देती है। यहां दलगत राजनीतिकरण ज़्यादा था, एस.एच.जी. और फेडरेशन जैसे मंच राजनीतिक दलों से जुड़े हुए थे। पंचायत, मंडल और ज़िला परिषद् जैसे स्वशासन संस्थानों का राजनीतिक दलों से संबद्ध होना अपवाद नहीं बल्कि एक सामान्य बात थी।

वेलुगू कार्यकर्त्ताओं ने बताया कि राज्य विधान सभा चुनावों से पूर्व किस तरह उन्हें समूहों को ज़्यादा–से–ज़्यादा कर्ज़ा बांटने के लिए कहा जा रहा था। चुनावों को देखते हुए इस गतिविधि को प्राथमिकता दी जा रही थी और संबंधित अवधि के लिए निर्धारित अन्य गतिविधियों (जिनमें अध्ययन के दूसरे चरण की हमारी यात्रा भी शामिल थी) को हाशिए पर ढकेला जा रहा था। गंगावरम में सक्रिय वेलुगू के स्थानीय कार्यकर्त्ताओं ने बताया कि उन्हें अपने मंडल में 7 लाख रुपए से ज़्यादा के कर्ज़े जारी करने का ज़िम्मा सौंपा गया है। उन्होंने यह भी बताया कि उन्हें स्वयं सहायता समूहों में सत्ताधारी पार्टी के हित में माहौल बनाने के लिए कहा गया है जिससे कार्यक्रम चालू रहे। हमारे साथ बात करते हुए औरतों ने इस बात पर खूब ठहाके लगाए कि चुनावों के दौरान उनकी वोटों के लिए किस तरह उनकी मनुहार की जाती है या किस तरह राजनीतिक पार्टियों के लोग अपने–अपने उम्मीदवारों का प्रचार करवाने के लिए उनके पास आते हैं। कुछ महिलाओं को तो चुनाव में खड़े होने के लिए भी कहा गया था। किस उम्मीदवार को किस आधार पर आंकना चाहिए या उम्मीदवारों के सामने किस तरह अपना एजेंडा पेश किया जाए, इस बारे में समूह के भीतर कोई बात नहीं हुई थी।

पीस द्वारा प्रोत्साहित एस.एच.जी. से जुड़े एक बुककीपर ने बताया कि चुनाव अभियान के दौरान बहुत सारे लाभों का आश्वासन दिया गया था जिसकी वजह से ज़्यादातर औरतें ड्वाक्रा कार्यक्रम से जुड़ गयी थीं। तेलगू देशम पार्टी (टी.डी.पी.) ने प्रत्येक समूह को 500 रु. और कांग्रेस ने प्रत्येक समूह को 1,000 रु. देने का वादा किया था। उन्होंने वोटों के बदले कम ब्याज पर कर्ज़ा देने का भी वादा किया। पिछड़ी जाति और अनुसूचित जाति समुदायों की महिलाओं को शराब देने का वादा भी किया गया था। हद तो यह थी कि अगर महिलाएं इन प्रस्तावों को नामंजूर करतीं तो उन्हें हिंसक परिणामों की धमकी भी दी जा रही थी।

बात यह नहीं है कि महिलाओं के पास एजेंसी नहीं होती। अध्ययन से मिले उदाहरण से भी ज़्यादा सकते में डालने वाली भूमिका तो राज्य भर में ड्वाक्रा से जुड़ी महिलाओं ने चंद्रबाबू नायडू सरकार को सत्ता से हटाने में निभायी। सरकार ने उनको फुसलाने का कोई रास्ता नहीं छोड़ा था पर वे झांसे में नहीं आयीं। चंद्रबाबू नायडू इन महिलाओं के वोट नहीं पा सके, यह इस बात का स्पष्ट संकेत है कि महिलाओं को झूठे वादों के सहारे हमेशा बेवकूफ नहीं बनाया जा सकता।

पंचायतों द्वारा स्वयं सहायता समूहों का राजनीतिक इस्तेमाल

हमने पाया कि गांवों में सरपंच स्वयं सहायता समूहों को अपनी राजनीतिक ताकत बढ़ाने का साधन मानते

हैं। गुजरात में एस.जी.एस.वाई. कार्यक्रम को देखने पर पता चला कि स्थानीय स्तर के सरकारी कार्यकर्त्ताओं की सांठ–गांठ से सरपंच ऐसे समूहों को ही फायदा दिलाते हैं जो उनको समर्थन देने पर राज़ी हो जाते हैं (भले ही समूहों को ये सारे लाभ पाने का पूरा अधिकार हो लेकिन बैंकों, सरकार और प्रधान आदि स्थानीय राजनीतिक ताकतों के निहित स्वार्थों के चलते इसमें तमाम विकृतियां पैदा हो गयी हैं)। यह धांधली इस वजह से और मज़बूत हुई है कि ज़्यादातर समूहों को ग्राम सेवकों ने ही गठित किया था। इसलिए यह तय करने में उसकी काफी चलती है कि किसे समूह में शामिल किया जाएगा और किसको नहीं। सरपंच यह सुनिश्चित करने के लिए हर संभव दखल देता है कि जो समूह उसकी राजनीतिक लॉबी का हिस्सा होंगे उन्हीं को एस.जी. एस.वाई. समूह के रूप में मान्यता दी जाएगी। ऐसे समूहों की नेताओं को ग्राम सेवक पूरी मदद देता है और आवास योजना जैसे फायदे सबसे पहले उन्हीं को मिलते हैं। यहां तक कि महिलाओं से राजनीतिक पार्टियों में शामिल होने और उनकी तरफ से चुनाव लड़ने के भी प्रस्ताव दिए गए हैं।

गांव में ऐसे दूसरे एस.एच.जी. भी हैं जिन्हें यह मान्यता नहीं मिली क्योंकि वे किसी और राजनीतिक गुट के नज़दीक माने जाते हैं। इस प्रकार ग्राम सेवक और सरपंच कुछ खास समूहों को मदद देते हैं और बाकी समूहों की उपेक्षा करते हैं भले ही उनमें गरीबी का स्तर कितना भी क्यों न हो। ग्राम सेवक और तालुका विकास अधिकारी का कहना था कि सरपंच और मौजूदा राजनीतिक लॉबी की सिफारिशों के कारण कई समूहों को लाभ पहुंचाने के लिए न्यूनतम लाभान्वित मानकों को भी ताक पर रख दिया जाता है।

संघर्ष का अराजनीतिकरण

गरीब महिलाओं की समस्याओं के समाधान के लिए ऋण तक पहुंच पर जितना ज़्यादा ध्यान दिया जा रहा है उससे कई मूलभूत संरचनागत कारणों से ध्यान हटाने में भी मदद मिलती है। उदाहरण के लिए, संसाधनों तक पहुंच, पहुंच में असमानता, जेंडर तथा जातीय असमानताओं और बेरोज़गारी या अल्परोज़गारी जैसे कारकों को अनदेखा कर दिया जाता है।

अध्ययन के दौरान हमने आंध्र प्रदेश में महिला अधिकार कार्यकर्त्ताओं से बातचीत की थी। उन्होंने हमारा ध्यान इस बात की ओर आकर्षित किया कि शराब विरोधी आंदोलन की सफलता पर सरकार की क्या प्रतिक्रिया थी। उस समय सरकार 'रचनात्मक प्रोग्रामिंग'[3] के ज़रिए गरीबी और सामाजिक उत्पीड़न का उन्मूलन करने के लिए माइक्रो क्रेडिट के इर्द–गिर्द स्वयं सहायता समूहों के गठन पर खूब ज़ोर दे रही थी। राज्य प्रशासन महिलाओं की ऊर्जाओं को ऐसे गैर–टकरावपूर्ण विकास कार्यों की दिशा में 'मोड़ना' चाहता था जिनसे न तो सरकार को और न ही उसके हितों को किसी तरह की ठेस पहुंचती है।

नारीवादी संगठनों ने इस बात पर भी चिंता जतायी कि भारी हिंसा और उत्पीड़न, खास तौर से दलित लड़कियों व औरतों के साथ हिंसा के बावजूद महिलाओं की राजनीतिक ऊर्जा को सरकार ने बचत और ऋण गतिविधियों में समेट लिया है।[4] उनका मानना था की एस.एच.जी. पद्धति को एक ऋण आधारित पद्धति में तब्दील कर दिया गया है जिसमें 'निर्माण प्रक्रियाओं' को वृद्धि दर आधारित विकास की सरकारी विचारधारा के अनुरूप एक विकृत छवि में बांधकर पेश किया जा रहा है। पैसे के ज़रिए सुरक्षा का एक झूठा भाव पैदा किया जा रहा है जबकि इससे सरकार और अन्य पितृसत्तात्मक संस्थाओं के बारे में

[3] नब्बे के दशक की शुरुआत में आंध्र प्रदेश के एक ज़िले में शराब विरोधी रैली में ज़िला कलेक्टर द्वारा दिया गया बयान।

[4] 'आंध्र प्रदेश और गुजरात में महिला संगठनों के साथ बैठकों का आयोजन किया गया। उन्हें अध्ययन के शुरुआती नतीजों से परिचित कराया गया ताकि एस.एच.जी. परिघटना के क्षेत्र में काम करने वालों के नज़रिए और अनुभवों को समझा जा सके।

औरतें जो आवाज़ उठा रही हैं उसको नष्ट किया जा रहा है।

हमने जिन कार्यक्रमों का अध्ययन किया उनकी फील्ड विज़िट के दौरान एक चिंता एस.एच.जी. कार्यक्रम लागू करने वाली स्वयंसेवी संस्थाओं के न्याय और समता एजेंडा पर बैंक संपर्कों के कारण पड़ रहे प्रभावों से संबंधित थी। पीस से जुड़े एक वरिष्ठ पदाधिकारी ने बताया कि किस तरह पहले उनका संगठन महिलाओं के अधिकारों के लिए आवाज़ उठाने के वास्ते उन्हें संगठित किया करता था। अब हालत यह है कि संगठन "औरतों को सिर्फ मदद दे सकता है"। मिसाल के तौर पर, पहले संगठन पानी के सवाल पर औरतों को एकजुट करके धरने दिया करता था। इस पर सरपंचों ने मंडल विकास अधिकारी (एम.डी.ओ.) के पास शिकायत भेज दी कि पीस के लोग जनता को गुमराह कर रहे हैं। इसके बाद एम.डी.ओ. ने पीस के लोगों को बुलाकर उनकी गतिविधियों के बारे में पूछताछ की। पिछली फील्ड विज़िट के दौरान पीस के प्रतिनिधि बैंकों से संपर्क स्थापित करने की कोशिश कर रहे थे। अपनी पुरानी छवि के आधार पर वे इस बारे में सशंकित थे कि स्थानीय सरकारी अधिकारी और बैंक उनके साथ किस तरह पेश आएंगे। फंडिंग एजेंसी द्वारा चलाए जा रहे कैश कार्यक्रम के वरिष्ठ अधिकारी ने इस बात की तरफ ध्यान आकर्षित कराया कि स्वयंसेवी संस्थाओं को बैंकों से ऋण हासिल करने के लिए अपनी 'सरकारी विरोधी' छवि बदलनी होगी। बैंक लिंकेज तथा वित्तीय कार्यकुशलता पर बढ़ते फोकस के असर को पीस के पदाधिकारी ने इन शब्दों में व्यक्त किया, "अब हमारे पास भी समय नहीं है। हम भला कितनी दूर तक जा सकते हैं?"

अध्ययन के अन्य हिस्सों में इस बात के पर्याप्त साक्ष्य थे कि जब सरकार या फंडिंग एजेंसियां भी

गरीब महिलाओं के सामने मौजूद सारी समस्याओं के लिए ऋण को समाधान के रूप में पेश करने से संसाधनों तक पहुंच, लैंगिक और जातीय असमानताओं और रोज़गार जैसे निहित संरचनागत कारकों से ध्यान बंटाने में मदद मिलती है।

एजेंडा का अराजनीतिकरण करने के लिए बहुत ज़्यादा प्रयास नहीं कर रही हैं, तब भी न्याय के मुद्दों के साथ या तो जुड़ाव का अभाव दिखायी देता है या पहले के मुकाबले में यह जुड़ाव कम हो गया है। जैसा कि ऊपर ज़िक्र किया जा चुका है कि वित्तीय कार्यकुशलता पर फोकस के कारण स्वयंसेवी संस्थाएं महिलाओं को ऐसे मुद्दे उठाने योग्य बनाने के लिए समय और उर्जा नहीं दे पाते। गरीबी और सशक्तीकरण के बदलते विमर्श के स्तर पर हमने देखा कि महिलाएं व एस.एच.जी. कार्यक्रम से जुड़े कार्यकर्त्ता, दोनों ही मानते हैं कि कुछ सकारात्मक बदलाव आए हैं। इस बदलते विमर्श में हमने यह भी देखा है कि 'सामाजिक मुद्दों' का अर्थ बदलता जा रहा है। इसमें टीकाकरण और साफ–सफाई जैसी सुरक्षित चिंताओं का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। कहा जा सकता है कि क्योंकि ये बदलाव सत्ता संबंधों और भौतिक परिस्थितियों में कोई बुनियादी बदलाव नहीं ला रहे हैं इसलिए यह 'भाव', कि कुछ सुधार आ रहा है, महिलाओं और उनको मदद देने वाले कर्ता–धर्ताओं के स्तर पर किसी सार्थक बदलाव की परिस्थितियों को कमज़ोर कर देता है।

बैंकों को होने वाले लाभ

अध्ययन में इस बात के असंख्य साक्ष्य मिले कि सरकार बाज़ार तथा अन्य ताकतों के साथ संबंध

स्थापित करने की महिलाओं की क्षमता में निवेश नहीं कर रही है। यह भी स्पष्ट है कि सरकार विकास के एक नवउदारवादी मॉडल पर ज़ोर दे रही है और स्वास्थ्य व शिक्षा जैसे केंद्रीय विकास क्षेत्रों में अपनी घटती भूमिका को सही ठहरा रही है। उदारीकरण की नीतियों ने विकास के क्षेत्र में नए औपचारिक संस्थागत निकायों और बाज़ार द्वारा संचालित प्रक्रियाओं को जगह दी है। माइक्रो क्रेडिट आधारित मॉडल में सरकार को उदारीकरण के मार्ग पर इन दोनों उद्देश्यों को एक–दूसरे में पिरो देने का आकर्षक विकल्प मिल गया है। सरकार बाज़ार को बैंकिंग क्षेत्र के लिए खोल रही है। बैंकों को ग्रामीण बैंकिंग अवसर उपलब्ध कराए जा रहे हैं और सरकार की विकास रणनीतियों से जुड़ा बाज़ार आधारित मॉडल अपनाया जा रहा है। इससे ऐसा दिखायी देता है मानो सरकार विकास संबंधी संसाधनों तक लोगों की पहुंच मुहैया कराने का प्रयास कर रही है। इस प्रक्रिया में सरकार उन वित्तीय संस्थानों के साथ मिली हुई है जो अपने लाभ और टिकाऊपन के लिए ऋण को बड़े पैमाने पर ले जाना चाहती हैं।

माइक्रो क्रेडिट आधारित एस.एच.जी. निजी और सरकारी बैंकों के लिए आकर्षक सिद्ध हुए हैं। एक तरफ तो यह रणनीति वित्तीय संस्थानों को प्राथमिकता क्षेत्र में ऋण लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद देती है और दूसरी तरफ इससे बैंकों को अपने ग्राहकों की संख्या बढ़ाने का मौका मिलता है। इस प्रयोग में कर्ज़ वापसी का आश्वासन भी अन्य विकल्पों से कहीं ज़्यादा रहा है। एस.एच.जी. आधारित ऋण प्रक्रिया इन संस्थानों के लिए हर सूरत में फायदे का सौदा है।

यद्यपि बैंकों को स्वयं सहायता समूहों के साथ अपने लेन–देन से ज़बर्दस्त मुनाफा हो रहा है और दूसरी तरफ सामाजिक हित में काम करने का दावा ठोंककर उन्हें एक सामाजिक छवि भी मिल रही है लेकिन वे समूहों के बीच और समूहों के भीतर ऋण पहुंच में भारी असमानता से कतई परेशान नहीं होते। उन्हें इस बात से भी रत्ती भर फर्क नहीं पड़ता कि ऋण से महिलाओं की आय में सुधार हो रहा है या नहीं। बैंकों और औपचारिक संस्थानों को इस बात की कतई परवाह नहीं है कि एस.एच.जी. कार्यक्रमों से महिलाओं को ऋण राशि का आयवर्द्धक गतिविधियों के लिए इस्तेमाल करने की क्षमता हासिल करने के लिए इनपुट्स मुहैया कराए जा रहे हैं या नहीं। मान्यता यह है कि संबंधित कार्यक्रम इस समस्या को खुद संबोधित कर लेंगे जिससे बैंकों को कोई लागत वहन नहीं करनी पड़ेगी। यह बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थानों द्वारा दिए जाने वाले ऋणों की उस स्वाभाविक प्रक्रिया के बिलकुल विपरीत है जिसमें परियोजनाओं को इस आधार पर ही मदद दी जाती है कि वे व्यावसायिक दृष्टि से लाभदायक हों।

अध्ययन से पता चलता है कि स्वयं सहायता समूहों को इस बारे में पता ही नहीं है कि वित्तीय संस्थानों से उन्हें किस तरह की गैर–वित्तीय सहायता

माइक्रो क्रेडिट आधारित मॉडल से सरकार को उदारीकरण की राह पर दोनों उद्देश्यों को एक–दूसरे में विलीन कर देने का मौका मिलता है। सरकार बैंकिंग क्षेत्र के लिए बाज़ार को खोल भी रही है और दूसरी तरफ विकास का बाज़ार आधारित मॉडल भी अपना रही है।

मिल सकती है। उनके पास यह जानकारी भी नहीं है कि उनके प्रयासों में मदद देने के लिए वित्तीय संस्थान कायदे–कानूनों में किस तरह का लचीलापन ला सकते हैं। स्थिति तब और खराब हो जाती है जब हम देखते हैं कि इस अध्ययन में शामिल की गयी प्रोत्साहक एजेंसियों में से भी ज़्यादातर को ऐसे वैकल्पिक वित्तीय और गैर–वित्तीय उत्पादों के बारे में पता नहीं था जो स्वयं सहायता समूहों के हित में हो सकते हैं।

बैंकों को होने वाला लाभ स्वयं सहायता समूहों पर बचत तक सीमित पहुंच और ऋण उपलब्धता के बारे में बैंकों द्वारा थोपी गयी भारी पाबन्दियों के बिलकुल विपरीत दिखायी देता है। औरतों ने भी यह बताया था कि ऋण की अर्ज़ियों की पैरवी करने में कितना पैसा और कितना समय लगाना पड़ता है। कार्यक्रम से मिलने वाली सहायता के अभाव के साथ–साथ महिलाओं ने इस बात का भी उल्लेख किया था कि बैंक मैनेजर ऋण आवेदनों पर मंजूरी में हो रहे विलंब के बारे में जानकारियां नहीं देते। एस. जी.एस.वाई. द्वारा प्रोत्साहित समूह की सदस्याओं ने उनके प्रति बैंककर्मियों के रवैए के बारे में भी बात की थी। जब ये महिलाएं अपने कर्ज़ के बारे में पता करने बैंक गयीं तो उनके प्रति वर्गीय और जातीय पूर्वाग्रह उभरकर सामने आ गए थे। महिलाओं ने ऐसे उदाहरण भी दिए जब उनके साथ गाली–गलौज या दुर्व्यवहार किया गया : "तुम लोग अनुसूचित जाति की हो। तुम्हारी ये हिम्मत कि हमसे काम के बारे में पूछोगी?" "कर्ज़ा हम पर छोड़ दो, तुम तो बस बचत की फिक्र करो।" जब महिलाएं अपने ऋण की स्वीकृति के बारे में पता करने गयीं तो बैंक की स्थानीय शाखा के अधिकारियों ने उनसे इसी अंदाज़ में बात की थी।

हालांकि बहुत सारे मामलों में महिलाओं को बैंकों के इरादों और भूमिकाओं को समझने के अवसर उपलब्ध नहीं कराए थे लेकिन उन्हें इस बात का पता था कि बैंक किसके हित में काम कर रहे हैं। एस.जी. एस.वाई. से जुड़ी एक एस.एच.जी. सदस्या ने कहा कि "बैंक कर्ज़ा देता है और भारी–भारी ब्याज लेता है। बैंक हमारा पैसा औरों को देकर इस पैसे से कमाई कर रहा है। लेकिन इसी पैसे को वे कर्ज़ पर हमें नहीं देते।" लेकिन कार्यक्रम की ओर से सहायता के अभाव में इन ताकतों को वे किसी भी तरह प्रभावित नहीं कर सकती थीं।

बंद हो चुके बैंकों के बारे में भी कई परेशान कर देने वाली जानकारियां सामने आयी हैं। जो बैंक बंद हो चुके हैं उनमें औरतों की बचत डूब चुकी है। कर्ज़े की उम्मीद में उन्होंने जो बचत जमा करवाई हुई थी उसकी अब उन्हें कोई आस नहीं है। सरकार ने इन औरतों को मुआवजा चुकाने के लिए कोई कदम नहीं उठाया है। सरकार को मालूम था कि नए एस.जी.एस. वाई. ऋण जारी करने के लिए बैंकों ने बकाया कर्ज़ों की वसूली की शर्त थोप दी है। लेकिन सरकार ने स्थिति से निपटने के लिए कोई कदम नहीं उठाया। बैंक बंद हो जाने पर भी महिलाओं के नुकसान की भरपाई करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया गया। इस बात से यही संकेत मिलता है कि सरकार और बैंक, दोनों बचत व ऋण के बारे में महिलाओं के अधिकारों का हनन कर रहे हैं।

जहां तक शिक्षा का सवाल है, यह आश्चर्य की बात नहीं है कि स्वयं सहायता समूहों के प्रति बैंकों की रूचि के अभाव के साथ–साथ खुद सरकार भी स्वयं सहायता समूहों की क्षमता में सुधार करके उन्हें इस योग्य नहीं बनाना चाहती कि वे बैंकों के साथ ज़्यादा समझ और आत्मविश्वास से मोलभाव कर सकें।

जैसा कि अध्याय एक में उल्लेख किया गया था, ये आयाम उस समय और चिंताजनक दिखायी देने

लगते हैं जब हम यह देखते हैं कि गरीबों की बचत मध्यवर्ग की तरह फालतू या बचे हुए पैसे से पैदा नहीं होती बल्कि गरीब अपनी ज़रूरतों और उपभोग में कटौती करके बचत करते हैं। ज़ाहिर है ऐसी बचत की अवसर लागत बहुत ऊंची होती है जिसका भार औरतों को झेलना पड़ता है।

कंपनियों को होने वाले फायदे

अध्ययन में इस बात का अलग से विश्लेषण नहीं किया गया था कि कंपनियां अपनी मार्केटिंग और आर्थिक लाभ के लिए स्वयं सहायता समूहों का किस तरह इस्तेमाल कर रही हैं लेकिन पीस के फील्ड एरिया का दौरा करने पर एक ऐसा उदाहरण सामने आया जो माइक्रो क्रेडिट के क्षेत्र में दिनोदिन बढ़ती महत्त्वपूर्ण परिघटना को दर्शाता था।

पीस द्वारा लागू किए जा रहे ऋण कार्यक्रम को सहायता देने वाली फंडिंग एजेंसी केयर ने एस.एच.जी. सदस्याओं को बीमा सेवा मुहैया कराने के लिए रॉयल सुंदरम कम्पनी से अनुबंध किया था। दूसरी तरफ एस.एच.जी. सदस्याओं को ग्रामीण क्षेत्रों में हिंदुस्तान लीवर (एच.एल.एल.) की चीज़ें बेचने के लिए डीलर के तौर पर भर्ती किया जा रहा था। केयर के एक अधिकारी से हमें यह जानकारी मिली :

फील्ड विज़िट के समय एच.एल.एल. ने 20 महिलाओं (प्रति तीन गांव एक महिला) को डीलरशिप दी हुई थी। एच.एल.एल. की गाड़ी प्रत्येक डीलर के घर तक सामान पहुंचाती है। डीलर या तो घर से या बैठकों में चीज़ों को बेचती है। उन्हें 3–11% लाभांश मिलता है। एच.एल.एल. स्वयं सहायता समूहों की सदस्याओं को डीलरशिप देना ज़्यादा बेहतर मानता है क्योंकि ये समूह उत्पादों को ज़्यादा आसानी से बेच सकते हैं। एच.एल.एल. की राय में स्वयं सहायता समूहों की हिस्सेदारी से सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा करने में भी मदद मिलती है। केयर के अधिकारी ने एक दिन पहले जिस महिला डीलर से मिलवाया था वह माहवार 700 रु. कमा रही थी। पीस ने भी एस.एच.जी. सदस्याओं को डीलरशिप लेने के लिए प्रोत्साहित किया है। शुरुआत में जब एच.एल.एल. के लोग महिलाओं से मिलते हैं तो महिलाएं उन पर जल्दी विश्वास नहीं करतीं। ऐसे में पीस की उपस्थिति ज़रूरी हो जाती है। संगठन के कार्यकर्त्ता ऐसी महिलाओं के चयन में भी मदद देते हैं जिनके पास क्षमता है और जो 'प्रगतिशील' हैं। केयर अधिकारी की नज़र में प्रगतिशीलता का मतलब था उत्पादों को बेचने की क्षमता।

महिलाओं को यह सिखाने के बारे में कोई चर्चा नहीं हुई थी कि उन्हें एच.एल.एल. से किस तरह सौदेबाज़ी करनी चाहिए। आगे भी यह संभावना कम ही है कि इस ज़रूरत पर ध्यान दिया जाएगा। उपरोक्त साक्षात्कार में ही जब हमने यह पूछा कि क्या बैंकों के साथ सौदेबाज़ी के लिए महिलाओं की क्षमता में सुधार की भी कोई योजना सोची जा रही है तो

जिस संदर्भ में माइक्रो क्रेडिट गरीबों की आमदनी पर खास उल्लेखनीय असर डालने में सफल नहीं रहा है वहां कम्पनियों द्वारा मार्केटिंग के लिए स्वयं सहायता समूहों का इस्तेमाल दरअसल गरीबों को उपभोक्तावादी संस्कृति में रंगने का प्रयास ही है।

यह जवाब मिला कि ऐसा करने की कोई ज़रूरत नहीं है क्योंकि ब्याज की दरें पहले से तय होती हैं। यह ऐसे इनपुट्स की ज़रूरत के बारे में बेहद संकुचित समझ का एक उदाहरण है।

व्यावसायिक मार्केटिंग के लिए स्वयं सहायता समूहों के इस्तेमाल से कई मुद्दे उठते हैं। जहां एक ओर माइक्रो क्रेडिट गरीबों के आय स्तर में कोई उल्लेखनीय बदलाव लाने में सफल नहीं हो पाया है, वहीं दूसरी ओर इस तरह की मार्केटिंग निर्धनतम आबादी के बीच उपभोक्तावाद को बढ़ावा देने की कोशिश भी दिखायी देती है। माइक्रो क्रेडिट के ज़रिए ग्रामीण क्षेत्रों में बाज़ार की ताकतों की पैठ को बढ़ावा देना एस.एच.जी. परिघटना में माइक्रो क्रेडिट के खुला बाज़ार सिद्धांत के अनुरूप दिखायी देता है। देश के अन्य भागों में काम करने वाली स्वयंसेवी संस्थाओं के साथ चली चर्चाओं से आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में एमवे सौंदर्य उत्पादों की बढ़ती पैठ का पता चलता है। मार्केटिंग के ये अभियान ऐसे हालात में चल रहे हैं जहां महिलाओं के पास न तो वैश्वीकरण और उदारीकरण की प्रक्रियाओं को समझने का कोई अवसर है और न ही वे यह समझती हैं कि इनसे गरीबों पर कैसा असर पड़ने वाला है।

इस अध्याय में हमने माइक्रो क्रेडिट का बुनियादी विमर्श सामने रखा है और ये दर्शाया है कि किस तरह यह विमर्श इस अध्ययन में शामिल संगठनों की सोच और कामकाज को तय कर रहा है। हमने माइक्रो क्रेडिट प्रक्रिया में लगी विभिन्न ताकतों को मिलने वाले लाभों को भी सामने रखा है। इन लाभों के स्वरूप और सीमा के बीच निहित संबंधों को समझने से एस.एच.जी. कार्यक्रमों की पद्धति और कामकाज के पैटर्न्स की व्याख्या करने में मदद मिलती है। रिपोर्ट के पिछले हिस्सों में हमने देखा था कि इन लाभों के बावजूद उन महिलाओं के जीवन में कोई खास निवेश नहीं किया जा रहा है जिनकी बचत और श्रम ही इस एस.एच.जी. परिघटना का स्तंभ है। अगले निष्कर्षात्मक अध्याय में हमने एक ऐसे शैक्षणिक एजेंडा की ज़रूरत पर विचार किया है जो महिलाओं को माइक्रो क्रेडिट से जुड़े इन हालात को स्वायत्तता और ताकत के आधार पर संबोधित करने और समझने में मदद दे सके।

निष्कर्ष

इस अध्ययन में हमने जो ज़मीनी हालात पाए हैं उनको स्वयं सहायता समूहों के व्यापक विमर्श तथा संबंधित ताकतों की घोषित दावों के साथ कैसे जोड़ा जाए? स्वयं सहायता समूहों के उद्देश्यों और यथार्थ के बीच मौजूद फासले को पाटने के लिए किस प्रकार प्रयास किया जाए? इस अंतिम अध्याय में हम मात्रात्मक निरंतर सर्वेक्षण के निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए मौजूदा सघन गुणात्मक अध्ययन से निकली कुछ प्रमुख सीखों को एक सूत्र में पिरोना चाहते हैं।

हमारे निष्कर्ष और सिफारिशें दो बातों पर आधारित हैं। पहली बात यह है कि स्वयं सहायता समूहों ने महिलाओं को बहुत बड़े पैमाने पर परस्पर साथ जुटने का अवसर व जगह दी है और उन्हें ऋण तक पहुंच प्रदान की है जिसके सहारे वे संकट व उपभोग संबंधी ज़रूरतों को पूरा कर सकती हैं दूसरी बात यह है कि एस.एच.जी. परिधियों में आने से महिलाएं अपने हित में मोलभाव करने के लिए आवश्यक ज्ञान और संभावनाओं के अभाव में नाना प्रकार के हित समूहों की चालबाज़ियों के दायरे में आ गयी हैं। संभावना और खतरे, इन दोनों को रेखांकित करते हुए इस अध्याय में हम जिन प्रक्रियाओं और हस्तक्षेपों का सुझाव देने जा रहे हैं वे ऐसे तत्त्वों की पहचान की दिशा में एक कदम हैं जो महिलाओं के हितों की रक्षा के लिए अनिवार्य भी हैं और जो महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों से लाभ प्राप्त करने का अवसर भी देते हैं। सशक्तीकरण की दिशा में ले जाने वाली शैक्षणिक प्रक्रियाएं इन हस्तक्षेपों का अनिवार्य अंग हैं। यदि माइक्रो क्रेडिट के तर्क को यथावत चलने दिया गया तो इन शैक्षणिक प्रक्रियाओं का मौका औरतों को नहीं मिल पाएगा। हमें स्वयं सहायता समूहों के गठन और विस्तार की तेज़ गति, समुदाय के सबसे निर्धन और हाशियाई तबकों की बेदखली और एस.एच.जी. परिघटना में सक्रिय ज़्यादातर ताकतों के उपयोगितावादी इरादों को लाज़िमी तौर पर आड़े हाथों लेना होगा। हमारी सबसे बड़ी उम्मीद यही है कि सशक्तीकरण करने वाली शैक्षणिक प्रक्रियाओं से एस.एच.जी. सदस्याओं को इस परिघटना की शक्ल–सूरत पुनर्निर्धारित करने की ताकत मिलेगी, भले ही इस विमर्श की सत्ता अभी उनके खिलाफ खड़ी दिखायी देती है।

भारत में माइक्रो क्रेडिट उपलब्ध कराने के लिए कई तरीके विकसित किए गए हैं। इस अध्ययन में हमने एस.एच.जी. मॉडल पर ध्यान केंद्रित किया है क्योंकि इसी पद्धति का सबसे ज़्यादा इस्तेमाल किया जा रहा है (जिस समय अध्ययन शुरू किया गया उस समय निश्चय ही यही स्थिति थी)। यह एक ऐसा मॉडल भी था जिसे सरकार ज़मीनी स्तर पर अपने विभिन्न कार्यक्रमों के ज़रिए सबसे ज़्यादा प्रोत्साहित कर रही थी। स्वयं सहायता समूहों को प्रोत्साहित करने वालों में ऐसे एन.जी.ओ. भी हैं जो इन समूहों को न्याय

व समानता की अपनी कल्पना को साकार करने के लक्ष्य में सहभागी बनाना चाहते हैं। इस गुणात्मक अध्ययन में जिन स्वयंसेवी संस्थाओं का अध्ययन किया गया है वे इसी श्रेणी में आती हैं। ये ऐसी स्वयंसेवी संस्थाएं हैं जो स्वयं सहायता समूहों के आकलन का प्रभावी आधार बन सकती हैं क्योंकि वे एस.एच.जी. मॉडल के समता केंद्रित प्रयासों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस समानता को साकार करने के लिए उनका संघर्ष उनके घोषित उद्देश्य और माइक्रो क्रेडिट के तर्क के बीच लगातार खींचतान में प्रतिबिंबित होता है। जिस व्यापक परिदृश्य में शक्तिशाली संस्थागत ताकतें दिनोंदिन लाभकेंद्रित और नवउदारवादी सांचे में ढलती जा रही वैश्विक राजनीतिक अर्थव्यवस्था में अपने हित साध रही हैं, उस संदर्भ के दबावों को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। इसलिए ऐसी स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा की जा रही कोशिशों और संज़ीदगी की प्रशंसा करते हुए भी हम इस बात पर ध्यान केंद्रित करना चाहते हैं कि व्यापक तस्वीर में कौन–सी चुनौतियां सामने आ रही हैं।

अध्याय 1 में हमने स्वयं सहायता समूहों के ज़मीनी हालात पर विचार किया था। दूसरे अध्याय में हमने उनके लिए उपलब्ध शैक्षणिक अवसरों और प्रक्रियाओं का विश्लेषण किया। अध्याय 3 में हमने स्वयं सहायता समूहों के काम–काज से उभर रहे विमर्श के रुझानों और एस.एच.जी. प्रोत्साहकों की सोच का विश्लेषण किया था। इस अध्याय में हम उन शैक्षणिक अवसरों के बारे में कुछ ठोस सुझाव देने जा रहे हैं जो एस.एच.जी. परिधियों को महिलाओं के लिए ज़रूरी हैं। ये सिफारिशें हम उन सभी ताकतों को संबोधित करते हुए पेश कर रहे हैं जिनका हमने इस अध्ययन में आकलन किया है – स्वयंसेवी संस्थाएं, सरकार, बैंक और खुद महिलाएं। हम आशा करते हैं कि ये सिफारिशें संभावनाओं का एक ब्लूप्रिंट होंगी, एस.एच.जी. मॉडल को औरतों की ज़िंदगी व संघर्षों के अनुभवों से निकली सीख पर आधारित दिशा में ले जाएंगी और उन्हें भविष्य में होने वाले किसी भी प्रयास के नियोजन व क्रियान्वयन में केंद्रीय भूमिका दिलाने में मदद करेंगी।

इससे पहले कि हम सिफारिशों की ओर बढ़ें, हम इस अध्ययन में चिन्हित की गयी प्रमुख चिंताओं को एक बार फिर संक्षेप में पेश कर दें:

ज़मीनी हालात का सार–संकलन

महिलाओं की ज़िंदगी में स्वयं सहायता समूह

एस.एच.जी. सदस्याओं के साथ हुए साक्षात्कारों से पता चलता है कि इन समूहों में हिस्सेदारी से महिलाओं के पास संकट और उपभोग के लिए, खासतौर से स्वास्थ्य और शिक्षा संबंधी आवश्यकताओं के लिए ऋण तक बेहतर पहुंच हासिल हुई है।

महाजनों पर निर्भरता खत्म नहीं हुई है लेकिन उसमें कमी आयी है। स्वयं सहायता समूहों में हिस्सेदारी का नतीजा यह हुआ है कि कम–से–कम समूह नेताओं को आवाज़ाही के ज़्यादा अवसर और सार्वजनिक परिक्षेत्र में एक वैध स्थान मिला है।

लेकिन यह भी सच है कि इन समूहों में सहभागिता के कारण पैसा बचाने और कर्ज़े की किस्त चुकाने की जो ज़िम्मेदारी आयी है उससे औरतों के ऊपर काम का भार बढ़ गया है। इसके बावजूद उन संसाधनों पर भी महिलाओं का नियंत्रण बहुत सीमित है जो उनके प्रयास से परिवार की पहुंच में आ गए हैं। कर्ज़े से कौन–सी चीज़ें खरीदी जाएंगी इस बारे में प्रायः वे खुद फैसला नहीं लेतीं। आर्थिक फायदों में सबसे अच्छी स्थिति में भी ऋण तक पहुंच और सूक्ष्म उद्यमों से आय में कुछ हद तक बढ़ोतरी की ही बात सामने आयी है। सदस्याएं जिस तरह के अन्याय और गैर–बराबरी का सामना कर रही हैं उसको देखते हुए समूह से मिलने वाली सहायता के स्तर पर उन कार्यक्रमों में ही महिलाओं को थोड़ी–बहुत सहायता मिली है जहां इसके लिए अनुकूल वातावरण था। औरतों ने महिला हिंसा जैसे मामलों में जो पहल की है वह खुद आमतौर पर एस.एच.जी. की औपचारिक परिधि के बाहर की ही है। समूह की आंतरिक परिधि पर संकीर्ण वित्तीय एजेंडा हावी दिखायी देता है। हमने यह भी पाया है कि एस.एच.जी. सदस्याओं को पंचायत और स्थानीय नौकरशाही सहित अभिशासन संस्थानों तक ज़्यादा बेहतर पहुंच हासिल हुई है। लेकिन यह भी सच था कि वे अपनी मांगों को पूरा करवाने के लिए सक्षम नहीं हैं।

बेदखली

समाज के सबसे गरीब तबके की महिलाएं, जिनमें दलित, आदिवासी व मुस्लिम समुदायों की महिलाएं शामिल हैं, नियमित रूप से बचत कर पाने में विफल होती दिखायी दे रही हैं। एस.एच.जी. नियमों के अनुसार ऐसे में वे अकसर इस परिधि से बाहर छूट जाती हैं। अधिकांशतः ऐसी महिलाएं ऋण तक बचत–आधारित पहुंच हासिल नहीं कर पायी हैं। इनको ऋण के लिए जोखिम उठाने का औचित्य भी दिखायी नहीं देता क्योंकि ब्याज की दर बहुत ज़्यादा है और किस्त चुकाने की प्रक्रिया फौरन शुरू हो जाती है। महिलाओं का अपनी ही बचत पर अधिकार नहीं है क्योंकि सरकार और अन्य संस्थागत ताकतों ने लोगों के बचत आधारित संसाधनों पर उनकी ही पहुंच सीमित की हुई है।

विषयवस्तु और फैलाव के लिहाज़ से सीमित क्षमता निर्माण

हालांकि स्वयं सहायता समूहों से असंख्य संस्थागत शक्तियों के हित सध रहे हैं लेकिन प्रोत्साहक एजेंसियां स्वयं सहायता समूहों को पर्याप्त और उचित इनपुट्स उपलब्ध नहीं करा रही हैं। जो संसाधन पैदा हो रहे हैं उनमें से बहुत कम ही वापस महिलाओं तक पहुंचते हैं। यह स्थिति तब है जबकि सूचना, निपुणता, सोच में बदलाव और दृष्टिकोण निर्माण आदि मूल्य सशक्तीकरण व गरीबी उन्मूलन का केन्द्र रहे हैं।

बहुत सारे सरकारी स्वयं सहायता समूहों को क्षमता निर्माण का कोई अवसर नहीं मिला है। जो क्षमता निर्माण इनपुट्स उपलब्ध कराए जा रहे हैं, वे प्रोत्साहक एजेंसियों के काडर की ज़रूरतों पर केंद्रित हैं और एस.एच.जी. सदस्याओं तक नहीं पहुंच पाते। सामाजिक न्याय और समता से संबंधित इनपुट्स या तो समूहों तक पहुंच ही नहीं पाते या वे बेहद क्षीण रूप में उन तक पहुंचते हैं। सबसे ज़्यादा ज़ोर समूह निर्माण और बचत व किस्त वापसी के कामकाजी

एजेंडा पर रहा है। एस.एच.जी. सदस्याओं में समूह नेताओं (जो प्रायः ज़्यादा पढ़ी–लिखी होती हैं) को ही इनपुट्स मिलते हैं। जब समूह नेता प्रशिक्षणों में ज़ेंडर से संबंधित मुद्दों को शामिल किया जाता है तो उन पर सांकेतिक ध्यान ही दिया जाता है।

जेंडर और विकास के विमर्श पर असर

समूह का बदलता मतलब

एस.एच.जी. परिघटना द्वारा विमर्श के स्तर पर जो बदलाव आए हैं, वे बेहद महत्त्वपूर्ण हैं और महिलाओं के जीवन के ज़मीनी हालात से गहरे रूप से जुड़े हुए हैं। स्वयं सहायता समूहों के किसी भी आकलन में विमर्श के स्तर पर आ रहे इन बदलावों को भी ज़रूर शामिल किया जाना चाहिए।

बीसवीं सदी के आखिरी सालों में महिलाएं ऐसी इकाइयों में एकजुट होने लगी थीं जिन्हें 'समूह' की एक व्यापक श्रेणी माना जाता था। इनमें औपचारिक व अनौपचारिक, छोटे व बड़े सभी तरह के समूह थे। यह औरतों के लिए एक ऐसे समाज में जगह बनाने की कोशिशें थीं, जहां अब तक इस तरह की जगह या तो बहुत सीमित थी या नहीं थी। इन समूहों में महिलाएं एक–दूसरे की समस्याओं को सुन सकती थीं, संघर्षों में एक–दूसरे का साथ दे सकती थीं और मिलकर अपनी मांगें उठा सकती थीं। समूहों में महिलाओं को एकजुटता निर्माण का अवसर मिलता था। यहां जाति और वर्ग की श्रेणियां अकसर छोटी पड़ जाती थीं। ये एक साझा लैंगिक पहचान की परिधि थे, खास तौर से महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा के खिलाफ आवाज़ उठाने के लिए।

विकास के क्षेत्र में जो स्वयं सहायता समूह अभी सक्रिय दिखायी देते हैं, उनकी संस्कृति अनुशासन की आवश्यकता और महिला सदस्याओं के बीच अविश्वास की बुनियाद पर खड़ी दिखायी देती है। इन समूहों को एकजुट करने में समरूपता एक साझा पहलू बन गया है और जाति व वर्ग के मुकाबले जेंडर एकता का सबसे स्पष्ट मानक नहीं है।

अच्छी औरत की छवि

एस.एच.जी. विमर्श 'अच्छी औरत' के नए आयाम गढ़ रहा है। यह अच्छी औरत ऐसी है जो पैसे बचाती है, नियम से कर्ज़ा चुकाती है, समूह की अन्य सदस्याओं पर भी ऐसा करने के लिए दबाव डालती है और परिवार की बेहतरी को समर्पित है। इस अच्छी औरत पर काम का बोझ भी बढ़ गया है। अब उसे पहले वाले काम तो करने ही पड़ते हैं, समूह के लिए बचत भी करनी है और 'प्रगतिशील' नारी की इस छवि का बोझ भी ढोना है। इस नई औरत के पास बाहरी आवाज़ाही और सत्ता के क्रम में ऊपर की ओर बढ़ने के सारे प्रतीक तो हैं लेकिन इन प्रतीकों को बनाए रखने का भार भी उसी के ऊपर है। स्वयं सहायता समूहों के प्रोत्साहक ही नहीं बल्कि खुद महिलाएं भी कहने लगी हैं कि अब 'आखिरकार' औरतें भी घर की अर्थव्यवस्था में योगदान दे रही हैं। इस धोखे भरी प्रक्रिया का एक हिस्सा इस बात से जुड़ा हुआ है कि औरतों ने परिवार की परवरिश और आजीविका के लिए जो महत्त्वपूर्ण योगदान दिए हैं, उनको नज़रअंदाज़ कर दिया गया है। इस श्रेणी में वे सारी गतिविधियां आती हैं जिन्हें अप्रत्यक्ष रूप से 'उत्पादक कार्य' की श्रेणी में नहीं रखा जाता। इस प्रक्रिया से भी आय देने वाले कामों को मिलने वाले महत्त्व में वृद्धि हुई है। इसीलिए ऋण की आमद को प्रजननशील और देखभाल की अर्थव्यवस्था के ऊपर ज़्यादा ठोस रूप में देखा जाता है। स्वयं सहायता समूहों में महिलाओं की हिस्सेदारी पर पुरुषों के संतोष

से पता चलता है कि उनकी यह सक्रियता परिवार के भीतर असमान सत्ता संबंधों को किसी भी तरह चुनौती देने नहीं जा रही है। स्वयं सहायता समूहों में महिलाओं की हिस्सेदारी को पुरुष बिना किसी दिक्कत के खुद को मिलने वाले फायदों के साधन के रूप में देखते हैं। इस मुद्दे पर गंभीरता से ध्यान दिया जाना चाहिए, खास तौर से इसलिए कि जैसे–जैसे महिलाओं को इस एजेंडा का वाहक बनाया जा रहा है, विकास के क्षेत्र में पुरुष अपनी ज़िम्मेदारी से आज़ाद होते जा रहे हैं।

परिवार पर यह बेहिसाब फोकस अधिकारों, हितों और आवश्यकताओं से लैस एक औरत, जिसकी अपनी पहचान है, उसकी छवि को धूमिल करता है, जिसके लिए महिला आंदोलन लंबे समय से संघर्ष कर रहा है। अध्ययन से पता चलता है कि महिलाओं को परिवार संस्था के पितृसत्तात्मक रूप को समझने और परिवार के भीतर अपने हितों को अभिव्यक्त करने के लिए तैयार नहीं किया जा रहा है। माइक्रो क्रेडिट प्रक्रियाएं औरतों को परिवार संस्था की पहचान के साथ घनिष्ठ रूप से जोड़ती जा रही हैं।

हमारी सभी केस स्टडीज़ में इस बात को बार–बार रेखांकित किया गया है कि अच्छी औरत अच्छी कर्ज़दार भी होती है। महिलाओं को निवेश की हकदार और 'ऋण योग्य' साबित करने के लिए कई बार महिला संगठन भी इसी दलील का सहारा लेते दिखायी देते हैं। लेकिन कर्ज़े पर महिलाओं को अधिक नियंत्रण उपलब्ध कराए बिना बार–बार इस तर्क को दोहराने से सदियों पुरानी रूढ़ छवियां पुष्ट होती हैं तथा उन पर काम का बोझ बढ़ता चला जाता है। अध्ययन में इस बात को स्पष्ट दिखाया गया है कि ऋण तक पहुंच से वित्तीय संसाधनों या संपदाओं तक नियंत्रण या स्वामित्व नहीं मिलता।

'सशक्तीकरण' शब्द का संकुचन और विकृतियां

अध्ययन से यह भी सामने आया कि एस.एच.जी. परिघटना के कारण सशक्तीकरण के विमर्श में क्या बदलाव आ रहे हैं। सशक्तीकरण की अवधारणा को कृत्रिम नकदी तौर पर सामाजिक और आर्थिक सशक्तीकरण में विभाजित किया जा रहा है। महिलाओं के जीवन के यथार्थ को देखने पर पता चलता है कि यह विभाजन न केवल अनुचित है बल्कि महिलाओं के खिलाफ जाता है। मिसाल के तौर पर, वित्तीय संसाधनों पर तब तक महिलाओं का अधिक नियंत्रण सुनिश्चित नहीं किया जा सकता, जब तक महिलाओं को उन जेंडर आधारित संबंधों को पहचानने और बदलने के लिए तैयार नहीं किया जाएगा जिनकी वजह से पुरुषों को एक खास हैसियत मिलती है और वे परिवार के भीतर निर्णय प्रक्रिया में ज़्यादा सत्ता स्थापित करने में कामयाब हो जाते हैं। सामाजिक और आर्थिक का यह विभाजन इस तथ्य को भी छिपा देता है कि समूह के भीतर पैदा होने वाले तनाव (जैसे समूह में किसको ऋण तक पहुंच मिले) समूह की एकजुटता के लिए खतरा पैदा करते हैं। इस प्रकार नाना कारणों से महिलाओं के जीवन को प्रभावित करने वाले कारकों को सामाजिक और आर्थिक के बीच बांटना न तो संभव है और न ही उचित है। सांस्कृतिक और भौतिक को एक–दूसरे से अलग करने पर महिलाओं की प्रगति में बाधा आती है।

इस विखंडित सोच का एक खतरा यह है कि इसकी वजह से माइक्रो क्रेडिट के हिमायतियों के इस दावे को बल मिल जाता है कि अगर एक बार आर्थिक सशक्तीकरण हो जाए तो सामाजिक सशक्तीकरण भी अपने आप होने लगेगा। यह बंटवारा इस तर्क को पुष्ट करती है कि बदलाव अपने आप होने लगेगा और

इसलिए माइक्रो क्रेडिट के हिमायतियों को बदलाव के एजेंडा में निवेश करने की ज़रूरत नहीं है।

सशक्तीकरण शब्द की परिभाषाओं में निहित अस्पष्टताओं के कारण उसकी असंख्य व्याख्याएं संभव हो जाती हैं। बहुत सारी व्याख्याएं सशक्तीकरण के एक खास नज़रिए को पुष्ट करती हैं। इसी आधार पर बैंक प्रतिनिधि यह मानकर संतुष्ट हो जाते हैं कि जिनके पास पहले ऋण तक पहुंच नहीं थी, उनके लिए यही सशक्तीकरण का साधन है। पर, ऐसे लोग इस बारे में बहस नहीं करना चाहते कि इस ऋण की शर्तें क्या हैं या उसकी वसूली के साधन क्या हैं। इसी प्रकार, अगर सरकार सशक्तीकरण को परिभाषित न करे तो उसे इसके लिए जवाबदेह नहीं ठहराया जा सकता और सरकार यह भी दावा कर सकती है कि वह जो कुछ कर रही है, उससे सशक्तीकरण के एजेंडा को ही बढ़ावा मिल रहा है।

अपने सीमित अर्थ में भी आर्थिक सशक्तीकरण का आशय बेहद संकुचित वित्तीय स्तर पर आने वाले बदलावों तक सीमित है। यदि 'आर्थिक सशक्तीकरण' जैसे शब्दों का इस्तेमाल किया जाए तो भी उसमें कम–से–कम इस बात को तो शामिल किया ही जाना चाहिए कि महिलाएं विभिन्न आजीविका संबंधी विकल्पों का आलोचनात्मक ढंग से आकलन कर पाने की स्थिति में हैं या नहीं जिससे यह तय किया जा सके कि कौन–सा विकल्प उनके ज़्यादा हित में है। इस परिभाषा में ऊपर उल्लिखित संसाधनों पर नियंत्रण का आयाम भी शामिल होना चाहिए। जब 'आर्थिक सशक्तीकरण' शब्द का प्रयोग किया जाता है तो इसका आशय सिर्फ ऋण तक पहुंच के अर्थ में होता है। यह परिभाषा उन तमाम प्रक्रियाओं को संबोधित नहीं करती जो इस पहुंच और उन प्रक्रियाओं के बीच हैं जिनके ज़रिए महिलाओं को अधिकाधिक समानता और न्याय की दिशा में सत्ता संबंधों को पहचानने और उनको अपने हिसाब से ढालने की क्षमता मिलती है।

माइक्रो क्रेडिट का मॉडल नकदी अर्थव्यवस्था को सबसे आगे रखता है और उसे वैधता प्रदान करता है जबकि अधिकांश ग्रामीण गरीबों के लिए अन्य विकल्प ही टिकाऊ आजीविका का आधार रहे हैं। मिसाल के तौर पर, दलित और आदिवासी समुदायों की औरतों के संदर्भ में सार्वजनिक संसाधनों पर नियंत्रण और अधिकार के मुद्दे को उठाए बिना आर्थिक सशक्तीकरण की बात करना बेमानी होगा।

यदि यह विमर्श किसी उल्लेखनीय अर्थ में सशक्तीकरण का स्रोत बन सकता है तो हमें आर्थिक को वित्तीय में सीमित कर देने वाले इस संकुचनवादी विमर्श अधिकार व नियंत्रण के मानकों को शामिल करते हुए सार्वजनिक और निजी दायरों में बदलते लैंगिक संबंधों को भी शामिल करना होगा।

सामाजिक मुद्दों की पुनर्परिभाषा

जैसा कि हमने पीछे कहा था, महिलाओं के बारे में हावी उपयोगितावादी सोच माइक्रो क्रेडिट के तर्क से गहरे तौर पर जुड़ी हुई है और वस्तुतः उसी से पैदा हो रही है। इस उपयोगितावादी दृष्टि के लिए अकसर जो तर्क पेश किया जाता है वो यह है कि तमाम खामियों के बावजूद इससे महिलाओं को फायदा हो सकता है क्योंकि उनकी शिक्षा और पहलकदमी के एजेंडा में 'शिक्षा, स्वास्थ्य और पर्यावरण जैसे सामाजिक मुद्दों' को शामिल कर लिया गया है। रिपोर्ट में इस तर्क को ऐसे साक्ष्यों के आधार पर चुनौती दी गयी है जिनसे पता चलता है कि इन क्षेत्रों में महिलाएं जो कर रही हैं वह वास्तव में सरकार के उपयोगितावादी एजेंडा के अनुरूप और उसी तक सीमित है। मिसाल के तौर पर, स्वास्थ्य के क्षेत्र में

महिलाएं टीकाकरण अभियानों और जनसंख्या नियंत्रण अभियानों में तो हिस्सा लेती हैं लेकिन उनके पास सचेत चयन या एजेंडा तय करने के अवसर नहीं होते। यहां इस बात को पुनर्परिभाषित किया जा रहा है कि सामाजिक मुद्दे क्या होते हैं। इस प्रकार विकास संबंधी कार्यक्रमों को अधिकार व समानता जैसी बुनियादी चिंताओं को संबोधित किए बिना केवल सेवाएं मुहैया कराने का साधन भर मान लिया जाता है।

गरीबी उन्मूलन के अर्थ में संकुचन और विकृति

गरीबी उन्मूलन के विमर्श का एक हिस्सा इस बात पर केंद्रित है कि आजीविका की अवधारणा को सूक्ष्म उद्यम के ज़रिए आयवर्द्धन पर सीमित कर दिया गया है। आजीविका फ्रेमवर्क के बहुआयामी स्वरूप में स्वास्थ्य, शिक्षा और जीवित रहने के संघर्ष जैसे आयामों के बीच संबंधों को मान्यता दी जाती है और प्राकृतिक संसाधनों पर पहुंच व नियंत्रण को महत्त्व दिया जाता है। दूसरी तरफ सूक्ष्म उद्यम पर फोकस आजीविका विकास के क्षेत्र में किसी खास संभावना पर केंद्रित हो जाता है। सशक्तीकरण की जगह आर्थिक सशक्तीकरण और उसकी जगह वित्तीय बदलाव पर लगातार सिमटते फोकस के समानान्तर यहां भी हम यही देखते हैं कि गरीबी उन्मूलन से आगे बढ़ते हुए अब सूक्ष्म उद्यम की संकुचित परिभाषा को बढ़ावा दिया जा रहा है। और तो और, सूक्ष्म उद्यम की अवधारणा में भी सारा ज़ोर ऋण तक पहुंच पर है। इसमें मार्केटिंग या ज़रूरी सामानों तक पहुंच जैसे फॉरवर्ड और बैकवर्ड लिंकेजेज़ पर विचार नहीं किया जा रहा है जिनके ज़रिए सूक्ष्म उद्यम कामयाब हो सकते हैं।

प्रोत्साहक एजेंसियों ने सशक्तीकरण और गरीबी उन्मूलन के क्षेत्र में कुछ और शब्दों को भी अपरिभाषित छोड़ा हुआ है। इनमें 'कलेक्टिव' और 'सामाजिक मुद्दे' जैसे महत्त्वपूर्ण शब्द शामिल हैं। नारीवादी नज़रिए से देखें तो 'कलेक्टिव' शब्द का आशय एक ऐसे समूह से है जो पारदर्शिता और लोकतंत्र को बढ़ावा देने वाली प्रक्रियाओं को अपनाना चाहता है और जहां से न्याय व समानता के लिए मिलकर प्रयास किया जा सकता है। प्रोत्साहक एजेंसियों के नेताओं और कार्यकर्त्ताओं के साथ हुए साक्षात्कारों में 'कलेक्टिव' का अर्थ प्रायः ऐसे समूह से था जो व्यक्तिगत बचतों को एक जगह इकट्ठा करे और ऋण के रूप में इतनी राशि प्राप्त कर सके जो किसी व्यक्ति के लिए अकेले संभव नहीं है। 'सामाजिक मुद्दे' शब्द को भी अकसर ऐसी चिंताओं में सीमित किया जा रहा है जो सत्ता के विषय में यथास्थिति को चुनौती नहीं देंगे। इसमें टीकाकरण, जनसंख्या नियंत्रण, साफ–सफाई जैसी गतिविधियों पर ही ज़ोर रहा है।

इन शब्दों को परिभाषित भले न किया गया हो लेकिन उठने पर इनकी भी संकुचित व्याख्याएं सामने आ जाती हैं। यह समस्याप्रद बात है क्योंकि प्रोत्साहक एजेंसियों को उनके दावों के प्रति जवाबदेह ठहराने के लिए इन परिभाषाओं का होना बहुत ज़रूरी है।

गरीबी उन्मूलन का दायित्व गरीब औरतों पर

एस.एच.जी. विमर्श का एक पहलू यह है कि इसमें गरीबी उन्मूलन का ज़िम्मा भी गरीबों पर डाल दिया गया है। प्रोत्साहक एजेंसियां इस मान्यता के साथ काम करती दिखायी देती हैं कि गरीबी उन्मूलन के लिए माइक्रो क्रेडिट उपलब्ध करा देना या ज़्यादा से ज़्यादा सूक्ष्म उद्यम गतिविधियां शुरू करवा देना ही काफी है। आर्थिक संसाधनों तक असमान पहुंच तथा भोजन व रोज़गार जैसे अधिकारों को साकार करने में सरकार की विफलता आदि गरीबी के बहुत सारे कारणों की

स्वाभाविक रूप से उपेक्षा हो जाती है। गरीबी और उसके खात्मे के लिए अब गरीबों को ही ज़िम्मेदार माना जा रहा है। यह बात ज़्यादातर प्रोत्साहक एजेंसियों के आला पदाधिकारियों के वक्तव्यों में झलकती थी। उनका कहना था कि गरीब आलसी होते हैं, खुद को गरीबी से बाहर निकालने के लिए मौकों का सही ढंग से फायदा नहीं उठाना चाहते।

पहुंच पर फोकस

स्वयं सहायता समूहों के विमर्श में पहुंच पर सबसे ज़्यादा ज़ोर है। सारा फोकस प्रक्रिया पर नहीं बल्कि कुछ प्रत्यक्ष पहलुओं तक सीमित है। बल्कि प्रत्यक्ष पहलुओं के संदर्भ में भी हमने देखा है कि यह पहुंच भी स्वामित्व या नियंत्रण में रूपांतरित नहीं होती। प्रक्रियाओं को महत्त्व न देने से इस बात पर सीधा असर पड़ता है कि एस.एच.जी. परिघटना सशक्तीकरण और गरीबी उन्मूलन की दिशा में कितना योगदान दे सकती है। यह भी एक कारण है जिसकी वजह से स्वयं सहायता समूह फिलहाल सशक्तीकरण की दिशा में ले जाने वाली शिक्षा को प्राथमिकता नहीं दे रहे हैं क्योंकि उससे सीखने और आलोचनात्मक ढंग से समझने की प्रक्रियाएं जन्म लेती हैं। माइक्रो क्रेडिट परिघटना का औरतों पर फोकस ही बेहतर पहुंच की चाह पर आधारित है ना कि सशक्तीकरण और गरीबी उन्मूलन पर।

क्रमबद्धता

स्वयं सहायता समूहों की प्रक्रियाएं क्रमबद्ध दृष्टि और कार्रवाइयों पर आधारित हैं। इस प्रक्रिया में पहले बचत, फिर समूह के तहत ऋण, उसके बाद बैंकों से लोन और आखिर में स्वरोज़गार की शृंखला दिखायी देती है। शैक्षणिक इनपुट्स का भी क्रम तभी शुरू होता है जब बचत और ऋण गतिविधियां शुरू हो जाती हैं। मिसाल के तौर पर, वेलुगू कार्यक्रम में जेंडर के महत्त्व की स्पष्ट घोषणा के बावजूद जेंडर आधारित प्रशिक्षण तभी शुरू किए गए जब बचत समूह भली प्रकार स्थापित हो चुके थे, संस्थागत फ्रेमवर्क अस्तित्व में आ चुका था और गांव आधारित सामुदायिक प्रयास अनुदान शुरू हो चुका था। यह जेंडर प्रशिक्षण कार्यक्रम परियोजना शुरू होने के दो साल बाद अस्तित्व में आ रहे थे। इससे पता चलता है कि आचरण के स्तर पर जेंडर के महत्त्व और केंद्रीयता पर उचित ध्यान नहीं दिया जा रहा है हालांकि महिलाएं अपने–अपने समुदायों में जेंडर न्याय के मुद्दों को उठाती रही हैं।

सिफारिशें

जेंडर और विकास के विमर्श में यह बदलाव गरीब औरतों के अनुकूल भले न हो, सरकार तथा अन्य संस्थागत ताकतों के हित साधने में मददगार ज़रूर है। उदाहरण के लिए, जैसा कि पीछे उल्लेख किया जा चुका है, यदि सशक्तीकरण शब्द को एक खास, संकुचित अर्थ में देखा जा रहा है या वह अपरिभाषित है तो किसी को भी जवाबदेह ठहराना मुश्किल हो जाता है। अगर सशक्तीकरण और गरीबी उन्मूलन 'साथ–साथ' हो रहे हैं तो प्रोत्साहक एजेंसियों को सशक्तीकरण करने वाली शैक्षणिक प्रक्रियाओं या अन्य सहायक कारकों में निवेश करने की ज़रूरत नहीं है। फलस्वरूप विमर्श में इन बदलावों से महिलाओं के जीवन की वास्तविकताओं पर गहरे असर पड़ते हैं।

अब हम उस बिंदु पर पहुंच गए हैं जहां यह अध्ययन ऐसे अपेक्षित या आवश्यक बदलावों के बारे में सुझाव दे सकता है जिनके सहारे स्वयं सहायता समूहों के बारे में किए जा रहे दावों और उनके

ज़मीनी हालात के बीच मौजूद फासले को भरा जा सके। हमारा मानना है कि इस क्षेत्र में सिर्फ संशोधन करने या छिटपुट चीज़ों को दुरुस्त करने से काम नहीं चलेगा। बुनियादी बदलाव करने ही होंगे। माइक्रो क्रेडिट का मौजूदा तर्क अत्यंत उपयोगितावादी नज़रिए पर केंद्रित है। इसमें आर्थिक कुशलता पर बहुत ज़्यादा फोकस रहता है और यह लक्ष्य समानता व न्याय के उद्देश्यों के खिलाफ पड़ता है। इसलिए यह अपेक्षित हो जाता है कि एस.एच.जी. कार्यक्रमों में गरीब औरतों के हितों पर स्पष्ट रूप से ज़ोर दिया जाए और उन्हें किसी भी सोच व रूपरेखा के मध्य में रखा जाए। इससे मानव संसाधनों में निवेश और समता व न्याय के मुद्दों को संबोधित करने के लिए महिलाओं को एक अनुकूल वातावरण मुहैया कराने से लेकर एस.एच.जी. कार्यक्रमों को सही मार्ग पर बनाए रखने वाले संकेतकों के निर्धारण तक, सभी चीज़ों पर फर्क पड़ेंगे।

यद्यपि कुछ अपेक्षित बदलावों के बारे में नीचे हम विस्तार से बात करने जा रहे हैं लेकिन हम इस बात को समझते हैं कि जो भी बदलाव होंगे वे प्रोत्साहक एजेंसियों तथा गरीब औरतों की ज़रूरतों व हितों के बीच खींचतान और मोलभाव की प्रक्रिया से ही निकलेंगे। इस प्रक्रिया को गरीब महिलाओं के अधिकारों पर केंद्रित करने के लिए महिला संगठनों, स्वयंसेवी संस्थाओं, जनांदोलनों, बौद्धिक वर्ग तथा अन्य व्यक्तियों की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण साबित होगी।

एक ऐसा वातावरण मुहैया कराना भी ज़रूरी है जिसमें गरीब औरतें उपरोक्त मोलभाव में अपने हितों की खुद नुमाइंदगी कर सकें। यह प्रक्रिया शैक्षणिक प्रक्रियाओं का हिस्सा होगी। शैक्षणिक प्रक्रियाओं के ज़रिए स्वयं सहायता समूहों से संबद्ध महिलाओं को उन कारकों को पहचानने और संबोधित करने की क्षमता मिलेगी जो संसाधनों पर उनके और अधिक नियंत्रण की राह में रुकावट बने हुए हैं।

नीचे हम दो तरह की सिफारिशें दे रहे हैं। पहली श्रेणी की सिफारिशें सशक्तीकरण की दिशा में बढ़ने वाली शैक्षणिक प्रक्रियाओं की ज़रूरत से संबंधित हैं। ये सिफारिशें या सुझाव न तो सम्पूर्ण हैं और न ही किसी नुस्खे के रूप में हैं। हमने एस.एच.जी. सदस्याओं के अनुभवों और बयानों के आधार पर अध्ययन के निष्कर्षों का विश्लेषण किया है और शैक्षणिक अवसरों के लिए उसके असर का आकलन किया है। हम इस बात को समझते हैं कि इन सिफारिशों पर आने वाली प्रतिक्रियाएं प्रोत्साहक एजेंसियों की मौजूदा सोच तथा इस बात पर निर्भर करेंगी कि गरीब औरतों के हितों को मध्य में रखते हुए स्वयं सहायता समूहों को किस हद तक नई रोशनी में देखने की इच्छा मौजूद है। दूसरी श्रेणी की सिफारिशें एस.एच.जी. परिघटना के बारे में सरकार को संबोधित करते हुए दी गयी हैं। इनमें से बहुत सारी सिफारिशें महिला एवं बाल विकास मंत्रालय तथा 11वीं पंचवर्षीय योजना प्रक्रिया के तहत योजना आयोग को संबोधित हैं।

शैक्षणिक इनपुट्स और प्रक्रियाएं

अध्ययन के निष्कर्षों से एस.एच.जी. सदस्याओं के लिए शैक्षणिक अवसरों के महत्त्व तथा इस बात का स्पष्ट संकेत मिल जाता है कि शिक्षा की अंतर्वस्तु और पद्धति कैसी होनी चाहिए। नीचे हमने उन प्रमुख क्षेत्रों को सूचीबद्ध किया है जिनको न्याय व समानता मानकों के आधर पर विश्लेषण तथा सशक्तीकरण के उद्देश्य से सामूहिक कार्यवाइयों के निर्धारण के लिए संबोधित करना ज़रूरी है। क्योंकि माइक्रो क्रेडिट की परिघटना अव्यक्त धारणाओं और प्रभावों के बड़े–बड़े

दावों से ग्रस्त नवउदारवादी फ्रेमवर्क में सामने आती है। इसलिए शैक्षणिक एजेंडा का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह होगा कि इन धारणाओं का और उनके असर को उजागर किया जाए। शैक्षणिक एजेंडा में महिलाओं को 'अच्छी औरत' की छवि जैसे आत्मसात हो चुके नज़रियों को पहचानने और उनको समझने के योग्य बनाने से लेकर उनके जीवन के हालात और व्यापक संदर्भ के बीच संबंधों को समझने तक एक व्यापक शृंखला को समाहित करना होगा।

सबसे पहली चुनौती यह है कि शैक्षणिक इनपुट्स में पात्रों और प्रतिभागियों के रूप में महिलाओं पर फोकस किया जाए और ऋण मुहैया कराने वालों द्वारा तय की गयी पद्धति के बजाय महिलाओं के अनुभवों पर आधारित शैक्षणिक प्रक्रिया चलायी जाए। इसी से जुड़ा एक मुद्दा यह है कि सीखने की प्रक्रिया और गति क्या हो। जैसे–जैसे एक्सपोज़र का क्षितिज और समझ फैलेगी, महिलाओं की शैक्षणिक आवश्यकताएं सामने आने लगेंगी। इसलिए सशक्तीकरण के लिए या गरीबी को मिटाने के लिए एस.एच.जी. के भीतर चलने वाली किसी भी शैक्षणिक प्रक्रिया में पहले उनकी फौरी प्राथमिकताओं को संबोधित किया जाना चाहिए और उन्हें उनके मौजूदा अनुभवों की परिधि से बाहर पड़ताल के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। यदि माइक्रो क्रेडिट हस्तक्षेपों के फायदों को अधिकतम स्तर तक ले जाना है तो निरंतर शिक्षा और सुनियोजित शैक्षणिक प्रक्रियाएं एक बहुआयामी पद्धति से विकसित करनी होंगी न कि एक ऐसी दिशा में चला जाए जिसमें केवल वित्तीय आयामों पर ही ज़ोर रहता है।

समूहों की प्रशिक्षण संबंधी आवश्यकता के रूप में जिस आयाम पर यहां ज़ोर दिया जा रहा है वह समूह नेताओं की समूह प्रबंधन क्षमता से संबंधित है। समूह प्रबंधन को आमतौर पर समूह में अनुशासन और नियमितता बनाए रखने के रूप में देखा जाता है। यह समूहों के विकास और योग्यतावर्द्धन की बजाय उन पर पहरेदारी और चीज़ें थोपने की संस्कृति का नमूना है। इससे महिलाओं की गरीबी से निपटने और सशक्तीकरण की चाह के लिए अनिवार्य विश्वास और एकजुटता की प्रक्रियाओं को ठेस पहुंचती है। इसका मतलब यह है कि सीखने और क्षमता निर्माण की प्रक्रियाओं को एक समग्र रूप में देखा जाना चाहिए। तभी यह प्रक्रिया सशक्तीकरण और गरीबी उन्मूलन के लक्ष्यों को हासिल कर सकती है। समूह को कर्ज़े के अलावा अपने अस्तित्व के औचित्य से आगे बढ़ते हुए अपनी पहचान की दावेदारी और समूह या फेंडरेशंस के रूप में बाहरी दुनिया से जुड़ने वाले मंच के रूप में देखने के लिए यह बहुत ज़रूरी है। समूहों और फेडरेशंस के उदय को महिलाओं के लिए ऐसी परिधियों की रचना के रूप में देखा जाना चाहिए जहां महिलाएं गरीब, हाशियाई, दलित, आदिवासी के रूप में अपनी प्राथमिकताओं और अधिकारों के लिए आवाज़ उठा सकती हैं और सिर्फ कर्ज़दार व ग्राहक बनकर न रह जाएं।

सीखने की प्रक्रिया अनुभवों के आधार पर और निरंतर चलती है। समूह कुछ खास कार्रवाइयां करते हैं और विभिन्न निकायों से नाना प्रकार के संबंध स्थापित करते हैं। इससे उनकी सीखने की प्रक्रिया आगे बढ़ती है। इन कार्रवाइयों का अधिकतम लाभ उठाने और उन्हें सीख के रूप में रूपांतरित करने के अवसर समूहों की बैठकों में सामने आते हैं। ये बैठकें न केवल अपनी कार्रवाइयों के विश्लेषण और मूल्यांकन के लिए बल्कि जिनसे हम टकरा रहे हैं, उन सामाजिक–राजनीतिक संदर्भों को समझने के लिए भी महत्त्वपूर्ण होती हैं। इसका मतलब है कि समूह की बैठकों को केवल वित्तीय प्रबंधन और लेन–देन के

साधन के रूप में देखने की बजाय सीखने की परिधि के रूप में देखा जाना चाहिए। वहां महिलाएं अपनी कार्रवाइयों का विश्लेषण कर सकती हैं, एक निश्चित उद्देश्य के लिए जानकारियों का आदान–प्रदान कर सकती हैं, अपनी कार्रवाइयों पर समाज तथा अन्य ताकतों की प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण कर सकती हैं, कार्रवाइयों का अधिकतम लाभ उठाने के लिए वैकल्पिक रणनीतियों की खोज कर सकती हैं, गरीबी तथा महिलाओं की कमज़ोर स्थिति को संबोधित करने के लिए चुनौतियों का मूल्यांकन कर सकती हैं, सामूहिक रूप से अपनी एकजुटता को परिभाषित एवं पुनर्स्थापित कर सकती हैं तथा वे जो बदलाव चाहती हैं उनके लिए सही रणनीतियों का चुनाव कर सकती हैं। समूह की बैठकों से महिलाओं को एकजुटता की परिधि के रूप में समूह की संस्कृति विकसित करने, बदलाव की कल्पना करने और उसकी प्राप्ति का मार्ग निर्धारित करने के अवसर हासिल होते हैं। ज़ाहिर है, बैठकों के महत्त्व पर अतिरिक्त ज़ोर देने की आवश्यकता नहीं है। प्रशिक्षण या एक्सपोज़र विज़िट्स के रूप में मिलने वाले सुनियोजित शैक्षणिक इनपुट्स से अधिक–से–अधिक यही होता है कि बैठकों और नियमित गतिविधियों में सीखी गई चीज़ों को पुष्ट करने का मौका मिलता है क्योंकि ये बैठकें ही समूह को एक ऐसी सांगठनिक परिधि के रूप में प्रस्तुत करती हैं जो एक–दूसरे के साथ और बाहरी दुनिया के साथ महिलाओं के संबंधों को परिभाषित करती हैं।

प्रशिक्षण और क्षमता विकास का मौजूदा तरीका महिला नेताओं पर केंद्रित है। इसके पीछे धारणा यह है कि महिला नेताओं में न्यूनतम साक्षरता ज़रूर होनी चाहिए। अन्य महिलाओं को प्रशिक्षण के ज़्यादा अवसर नहीं मिलते। ऐसे में पूरे समूह और उसकी सभी सदस्याओं के लिए सीखने के अवसर उपलब्ध कराए जाएं। हमारे अध्ययन से पता चलता है कि असाक्षर महिलाएं भी लैंगिक भेदभाव और सामाजिक न्याय के एजेंडा से जुड़ी कार्रवाइयों में नेतृत्त्व संभाल सकती हैं। ऐसे अवसरों से नवसाक्षर महिलाओं को समूह में और ज़्यादा हस्तक्षेप करने तथा अपनी साक्षरता क्षमता को और पुष्ट करने में मदद मिल सकती है।

इस प्रसंग में शैक्षणिक प्रक्रियाओं तथा एस.एच.जी. की दृष्टि के बीच निहित संबंधों को भी समझा जाना चाहिए। दरअसल, समूहों को या तो पारिवारिक लाभ के लिए ऋण प्राप्ति का उपकरण माना जा सकता है या उन्हें सशक्तीकरण अथवा टिकाऊ गरीबी उन्मूलन प्रक्रिया का स्रोत माना जा सकता है। यदि मकसद स्वायत्तता हासिल करना है तो सीखने की प्रक्रिया इस बात पर केंद्रित होनी चाहिए कि महिलाओं को धीरे–धीरे ऐसे काम करने की योग्यता और आत्मविकास मिले जिनके लिए फिलहाल वे प्रोत्साहक एजेंसियों पर आश्रित हैं। स्वायत्तता की दृष्टि से ऐसी प्रक्रियाएं महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं जिनके ज़रिए महिलाओं को अपनी ज़रूरतों को समझने, उनका विश्लेषण करने और अभिव्यक्त करने तथा रास्ते में आने वाली रुकावटों को चुनौती देने की काबिलियत मिलती है। केवल प्रबंधकीय क्षमताओं के समावेश की बजाय ये सशक्तीकरण की राजनीतिक प्रक्रिया के तत्त्व हैं जो समूह की एकजुटता सुनिश्चित करेंगे और परियोजना अवधि पूरी होने के बाद भी उसका अस्तित्व बनाए रखने का स्रोत होंगे।

अंत में, शिक्षा में बाहरी दुनिया के आलोचनात्मक विश्लेषण तथा खुद अपने रवैयों के विश्लेषण जैसे आयामों को भी संबोधित किया जाना चाहिए। व्यक्तिगत धारणाओं और रुझानों को विशेष रूप से और बार–बार उठाया जाना चाहिए ताकि महिलाओं को पितृसत्तात्मक व्यवस्था के भीतर खुद को 'अच्छी

औरत' मानते रहने की अवधारणात्मक कमज़ोरियों से छुटकारा मिल सके और वे अपने अंदर ऐसी औरत को ढूंढ़ सके जो परिवार और समाज के उन तत्त्वों को चुनौती दे सकती है जो उसका नियंत्रण करते हैं या उसके खिलाफ पक्षपात करते हैं। इतनी ही महत्त्वपूर्ण बात यह है कि एक ऐसा फ्रेमवर्क विकसित किया जाए जो हाशियाई व्यक्तियों को प्राथमिकता में रखते हुए समानता की सोच पर आधारित हो।

शैक्षणिक विषयवस्तु

अध्ययन के निष्कर्षों से साफ संकेत मिलता है कि एस. एच.जी. सदस्याओं के लिए शैक्षणिक अवसरों का भारी महत्त्व है। लेकिन यह बात भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है कि इस शिक्षा की विषयवस्तु क्या होनी चाहिए।

शैक्षणिक एजेंडा को मापने के लिए हम साक्षरता से अपनी बात शुरू कर सकते हैं। यह बात काफी अजीब सी लगती है कि साक्षरता को शैक्षणिक प्रक्रियाओं से लगभग गायब कर दिया गया है। इसका मतलब है कि नीति और कार्यक्रम तैयार करने वालों को साक्षरता एक अनावश्यक बोझ दिखायी देने लगा है। लेकिन जब महिलाएं कहती हैं कि साक्षरता से सशक्तीकरण हो रहा है और यह अपने आप में सत्ता का स्रोत है तो हमें उनकी बात पर ज़रूर ध्यान देना चाहिए। साक्षरता और सशक्तीकरण के बीच शक्तिशाली संबंधों को देखते हुए और नेतृत्त्व, ऋण व सीखने के अवसरों तक पहुंच हासिल करने के लिहाज़ से साक्षरता बेहद महत्त्वपूर्ण निर्धारक है। इस बात को देखते हुए उन्हें ऐसी साक्षरता मुहैया करायी जानी चाहिए जो लोगों के मौजूदा ज्ञान पर आधारित हो। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि साक्षरता का अभाव महिलाओं की उन्नति की राह में एक रुकावट और उनकी बेदखली का स्रोत बन जाता है इसलिए प्रोत्साहक एजेंसियों को सुनिश्चित करना चाहिए कि एस.एच.जी. सदस्याओं को साक्षरता हासिल करने के ऐसे अवसर मिलें जो उनके अपने संदर्भ से जुड़े हों और जिनका ढंग व भाषा उनकी समझ में आती हो। महिलाओं को साक्षरता क्षमता का अपने रोज़–ब–रोज़ जीवन में तथा सामूहिक कार्रवाइयों में इस्तेमाल करने के योग्य बनाने के लिए भी प्रयास करने होंगे। स्वयं सहायता समूहों के संदर्भ में पारदर्शिता, उत्तरदायित्व तथा प्रोत्साहक एजेंसियों पर निर्भरता में कमी के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए साक्षरता क्षमता को असंख्य प्रकार से प्रयोग किया जा सकता है। इस बारे में प्रक्रिया विकसित की जानी चाहिए।

स्वयं सहायता समूहों की सदस्याओं के लिए शैक्षणिक अवसरों के अन्य क्षेत्रों की पहचान करने के लिए हम उन्हीं परिधियों पर एक बार फिर विचार करेंगे जिनका हमने पीछे ज़िक्र किया था। इस क्रम में हम समूह, परिवार, बाज़ार और संस्थानों के स्तर पर शैक्षणिक अवसरों की ज़रूरत को रेखांकित करना चाहते हैं। इन श्रेणियों में दाखिल होने से पहले हम सीखने के कुछ ऐसे क्षेत्रों को चिन्हित करना चाहते हैं जो इन सभी श्रेणियों के लिए प्रासंगिक हैं। ये विषय ज़ेंडर, जाति, वर्ग, धर्म, यौनिकता और विकलांगता से जुड़े सत्ता संबंधों की निर्मिति और सत्ता की विचारधाराओं व तरीकों की समझ विकसित करने से संबंधित हैं। यह बात एक ऐसे संदर्भ में महत्त्वपूर्ण हो जाती है जिसमें परिवार से लेकर सरकार तक तमाम ताकतें कुछ खास मूल्यों और रुझानों के आंतरिकीकरण की प्रक्रियाओं और पाबंदियों के ज़रिए औरतों पर नियंत्रण स्थापित करने की कोशिश कर रही हैं। बाहरी नियंत्रणों और आंतरिक मूल्यों, दोनों को चुनौती देने के लिए एस.एच.जी. सदस्याओं के पास इस बात को समझने का अवसर होना चाहिए कि

उनकी ज़िंदगियों में सत्ता किस तरह काम करती है।

- साक्षरता सहित शिक्षा की भूमिका जिससे सशक्तीकरण में मदद मिले और आजीविकाओं का सुदृढ़ीकरण हो – महत्त्वपूर्ण बात यह है कि एस. एच.जी. सदस्याओं को अपने सशक्तीकरण में शिक्षा की भूमिका को समझने की योग्यता प्रदान करने से यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि वे शिक्षा के लिए मांग करें और उसकी विषयवस्तु व प्रक्रिया निर्धारित करने में हिस्सा लें।
- पहुंच और अधिकार के बीच फर्क – एस.एच.जी. सदस्याओं को पहुंच और अधिकार के बीच फर्क समझने के लिए तैयार करना एक ऐसे संदर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है जहां जेंडर और विकास के विमर्श में सारा ज़ोर सिर्फ पहुंच पर ही दिया जा रहा है। जब महिलाएं अधिकार का महत्त्व समझती हैं तो वे उसके लिए मांग उठाती हैं और इस बात पर सवाल खड़ा करती हैं कि कौन सी चीज़ उनका अधिकार है। चाहे मामला ऋण का हो, संपदाओं का हो, शिक्षा या सरकारी सेवाओं का हो, अधिकारों का यह दृष्टिकोण हर जगह लागू होना चाहिए।

नीचे हमने जो सिफारिशें दी हैं, वे तीन व्यापक श्रेणियों से ही संबंधित हैं।

समूह

समूह के स्तर पर सीखने के विषयों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है। एक श्रेणी के सुझाव खुद समूह के स्वभाव से संबंधित प्रक्रियाओं के बारे में और दूसरी श्रेणी के सुझाव समूह के एजेंडा से संबंधित हैं। इन दोनों श्रेणियों को एक–दूसरे से अलग करने से पहले यहां इस बात का उल्लेख कर देना ज़रूरी है कि सबसे पहले और सबसे बढ़कर समूह को अपने व्यापक उद्देश्य को समझने के योग्य बनाया जाना चाहिए। इससे समूह के स्वरूप पर भी असर पड़ेगा और उसके एजेंडा पर भी।

समूह का स्वरूप

इस क्षेत्र में शैक्षणिक प्रक्रिया स्वयं सहायता समूहों के सांगठनिक स्वरूप, प्रक्रियाओं व तौर–तरीकों से संबंधित होनी चाहिए। इन प्रक्रियाओं से निम्नलिखित को सीखने में मदद मिलेगी :

- 'कलेक्टिव' क्या है। इसमें पारदर्शिता, परस्पर सहायता, विश्वास और लोकतांत्रिक कार्यपद्धति जैसे सिद्धांतों की अहमियत को समझना भी शामिल है।
- कौन–सा सांगठनिक स्वरूप चुना जाना चाहिए और कौन–से नियमों का पालन किया जाना चाहिए इन प्रक्रियाओं में सांगठिनक स्वरूप व नियमों के मामले में विभिन्न संभावनाओं को समझने, विभिन्न पद्धतियों और नियमों के फायदे–नुकसानों का आकलन करने और समूह/फेडरेशन की दृष्टि के लिए सबसे सही विकल्प चुनने की क्षमता मिलेगी।
- समूह के भीतर समता के मुद्दों को समझना। यह देखना कि स्वयं सहायता समूह जाति, वर्ग, धर्म, यौनिकता, विकलांगता व वैवाहिक स्थिति जैसी अन्य कसौटियों पर कितना समावेशी है।
- ऋण, नेतृत्त्व और शैक्षणिक अवसरों तक पहुंच जिनको निर्धारित करने में साक्षरता की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है।

स्वरूप और तौर–तरीकों से संबंधित इनपुट्स का महत्त्व ऐसे संदर्भ में काफी बढ़ जाता है जहां वित्तीय कार्यकुशलता के लक्ष्यों को हासिल करने के लिए समरूपता पर बहुत ज़्यादा ज़ोर दिया जा रहा है।

किसी मंच की संरचना से जुड़े मुद्दे ऐसे परिवेश में महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं जहां दिनोंदिन अधिकाधिक संघीय संरचनाएं अस्तित्व में आ रही हैं। इस परिवेश में काम–काज की संस्कृति और बुनियादी रूपरेखा, दोनों महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं।

समूह का एजेंडा

इन शैक्षणिक प्रक्रियाओं से समूह को अपने एजेंडा तय करने में मदद मिलेगी जिससे गरीब औरतों के सुदृढ़ीकरण के लिए समूह और ज़्यादा सम्पूर्ण और समावेशी एजेंडा विकसित कर सकता है। इस श्रेणी में जो इनपुट्स उपलब्ध कराए जाएंगे उनका मकसद यह सुनिश्चित करना होगा कि एस.एच.जी. सदस्याएं समूह में एक ऐसी सम्पूर्ण एप्रोच की ज़रूरत को स्वीकार करें जिसमें आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक क्षेत्रों से जुड़े न्याय व समानता के परस्पर एक–दूसरे को पुष्ट करते आयामों को संबोधित किया जा सकता है। इस संदर्भ में संकुचित दृष्टि से परिभाषित कार्यकुशलता–केंद्रित वित्तीय एजेंडा से पैदा होने वाले खतरों को समझने की ज़रूरत भी शामिल होगी। इन इनपुट्स से एस.एच.जी. सदस्याओं को यह समझने में भी मदद मिलनी चाहिए कि महिलाओं के लिए ऐसा सहयोगी वातावरण क्या हो सकता है जिसमें महिलाएं अपनी ज़िंदगी में पेश आने वाले अन्याय और असमानता के मुद्दों को बेहिचक समूह के सामने ला सकें।

इन इनपुट्स से एस.एच.जी. सदस्याओं के पास समूह का एजेंडा तैयार करने में ज़्यादा योगदान देने की क्षमता आ जाएगी। इस श्रेणी के इनपुट्स का मकसद यह तय कर देना नहीं है कि समूह को कौन–से मुद्दों और कौन–सी चिंताओं को उठाना चाहिए। उनका मकसद समूह को इस बात के लिए तैयार करना होगा कि समूह न्याय व समानता के एजेंडा को अपने कार्यभारों के केंद्र में रखे और उनके महत्त्व में कमी न आने दे। यह बात इसलिए महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि इन समूहों के बाहरी परिवेश में सक्रिय कई संस्थागत ताकतें बाकी सारे विषयों के मुकाबले केवल वित्तीय कार्यकुशलता के एजेंडा पर ही ज़ोर देती रहेंगी। सदस्याओं को यह पहचानने के लिए भी इनपुट्स की ज़रूरत होगी कि समूह के सामने मुद्दे लाने की क्षमता भी बाहरी परिवेश से जुड़े कारकों तथा महिलाओं के भीतर आंतरिकीकरण की प्रक्रियाओं से तय होती है जिनको चुनौती देने के लिए ऐसी परिस्थितियां रचनी होंगी जिनके सहारे महिलाएं समूह को सहायता प्रदान करने वाली परिधि के रूप में स्वीकार करने को तैयार हो जाएं।

परिवार

परिवार से संबंधित शैक्षणिक एजेंडा में एस.एच.जी. सदस्याओं को निम्नलिखित के बारे में जानकारी और समझ मुहैया कराने पर ज़ोर दिया जाएगा :

- घरेलू अर्थव्यवस्था में महिलाओं का योगदान, खासतौर से अवैतनिक या भुगतान रहित श्रम, और लैंगिक श्रम विभाजन के संदर्भ में उनका योगदान। साथ ही इस बात पर भी विचार किया जाएगा कि परंपरागत लैंगिक श्रम विभाजन में बदलाव के साधन क्या हो सकते हैं।
- ऋण सहित विभिन्न संसाधनों पर नियंत्रण।
- कर्ज़ा चुकाने का बोझ।
- महिलाओं के खिलाफ हिंसा।

इन इनपुट्स से एस.एच.जी. सदस्याओं को जेंडर आधारित कायदे–कानूनों पर सवाल खड़ा करने और उन्हें चुनौती देने में मदद मिलेगी ताकि वे विश्राम और अपनी शारीरिक सुरक्षा सहित विभिन्न संसाधनों पर पहले से ज़्यादा नियंत्रण हासिल कर सकें। अपनी

प्रतिष्ठा और पारिवारिक अर्थव्यवस्था में अपने योगदान के बढ़ते भाव से महिलाओं को घर की देखभाल करने की एकमात्र ज़िम्मेदारी को चुनौती देने में भी मदद मिलेगी।

बाज़ार/अर्थव्यवस्था

बाज़ार/अर्थव्यवस्था से संबंधित शैक्षणिक प्रक्रियाओं का मकसद एस.एच.जी. सदस्याओं को इस बात के लिए तैयार करना होगा कि वे अपनी आजीविका सुरक्षा पर असर डालने वाले विभिन्न कारकों को समझने के लिए स्थानीय आजीविका परिस्थितियों का विश्लेषण करें। इस प्रकार आजीविकाओं की जो समझ विकसित हो वह सम्पूर्ण होनी चाहिए, उसमें शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे आयामों के साथ बनने वाले संबंधों को शामिल किया गया हो। इस विश्लेषण के आधार पर एस.एच.जी. सदस्याओं को आजीविका सुदृढ़ीकरण के साधन चुनने के योग्य बनाया जा सकता है और वे विविध विकल्पों में से सही विकल्प का चुनाव कर सकती हैं। इस श्रेणी में जो विकल्प होंगे उनमें आयवर्द्धक/सूक्ष्म उद्यम पर संकीर्ण फोकस से आगे बढ़ते हुए प्राकृतिक संसाधनों तक पहुंच व नियंत्रण के सुदृढ़ीकरण पर भी ध्यान दिया जाएगा। इन इनपुट्स में संसाधनों के प्रबंधन की क्षमता व ज्ञान बढ़ाने तथा संसाधनों पर स्वामित्व व अधिकार की समझ उपलब्ध कराने पर ज़ोर दिया जाएगा। इस तरह की समझ को सामने रखते हुए ही ऋण तक पहुंच से वर्तमान एवं नई आर्थिक गतिविधियों से और अधिक मुनाफा सुनिश्चित करने में मदद मिल सकती है।

शोषणमुक्त शर्तों पर ऋण तक पहुंच के महत्त्व को देखते हुए एस.एच.जी. सदस्याओं को इस बात की समझ होनी चाहिए कि बैंक की मूल अवधारणा क्या होती है और वित्तीय व्यवस्थाओं की शर्तें और तरीके क्या होते हैं। एस.एच.जी. सदस्याओं को ऋण की शर्तों और उसकी ब्याज दर सहित विभिन्न चीज़ों के बारे में वित्तीय संस्थानों से सौदेबाजी करने की क्षमता भी प्रदान की जानी चाहिए।

आयवर्द्धन और उत्पादन के क्षेत्र में महिलाओं के क्षमता विकास के लिए उत्पादन के ऐसे आयामों का समावेश भी ज़रूरी है जिनमें उबाऊ कामों में कमी, तकनीकी चयन व सुधार, व्यावसायिक स्वास्थ्य, टिकाऊ विकल्पों को प्रोत्साहन तथा स्थानीय मालों के इस्तेमाल के ज़रिए लागत में कमी आदि शामिल हैं। ऐसी गतिविधियों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए जो स्थानीय स्तर पर व्यावहारिक हों ताकि महिलाएं काम की शर्तों को संभाल सकें, उन्हें अपने हिसाब से व्यवस्थित कर सकें और किसी दूरस्थ खरीददार या बिचौलिए पर निर्भर रहने की बजाय सामूहिक सौदेबाजी से लाभ अर्जित कर सकें। कहने का मतलब यह नहीं है कि महिलाओं को स्थानीय सीमा से बाहर के दायरों में दाखिल न होने दिया जाए। बल्कि हमारा ज़ोर इस बात पर है कि उनकी ओर से काम करने के लिए किसी और की मदद लेने की जगह यही बेहतर होगा कि उत्पादन और उत्पादों पर उनका नियंत्रण हो और प्रत्यक्ष अंतसंबंध जैसे केंद्रीय कारकों के ज़रिए महिलाओं को अपनी मौजूदगी और सशक्तीकरण के लिहाज़ से ज़्यादा फायदा मिले। महिलाओं को स्थानीय स्तर पर ही लाभ पहुंचाने के लिए मूल्य संवर्द्धन भी एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। सशक्तीकरण के उद्देश्यों को हासिल करने के लिए केवल उत्पादन क्षमता में सुधार ही काफी नहीं है। उन्हें यह समझने के लिए भी योग्य बनाया जाना चाहिए कि बाज़ार में उनकी उपज किन आधारों और शर्तों पर खपती है। कार्यात्मक और प्रबंधकीय आयामों के प्रति जागरूकता और जानकारी हो तो महिलाओं

को अपने हितों पर नज़र रखने में आसानी होगी, भले ही वे चाहें तो अपनी ओर से एक बिचौलिए को भी तैनात कर सकती हैं।

बाज़ार के साथ बनने वाले संबंधों के विश्लेषण में समूह को केवल वस्तुओं और सेवाओं की उत्पादक के रूप में नहीं बल्कि उपभोक्ताओं के रूप में भी देखा जाना चाहिए जिन उत्पादों का सभी उपभोग करते हैं, उनको सामूहिक रूप से जुटाने के विकल्प ढूंढ़े जाने चाहिए। जिन उत्पादों के लिए औरतें अब तक बाज़ार पर निर्भर रहती थीं, उनकी जगह स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों की व्यवस्था और प्रबंधन को प्राथमिकता देना महिलाओं के लिए व्यावहारिक विकल्प साबित हुआ है। समूहों ने कई बार सरकारी विभागों से इस बात के लिए बातचीत चलायी है कि चारे की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए या मछली, आदि हासिल करने के लिए उन्हें ज़मीन और तालाब पट्टे पर दिए जाएं। जहां ऐसा हुआ है वहां अकसर अपेक्षा से ज़्यादा भी पैदा हुआ है जिसको महिलाएं स्थानीय स्तर पर बेचकर आय अर्जित करती हैं। महिलाओं ने सामूहिक गतिविधियां चलाने के लिए संसाधनों को एक जगह इकट्ठा करने का विकल्प भी आजमाया है। मिसाल के तौर पर, उन्होंने व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से सब्ज़ियां उगाकर उन्हें बाज़ार में बेचा है। इसीलिए, जिन अधिकांश ग्रामीण गरीबों की आजीविका प्राकृतिक एवं साझा संसाधनों पर आधारित है उनके लिए ऐसे विकल्पों की खोज की जानी चाहिए जो स्थानीय स्तर पर व्यावहारिक भी हों और टिकाऊपन व स्वावलंबन की कसौटी पर भी खरे उतरते हों। जब बाहरी ताकतों और बाज़ार पर नाना प्रकार की निर्भरता से लैस विकल्पों का चुनाव किया जाता है तो उन पर महिलाओं का कोई नियंत्रण नहीं रहता।

प्रोत्साहन एजेंसियां और सरकार

एस.एच.जी. सदस्याओं को ऐसे शैक्षणिक इनपुट्स उपलब्ध कराए जाएं जिनमें प्रोत्साहक एजेंसियों के द्वारा बनाए गए समूहों को ज़्यादा स्वायत्तता देने की ज़रूरत को रेखांकित किया जाए तथा उन्हें और ज़्यादा स्वायत्तता हासिल करने के प्रयास करने की क्षमता दी जाए।

स्वयं सहायता समूहों को सरकार से और ज़्यादा उत्तरदायित्व की मांग करने के अपने अधिकार का पता होना चाहिए। इससे न केवल उन्हें अपनी मौजूदा स्थिति का आकलन करने की योग्यता मिलेगी बल्कि यह समझने में भी आसानी होगी कि सरकार की ओर से नागरिकों को क्या मुहैया कराया जाना चाहिए। उत्तरदायित्व की मांग करने की योग्यता हासिल करने के लिए समूहों को निर्वाचित प्रतिनिधियों और नौकरशाही सहित अभिशासन संरचनाओं को समझने और उसके क्रियाविधान के विविध आयामों को समझने की भी ज़रूरत है। संबंधित व्यक्तियों और उनके कार्यस्थलों से परिचित हो जाने के बाद पहुंच प्रारम्भिक रुकावटों को दूर करने में मदद करती है क्योंकि महिलाओं को संक्षिप्त संवाद और मुलाकात से भी काफी साहस मिलता है। जिस परिवेश में महिलाओं के लिए अपनी मांगों को मनवाना बहुत मुश्किल होता है वहां एस.एच.जी. सदस्याओं को सुनवाई के विभिन्न मंचों की जानकारी दी जानी चाहिए और विभिन्न साधनों से अवगत कराया जाना चाहिए ताकि सरकार से उनकी मांगों को पूरा कराया जा सके। महिलाओं को उनके अधिकारों और स्वामित्व की बेहतर समझ तथा सरकार के बारे में एक पर्याप्त दृष्टि उपलब्ध करायी जानी चाहिए। मिसाल के तौर पर, उन्हें पता होना चाहिए कि साझा ज़मीन, लघु उपज, वन, घास भूमियों, राजस्व भूमि और संरक्षित वनों आदि के बारे

में सरकारी कायदे–कानून क्या हैं और उनके अधिकार क्या हैं।

शैक्षणिक एजेंडा में इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि लोकतंत्र के स्तंभ के रूप में पंचायती राज संस्थानों का क्या महत्त्व है। एस.एच.जी. सदस्याओं की मदद के लिहाज़ से यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है क्योंकि इसके ज़रिए वे पंचायतों को अपनी ज़रूरतों पर सकारात्मक रूप से विचार करने के लिए प्रेरित कर सकती हैं। इससे राज्य द्वारा स्वयं सहायता समूहों के दुरुपयोग के खतरे पर भी अंकुश लगेगा क्योंकि ऐसी सूरत में स्थानीय अभिशासन संस्थानों की उपेक्षा होने लगती है। परंपरागत पंचायतों के साथ महिलाओं के संवाद भी ज़रूरी है। इससे यह सुनिश्चित करने में भी मदद मिलेगी कि महिलाओं के अधिकारों का हनन न हो और अन्याय या शोषण की घटनाओं में ये संस्थान उनकी ओर से पैरवी करें।

माइक्रो क्रेडिट के पीछे निहित व्यापक संदर्भ को समझना

और आखिर में, शैक्षणिक एजेंडा का एक महत्त्वपूर्ण पहलू इस समझ से जुड़ा हुआ है कि आज के व्यापक परिदृश्य में माइक्रो क्रेडिट को विकास की इतनी बड़ी रणनीति क्यों माना जा रहा है। इससे महिलाओं को गरीबी व सशक्तीकरण के लक्ष्यों को हासिल करने के लिए अपनी ज़रूरतों को संबोधित करने के उद्देश्य से एक समावेशी एजेंडा तैयार करने और मनवाने में मदद मिलेगी। इस बात को भी शैक्षणिक एजेंडा में शामिल किया जाए कि माइक्रो क्रेडिट प्रक्रिया में महिलाओं पर ही इतना ज़्यादा ज़ोर क्यों दिया जाता है। इन शैक्षणिक अवसरों की विषयवस्तु में 'खुद–ब–खुद सशक्तीकरण ', 'समरूपता' आदि अवधारणाओं के रूप में माइक्रो क्रेडिट के तर्क को समझने की ज़रूरत पूरी होगी। यह बात इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है ताकि महिलाएं अपने अधिकारों और अपने दावों को साकार करने के लिए, आवाज़ उठाने में ज़्यादा सक्षम हों। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एस.एच.जी. सदस्याओं को यह भी पता होना चाहिए कि बहुत सारी संस्थागत ताकतें किस प्रकार माइक्रो क्रेडिट से लाभ उठा रही हैं जबकि यह पूरी परिघटना उनकी बचत और कर्ज़ा चुकाने की उनकी काबिलियत व मज़बूरी की बुनियाद पर टिकी हुई है।

सरकार के लिए सिफारिशें

महिलाओं की अधीनस्थता और गरीबी, दोनों की जड़ें गहरी हैं और ये जटिल परिघटनाएं हैं। स्वयं सहायता समूहों के रूप में महिला समूहों के ज़रिए माइक्रो क्रेडिट की उपलब्धता से जेंडर और वर्गीय असमानताओं को संबोधित करने की प्रक्रिया में तो मदद मिल सकती है लेकिन यह व्यवस्था सशक्तीकरण की रणनीतियों का विकल्प नहीं बन सकतीं जिससे लैंगिक अन्याय को चुनौती देने के लिए सामूहिक विश्लेषण और कार्रवाई की संभावना पैदा होती है। न ही माइक्रो क्रेडिट की व्यवस्था को रोज़गार संवर्द्धन और गरीबों के हित में संसाधनों के पुनर्वितरण जैसी गरीबी उन्मूलन रणनीतियों का विकल्प माना जा सकता है। उदाहरण के लिए, इसका आशय यह है कि सामाजिक क्षेत्र में होने वाले खर्चे पर कोई कटौती नहीं की जानी चाहिए क्योंकि स्वयं सहायता समूह देश के नागरिकों के मूलभूत अधिकारों का विकल्प नहीं बन सकता। स्वयं सहायता समूहों को प्रोत्साहन देने की व्यवस्था इन अधिकारों की सुरक्षा के लिए सरकार की व्यापक रणनीति का हिस्सा ही हो सकती है। सरकार को पर्याप्त संसाधनों का निवेश करना चाहिए और रचनात्मक ढंग से

योजना तैयार करनी चाहिए जिससे महिलाओं की अधीनस्थता और गरीबी की समस्या को समग्रतावादी ढंग से संबोधित किया जा सके। स्वयं सहायता समूहों के भीतर ही निम्नलिखित सिफारिशों पर तत्काल ध्यान दिया जाना चाहिएः

सशक्तीकरण और समानता की समग्रतावादी सोच

इस बारे में स्पष्ट रहना ज़रूरी है कि स्वयं सहायता समूहों से संबंधित नीतियों और उनसे पैदा होने वाले कार्यक्रमों में सशक्तीकरण व समानता के तत्त्वों को शामिल किया जाए, अपेक्षित उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया गया हो। सामाजिक और आर्थिक सशक्तीकरण के बीच कृत्रिम विभाजन को बढ़ावा देने की बजाय ज़रूरत इस बात कि है कि महिलाओं के हालात को मान्यता देते हुए एक समग्रतावादी विकास प्रक्रिया को बहाल किया जाए।

आजीविका पद्धतियों को अपनाना

- उद्यम गतिविधियों की संकुचित परिभाषा (जिसमें हमेशा नई, अव्यवहारिक आयवर्द्धक गतिविधियों को ही शामिल किया जाता है) को विस्तार प्रदान करते हुए आजीविका–केंद्रित पद्धतियों की परिभाषा विकसित की जानी चाहिए। आजीविका की मौजूदा परिस्थितियों की रूपरेखा तैयार कर लेने के बाद ही कार्यक्रमों की शिनाख्त की जानी चाहिए। इसमें हस्तक्षेपों की शिनाख्त करने के लिए सामाजिक–सांस्कृतिक रूपरेखा तैयार करना और अधिकारों की स्थिति को शामिल किया जाना चाहिए।
- जो आर्थिक गतिविधियां चुनी जा रही हों उनके स्वरूप और व्यावहारिकता का पता लगाने के लिए सर्वेक्षण किया जाना चाहिए। ऐसी अव्यावहारिक गतिविधियों के चयन को रोकने के लिए सख्त कदम उठाए जाएं जिनसे आजीविका सुदृढ़ीकरण में मदद नहीं मिलती। इसकी बजाय संसाधनों को आय में वृद्धि, नियंत्रण और संपदाओं पर स्वामित्व के लिए निवेश किया जाना चाहिए।

समग्र क्षमता निर्माण का अधिकार

- प्रोत्साहक एजेंसियां जो क्षमता निर्माण इनपुट्स मुहैया करा रही हैं वे केवल एजेंसियों के प्रतिनिधियों या समूह नेताओं के लिए ही सीमित न हों। जहां तक इनपुट्स के स्वरूप की बात है, समूहों की सभी सदस्याओं को साल में कम से कम पन्द्रह दिन के इनपुट्स ज़रूर मुहैया कराए जाएं। इन इनपुट्स का कम से कम 50% समय लैंगिक न्याय, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, कानूनी अधिकार आदि मुद्दों के लिए निर्धारित होना चाहिए। शुरुआती चरण में एस.एच.जी. सदस्याओं के प्रशिक्षण के लिए ऐसे महिला संगठनों को अनुबंधित किया जाना चाहिए जिनके पास लैंगिक न्याय के क्षेत्र में काम करने का उल्लेखनीय अनुभव रहा है।
- इस क्रम में महिला सामाख्या कार्यक्रम के साथ जुड़ाव महत्त्वपूर्ण साबित हो सकता है क्योंकि जेंडर प्रशिक्षण के क्षेत्र में महिला समाख्या कार्यक्रम का काफी अनुभव रहा है। प्रोत्साहक एजेंसियों के प्रतिनिधियों को ध्यान में रखते हुए प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण की प्रक्रिया तभी शुरू होनी चाहिए जब प्रशिक्षण की परिकल्पना और रूपरेखा तैयार हो चुकी हो।
- राष्ट्रीय स्तर पर प्रशिक्षण का एक मूलभूत पाठ्यक्रम फ्रेमवर्क तैयार किया जाए। इसमें

स्थानीय स्तर पर रचनात्मकता और बदलावों की गुंजाइश तो रहेगी लेकिन इस पाठ्यक्रम फ्रेमवर्क के ज़रिए जेंडर और समानता के विषयों पर एक गहन क्षमता निर्माण सुनिश्चित करने में मदद ज़रूर मिलेगी। पाठ्यक्रम फ्रेमवर्क की रूपरेखा तैयार करने की ज़िम्मेदारी संयुक्त रूप से ऐसे लोगों को दी जाए जिनके पास जेंडर के क्षेत्र में काम करने का पर्याप्त अनुभव है और जिनके पास स्वयं सहायता समूहों का भी अनुभव रहा है।

समग्रतावादी पद्धति के अनुसार संकेतक तय करना

एस.एच.जी. कार्यक्रम के लिए ऐसे सशक्तीकरण और समानता आधारित संकेतक विकसित किए जाएं जो समग्रतावादी पद्धति पर आधारित हों और जिनमें कार्यक्रम के क्रियान्वयन के आयामों को ध्यान में रखा गया हो। मसलन, इस बात पर लगातार नज़र रखी जानी चाहिए कि लिये गए ऋण का प्रयोग करने के बारे में निर्णय लेने और उससे पैदा होने वाली संपत्तियों पर का महिलाओं को कितना अधिकार मिलता है। क्योंकि इस परिघटना में निर्धनतम तबकों को शामिल नहीं किया जा रहा है इसलिए इन संकेतकों में इस बात का भी आकलन किया जाना चाहिए कि माइक्रो क्रेडिट कार्यक्रमों में दलितों, आदिवासियों और मुसलमानों जैसे हाशियाई समुदायों सहित गरीबों का किस हद तक समावेश हो पा रहा है।

टिकाऊ साक्षरता अवसरों तक पहुंच

- साक्षरता का एस.एच.जी. सदस्याओं की सूचना एवं दृष्टिकोण निर्माण आवश्यकताओं और भूमिकाओं से सीधा संबंध होना चाहिए। प्रोत्साहक एजेंसियों को ऐसे पाठ्यक्रम तैयार करने होंगे जो खास तौर से एस.एच.जी. सदस्याओं की ज़रूरतों को पूरा करते हों।
- यह सुनिश्चित करने की ज़िम्मेदारी एस.एच.जी. कार्यक्रम चलाने वाली प्रोत्साहक एजेंसी के ऊपर होनी चाहिए हालांकि इसके लिए वह प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों से सहायता ले सकती है।
- साक्षरता कार्यक्रमों में ऐसे संकेतकों को ज़रूर शामिल किया जाना चाहिए जिनके ज़रिए साक्षरता क्षमता के प्रयोग और स्थायित्व पर लगातार नज़र रखी जा सके।
- एस.एच.जी. कार्यक्रमों के साक्षरता वाले तत्त्व के लिए पर्याप्त संसाधन उपलब्ध कराए जाएं और इनकी अवधि आवश्यकता के अनुरूप लम्बी होनी चाहिए। अतीत में फटाफट साक्षरता प्रदान करने के लिए चलाए गए साक्षरता कार्यक्रमों के अनुभवों से पता चलता है कि ऐसे प्रयोगों से प्रतिभागियों को स्थायी साक्षरता के स्तर तक पहुंचाना बहुत मुश्किल होता है।

महिला संकट कोष तथा महिला हिंसा के विरूद्ध पहल

स्वयं सहायता समूहों को प्रोत्साहित करने वाली सभी एजेंसियों (बैंक, माइक्रो फाईनेन्स संस्थान, सरकारी विभाग, स्वयंसेवी संस्थाएं, फंडिंग एजेंसियां) को पंचायत स्तर पर महिला संकट कोष की स्थापना करनी चाहिए और उसमें योगदान देना चाहिए। इस कोष का प्रबंधन स्वयं सहायता समूहों के हाथ में हो और इसके ज़रिए हिंसा, स्वास्थ्य, भोजन आदि के विषय में महिलाओं की आपातकालिक आवश्यकताओं को पूरा किया जाए। स्वयं सहायता समूहों की महिला सदस्यों से उम्मीद की जानी चाहिए कि वे इस कोष के प्रति स्वामित्व का भाव विकसित करने के लिए

उसमें नाममात्र का ही सही, कुछ योगदान ज़रूर दें।

- ऐसी संस्थागत प्रणालियां विकसित की जाएं जिनसे स्वयं सहायता समूहों को सुनवाई प्रक्रियाओं तक पहुंच प्रदान करने में मदद मिलेगी। ऐसी प्रक्रियाओं की रूपरेखा महिला विरोध हिंसा निषेध विधेयक की रोशनी में तैयार की जा रही है।
- इन कार्यक्रमों को महिला एवं बाल विकास विभाग (D.W.C.D.) जैसे मौजूदा कार्यक्रमों के साथ जोड़ा जाना चाहिए। इससे डीडब्ल्यूसीडी को भी हिंसा पीड़ित महिलाओं को सहायता प्रदान करने के लिए अपने लक्ष्य को पूरा करने में मदद मिलेगी।

ऋण से प्राप्त संपदाओं का स्वामित्व

सरकारी नीतियों के ज़रिए यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि माइक्रो क्रेडिट के प्रयोग से जो संपदाएं अस्तित्व में आती हैं वे औरतों के नाम पर हों। आंध्र प्रदेश में यह नीति पहले ही लागू की जा रही है।

सरकारी योजनाओं के बारे में सूचना का अधिकार

स्वयं सहायता समूहों के रूप में सरकार को एक ऐसा मंच मिला है जिसके ज़रिए सरकार इस बारे में जानकारियों मुहैया करा सकती है कि एस.एच.जी. सदस्याएं सरकारी योजनाओं से किस तरह जुड़ सकती हैं और उनसे लाभ उठाने में जो रुकावटें आ रही हैं उनको दूर करने के लिए क्या कदम उठा सकती हैं।

सरकारी योजनाओं के लिए एस.एच.जी. का इस्तेमाल बंद हो

सरकार को स्वयं सहायता समूहों पर बोझ डालने की बजाय अपने बुनियादी ढांचे और डिलीवरी प्रणाली में निवेश करना चाहिए। बिल और प्रयोक्ता शुल्कों की वसूली के लिए स्वयं सहायता समूहों का बिल्कुल इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए।

वित्तीय संस्थान

भारतीय रिज़र्व बैंक को इस आशय के दिशानिर्देश जारी करने चाहिएं कि विभिन्न बैंक अपने बकाया कर्ज़ों की वसूली के लिए स्वयं सहायता समूहों का इस्तेमाल न करें। इस बारे में नियम बनाए जाएं कि माइक्रो फाईनेन्स संस्थान (एम.एफ.आई.) कितनी ब्याज दर वसूल कर सकते हैं और कर्ज़ वसूली के लिए क्या तरीके अपना सकते हैं ताकि ऋण तक महिलाओं की पहुंच वित्तीय टिकाऊपन की दलीलों और माइक्रो क्रेडिट संस्थानों के संभावित मुनाफे की बजाय समता और न्याय के सिद्धांतों पर आधारित हो। इस तरह की किसी भी नियमन प्रणाली में यह स्पष्ट होना चाहिए कि नियम किस बारे में बनाए जा रहे हैं जिससे स्वयंसेवी संस्थाओं को सशक्तीकरण और गरीबी उन्मूलन के लिए प्रयोग करने वाली स्वयंसेवी संस्थाओं या ऐसी अन्य प्रोत्साहक एजेंसियों पर मुनाफा/कार्यकुशलता–केंद्रित सोच को थोपने के खतरे से बचा जा सके। नियमन प्रणाली के उद्देश्य और रूपरेखा का निर्धारण एक परामर्श प्रक्रिया में हो जिसमें महिला संगठनों तथा एस.एच.जी. कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में सक्रिय स्वयंसेवी संस्थाओं की सक्रिय सहभागिता रहे।

स्वयंसेवी संस्थाओं को सहायता

स्वयंसेवी संस्थाओं जैसे जो प्रोत्साहक निकाय न्याय व समानता को सुगम बनाने वाली प्रक्रियाओं को साकार करना चाहते हैं, उन्हें सरकार और फंडिंग एजेंसियों से सहायता मिलनी चाहिए जिससे वे एक सुगमतावर्द्धक वातावरण मुहैया कराने और स्वयं

सहायता समूहों की कार्यप्रणाली विकसित करने की भूमिका सही ढंग से निभा सकें। उन्हें सारा बोझ औरतों के कंधों पर डालकर व्यावहारिकता साबित करने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए।

एस.एच.जी. तथा महिलाओं की स्थिति पर समिति

स्वयं सहायता समूहों और महिलाओं की स्थिति के बारे में विचार करने के लिए एक समिति का गठन किया जाना चाहिए। इस समिति में ऐसे जाने–माने बुद्धिजीवियों और प्रेक्टिशनर्स को शामिल किया जाए जिनके पास महिला सशक्तीकरण, गरीबी और आजीविका से जुड़े मुद्दों पर पर्याप्त अनुभव रहा है। इस स्वायत्त, उच्च स्तरीय समिति को ये ज़िम्मेदारियां सौंपी जाएं:

- माइक्रो क्रेडिट के बारे में मौजूदा दृष्टि, नीतियों और कार्यक्रमों की समीक्षा करके यह पता लगाना कि वे महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकारों को किस हद तक संबोधित कर पा रहे हैं।
- यह समिति एस.एच.जी. कार्यक्रमों के फ्रेमवर्क, पद्धति और रूपरेखा के बारे में सिफारिशें दें और इन बदलावों को प्रभावी बनाने के लिए व्यापक नीतिगत एवं कार्यक्रम परिवेश में ज़रूरी बदलावों के बारे में सुझाव दे। यह समिति इस बारे में सिफारिशें दे कि सरकार को किस तरह आंकड़े इकट्ठा करने चाहिएं जिससे माइक्रो क्रेडिट आधारित कार्यक्रमों में सुधार लाया जा सके। फिलहाल निम्नलिखित क्षेत्रों में सूचनाओं का अभाव दिखायी देता है:
  - चालू (निर्जीव हो चुके समूहों के अलावा) स्वयं सहायता समूहों की संख्या
  - गरीबी उन्मूलन पर माइक्रो क्रेडिट का वित्तीय प्रभाव
  - निर्धनतम तबकों का समावेश
  - ऋण लेने वाली महिलाओं/समूहों की संख्या
  - क्षमता निर्माण से संबंधित आंकड़े : ये इनपुट्स किस हद तक और किसे उपलब्ध कराए जा रहे हैं, उनका स्वरूप क्या है, उनमें न्याय व समता के मुद्दों पर कितना समय दिया गया है।
  - ऋण जारी करने की पद्धति और नियमों के बारे में आंकड़े : औपचारिक और ऐसे तौर–तरीके जो लिखित नहीं हैं लेकिन जिन्हें अपनाया जा रहा है।
  - स्वयं सहायता समूहों के असर का आकलन करने वाले संकेतकों से संबंधित मौजूदा मेक्रो आंकड़ों की पहचान और विश्लेषण। इस क्रम में गरीबी पर अंकुश, विवशता में पलायन, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, हाशियाई समूहों के समावेश आदि से संबंधित व्यापक आंकड़ों को शामिल किया जा सकता है।
  - यह समिति ऐसे संकेतक तैयार करने की प्रक्रियाओं के बारे में सिफारिश देगी जिनके आधार पर रोज़गार और समानता के स्तर पर प्रक्रिया की निगरानी की जा सके।

परिशिष्ट 1

द्वितीयक दस्तावेज़ों की समीक्षा

हमारा अध्ययन एक ऐसे समय पर सामने आया है जब विभिन्न एस.एच.जी. कार्यक्रमों और मॉडलों को काम करते हुए काफी समय हो चुका है। यहां हम उनके रिकॉर्ड्स और अनुभवों, अन्य शोधकर्ताओं द्वारा उनके विश्लेषणों का सार–संकलन करना चाहते हैं और इस प्रकार खुद भी मौजूदा दलीलों एवं प्रभाव विश्लेषणों को समझना चाहते हैं।

अनुभव और अवधारणात्मक फ्रेमवर्क

एस.एच.जी. व माइक्रो क्रेडिट प्रक्रियाओं में सक्रिय लोगों द्वारा किए गए दस्तावेज़ीकरण और अनुसंधानों से इस क्षेत्र में जेंडर, सशक्तीकरण, विकास और उसके मौजूदा व बदलते तौर–तरीकों के बारे में वर्तमान रुझानों, दृष्टिकोणों और अनुभवों को समझने में मदद मिलती है। इस दस्तावेज़ीकरण में जो मौजूदा प्राथमिकताएं दिखायी देती हैं उनसे अंतर्निहित धारणाओं का पता चलता है और यह स्पष्ट होता है कि मौजूदा विमर्श स्वयं सहायता की एक सीमित सोच पर आधारित है।

माइक्रो क्रेडिट कार्यक्रमों के कार्यात्मक आयामों और उनकी सफलता एवं रणनीतियों पर बेहिसाब साहित्य उपलब्ध है। इस क्रम में स्वयंसेवी संस्थाएं सबसे आगे दिखायी देती हैं। उन्होंने समूह निर्माण और गोलबंदी व एकजुटता की ज़रूरत तथा गरीबों तक पहुंचने की ज़रूरत पर ध्यान केंद्रित किया है। इन संस्थाओं ने माइक्रो क्रेडिट प्रक्रियाओं की सीमाओं के पार जाकर स्वयं सहायता समूहों के संदर्भ की भी व्याख्या की है। इन दस्तावेज़ों[1] में विकास के नज़रिए में समुदाय को केंद्र में रखते हुए लोकतांत्रीकरण की व्यवस्थाओं व संस्थानों के विकास पर ध्यान दिया गया है। शिक्षा जैसे विकास संबंधी एजेंडा को इन प्रक्रियाओं में शामिल करने को स्वयं सहायता समूहों के उद्देश्य का हिस्सा माना जाता है जिसके ज़रिए महिलाएं और उनके समुदाय अभिशासन के एजेंडा को संबोधित कर सकते हैं और सेवाओं तक पहुंच हासिल कर सकते हैं। माइराडा (M.Y.R.A.D.A.) की "ब्लू बुक"[2] इस पहलकदमी के कार्यात्मक और वैचारिक आधार को बड़ी बारीकी से सामने लाती है। इस दस्तावेज़ में दो तरह के स्वयं सहायता समूह बताए गए हैं। एक, जो एकजुटता पर आधारित हैं और दूसरे, जो एक पूर्वनिर्धारित कार्यक्रम डिलीवरी को ध्यान में रखकर बनाए गए हैं। माइराडा ने स्वयं सहायता समूह की अवधारणा के आधारभूत आयामों को एक ऐसे सहमेल समूह (एफिनिटी ग्रुप) के रूप में परिभाषित किया है जिसमें विकास के लिए समुदाय आधारित सहभागी

[1] फर्नांडीज़ ए.पी. : दि माइराडा एक्सपीरियंस : ऑल्टरनेट मैनेजमेंट सिस्टम्स फॉर सेविंग्स एंड क्रेडिट फॉर दि रूरल पूअर, पहला संस्करण 1994, दूसरा संस्करण 1998.
[2] फर्नांडीज़ ए.पी. : वही।

कार्रवाइयों तथा आजीविका के उद्देश्य से संबंध बनते हैं। इस परिभाषा में स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका सामाजिक मध्यस्थता की दर्शायी गई है। फर्नांडीज़ का कहना है कि अगर इन प्रक्रियाओं की उपेक्षा की जाए तो "माइक्रो क्रेडिट एक व्यापक तबाही" भी बन सकता है।[3] सहभागी प्रभाव मॉनिटरिंग[4] पर माइराडा की पुस्तक सामुदायिक संसाधन प्रबंधन में भूमिका के लिए स्वयं सहायता समूहों के संस्थागत सुदृढ़ीकरण की ज़रूरत पर ज़ोर देती है और पाठक को इस प्रयोग में विकेन्द्रीकृत अभिशासन संरचना की ओर बढ़ने की निहित संभावनाओं पर विचार करने के लिए विवश करती है। इस दस्तावेज़ में जेंडर के सवाल पर माइराडा की दिलचरूपी लैंगिक समानता फ्रेमवर्क के मद्देनज़र महिलाओं की सहभागिता से शुरू होती है हालांकि उसमें महिला आंदोलन के प्रयासों से जुड़ने की कोशिश दिखायी नहीं देती। माइराडा ने देश भर में अपने समूहों को प्रशिक्षण देने के लिए जो प्रशिक्षण सामग्री तैयार की है उसमें जेंडर समानता और शिक्षा जैसे शीर्षकों को प्रशिक्षण सामग्री एवं मैनुअल्स के रूप में तैयार किया गया है।

स्वयं सहायता समूहों पर केंद्रित प्रदान के दस्तावेज़ों में समूह निर्माण और संगठन को आजीविका संबंधी समाधानों तथा गरीबी को संबोधित करने के लिए पूर्वशर्त के रूप में पेश किया गया है। इसमें स्वयं सहायता समूहों के इर्द–गिर्द निर्मित सामूहिक प्रक्रियाएं सौदेबाजी और बदलाव की प्रक्रियाओं और इनपुट्स की डिलीवरी का स्रोत दिखायी देती हैं। यह सामग्री अलग–अलग क्षेत्रों में सीखने के साधनों के तौर पर आनुभविक और कार्यात्मक रणनीतियों से लेकर पद्धतिगत और विनिमयात्मक सामग्री तक फैली हुई है। पद्धतिगत और विनिमयात्मक सामग्री का मकसद स्थानांतरण, स्तरोन्नयन और गुणवत्ता सुधार जैसे मुद्दों को संबोधित करना है जिनमें महिला शिक्षा के लिए व्यवस्था में सुधार के लिए फोकस के साथ शैक्षणिक उपकरणों के विकास को शामिल किया गया है। हाल ही में प्रभाव आकलन और कई विषयवार शीर्षकों को भी जोड़ा गया है जिनको स्वयं सहायता समूहों के काम का सुदृढ़ीकरण करने के लिए संबोधित करना ज़रूरी है। इन विषयों को "विकास के एक विशिष्ट क्षेत्र में ज्ञान की विशिष्ट सीमाओं को विस्तार प्रदान करने" के लिहाज़ से शामिल किया गया है।[5] इस संदर्भ में हाल ही में एक उल्लेखनीय कदम यह उठाया गया है कि हेल्ज़ी नोपोनेन[6] के साथ मिलकर संगठनों की विश्लेषणात्मक संस्कृति का विश्लेषण किया गया है जिससे गरीबी को प्रभावित करने की उसकी क्षमता को गहराई प्राप्त हो और महिलाओं के जीवन पर उसके प्रभावों को और स्पष्ट रूप से समझा जा सके।

सेवा और डब्ल्यू.डब्ल्यू.एफ. जैसे प्रमुख महिला संगठनों ने इस क्षेत्र में अपनी–अपनी सामग्री तैयार की है। इसमें उन्होंने बताया है कि उन्होंने अपनी रणनीतियां किस तरह विकसित कीं जबकि ये संगठन मूल रूप से तो महिलाओं के अधिकारों और उन्हें मज़दूरों के रूप में पहचान दिलाने के लिए ही संगठित कर रहे थे। इन संगठनों के कामों के आधार पर नब्बे के दशक के मध्य में जो दस्तावेज़ सामने आए उनमें मज़दूर वर्गीय असंगठित क्षेत्र महिलाओं के मुद्दों और

[3] फर्नांडीज़ ए.पी. : पुटिंग इंस्टीट्यूशंस फर्स्ट इवन इन माइक्रो फाइनेंस, माइराडा, 2001.

[4] "ए रिसोर्स बुक ऑन पार्टिसिपेशन एनहांसिंग ओनरशिप सस्टेनेबिलिटी", आई.एफ.ए.डी. एवं अन्य तथा "पार्टिसिपेटरी इम्पैक्ट मॉनिटरिंग ऑफ एस.एच.जी.ज़ एंड वॉटरशेड्स", माइराडा, 1995.

[5] प्रदान वेबसाइट : http://www.pradan.net

[6] हैल्ज़ी नोपोनेन : इंटरनल लर्निंग सिस्टम्स : ए रिव्यू ऑफ एग्ज़िस्टिंग एक्पीरियंसेज़, लिंडा मायू संपादित "सस्टेनेबल डिवेलपमेंट फॉर वीमेंस एम्पावरमेंट : वेज़ फॉरवर्ड इन माइक्रो फाइनेंस" में, आईएसबीएन 81–87374–18–7, शीघ्र प्रकाश्य।

शहरी परिवेश में उनके सामने आने वाली नाना मुश्किलों से निपटने की कोशिशों के आधार पर महिलाओं को संगठित किया जा रहा था। ये कोशिशें एक ऐसे परिवेश में आकार ले रही थीं जहां असंगठित क्षेत्र की मजूदर औरतों के पास पहचान और अधिकारों का ही नहीं बल्कि ऋण और बच्चों की देखभाल जैसी न्यूनतम सेवाओं तक पहुंच का भी अभाव था। इन दस्तावेज़ों से पता चलता है कि उन्होंने इन महिलाओं को किस तरह के समाधान और सुझाव दिए हैं। स्पार्क का काम महिला–केंद्रित नज़रिए के साथ शहरी गरीबों के मुद्दों पर आधारित रहा है। संगठन के कामों को कई पर्चों में विस्तार से सूत्रबद्ध किया गया है। मुंबई में फुटपाथ पर रहने वाली औरतों को आवास के मुद्दों के इर्द–गिर्द संगठित करने में स्पार्क के प्रयास उल्लेखनीय रूप से महत्त्वपूर्ण रहे हैं। स्पार्क ने महिलाओं को बचत और ऋण गतिविधियों से जोड़ने का प्रयास किया ताकि संसाधन बचाकर वे आवासीय ऋण हासिल कर सकें। इन संगठनों की पद्धतियां गरीब औरतों और उनकी उभरती हुई ज़रूरतों पर केंद्रित हैं। इन कार्यक्रमों में बचत और ऋण एक सहायक आयाम रहा है जिसके ज़रिए महिलाओं को अपनी सामूहिक एकजुटता की बुनियादी ताकत के आधार पर अपनी ज़रूरतों को संबोधित करने के लिए संसाधनों तक पहुंच हासिल हो सके। ये संगठन जेंडर आधारित विकास प्रक्रिया में ऋण को एक अनिवार्य तत्त्व मानते हैं।

इन सारे शहरी प्रयोगों के बाद ही ग्रामीण महिलाओं की ज़रूरतों को संबोधित करने के लिए एक गांव आधारित रणनीति विकसित की गई थी। सेवा की यूनियन आधारित सदस्यता रणनीति को ग्रामीण क्षेत्रों में एस.एच.जी. आधारित रणनीति में रूपांतरित कर दिया गया जिसमें बचत के आधार पर महिलाएं सेवा बैंक से कर्ज़ा ले सकती थीं। स्पार्क की कोशिशों से स्वयं शिक्षण प्रयोग(एस.एस.पी.)[7] नामक एक नेटवर्क का गठन किया गया जो स्पार्क की कामकाजी भूमिका के इर्द–गिर्द केंद्रित था। इस नेटवर्क में बहुत सारे महिला–केंद्रित संगठन इकट्ठा हुए और उन्होंने एक–दूसरे की रणनीतियों और अनुभवों से सीखने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया। साथियों से सीखने के फ्रेमवर्क पर केंद्रित स्वयं शिक्षण प्रयोग ने नाबार्ड के साथ बैंक संपर्कों के लिए विकास की रणनीति पर चर्चा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उसने इन योजनाओं को गरीब हितैषी और महिला–केंद्रित बनाने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक[8] पर भी दिशानिर्देश जारी करने के लिए महत्त्वपूर्ण अवसरों पर दबाव बनाया।

एस.एस.पी. तथा अन्य संगठन स्वायत्त बचत एवं ऋण आधारित संघीय संरचनाओं की श्रेणी में आते हैं जो विकास संबंधी मुद्दों, अधिकारों, अभिशासन से जुड़े मुद्दों को संबोधित करने के लिए महिला सदस्याओं के संघों के रूप में विकसित हुए हैं। दूसरी तरफ सेवा के पास एक तरफ तो बैंकिंग का संस्थागत फ्रेमवर्क है और दूसरी तरफ सेवा यूनियन अपनी सदस्याओं को स्वरोज़गार युक्त महिला और असंगठित क्षेत्र में सक्रिय महिलाओं के रूप में पहचान दिलाने और उनके अधिकारों को साकार करने के लिए काम करती है। इसलिए बहुत सारे संगठनों द्वारा तैयार किए गए मैनुअल्स और सामग्री में हमें समुदायों और महिलाओं द्वारा चिन्हित की गईं ज़रूरतों के आधार पर तमाम तरह के मुद्दे दिखायी देते हैंः संपर्क ने सूक्ष्म उद्यम विकास के क्षेत्र में सक्रिय महिलाओं को बड़े मुद्दों को

[7] "एक्सपेरिमेंट इन सेल्फ हैल्प एजूकेशन एंड म्यूचुअल लर्निंग नेटवर्क।"
[8] एस.एस.पी. बैंक लिंकेज रिपोर्ट।

संबोधित करने के लिए तैयार करने के उद्देश्य से पुस्तिकाओं की एक शृंखला तैयार की है, जिसे "महिला सशक्तीकरण" शृंखला का नाम दिया गया है।[9] बहुत सारे दस्तावेज़ों में ऐसा दिखायी देता हैं कि स्वयंसेवी संस्थाएं माइक्रो क्रेडिट योजनाओं को क्रियान्वित और प्रबंधित करना चाहती हैं और बाद में उन्हें सूक्ष्म उद्यम की ओर बढ़ाना चाहती हैं। हाल ही में सूक्ष्म उद्यमों की स्थापना के लिए आजीविका सुदृढ़ीकरण और क्षमता विकास साधनों की पड़ताल पर ज़्यादा फोकस दिखायी दिया है। यह बात बेसिक्स आदि के दस्तावेज़ों में दिखायी देती है। इसके अलावा हमने ऐसे दस्तावेज़ भी देखे जिनमें आंध्र प्रदेश की ए. पी.एम.ए.एस. जैसी सहायता एजेंसियों द्वारा अपनायी गयी प्रभाव आकलन पद्धतियों पर प्रकाश डाला गया है। लेकिन सरकारी दायरे में जो सामग्री उपलब्ध है उसमें बचत, ऋण और बुककीपिंग पर ही ज़ोर रहा है। इन दस्तावेज़ों में विभिन्न स्रोतों को नज़दीक लाने के लिए सरकारी योजनाओं के स्वरूप पर जानकारियां दी गई हैं। इनमें विभिन्न योजनाओं के नियमों, कामों और सिद्धांतों तथा अपेक्षित परिणामों के बारे में बताया गया है। यहां उपलब्ध सामग्री और प्रशिक्षण रिपोर्टों का बड़ा हिस्सा प्रतिभागियों को इस योग्य बनाने पर केंद्रित है कि वे माइक्रो क्रेडिट योजनाओं को क्रियान्वित करते हुए रिकॉर्ड–कीपिंग और लेखांकन के स्तर तक की जानकारी हासिल करें और समूहों को टिकाए रखने में अपनी भूमिका को समझें। बैंक से संपर्क, उद्यम और अन्य परिधियों से जुड़ाव जैसे मुद्दों पर उपलब्ध सामग्री काफी भ्रामक है।

वेलुगू, एस.ए.पी.ए.पी. और स्वशक्ति जैसे कार्यक्रमों में स्थानीय स्तर के कार्यकर्त्ताओं को ध्यान में रखते हुए बहुत सारी प्रशिक्षण एवं शिक्षा सामग्री तैयार की गई है। वेलुगु कार्यक्रम की सामग्री में नाना प्रकार के शीर्षकों पर फ़िलप चाट्र्स, पुस्तिकाएं और मैनुअल्स उपलब्ध हैं। इस योजना के मैनुअल मुख्य रूप से इस बारे में हैं कि कार्यक्रम किन कामों और संरचनागत फ्रेमवर्क को संस्थागत रूप देना चाहता है और क्रियान्वयन की अवधि में किन चुनौतियों को संबोधित करना चाहता है। क्योंकि परियोजनाएं अपने आप समयबद्ध हैं और उनकी एक निश्चित पूर्वकल्पित रणनीति है इसलिए प्रशिक्षण सामग्री में इस दृष्टि से निवेश किया जाता है कि वे मुख्य संदेशों का प्रसार करने और कार्यक्रम के लिए संस्थागत फ्रेमवर्क की स्थापना की गति को तेज करें।

गरीबी पर अंकुश और सशक्तीकरण की चुनौतियां

नब्बे के दशक की शुरुआत से ही बहुत सारे संगठन समूह निर्माण के ज़रिए इस गरीबी की समस्या को संबोधित करने का प्रयास कर रहे हैं। बाद में तैयार किए गए प्रोत्साहन कार्यक्रमों और नाबार्ड[10] की सामग्री में भी इन उदाहरणों का उल्लेख किया गया है। इन मुद्दों को संबोधित करने और एस.एच.जी. बैंक संपर्कों को प्रोत्साहित करने के लिए नाबार्ड के कार्यक्रमों में इन उदाहरणों का हवाला आया है। हाल के साहित्य में माइक्रो क्रेडिट के आधार पर चलने वाले गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में महिलाओं की शैक्षणिक एवं सशक्तीकरण संबंधित ज़रूरतों पर फोकस दिखायी देता है। ये रुझान फिशर, श्रीराम एवं अन्य के पर्चों में उल्लेखनीय रूप से दिखायी देते हैं। इन लेखकों का कहना है कि माइक्रो क्रेडिट तथा संबंधित

[9] स्मिता प्रेमचंदर, मार्च 2001, व्यूज़ 6 पुस्तिकाएं। इस शृंखला में शामिल थीम्स इस प्रकार हैं : सूक्ष्म उद्यम विकास, व्यवसाय काउंसलिंग, टकराव, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन में जेंडर व नेतृत्त्व, अनुसंधान उपकरण के रूप में लीडरशिप इमेजिंग का प्रयोग, जनता का सशक्तीकरण या संस्थानों का सशक्तीकरण।

[10] नाबार्ड मैनुअल 2000–01.

संस्थागत सेवाओं के क्षेत्र में सेवा प्रदाता के नज़रिए की बजाय जनकेंद्रित नज़रिए पर ज़्यादा ज़ोर दिया जाना चाहिए।[11] उन्होंने चार माइक्रो फाईनेन्स संस्थानों के विश्लेषण के आधार पर भारत में माइक्रो फाईनेन्स क्षेत्र के संदर्भ में मौजूदा स्थिति, संभावनाओं और भविष्य की पड़ताल की है। उन्होंने माइक्रो फाईनेन्स प्रयोगों के विकास संबंधी परिणामों का विश्लेषण करते हुए माइक्रो फाईनेन्स की बहसों में विकास संबंधी विमर्श को नए सिरे से खड़ा किया है। उन्होंने इस आशय का एक महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रस्तुत किया है कि गरीबी पर अंकुश और माइक्रो क्रेडिट के बीच संबंध साबित नहीं हुआ है और यह दावा सही नहीं दिखायी देता कि इससे लोगों की आय बढ़ेगी, सूक्ष्म उद्यम के ज़रिए गरीबों की संपदाओं में इज़ाफा होगा। लेखकों ने चिंता के साथ इस रुझान को चिन्हित किया है कि माइक्रो फाईनेन्स उद्योग तेज़ी से तकनीकी–प्रबंधकीय नज़रिए की गिरफ़्त में फंसता जा रहा है। इसमें यह बताने के लिए बहुत सारे तकनीकी मैनुअल्स और पाठ्यक्रम तैयार किए गए हैं कि माइक्रो फाईनेन्स सेवाओं का प्रबंधन कैसे किया जाए और वित्तीय टिकाऊपन व प्रसार का लक्ष्य कैसे प्राप्त किया जाए। उनका कहना है कि इस प्रक्रिया में विकास का वह आवेग क्षीण पड़ता जा रहा है जिसने माइक्रो फाईनेन्स की परिघटना को जन्म दिया था। माइक्रो फाईनेन्स क्षेत्र में पैदा हो रहे सांगठनिक मुद्दों के लिहाज़ से स्वयं सहायता समूह ज़्यादा स्वायत्त और लोकतांत्रिक पाए गए हैं, उनसे लागत टिकाऊपन और सशक्तीकरण से संबंधित परिणाम "ग्रामीण मॉडल" के मुकाबले ज़्यादा फायदेमंद रहे हैं। ग्रामीण मॉडल में रेजिमेंटेशन पर ज़्यादा फोकस दिखायी देता है। लेखकों का कहना है कि स्वयं सहायता समूह महिलाओं के लिए औपचारिक व अनौपचारिक लोकतांत्रिक परिधियों से जुड़ने की संभावना उपलब्ध कराते हैं और इसलिए यह ज़रूरी है कि माइक्रो फाईनेन्स क्षेत्र को वित्तीय परिणामों की बजाय विकास संबंधी लक्ष्यों के आधार पर तय किया जाए और क्षमता विकास का फ्रेमवर्क विकसित किया जाए जिसमें विकास को माइक्रो फाईनेन्स व्यवहारों के मध्य में रखा जा सके।

जहां फिशर और श्रीराम माइक्रो फाईनेन्स बहसों को विकास संबंधी परिणामों के विश्लेषण के इर्द–गिर्द केंद्रित करते हैं वहीं दूसरी ओर यू.एन.डी.पी.[12] द्वारा कराए गए अध्ययनों में भी माइक्रो फाईनेन्स बहसों में जेंडर और सामाजिक विकास के मुद्दों को संबोधित करने की ज़रूरत रेखांकित की गई है, विशेष रूप से इस संदर्भ में कि स्वयं सहायता समूहों के सदस्यों में ज़्यादातर महिलाएं हैं और विकास के क्षेत्र में कोई भी प्रयास केवल तभी सफल हो सकता है जब उसमें एक जेंडर आधारित और समग्रतावादी एप्रोच अपनाई जाएगी। इसी पुस्तक में एस.एस.पी., महाराष्ट्र[13] पर लिखे गए एक पर्चे में उसकी शैक्षणिक पद्धति और समावेशी एजेंडा के रूप में कार्यक्रम के सकारात्मक बिंदुओं की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए इस बात की भी चेतावनी दी गई है कि अगर महिलाओं के विषय में एजेंसी और अधिकार पर केंद्रित क्षमता विकास और सामाजिक विश्लेषण की प्रक्रियाओं की उपेक्षा की जाए तो नुकसान भी हो सकता है। इस पुस्तक में माइक्रो क्रेडिट प्रक्रिया का समावेश करते हुए सशक्तीकरण की वैकल्पिक रणनीतियां और

[11] फिशर, थॉमस एवं एम.एस. श्रीराम : बियॉंड माइक्रोक्रेडिट, पुटिंग डिवेलपमेंट इनटू माइक्रो फाइनेंस। विस्तार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली 2002.
[12] बुर्रा, नीरा; जॉय देशमुख रणदिवे; रंजनी के. मूर्ति : माइक्रोक्रेडिट पॉवर्टी एंड एम्पावरमेंट लिंकिंग दि ट्रायड, सेज पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2005.
[13] पार्थसारथी, सोमा के. : अवेयरनेस एक्सेस एंड एजेंसी : एक्पीरियंसेज़ ऑफ स्वयं शिक्षण प्रयोग, माइक्रोक्रेडिट फॉर वीमेंस एम्पावरमेंट, बुर्रा एवं अन्य, संपादित, सेज पब्लिकेशंस।

अंतर्दृष्टि उपलब्ध कराते हुए ऐसे माइक्रो क्रेडिट कार्यक्रम तैयार करने के लिए अवधारणात्मक फ्रेमवर्क सुझाया गया है जो गरीबों एवं औरतों के प्रति संवेदनशील हो। इस फ्रेमवर्क में गरीब परिवारों के अधिकारों में इज़ाफे को इस प्रकार देखा गया है कि गरीब परिवार एक टिकाऊ ढंग से आत्म–उत्पादन कर सकते हैं और औपचारिक स्थायी कर्ज़दारी के एक और चक्र से बचने का रास्ता निकाल सकते हैं।

कुछ पर्चों (जैसे रामचंद्रन और नाथ) में फील्ड में मिलीं सीखों और प्रक्रियाओं का विश्लेषण किया गया है। इन पर्चों में जेंडर और समता की दृष्टि से प्रक्रियाओं के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डाला गया है और इससे स्वायत्तता पर पड़ने वाले निहितार्थों का विश्लेषण किया गया है। उड़ीसा में केयर की सहायता से चलाए जा रहे कार्यक्रमों के बारे में प्रेमचंदर[14] द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट में सुधारों के एजेंडा के फ्रेमवर्क में महिलाओं को शामिल करते हुए व्यापक आर्थिक पुनर्गठन प्रक्रिया को समझने की कोशिश की गई है। लेखिका ने इस बात को समझाने का प्रयास किया है कि किस तरह एक आंदोलन से दूसरा आंदोलन शुरू हुआ (साक्षरता से शराब विरोधी आंदोलन, उसके बाद पुदुपुलक्ष्मी)[15], और ऐसे व्यापक मुद्दों की शिनाख्त की है जिनके कारण कार्यक्रम सफल हुए, जैसे, बहुत सारे समूहों का समावेश और नौकरशाही बंधनों से मुक्ति आदि। लेकिन सबसे उल्लेखनीय यह तथ्य था कि लक्ष्यों को तय किए बिना कार्यक्रम की परिधि और गति के बीच एहतियात भरा संतुलन रखा गया था और गहन प्रभाव उत्पन्न करने के लिए क्षेत्रीय स्तर पर पर संपूर्ण प्रभाव का लक्ष्य तय किया गया था। सरकारी अफसरों की भूमिका, कड़ी शर्तों और स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका के आधार पर भी कई सीखें निकाली गईं हैं। यह विश्लेषण स्वयं सहायता समूहों में टिकाऊपन और सशक्तीकरण की संभावनाओं को रेखांकित करता है। नाथ[16] ने स्वयं सहायता समूहों में दो तरह के अभिशासन मॉडल चिन्हित किए हैं और एकल मॉडल (न्यूक्लियर मॉडल) की श्रेष्ठता बताई है। उनके मुताबिक स्वायत्तता के पैमाने पर यह मॉडल बेहतर दिखायी देता है। इसमें अवधारणा, सदस्यों पर नियंत्रण, नेतृत्त्व, लाभ और निगरानी की बेहतर संभावनाएं दिखायी देती हैं। इसमें सदस्यों के क्षमता निर्माण के लिए शैक्षणिक पैकेज और आंकिक साक्षरता की ज़्यादा बेहतर रूपरेखा दिखायी देती है और विभिन्न प्रणालियां मौखिक क्षमताओं के पूरक की हैसियत में रखी गई हैं। इस तरह के समूहों को ज़्यादा लाभ मिलता है और समानता के मुद्दों पर उनका ध्यान ज़्यादा रहता है। ऐसे मॉडल का प्रभाव वहां ज़्यादा गहरा होता है जहां डिज़ाइन रणनीतियां सशक्तीकरण के उद्देश्यों के अनुरूप हैं और केवल प्रशासकीय मुद्दों पर केंद्रित नहीं हैं। इनमें औरतों के जीवनस्तर पर फोकस रहता है और सक्रिय सहभागिता वाली निर्णय प्रक्रिया को प्रोत्साहित किया जाता है। नाथ का निष्कर्ष है कि "सभी सामाजिक समूहों की आय और आजीविका में सुधार के लिए ऋण अनिवार्य रूप से सबसे सही विकल्प नहीं हो सकता और समुदाय के लिए अधिक प्रासंगिकता के प्रभावी उद्देश्यों को पूरा करने के लिए उसे अन्य आयामों के साथ जोड़कर देखा जाना चाहिए।" सरकार द्वारा प्रोत्साहित एक और माइक्रो क्रेडिट कार्यक्रम के अध्ययन में नाथ ने आंध्र

[14] प्रेमचंदर, स्मिता।

[15] रामचंद्रन, विमला : क्रिटिकल कॉंशसनेस, क्रेडिट एंड प्रोडक्टिव असेट्स : की टू सस्टेनेबल लाइवलीहुड (वीमेंस मोबीलाइज़ेशन इन नेल्लोर एंड अनंतपुर डिस्ट्रिक्ट्स, आंध्र प्रदेश) यूनीसेफ, नई दिल्ली एवं ग्रामीण विकास विभाग, आंध प्रदेश सरकार, 1996.

[16] नाथ, मीनाक्षी : थ्रिफ़्ट एंड क्रेडिट ग्रुप्स इन एपी एंड कर्नाटका ए रिव्यू; ऑक्सफेम इंडिया ट्रस्ट, हैदराबाद, 2000.

प्रदेश के यू.एन.डी.पी. कार्यक्रम का गरीबी उन्मूलन की दृष्टि से विश्लेषण किया है।[17] पूंजी और प्रशिक्षण से इनपुट्स की डिलीवरी में सशक्तीकरण की अवधारणा के अभाव से कार्यक्रम का प्रभाव गहरे तौर पर प्रभावित हुआ है। परियोजना की भारी लागत के कारण सदस्यों पर बाहरी कर्ज़े बहुत ज़्यादा हो गए हैं और साथियों का दबाव शिथिल पड़ गया है जिसके चलते आखिरकार अपेक्षित लाभ प्राप्त करने के बाद समूह विखंडित हो जाता है। इस प्रयोग में गांव और समुदाय के भीतर ऐसे सघन निवेश के कारण गैर–बराबरी बढ़ जाती है।

पिट[18] एवं अन्य द्वारा किए गए एक अध्ययन में पाया गया है कि ऋण कार्यक्रमों से बाल स्वास्थ्य पर मात्रात्मक स्तर पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़े हैं, खास तौर से यदि कार्यक्रम महिलाओं की सहभागिता पर आधारित हो। इसमें तीन समूह आधारित ऋण कार्यक्रमों ग्रामीण बैंक, बांग्लादेश ग्रामीण विकास समिति (बी.आर.ए.सी.) और बांग्लादेश ग्रामीण विकास बोर्ड (बी.आर.डी.बी.) का सहभागियों के जेंडर के आधार पर विश्लेषण किया गया है और उससे बच्चों के पोषण पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया गया है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि यदि इन ऋण कार्यक्रमों में हिस्सा लेने वाली महिलाएं हों तो इससे परिवार की देखभाल पर गंभीर असर पड़ते हैं। एक और पर्चे में पिट[19] ने इस बात की पड़ताल की है कि कर्ज़े के कारण उजरती पुरुष श्रमिकों पर किस तरह के असर पड़ते हैं। इस बारे में ठोस साक्ष्य मौजूद हैं कि समूह आधारित माइक्रो क्रेडिट कार्यक्रमों में कृषि अनुबंधों का अनुपात उल्लेखनीय रूप से बदल जाता है। खुदकाश्त खेती में इज़ाफा होता है, स्वरोज़गार के रूप में खेतों में पुरुषों का ज़्यादा समय गुज़रने लगता है और उजरती खेतिहर श्रम बाज़ार में पुरुषों का समय घटने लगता है। ज़मीन के तय किराए पर ऋण का कोई गहरा असर नहीं पड़ता। यह एक तरह का अनुबंध आधारित संबंध हैं जो बांग्लादेश के भूमिहीन गरीबों में प्रायः दिखायी नहीं देता। इस आधार पर लेखक का निष्कर्ष है कि माइक्रो क्रेडिट द्वारा वित्तपोषित गैर–कृषि स्वरोज़गार परियोजनाएं परिवारों को ज़्यादा जोखिम वाले कृषि अनुबंधों को चुनने के लिए प्रेरित करती हैं। हुसैन और कबीर ने बांग्लादेश में कृषि क्षेत्र के रोज़गारों में गिरावट के रुझान को चिन्हित किया है।[20] उन्होंने एस.एच.जी. ऋणों को महिलाओं की इस आकांक्षा से जोड़कर दिखाया है कि एक से अधिक विवाह के हालात में उनकी लड़कियां स्वावलंबी हों, कपड़ा क्षेत्र में लड़कियों के लिए रोज़गार के अवसर बढ़ें। केलकर और नाथन[21] ने इसी तरह की स्थिति बांग्लादेश की महिलाओं में पायी जिन्होंने अपनी आकांक्षाओं और बदलाव लाने की क्षमताओं के बारे में अपनी बात कही। लेखकों ने महिलाओं के दावों का बारीकी से विश्लेषण करते हुए अंततः यह निष्कर्ष दिया है कि माइक्रो क्रेडिट वह चीज़ नहीं है जो होने का उसका दावा रहा है। सिडनी, हाशमी और राइली[22]

[17] नाथ, मीनाक्षी : वही, आंध्र प्रदेश में यूएनडीपी परियोजना।

[18] पिट, एम.; खांडेकर, एस.; चौधरी, उस्मान एच.; मिलिमेट, डी.एल.; प्रोविडेंस; क्रेडिट प्रोग्राम्स फॉर दि पूअर एंड दि न्यूट्रीशनल स्टेटस ऑफ चिल्ड्रन इन रूरल बंगलादेश, ब्राउन विश्वविद्यालय, जनसंख्या अध्ययन एवं प्रशिक्षण केंद्र, 1999.

[19] पिट. एम. : दि इफेक्ट ऑफ नॉन एग्रीकल्चरल सेल्फ एम्प्लॉयमेंट क्रेडिट ऑन कॉट्रेक्चुअल रिलेशंस एंड एम्प्लॉयमेंट इन एग्रीकल्चर : दि केस ऑफ माइक्रोक्रेडिट प्रोग्राम्स इन बांग्लादेश, ब्राउन विश्वविद्यालय, जनसंख्या अध्ययन एवं प्रशिक्षण केंद्र, 1999.

[20] हुसैन नाओमी, कबीर : अचीविंग यूनिवर्सिटी पी.ई. एंड एलीमिनेटिंग जेंडर डिस्पेरिटी, ई.पी.डब्ल्यू., 4 सितंबर 2004, 4093.

[21] केलकर गोविंद, देवनाथन : वी वर इन फायर, नाऊ वी आर इन वॉटर : माइक्रोक्रेडिट एंड जेंडर रिलेशंस इन रूरल बांग्लादेश, रौनक जोहान, आई.एच.डी. वर्किंग पेपर सीरीज संख्या 19.

[22] सिडनी आर; हाशमी एस.एम.; राइली ए. : दि इंफ़्लूएंश ऑफ वीमेंस चेंजिंग रोल्स एंड स्टेट्स इन बांग्लादेश फर्टिलिटी ट्रांज़ीशनः एवीडेंस फ्रॉम ए स्टडी ऑफ क्रेडिट प्रोग्राम्स एंड कंट्रासेप्टिव यूज़, वर्ड डेवलेपमेंट 25 (4) : 563–575 (1997)

ने बांग्लादेश के जननक्षमता संक्रमण में औरतों की बदलती भूमिकाओं और हैसियत के प्रभावों का विश्लेषण किया है। उन्होंने गुणात्मक आंकड़ों की पड़ताल करते हुए यह बताया है कि किस तरह ऋण योजनाएं महिलाओं के सशक्तीकरण में सहायता दे रही हैं और अन्य कौन से कारक हैं जो गर्भ निरोधकों के इस्तेमाल को प्रभावित कर सकते हैं। लेकिन इनमें से किसी भी अध्ययन में महिलाओं के श्रम और संसाधनों का इस्तेमाल पर टिप्पणी करते हुए महिलाओं के बारे में अपनाए जा रहे उपयोगितावादी दृष्टिकोण पर सवाल खड़े नहीं किए हैं।

नेपाल के सी.एम.एफ. कार्यक्रम[23] के एक अध्ययन में लेखक ने इस बात को समझने का प्रयास किया है कि महिलाओं को निशाना बनाने और महिलाओं द्वारा ऋण को रोकने व नियंत्रित करने के बीच क्या संबंध है। इस अध्ययन में ऋण वितरण के बाद उद्यमशीलता के लिए खास समर्थन नहीं पाया गया है। माइक्रो फाईनेन्स में हिस्सा लेने वाले सहभागियों का माइक्रो फाईनेन्स सेवाओं के ज़रिए प्राप्त ऋण और बचत पर एक जैसा नियंत्रण नहीं रहा है; महिलाओं का माइक्रो फाईनेन्स संस्थानों के ज़रिए हासिल किए गए ऋणों की बजाय खुद अपनी बचत पर ज़्यादा नियंत्रण रहा है और विवाहित महिलाओं के पास ऋणों पर सबसे कम व्यक्तिगत नियंत्रण होता है। महिला मुखिया वाले परिवारों में अपनी बचत और ऋण पर ज़्यादा नियंत्रण पाया गया है। गोइत्स और गुप्ता[24] ने इस बात की जांच की है कि महिलाओं की ओर से ऋण की लगातार अधिक मांग और कर्ज़ा चुकाने की उनकी स्पष्ट चाह को अकसर नियंत्रण और सशक्तीकरण का छद्म संकेतक मान लिया जाता है। लेकिन औरतों को मिलने वाले कर्ज़ों का बहुत बड़ा हिस्सा उनके पुरुष संबंधियों के नियंत्रण में रहता है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि "ऋण प्रदर्शन" के प्रति ज़रूरत से ज़्यादा आग्रह फील्ड वर्कर्स को मिलने वाले उत्प्रेरकों को प्रभावित करता है और हो सकता है इस आशय की चिंताओं को भी बेमानी बना दे कि अपनी निवेश संबंधी गतिविधियों पर महिलाओं को सार्थक नियंत्रण हासिल करना चाहिए। गोइत्स ने नेतृत्त्व प्रशिक्षण, महिलाओं को उत्पादन निपुणता के ज़रिए उत्पादन में सुधार की जगह सामाजिक विकास इनपुट्स की तरफ ले जाने, साक्षरता और अंक ज्ञान में ज़्यादा लंबे निवेश और सोच में बदलाव के लिए प्रशिक्षण जैसे विभिन्न तत्त्वों के समावेश पर आधारित एक समग्र एप्रोच अपनाने की सलाह दी है।

एक और अध्ययन में यह सवाल खड़ा किया गया है क्या महिलाएं कीमत चुकाए बिना स्वतंत्रता प्राप्त कर सकती हैं। इस अध्ययन में घर के भीतर महिलाओं के साथ पुरुषों के हाथों होने वाली हिंसा और पुरुषों पर महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक निर्भरता का माइक्रो क्रेडिट कार्यक्रमों[25] के साथ संबंधों की पड़ताल करते हुए यह निष्कर्ष दिया गया है कि माइक्रो क्रेडिट योजनाओं से महिलाओं के साथ पुरुषों द्वारा होने वाली हिंसा पर अलग–अलग प्रभाव पड़े हैं। इन योजनाओं के कारण महिलाओं की आर्थिक भूमिकाओं के मजबूत होने से पुरुषों द्वारा हिंसा के समक्ष उनकी दुर्बलता में कमी आ सकती है और उनका जीवन ज़्यादा सार्वजनिक बन सकता है। लेकिन अगर महिलाएं जेंडर आधारित कायदे–कानूनों को चुनौती देती हैं तो

[23] सी.एम.एफ., माइक्रो फाइनेंस एंड वीमेंस कंट्रोल ओवर सेविंग्स एंड लोन्स इन नेपाल (ओकेज़नल पेपर नं. 6) सी.एम.एफ., 1999.
[24] गोइत्स ए.; गुप्ता आर.: हू टेक्स दि क्रेडिट?: जेंडर, पावर एंड कंट्रोल ओवर लोन यूज़ इन रूरल क्रेडिट प्रोगाम्स इन बांग्लादेश, वर्ल्ड डिवेलपमेंट, खंड 24 (1): 45–63, 1996
[25] अंडरमाइन्ड ऑर एग्ज़ासरबेटेड बाई माइक्रोक्रेडिट प्रोग्राम्स? डेवलेपमेंट इन प्रेक्टिस, 1998.

अप्रत्यक्ष रूप से यह हिंसा बढ़ भी सकती है। जिन हालात में ये मुद्दे ज़्यादातर माइक्रो क्रेडिट कार्यक्रमों के फ्रेमवर्क का हिस्सा नहीं है वहां हिंसा की घटनाओं में इज़ाफा हो सकता है। स्कोगिंस द्वारा पेश की गई नेपाल की केस स्टडीज़[26] में इस आशय के साक्ष्य उपलब्ध कराए गए हैं कि ऋण कार्यक्रम में हिस्सेदारी से नेपाल में गरीब औरतों के सशक्तीकरण की संभावना नहीं है। क्योंकि कर्ज़ों को मुख्य रूप से पारिवारिक आजीविका गतिविधियों के लिए ही इस्तेमाल किया जा रहा है इसीलिए महिलाओं ने अपनी एक पहचान और हैसियत अर्जित की है जिसके कारण पुरुष महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर अपनी पत्नियों से सहमत होने का दावा करने लगते हैं। चेन और डोनाल्ड[27] ने भारत में सेवा बैंक के प्रभावों का आकलन किया है। सेवा बैंक सैल्फ एम्पलॉयड वीमेंस एसोसिएशन की एक सहायक शाखा है। लेखकों ने सेवा बैंक की सूक्ष्म उद्यम सेवाओं में सहभागिता के प्रभावों का दो चरणों में आकलन किया है। इस अध्ययन में कई चरांकों के आधार पर सेवा बैंक के कर्ज़दारों और बचत करने वालों की एक नियंत्रण समूह से तुलना की गई है। अध्ययन के नतीजों से पता चलता है कि इस सहभागिता से परिवार, उद्यम और व्यक्तिगत स्तर पर सकारात्मक प्रभाव पड़े हैं।

एक नवउदारवादी संदर्भ में मैक्रो लिंकेजेज़ और उसके निहितार्थ

माइक्रो क्रेडिट परिघटना को विकास के मैक्रो फ्रेमवर्क में स्थित करने वाला साहित्य काफी विविधतापूर्ण है। उसमें तरह–तरह के दृष्टिकोण व्यक्त किए गए हैं। यद्यपि इस साहित्य की मुकम्मल समीक्षा नहीं की जा सकती लेकिन जिन स्रोतों से हमें जेंडर फ्रेमवर्क के आधार पर काम करने में मदद मिली है उनको यहां संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

नब्बे के दशक की शुरुआत में मैक्रो स्तरीय कार्यक्रमों और माइक्रो क्रेडिट पर केंद्रित विकास की रणनीति से संबंधित साहित्य दो स्तरों पर सामने आया। बांग्लादेश और भारत में लिखे गए असंख्य दस्तावेज़ों के आधार पर विश्व बैंक के लिए बेनेट और गोल्डबर्ग द्वारा किए गए अध्ययन ने भी इस क्षेत्र में विश्व बैंक की रणनीति के लिए इस पद्धति के महत्त्व को रेखांकित कर दिया था।[28] इस पर्चे में पूर्वी एवं दक्षिणी एशिया की चौदह विश्व बैंक परियोजनाओं की समीक्षा की गई है और अफ्रीकी क्षेत्र के प्रयोगों से उनकी तुलना की गई है। पर्चे का निष्कर्ष है कि महिलाओं को उपलब्ध करायी जाने वाली वित्तीय सेवाओं में ऋण सबसे लोकप्रिय है हालांकि कई बार बचत को भी इस श्रेणी में रखा जा सकता है। इस अध्ययन में केवल कुछ प्रमुख सेवाओं पर ज़ोर वाले न्यूनतावादी मॉडल (जिसमें अल्पकालिक ऋण आते हैं) तथा एकीकृत मॉडल (जैसे, व्यावसायिक एवं उत्पादन प्रशिक्षण तथा तकनीकी सहायता) के बीच फर्क स्पष्ट किया गया है। अध्ययन में "सामाजिक मध्यस्थता" की भूमिका पर ज़ोर देते हुए उसे सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से हाशियाई ग्राहकों को स्वयं सहायता समूहों में संगठित करने के साधन के रूप में पेश किया गया है। सभी संबंधित पक्षों को इस मॉडल से मिलने वाले लाभों की ओर संकेत करते हुए छोटे अल्प–आय कर्ज़दारों के रूप में "वित्तीय दृष्टि से टिकाऊ आधार

[26] स्कोगिंस ए. : वीमेंस एम्पावरमेंट थ्रू माइक्रो फाइनेंस? दि केस ऑफ दि माइक्रोक्रेडिट प्रोजेक्ट फॉर वीमेन (ओकेज़नल पेपर नं. 2) सी.एम.एफ., 1999.

[27] चेन, मार्था आल्टर; डोनाल्ड एस. : असेसिंग इम्पेक्ट ऑफ माइक्रो एंटरप्राइज सर्विसेज; मैनेजमेंट सिस्टम्स इंटरनेशनल/यूएस–एड वाशिंगटन, डी.सी., 1999.

[28] बेनेट, लिन एवं माइक गोल्डबर्ग : प्रोवाइडिंग एंटरप्राइज डिवेलपमेंट एंड फाइनेंशियल सर्विसेज़ टू वीमेन अ डिकेड ऑफ एक्सपीरिएंस इन एशिया, वर्ल्ड बैंक टैक्निकल पेपर 236, वाशिंगटन, 1993.

पर जोखिमों और विनिमय लागतों को कम करते हुए" स्वयं सहायता समूहों में संगठित करने की ज़रूरत पर बल दिया गया है।

जैन ने माइक्रो क्रेडिट परिघटना का विशेष रूप से उल्लेख नहीं किया है लेकिन व्यष्टिगत आर्थिक फ्रेमवर्क में रुझानों को चिन्हित करते हुए भारत में आर्थिक सुधारों और संरचनागत समायोजन का उल्लेख करते हुए नारीवादी विमर्श[29] में बहस के दो आयामों की ओर संकेत किया है। उन्होंने इस बात को रेखांकित किया है कि नारीवादी विमर्श महिलाओं सहित विभिन्न वंचित तबकों, उनकी आजीविका, बुनियादी ज़रूरतों, मानवीयता, न्याय, समानता और शांति के पक्ष में रहा है। इसके बाद उन्होंने कहा है कि इस बहस में संरचनागत समायोजन कार्यक्रम के हिमायतियों ने विनियमन के पक्ष में दलील दी थी ताकि नीतियों को सही मायनों में गरीबों के हित में मोड़ा जा सके। दूसरी तरफ, इससे विपरीत राय रखने वालों की नज़र में सरकार द्वारा गरीबों के अनुकूल चुनाव करने की ज़िम्मेदारी छोड़ देने और उत्तर के देशों द्वारा अपनी अर्थव्यवस्थाओं को सुरक्षा प्रदान करने के लिए अपनाई गयी नीतियां नकारात्मक रुझान थे। जैन ने इन आर्थिक मार्गों पर विशेष रूप से महिलाओं के लिए पैदा होने वाले सामाजिक परिणामों को रेखांकित किया है। देव[30] ने बजट आबंटन के निहितार्थों का विश्लेषण करते हुए कहा है कि उदारीकृत होती अर्थव्यवस्था में बजट सामाजिक क्षेत्र की प्रमुख समस्याओं को संबोधित करने में विफल रहे हैं। खाद्य सुरक्षा और गरीबी उन्मूलन के लिहाज़ से रोज़गार संवर्द्धन रणनीति महत्त्वपूर्ण होती है लेकिन उसको संबोधित नहीं किया गया और एस.जी.आर.वाई. आबंटन में कटौतियां की गईं जबकि उसको सूखे के प्रभावों पर अंकुश लगाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता था। वह मानते हैं कि केंद्र से राज्यों को मिलने वाले पैसे में गिरावट के कारण स्थिति बिगड़ रही है और अब राज्य सरकारों के पास कृषि एवं सामाजिक क्षेत्र पर खर्च करने के लिए संसाधन घटते जा रहे हैं। महिला एवं बाल विकास विभाग की एक रिपोर्ट में भी इस आशय का भय व्यक्त किया गया था कि आर्थिक सुधारों के कारण महिलाओं के लिए रोज़गारों की संभावना में जो गिरावट आ रही है उसकी भरपाई निर्यात में वृद्धि, नकदी फसलों या सेवा क्षेत्र में सुधार से भी होना मुश्किल है और कृषि क्षेत्र में आ रहे तकनीकी बदलावों से महिलाओं के लिए रोज़गार के अवसर सीमित हो गए हैं।[31] जैन ने ढांचागत समायोजन के युग में महिलाओं के लिए पूर्व शर्तों को चिन्हित किया हैः सरकार और बाज़ार को जनता के प्रति ज़्यादा जवाबदेह और महिलाओं के लिए लाभदायक बनाने के लिए समाज के सभी तबकों को संस्थागत व्यवस्थाओं को परामर्श देने और प्रभावित करने का प्रयास करना चाहिए और अभिशासन में समाज के सभी तबकों की हिस्सेदारी होनी चाहिए।

सुदर्शन और देब्रॉय ने इस बात को समझाने का प्रयास किया है कि भारत ने ढांचागत समायोजन कार्यक्रम क्यों अपनाया, उसका क्या औचित्य था और जेंडर[32] दृष्टिकोण पर उसके क्या प्रभाव पड़े हैं। उन्होंने नीतियों के स्तर पर बदलाव के ज़रिए बुनियादी

[29] जैन, देवकी : वीमेन एंड ट्रेड लिबरलाइज़ेशन साउथ एशियाज़ ऑपर्चुनिटीज़, वर्कशॉप ऑफ ग्लोबल ट्रेडिंग प्रेक्टिसेज़ एंड पावर्टी एलीविएशन इन साउथ एशिया, यूनीफेम सिडॉ कांफ्रेंस, नई दिल्ली, 1995.

[30] देव एस महेन्द्रा : एग्रीकल्चर, एम्प्लॉयमेंट एंड सोशल सेक्टर नेगलेक्टेड, ई.पी.डब्ल्यू., 5 अप्रैल 2003.

[31] अहमद, साइना : टाइम्स ऑफ इंडिया, 23 जनवरी 1994.

[32] सुदर्शन, रत्ना एवं विवेक देब्रॉय : ग्लोबल ट्रेडिंग प्रेक्टिसेज़ एंड पावर्टी एलीविएशन इन इंडिया : ए जेंडर पर्सपेक्टिव इन ग्लोबल ट्रेडिंग प्रेक्टिसेज़ एंड पावर्टी एलीविएशन इन साउथ एशिया, यूनीफेम सिडॉ कांफ्रेंस, नई दिल्ली, 1995.

ढांचे और मानव संसाधन विकास के क्षेत्र में निवेश का आह्वान किया है जिससे बाज़ार की ताकतों के संचालन के लिए उचित परिस्थितियां अस्तित्व में आएंगी। उन्होंने भारत सरकार द्वारा अपनायी गयी आयात स्थानापन्न औद्योगिक नीतियों के विपरीत प्रभावों का भी उल्लेख किया है।

उनका कहना है कि उदारीकरण की नीति का अपेक्षित परिणाम यह है कि बजट घाटे में कमी आए, सरकारी व्यय में अवरचनागत सेवाओं और सामाजिक क्षेत्र के बीच संतुलन हो, तथा वैट के आधार पर प्रत्यक्ष कर में वृद्धि हो। उन्होंने औद्योगिक नीति में लाइसेंस व्यवस्था को खत्म करने और विनियमन का सुझाव देते हुए कहा है कि सिंचाई और ग्रामीण संचार जैसे अवरचनागत निवेश या कृषि प्रदर्शन में सुधार के लिए इनपुट सब्जिडीज़ के बीच चुनाव किया जाना चाहिए। उन्होंने कहा है कि उदारीकरण की प्रक्रिया के सामाजिक निहितार्थ यह हैं कि वास्तविक वेतनों में गिरावट आयी है, खाद्य पदार्थों के परिवहन, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं पर सब्सिडी खत्म हुई है, निरपेक्ष अर्थों में गरीबी बढ़ी है (जिस पर लंबे दौर में अपेक्षतया विजय पा ली जाएगी), तथा महिलाओं के लिए गरीबी के परिणाम और तीखे हो गए हैं। वृद्धि दर और गरीबी के क्षेत्र में परिवार के भीतर आने वाले बदलावों से संसाधनों पर महिलाओं के स्वामित्व तथा उत्पादन योजनाओं तक पहुंच पर बुरा असर पड़ा है। असाक्षर सामाजिक हैसियत और पारिवारिक कामों के बोझ से उनकी सामाजिक सुरक्षा, खास तौर पर असंगठित क्षेत्र में कमज़ोर हुई है। स्वास्थ्य एवं शिक्षा व्यय में कमी, पोषण में गिरावट, कुपोषण, बाल श्रम में वृद्धि और खाद्य सब्सिडी को हटाने के ज़रिए "स्थिरीकरण की प्रक्रिया कमज़ोर तबकों को ज़्यादा नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है।" चीज़ों की कमी, दिनोदिन बढ़ती कीमतों और खाद्य फसलों की जगह नकदी फसलों को बढ़ावा मिलने से लैंगिक प्रभाव पैदा होते हैं।

एक–दूसरे में उलझी उत्पादन और पुनरुत्पादन की भूमिकाओं तथा उनके श्रम की अदृश्यता महिलाओं के श्रम की विशिष्ट पहचान है। फलस्वरूप महिलाओं का श्रम निपुणता, शिक्षा, रोज़गारों तक पहुंच, समय के लचीलेपन और सामाजिक पहुंच जैसी सामाजिक सीमाओं के कारण अवरुद्ध हो जाता है। सुधारों और उदारीकरण का महिलाओं पर ये असर हुआ है कि सामाजिक क्षेत्र तथा अवरचनागत सुविधाओं पर होने वाला खर्चा कम रह गया है। स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों की बढ़ती मांग के कारण अधिक दोहन के चलते खाद्य एवं आजीविका सुरक्षा पर बुरा असर पड़ेगा, भूमि प्रयोग और संसाधन प्रयोग में बदलाव आएंगे और वे बाज़ार–केंद्रित होते जाएंगे। नकद आय के बावजूद स्थानीय सुरक्षा एवं परिवेश पर प्रभाव पड़ेंगे क्योंकि महिलाएं कृषि क्षेत्र में ही मुख्य श्रमिकों के रूप में काम करती रहेंगी, महिलाओं की आय पर आश्रितों की संख्या बढ़ती जाएगी, खाद्य फसलों की जगह नकदी फसलों के चलन से आजीविका सुरक्षा प्रभावित होगी और स्थानीय बाज़ारों में चीज़ें न पहुंचने से कीमतें बढ़ेंगी। जब महिलाएं असंगठित क्षेत्र में सस्ते शोषण–योग्य श्रमिकों के रूप में रोज़गार ढूंढ़ती है और पुरुषों के रोज़गारों में गिरावट आती है तो घरेलू समीकरण तो बदलते हैं लेकिन श्रम विभाजन नहीं बदलता। घटती आमदनी और बढ़ती कीमतों के हालात में ये सारे मुद्दे महत्त्वपूर्ण होते जा रहे हैं और परिवारों को ज़िंदा रखने का बोझ महिलाओं पर बढ़ता जा रहा है। स्वयं सहायता समूहों के ज़रिए ऋण के आने से कर्ज़दारी का बोझ बढ़ सकता है जिसमें महिलाएं खाद्य एवं सामाजिक सुरक्षा के अभाव में

उपभोग संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अधिकाधिक संकट में फंसने लगती हैं।

आइज़ेक एवं अन्य के पर्चे में उदारीकरण के मौजूदा नज़रिए और माइक्रो क्रेडिट में अंतर्राष्ट्रीय वित्त की बढ़ती दिलचस्पी के बीच संबंध दर्शाया गया है। केरल के साक्ष्यों के आधार पर कई देशों में स्वयंसेवी संस्थाओं के ज़रिए प्रोत्साहित किए जा रहे विश्व बैंक माइक्रो क्रेडिट कार्यक्रमों की समालोचना की गई है।[33] 1997 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा विश्व बैंक की माइक्रो क्रेडिट नीति को दी गई मंजूरी को दुनिया भर में माइक्रो फाईनेन्स व्यय में नाटकीय वृद्धि के प्रस्थानबिंदु के रूप में देखा गया था जिसमें अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक कर्ज़दाता संस्थान सहायता देने वाले निकायों की मदद करने को तत्पर थे। विश्व बैंक का तर्क है कि गरीब खर्चा उठा सकते हैं और व्यावसायिक ब्याज दर चुकाने को तैयार हैं। इस दलील के आधार पर विश्व बैंक ब्याज पर सब्सिडी का विरोध करता है और प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में सब्सिडी आधारित ऋण व्यवस्था तथा परंपरागत ग्रामीण ऋण संस्थानों के विखंडन की वकालत करता है। परिणामस्वरूप संस्थागत स्तर पर विश्व बैंक, बहुराष्ट्रीय बैंकों और माइक्रो फाईनेन्स संस्थानों का एक माइक्रो फाईनेन्स उद्योग सामने आता है जो राष्ट्रीय स्तर के माइक्रो फाईनेन्स संस्थानों को कर्ज़ा देता है और वहां से स्वयंसेवी संस्थाओं को कर्ज़ा मिलता है और अंत में यह कर्ज़ा स्वयं सहायता समूहों के पास पहुंचता है।

नेफ ने माइक्रो क्रेडिट नीतियों के उद्देश्यों को बयान करते हुए विकास संबंधी प्रयासों को "नंगे पांव औरत द्वारा फीते खींचकर ऊपर उठने" के रूप में परिभाषित किया है।[34] उनका दावा है कि माइक्रो क्रेडिट मॉडल ने विकास संबंधी प्रयासों को विखंडित करने और कल्याण व्यवस्था के निजीकरण के साथ गरीब विरोधी योजनाओं के विकेंद्रीकरण का आंदोलन छेड़ दिया है। नेफ ग्रामीण बैंक की नीतियों की आलोचना करते हुए कहती हैं कि यह बैंक केवल गृह स्वामियों को ही ऋण आवेदकों के रूप में स्वीकार करता है। यह बैंक ऋण वापसी सुनिश्चित करने के लिए 'बिचौलियों' के तौर पर कामकाजी औरतों को तरजीह देता है; अगर किसी महिला ने कर्ज़ा लिया है तो उसकी बेटियों को कर्ज़ा नहीं दिया जाता है और ऋण पर महिलाओं का नियंत्रण समय के साथ घटता जाता है। उन्होंने पैट्रिक बॉण्ड (अफ्रीकन एजेंडा 95) के हवाले से बताया है कि ज़िम्बाबे के ग्रामीण मॉडल में 80% कर्ज़ वापस नहीं आते।

ग्रामीण गरीबों को सेवाएं मुहैया कराने में भारतीय माइक्रो फाईनेन्स संस्थानों के प्रदर्शन की समीक्षा[35] करते हुए रमोला और महाजन का कहना है कि दक्षिण एशिया के अन्य भागों के विपरीत यहां ग्रामीण बैंकों की शाखाएं बढ़ी हैं। उनके अध्ययन में ग्रामीण गरीबों के बारे में बैंकों के तौर–तरीकों और रवैयों से जुड़े मुद्दों तथा ग्राहकों के साथ संबंधों की प्रणालियों की पड़ताल की गई है जो ग्रामीण गरीबों तथा महिलाओं के लिए वित्तीय सेवाओं तक बेहतर पहुंच के लिए ग्रामीण जनता की पहुंच को प्रभावित करती है। रॉथ ने ग्रामीण विकास उपकरण के रूप में माइक्रो क्रेडिट की सीमाओं का अध्ययन किया है और ग्रामीण गरीबों को माइक्रो क्रेडिट उपलब्ध कराने के तीन विकल्पों की

[33] विलियम, आइज़ेक टी., चक्रवर्ती पी. एवं थम्पी वी. : वीमेन नेबरहुड ग्रुप्स : टुवर्ड्स ए न्यू पर्सपेक्टिव, सेमिनार "डीसेंट्रलाइज़ेशन, सस्टेनेबल डिवेलपमेंट एंड सोशल सिक्योरिटी;" आई.एल.ओ. में प्रस्तुत किया गया पर्चा

[34] नेफ, जीना : माइक्रोक्रेडिट माइक्रोरिज़ल्ट्स, लेफ्ट बिजनेस ऑब्ज़र्वर, अक्टूबर 1996.

[35] रमोला बी. एवं महाजन वी. : फाइनेंशियल सर्विसेज़ फॉर दि रूरल पूअर इन इंडिया, पॉलिसी इश्यूज़ ऑन एक्सेस एंड सस्टेनेबिलिटी, ए.आई.एम., मनीला, फिलीपींस, 1996, विश्व बैंक द्वारा प्रायोजित।

जांच की है।[36] राजनीतिक उद्देश्यों से प्रेरित और अंततः विफल हो जाने वाली सरकारी योजनाएं; महाजनों जैसे निजी स्रोत; और रचनात्मक विकास वित्त संस्थान उन्होंने इन तीन विकल्पों की समालोचना की है। उनका मानना है कि माइक्रो क्रेडिट योजनाओं में स्थानीय उतार–चढ़ावों को मान्यता न दिए जाने के कारण संसाधनों के अनुचित और असफल प्रयोग की स्थिति पैदा हो सकती है और यह भी हो सकता है कि एक ऐसी पद्धति सामने आए जिसमें ग्रामीण गरीबी तथा उसके कारणों के स्थानीय और विशिष्ट आधारों की उपेक्षा करते हुए माइक्रो क्रेडिट को बढ़ावा दिया जाने लगे। रानकिन का मानना है कि नेपाल में ग्रामीण ऋण वितरण की ज़िम्मेदारी व्यावसायिक बैंकों ने ग्रामीण बैंकों को सौंप दी है और महिलाएं इस आक्रामक स्वयं सहायता पद्धति का निशाना बन रही हैं।[37] इस प्रकार माइक्रो क्रेडिट एक सामाजिक नागरिकता की रचना करता है और महिलाओं की ज़रूरतों को नवउदारवाद के चश्मे से ही देखता है। इसमें राजसत्ता और जेंडर उत्पीड़न के बीच स्पष्ट संबंध दिखायी देते हैं। माइक्रो क्रेडिट को सैद्धांतिक आधार पर देखते हुए लेखक ने बाज़ारों के विनियमन के रुझान को पूंजी प्रवाह के लिए पूरक बताया है। कंवलजीत और वैशाम ने 1997 के माइक्रो क्रेडिट शिखर सम्मेलन[38] की पूर्व संध्या पर इस बात का विश्लेषण किया था कि विभिन्न निकाय माइक्रो क्रेडिट के जुलूस में इतने उत्साह से शामिल क्यों हो रहे हैं। उन्होंने पाया है कि इन निकायों को इस घटनाक्रम में "विकास को परोपकार" के रूप में देखने की बजाय "विकास को कारोबार" की लाभदायक पद्धति में ढालने की संभावना दिखायी देती है। उन्होंने पाया कि ऋणदाता संस्थानों द्वारा अपने शुल्कों को समुदायों के कंधे पर डाल देने से उनके मुनाफे में 30 फीसदी तक इज़ाफा हुआ है। लेखकों ने लाभ के माइक्रो क्रेडिट और सशक्तीकरण के लिए माइक्रो क्रेडिट के बीच फर्क करते हुए बाद वाले विकल्प पर ज़ोर देने का आह्वान किया है। उनका निष्कर्ष है कि "माइक्रो क्रेडिट हद से हद सूक्ष्म समाधानों को ही जन्म दे सकता है" और "गरीबी व बेरोज़गारी के रिसते नासूरों को भरने के लिए माइक्रो क्रेडिट" से कहीं ज़्यादा प्रयास की ज़रूरत है। उन्होंने सार्वजनिक निगरानी सुनिश्चित करने के लिए माइक्रो क्रेडिट दाताओं पर एक उचित नियामक और सुपरवाइज़री फ्रेमवर्क के लिए दलील दी है। मैक्आइज़ेक[39] के पर्चे में इस परिघटना के प्रभावों को समझने के लिए लंबी अवधि के गैर–वित्तीय आंकड़ों के पक्ष में दलील दी गयी है। उनके मुताबिक, स्वयंसेवी संस्थाओं को ऋण उपलब्धता की दिशा बदलने के लिए विकल्पों पर विचार करना चाहिए। उन्होंने केवल माइक्रो क्रेडिट की बजाय अन्य वित्तीय सेवाओं पर भी विचार करने का आह्वान किया है जिनमें गरीबों के लिए आय वृद्धि व आय सुरक्षा; पारिवारिक आय में वृद्धि आदि को शामिल किया जा सकता है। गरीबी सिर्फ आय के स्तर पर नहीं बल्कि व्यक्ति को दुर्बल बना देने के स्तर पर भी सामने आती है इसलिए अल्पकालिक जोखिमों और दुर्बलताओं पर विचार करने के लिए वित्तीय सेवाओं में लचीलापन आवश्यक है।

[36] रॉथ, जेम्स : दि लिमिट ऑफ माइक्रोक्रेडिट ऐज़ ए रूरल डिवेलपमेंट टूल, 1997.
[37] रानकिन : फेमिनिस्ट ईकॉनोमिक्स : संख्या 8(1), 1 मार्च 2002 (1–24)
[38] सिंह, कंवलजीत एवं डाफने, वैशाम : माइक्रोक्रेडिट : बैंडएड और वूंड, पी.आई.आर.जी., नई दिल्ली, 1997.
[39] मैक्आइज़ेक : एस.ए.पी. कनाडा, लैसंस फ्रॉम माइक्रो फाइनेंस एंड पावर्टी फॉर एस.पी.पी.डी., जी.डी.ए., 1997.

ई.पी.डब्ल्यू. रिसर्च फाउंडेशन स्टडीज़[40] में सामाजिक बैंकिंग की तुलना कृषि क्षेत्र, लघु उद्योग और ग्रामीण क्षेत्र में निवेश के साथ की गई है और नब्बे के दशक में बैंकों की ऐसी शाखाओं में गिरावट को दर्ज़ किया गया है जिससे एक संस्थागत शून्य पैदा हुआ है। कृष्णा एवं अन्य[41] द्वारा किए गए अध्ययन में दर्शाया गया है कि संपदा एवं कृषि प्रौद्योगिकी सुधार की सरकारी योजनाएं लघु सिंचाई योजनाओं के साथ लागू होने पर सबसे ज़्यादा लाभदायक रही हैं। उनका कहना है कि गरीबी की गर्त से बाहर निकलने वाला एक भी परिवार आई.आर.डी.पी. जैसी सुविख्यात सरकारी योजनाओं से जुड़ा हुआ नहीं था। एक और अध्ययन में बताया गया है कि आंध्र प्रदेश के गांवों में गरीबी में गिरावट आ रही है और इस आधार पर यह दलील दी है कि व्यापक पद्धतियों को अपनाने की बजाय गरीबी से बचने की पद्धतियों पर ज़ोर दिया जाना चाहिए। उनका निष्कर्ष है कि घटते रोज़गारों की स्थिति में शिक्षा महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाती। भले ही व्यापक उन्नति के लिए शिक्षा महत्त्वपूर्ण हो लेकिन एक तिहाई शिक्षित ही रोज़गार हासिल कर पाते हैं।

अवधारणात्मक निर्मितियां और नीतिगत निहितार्थ

बर्धन[42] के मुताबिक महिला दशक के बाद आए उल्लेखनीय बदलावों के बावजूद नारीवादी एजेंडा को आर्थिक विकास के एजेंडा में केवल सतही स्तर पर ही जोड़ा गया है। औरतों की गरीबी तथा व्यापक आर्थिक फ्रेमवर्क के बीच मौजूद निकट संबंधों को अकसर नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। पिछले कुछ दशकों के दौरान विकास की बहस में नीतिगत स्तर पर महिलाओं की आवश्यकताओं पर फोकस बढ़ा है। नब्बे के दशक में बाज़ार पर बढ़ते ज़ोर के चलते सरकारी प्रक्रियाओं के पांव उखड़ रहे हैं और ये मान लिया गया है कि बाज़ार गरीबी तथा लैंगिक समानता जैसे मुद्दों को भी संबोधित कर सकता है। बर्धन ने मौजूदा आर्थिक विकास के स्तंभों और मान्यताओं तथा इस नज़रिए को रेखांकित किया है कि महिलाओं को संभावनाशील मानव संसाधन के रूप में देखा जा रहा है। उन्होंने अपने पर्चे में लैंगिक भेदभाव को निम्नलिखित श्रेणियों के रूप में चिह्नित किया है– (1) अवधारणात्मक पक्षपातः उनकी राय में यह भेदभाव इस बात में निहित है कि बहुत सारे नीति निर्माता विभिन्न प्रक्रियाओं में पुरुषों और स्त्रियों को अलग–अलग रूप में देखते हैं। समानता को परिवार के भीतर देखने की बजाय तथा 'उत्पादन' की दुनिया में स्थित करने की बजाय पारिवारिक फ्रेमवर्क में देखने की वजह से समता के पीछे निहित अवधारणाएं लैंगिक अधीनस्थता की नारीवादी चिंताओं को हाशिए पर सरका दिया गया है क्योंकि यह सोच घर के भीतर मौजूद असमानताओं तथा महिलाओं की अदृश्य प्रजननशील भूमिकाओं व अवैतनिक श्रम की उपेक्षा कर देती है। (2) संरचनागत पक्षपातः जेंडर को या तो पृथक् संरचनाओं वाले लघु क्षेत्र के रूप में जोड़ लिया जाता है या मुख्यधारा की संरचनाओं पर उसका खास दबाव नहीं होता। (3) वैचारिक पक्षपातः महिलाओं को आर्थिक परिवर्तन का साधन माना जाता है न कि बदलाव को प्रभावित करने की क्षमता से लैस व्यक्ति के रूप में। "लगभग यांत्रिक ढंग से बढ़ चुके",

[40] क्रिटिकल नेगलेक्ट ऑफ सोशल बैंकिंग : पृष्ठ 20–72, 22 मई 2004.
[41] कृष्णा एवं अन्य : ई.पी.डब्ल्यू., 17 जुलाई, 2004.
[42] बर्धन, बीना : जेंडर बायसेज़ इन मैक्रोइकोनॉमिक पॉलिसीज़। ग्लोबल ट्रेडिंग प्रेक्टिसेज़ एंड पावर्टी एलीविएशन इन साउथ एशिया, यूनीफेम सिडॉ कांफ्रेंस, नई दिल्ली, 1995 में पढ़ा गया पर्चा।

"एकीकरण" और "आई.जी.ए." को महिलाओं की समस्याओं के समाधान के रूप में देखा जा रहा है क्योंकि विकास के क्षेत्र में महिलाओं की समस्याओं को उनकी सहभागिता के अभाव का परिणाम मान लिया गया है। बर्धन की राय में मुद्दा "सहभागिता के अभाव" का नहीं है बल्कि इस बात का है कि विकास की रणनीति और संरचना किस स्तर पर महिलाओं की सहभागिता को सीमित या प्रोत्साहित कर रही है। उन्होंने संसाधनों के वितरण में जेंडर अधीनस्थता और जेंडर पक्षपात के मुद्दों को संबोधित करने के लिए नीति को एक साधन के रूप में मानने वाली सोच की सीमाएं दिखा दी हैं। मायू का मानना है कि फंडिंग एजेंसियां वित्तीय स्वटिकाऊपन की संभावना के कारण माइक्रो क्रेडिट में दिलचस्पी ले रही हैं। उन्होंने इस परिघटना के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों का मुद्दा उठाया है और फंडिंग एजेंसियों के लिए मॉडल के सिद्धांतों पर सवाल खड़े किए हैं।[43] मायू की राय में डिलीवरी की लागतों की भरपाई करने के लिए भारी ब्याज दर और सेवा शुल्क, बड़े पैमाने पर काम शुरू होने के बाद तेज़ी से लाभ उठाने, कार्मिक लागतों को कम करने के लिए संकुचित फोकस, स्वैच्छिक अंशदान को आधार के रूप में अपनाने, एम.आई.एस. में सशक्तीकरण संकेतकों को शामिल करने में विफलता जेंडर के नज़रिए से महत्त्वपूर्ण दुविधाओं और बाधाओं की ओर संकेत करती है। उनका मानना है कि माइक्रो फाईनेन्स के ज़रिए सशक्तीकरण में सहायता देने के लिए जेंडर नीति में संस्थागत मेनस्ट्रीमिंग की बजाय किफायती सेवाओं पर ज़ोर दिया जाना चाहिए।[44] डिचर के पर्चे में उद्देश्यों की पड़ताल की गई है और ऐसी स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रति आलोचनात्मक रुख अपनाया गया है जो अपने वित्तीय क्रियाकलापों को बैंकों और तत्संबंधी सौदबाजी में रूपांतरित करती जा रही हैं।[45] उनका सुझाव है कि ऋण व्यवस्था को व्यावहारिक बनाने के लिए ऋण वितरण पर ज़्यादा ज़ोर देना ज़रूरी है। उन्होंने करुणा की छवि और पूंजीवाद की छवि तथा निर्धनतम तबकों के साथ जुड़ाव और ग्राहकों पर प्रभाव के बीच तनाव का उल्लेख किया है। अन्य इनपुट्स के अभाव में बहुत सारे कर्ज़दारों को कर्ज़ों का उत्पादनशील प्रयोग करने में कठिनाई आती है, उनके पास ऋण से लाभ उठाने की कम क्षमता होती है, उनके पास ज्ञान और आत्मविश्वास का अभाव होता है। टिकाऊ ऋण योजनाओं को अपनाने वाली स्वयंसेवी संस्थाएं गरीबों के साथ जुड़ाव और लोगों को बदलाव के लिए प्रेरित करने के लिहाज़ से विकास के असली फायदों को गंवाती जा रही हैं। यह सिर्फ हिसाब–किताब को प्राथमिकता देने वाली बात है। इरादों या सामाजिक प्रभावों की बजाय केवल वित्तीय अंकों की भरमार होने लगती है। इस अध्ययन में निवेश की गई पूंजी से मिलने वाले लाभ के एकमात्र मानक पर आधारित अमेरिकी पद्धति पर न केवल नैतिक सिद्धांतों की दृष्टि से सवाल खड़े किए गए हैं बल्कि इस दलील के आधार पर भी उंगली उठाई गयी है कि केवल आर्थिक औचित्य से चिपके रहने पर अकसर स्थायी सामाजिक लाभ नहीं मिलते। "डिलीवरी संस्थान की वित्तीय उपादेयता ही माइक्रो फाईनेन्स के श्रेष्ठ आचरण के लिए एकमात्र ज़रिया बन जाती है।"

लिंडा मायू ने माइक्रो क्रेडिट प्रयासों के बारे में 'बाज़ार' और 'सशक्तीकरण' के बीच भेद किया है। उन्होंने तकनीकी एवं आर्थिक उपकरण बनाम महिला

[43] मायू, लिंडा : फ्रॉम एक्सेस टू एम्पावरमेंट : जेंडर इश्यूज़ इन माइक्रो फाइनेंस, सी.एस.डी. वर्चुअल कांफ्रेंस में प्रस्तुत किया गया पर्चा, अक्टूबर 1999.
[44] मायू, लिंडा : दि मेजिक इन्ग्रेडिएंट? एम.एफ.एन. वीमेंस एम्पावरमेंट, माइक्रो क्रेडिट शिखर सम्मेलन, वाशिंगटन में पढ़ा गया ब्रीफिंग पेपर, फरवरी 1997.
[45] डिचर थॉमस एन. : क्वेश्चनिंग दि फ़्यूचर ऑफ एन.जी.ओ.ज़ इन माइक्रोफाइनेंस; जर्नल ऑफ इंटरनेशनल डिवेलपमेंट, 1996.

केंद्रित लोकतांत्रिक प्रक्रिया के प्रयोग से संबंधित तत्त्वों की रूपरेखा प्रस्तुत की है जिसमें आर्थिक हस्तक्षेपों पर फोकस सहायता और सशक्तीकरण की एक व्यापक प्रक्रिया का केवल एक हिस्सा है। जहां एक तरफ पहले वाला भाग बुनियादी तौर पर आर्थिक क्षेत्र विशेषज्ञों की समझ से चलता है वहीं दूसरी ओर बाद वाली सोच के हिमायती सामाजिक और व्यवहारगत विज्ञानों से संबंधित हैं। इन विशेषज्ञों का मानना है कि यदि गरीबी उन्मूलन तथा जीवनस्तर में सुधार के लक्ष्यों को हासिल करना है तो मनुष्य को प्रक्रियाओं के केंद्र में रखना होगा। साक्ष्यों से संकेत मिलता है कि अधिकांश कार्यक्रम महिलाओं की आय पर कोई खास असर नहीं डाल पाते। कोऑपरेटिव सहित ज़्यादातर कार्यक्रमों ने कुल मिलाकर तुलनात्मक रूप से बेहतर आर्थिक स्थिति वाली महिलाओं को ही लाभ पहुंचाया है। यह नहीं माना जा सकता कि उनकी वजह से लैंगिक असमानताओं पर कोई सकारात्मक असर पड़ा है बल्कि परिवार के भीतर आय तक बेहतर पहुंच सुनिश्चित किए बिना हो सकता है उन्होंने औरतों के काम के बोझ में इज़ाफा किया हो। महिला श्रमिकों के लिए उन्हें अन्य प्रकार की रोज़गार योजनाओं के मुकाबले अधिक लाभकारी नहीं माना जा सकता। लेखिका की दलील है कि एक तरफ लघु उद्योग क्षेत्र में विविधता और दूसरी तरफ गरीबी व गैर–बराबरी द्वारा पैदा की गई रुकावटों की जटिलता ने सफल महिला सूक्ष्म उद्यम विकास के किसी ब्लू प्रिंट की संभावना को बेहद क्षीण कर दिया है। सूक्ष्म उद्यम विकास के बारे में बाज़ार और सशक्तीकरण, दोनों पद्धतियों में बहुत सारे निहित तनाव हैं। बाज़ार वाली पद्धति में सहभागिता को सहयोजित कर लेने और सशक्तीकरण की सोच में कार्यकुशलता पर ज़्यादा ध्यान दिए जाने से ये तनाव दूर होने की बजाय और ज़्यादा जटिल हो गए हैं।

इस पर्चे से यह साफ है कि महिलाओं के लिए सूक्ष्म उद्यम विकास की अवधारणा सब महिलाओं के लिए फायदे का सौदा साबित होने वाली नहीं है। इसे कल्याण योजनाओं या प्रत्यक्ष श्रमिक सहायता योजनाओं का विकल्प तथा लैंगिक असमानताओं का हल नहीं माना जा सकता। यहां तक कि लाभान्वितों की आय में वृद्धि के संकुचित लक्ष्य के लिहाज़ से भी सूक्ष्म उद्यम विकास तब तक असंख्य गरीब महिलाओं (थोड़ी–सी संपन्न महिलाओं के मुकाबले) के लिए सफल होने वाला नहीं है जब तक कि उसे एक वृहत्तर रूपांतरण के एजेंडा से नहीं जोड़ा जाएगा। गरीबी उन्मूलन तथा लैंगिक असमानताओं में बदलाव की व्यापक रणनीति में सूक्ष्म उद्यम योजनाओं पर निर्भरता पैदा करने से गंभीर परिणाम सामने आ सकते हैं।

कबीर[46] का कहना है कि पद्धति के चुनाव के आधार पर एक ही परियोजना के सकारात्मक और नकारात्मक, दोनों तरह के परस्पर विरोधी मूल्यांकन किए जा सकते हैं। एस.ई.डी.पी. के मूल्यांकन का इस्तेमाल इस बात की तरफ ध्यान आकर्षित करने के लिए किया गया है कि जब महिला कर्ज़दारों के नज़रिए से देखा जाता है तो निष्कर्ष कितने भिन्न हो जाते हैं। उन्होंने इन निष्कर्षों को रेखांकित किया है : बदलाव और परिवर्तन की एक बहुआयामी प्रक्रिया के रूप में सशक्तीकरण व्यक्तिगत उपलब्धियों, अंतःपारिवारिक संबंधों, सामुदायिक हैसियत और वित्तीय नियंत्रण के लिहाज़ से निरपेक्ष नहीं बल्कि सापेक्ष होता है। महिलाओं ने अपनी आत्मछवि में

[46] कबीर, एन. : 'मनी कांट बाई मी लव' : रीइवैल्यूवेटिंग जेंडर, क्रेडिट एंड एम्पावरमेंट इन रूरल बांग्लादेश (चर्चा पत्र/विकास अध्ययन संस्थान; 363) ब्राइटन : इंस्टीट्यूट ऑफ डिवेलपमेंट स्टडीज़, मई 1998.

इज़ाफे पर जितना ज़ोर दिया था, उसे पिछले मूल्यांकनों में कम करके आंका गया था। इसके बाद कबीर सशक्तीकरण के लिए एक स्थानीय परिभाषायी फ्रेमवर्क की वकालत करती हैं और इस बात पर ज़ोर देती हैं कि सशक्तीकरण तथा ऋण तक महिलाओं की पहुंच के बीच प्रत्यक्ष सहसंबंध की किसी भी मान्यता को खारिज करना ज़रूरी है। उनका एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि ऋण कार्यक्रमों की सफलता सब्सिडीयुक्त ऋणों की उपलब्धता में नहीं बल्कि सब्सिडीयुक्त या कम लागत पहुंच सुनिश्चित करने में निहित होती है। ऋण की बारंबार खुराक के कारण आजीविका प्रयासों की उत्पादकता में वृद्धि, जिसके लाभ परिवार और समाज में महिलाओं की हैसियत में भी दिखायी पड़ते हैं, को एस.ई.डी.पी. कार्यक्रम में भी रेखांकित किया गया था लेकिन संसाधनों पर नियंत्रण या कब्ज़े के लिए पुरुष सामाजिक स्वीकृति के आधार पर मिली सत्ता का इस्तेमाल करते हैं। इस पर्चे का एक उल्लेखनीय योगदान यह है कि इसमें सशक्तीकरण की परिभाषाओं तथा ऋण व हिंसा के बीच विभिन्न अध्ययनों में जो संबंध दर्शाए गए हैं उनकी समीक्षा की गई है। कबीर बताती हैं कि मिलते–जुलते आंकड़ों की अलग–अलग व्याख्याएं ऐसे फैसलों का परिणाम हो सकती हैं जो भिन्न सत्ता मॉडलों को प्रतिबिंबित करते हैं और सकारात्मक मूल्यांकनों में परिणामों को ऋण तक पहुंच का परिणाम मान लिया जाता है जबकि नकारात्मक मूल्यांकन ऋण प्रयोग और प्रबंधन की प्रक्रिया के विश्लेषण पर आधारित दिखायी देते हैं।

खान ने बांग्लादेश के संदर्भ में ऋण एवं उजरती रोज़गार[47] का अध्ययन किया है। उन्होंने उजरती श्रम करने वाली महिलाओं द्वारा ऋण के प्रयोग की जांच की है और यह पता लगाया है कि इन कर्ज़ों से उन्हें क्या फायदे हुए हैं तथा उजरती श्रम से लैंगिक संबंधों पर किस तरह के असर पड़े हैं। स्थिरता, सूचनाएं और एकजुटता उपलब्ध कराने वाले सामूहिक कार्यस्थल, तथा आय से हैसियत और भौतिक लाभों में इज़ाफे के कारण महिलाएं ऋण के मुकाबले उजरती श्रम को ज़्यादा प्राथमिकता देती हैं। उजरती रोज़गार से आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तीकरण में मदद मिलती है क्योंकि महिलाओं के पास रोज़गार से मिले पैसे पर तुलनात्मक रूप से ज़्यादा नियंत्रण होता है। खान का निष्कर्ष है कि कार्यक्रमों को इस तरह तय किया जाना चाहिए कि महिलाओं के लिए ज़्यादा से ज़्यादा रोज़गार पैदा हों और इस विषय में महिलाओं से भी सलाह ली जाए। निगम ने इस बात को समझने का प्रयास किया है कि जब माइक्रो क्रेडिट को पांच देशों––नेपाल, वियतनाम, मिस्र, भारत, कीनिया[48] में यूनीसेफ के अनुभवों के आधार पर बुनियादी सामाजिक सेवाओं तक बेहतर पहुंच के साथ जोड़ दिया जाता है तो गरीबी में कमी आती है या नहीं। निगम का कहना है कि गरीबी के सबसे बुरे दुष्प्रभावों पर अंकुश लगाने के लिए ऋण के स्थायी प्रभावों को बढ़ाने के उद्देश्य से यही बेहतर होगा कि उसे बुनियादी सामाजिक सेवाओं और प्रमुख सामाजिक विकास संदेशों के साथ जोड़कर लागू किया जाए। उनका निष्कर्ष है कि माइक्रो क्रेडिट और बुनियादी सामाजिक सेवाओं तक पहुंच का मिश्रण गरीबी की गर्त से बाहर निकलने में मदद देने के लिए एक प्रभावी और किफायती साधन है। गरीब महिला कर्ज़दारों में कर्ज़ वापसी की दर उंची रही है और वंचित तबके के बच्चों

[47] खान, एम. : माइक्रोफाइनेंस, वेज एम्प्लॉयमेंट एंड हाउसवर्क : ए जेंडर एनालिसिस; डेवलेपमेंट इन प्रेक्टिस 9 (4) : 424–435, 1999.
[48] निगम, अशोक : गिव अस क्रेडिट : हाउ एक्सेस टू लोन्स एंड बेसिक सोशल सर्विसेज़ केन एनरिच एंड एम्पावर पीपुल, न्यूयॉर्क, यूनीसेफ, 2000.

के स्वास्थ्य, पोषण और शिक्षा की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार दिखायी दे रहे हैं। अंत में मायू ने जेंडर एवं माइक्रो क्रेडिट कॉकस सिफारिशों[49] का चार्टर प्रस्तुत कर दिया है जिसमें इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि माइक्रो फाईनेन्स से लैंगिक संबंधों पर पड़ने वाले प्रभावों के साक्ष्य सीमित हैं। पर्चे में कहा गया है कि कर्ज़ वापसी कार्यक्रम और ब्याज दरों के ज़रिए महिला सशक्तीकरण के इज़ाफे के बहुत सारे तरीके हो सकते हैं जिनसे आय में इज़ाफा, रेहन के रूप में इस्तेमाल होने वाली संपदाओं के पंजीकरण या महिलाओं के नाम पर संयुक्त स्वामित्व में कर्ज़ से खरीदी जाने वाली चीज़ों को हासिल किया जा सकता है, महिलाओं को और ज़्यादा बड़े ऋण दिलाने के लिए स्पष्ट रणनीतियां अपनायी जा सकती हैं, नई गतिविधियों, स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास आदि के लिए सहभागी परामर्श के आधार पर 'बहुल चयन' का विकल्प उपलब्ध कराया जा सकता है और कईं तरह की बचत सुविधाएं मुहैया करायी जा सकती हैं जिनमें ज़्यादा बेहतर ब्याज दर और महिलाओं तथा महिला समूहों के लिए ऋण उपलब्धता का प्रचार किया जा सकता है।

स्वयं सहायता समूहों में शिक्षा से संबंधित विश्लेषणात्मक साहित्य वेल्ड कार्यक्रम के संदर्भ में देखा जा सकता है। सहभागी संगठनों के प्रदर्शन में उसके कार्यात्मक और प्रभाव आकलनों को जाना जा सकता है। इसी तरह की सामग्री रिफ़्लेक्ट कार्यक्रम में भी ढूंढ़ी जा सकती है जिसका मकसद देश के विभिन्न भागों में स्वयं सहायता समूहों में महिलाओं के लिए शैक्षणिक अवसरों में सुधार का प्रयास रहा है। बी.जी.वी.एस. की सामग्री में एस.एच.जी. प्रक्रियाओं और विमर्श में जेंडर के समावेश की बजाय एस.एच.जी. संचालन मुद्दों के बारे में शैक्षणिक आवश्यकताओं पर ज़ोर दिया गया है। हैल्ज़ी नेपोनेन के हालिया पर्चे में प्रभाव आकलन के लिए आंतरिक शिक्षा व्यवस्था का विश्लेषण किया गया है। इस पर्चे में विकास के प्रभावों के विश्लेषण में एक नए आयाम को जोड़ते हुए उसमें निहित सीखों को संतुलित करने की बात कही गई है। विकास एवं गरीबी से संबंधित सामग्री से उन अवधारणाओं और तरीकों के बारे में हमारी समझ बेहतर हुई है जिनमें जेंडर और समानता विश्लेषण का विषय है। इसने हमारी समझ को विश्लेषणात्मक गहराई प्रदान की है। अमर्त्य सेन,[50] द्रेज[51], घोष, पटनायक तथा अन्य विशेषज्ञों ने हमें गरीबी के आयामों पर स्वयं सहायता समूहों के प्रभावों की जांच करने के लिए हमारे चरांकों के दायरे को विस्तार प्रदान किया है जबकि बुटालिया के पर्चे तथा सी.डब्लयू.डी.एस. के पर्चे और सेमिनार रिपोर्टों से हमें इन मुद्दों के लैंगिक एवं सशक्तीकरण संबंधित संदर्भ को समझने में मदद मिली है।[52] सेन और नुसाबॉम[53] ने क्षमताओं के बारे में जो अवधारणाएं दी हैं उनसे क्षमता निर्माण के फोकस और उद्देश्य को समझने के लिए वैकल्पिक अवस्थितियां उपलब्ध हुई हैं। इनके अलावा भी असंख्य महत्त्वपूर्ण अध्ययन हैं जिनको हम यहां शामिल नहीं कर पा रहे हैं लेकिन जिन्होंने हमारे फ्रेमवर्क को प्रभावित किया है और अध्ययन के दौरान हमारे सैद्धांतिक एवं विश्लेषणात्मक फ्रेमवर्क को पुष्ट किया है।

[49] मायू, एल : यू.एन.ई.डी. यू.के. आउटरीच : वॉइस ऑफ दि एन.जी.ओ. कम्युनिटी एट दि यू.एन., सी.एस.डी. 5 (2) : 4–6, 2000. http://www.soc.titech.ac.jp/icm/wind/mayoux.html पर माइक्रो क्रेडिट वर्चुअल लाइब्रेरी में "फ्रॉम एक्सेस टू एम्पावरमेंट : जेंडर इश्यूज़ इन माइक्रोफाइनेंस" के नाम से उपलब्ध।

[50] सेन, अमर्त्य : डेपवलपमेंट ऐज़ फ्रीडम, ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999.

[51] द्रेज़, ज्याँ : डेमोक्रेसी एंड राइट टू फूड, ई.पी.डब्ल्यू. अप्रैल 24, 2004.

[52] बाटलीवाला, श्रीलता : वीमेन इन सेल्फ हैल्प ग्रुप्स एंड पंचायती राज इंस्टीट्यूशन, 2004.

[53] नुसबॉम, मार्था : वीमेन एंड ह्यूमेन डेवलेपमेंट, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2000.

आजीविका पद्धतियां और अनुभव

हम देश के विभिन्न भागों में दिन–दूनी, रात–चौगुनी तेज़ी से फैलते जा रहे न्यूनतावादी माइक्रो क्रेडिट प्रयासों के व्यावहारिक विकल्प के रूप में आजीविका पद्धतियों तथा अनुभवों को समझना चाहते थे और यह देखना चाहते थे कि गरीबी उन्मूलन एवं महिला सशक्तीकरण की रणनीति के तौर पर उनमें कैसी संभावनाएं निहित हैं। चेम्बर्स और कॉनवे फ्रेमवर्क तथा अन्य का यह समझने के लिए विश्लेषण किया गया कि सशक्तीकरण, गरीबी और आजीविका के बीच क्या संबंध है ताकि आजीविका सुरक्षा में सुधार और एक जनकेंद्रित समझ के तहत गरीबी के टिकाऊ समाधानों के बारे में उसकी क्षमताओं को समझा जा सके। टिकाऊ आजीविका पद्धति का उल्लेख पहली बार विश्व पर्यावरण एवं विकास आयोग (W.C.E.D.) के एडवाइज़री पैनल की रिपोर्ट में आया था। इस रिपोर्ट में टिकाऊ आजीविकाओं को आजीविका सुरक्षा से और मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं, खाद्य सुरक्षा, टिकाऊ कृषि पद्धतियों से जोड़ कर तथा गरीबी को "एकीकरण अवधारणा"[54] के रूप में पेश किया गया था। कॉनवे एवं चेम्बर्स[55] ने एक ऐसा फ्रेमवर्क प्रस्तुत किया था जिसमें जीवन साधनों के रूप में क्षमताओं, संपदा (भौतिक एवं मानव संसाधन) तथा गतिविधियों को मुख्य आयामों के रूप में चिन्हित किया गया था; जिनसे तनाव और झटकों का सामना करने और क्षमताओं व संपदाओं को बनाए रखने की क्षमता मिलती है... अभी और भविष्य के लिए प्राकृतिक संसाधनों के लिए कोई खतरा या क्षीणता पैदा नहीं होती।[56] लेखकों ने सहभागी नियोजन प्रक्रियाओं की ज़रूरत और फोकस को टिकाऊ आजीविका पद्धति का अभिन्न भाग बताया था।

डी.एफ.आई.डी., केयर, आई.डी.एस., ऑक्सफेम आदि, सभी के फ्रेमवर्क में इन कारकों के बीच संबंध दर्शाए गए हैं जबकि यू.एन.डी.पी. ने उनमें कुछ बदलाव किए हैं। डी.एफ.आई.डी. फ्रेमवर्क में परिणामों को प्राथमिकताओं के संदर्भ में ज़्यादा समुदाय केंद्रित[57] बनाने की बात कही गई है क्योंकि इससे "उपलब्धियों, संकेतकों और प्रगति पर फोकस पैदा हो जाता है।"[58] इस फ्रेमवर्क में प्राकृतिक, सामाजिक, भौतिक, मानवीय एवं वित्तीय आदि विभिन्न संकेतकों के महत्त्व पर ज़ोर दिया गया है और फौरी परियोजना परिणामों की बजाय विकास के दीर्घकालिक प्रभावों की आवश्यकता रेखांकित की गई है।[59] यह पद्धति संरचनागत रूपांतरण और प्रक्रियाओं में सामाजिक, मानवीय, वित्तीय एवं भौतिक व प्राकृतिक संपदाओं के प्रयोग का सुझाव देती है।

केयर की पद्धति में परिवार की बुनियादी ज़रूरतों से जुड़ी पारिवारिक आजीविका सुरक्षा पर ज़ोर दिया गया है। इस फ्रेमवर्क में राहत विकास फलक पर तीन अलग–अलग बिंदुओं के लिए तीन मोटा–मोटी श्रेणियां चिन्हित की गई हैं। ये तीन श्रेणियां हैं : आजीविका उपलब्धता; आजीविका संरक्षण एवं झटकों का सामना कर पाने की क्षमता विकसित करने पर केंद्रित आजीविका प्रोत्साहन। केयर की पद्धति संरचनाओं

[54] कोहन, 2000.

[55] चेम्बर्स, आर. एवं कॉनवे, जी.आर. : सस्टेनेबल रूरल लाइवलीहुड्स : प्रेक्टिकल कॉनसेप्ट्स फॉर दि 21स्ट सेंचुरी, आई.डी.एस., ब्राइटन, 1992.

[56] स्कून्स 1998.

[57] काहन मिरांडा, सस्टेनेबल लाइवलीहुड्स एप्रोच : कॉन्सेप्ट्स एंड प्रेक्टिस, मैस्सी यूनिवर्सिटी 1994.

[58] कारनी, डी. : सस्टेनेबल रूरल लाइवलीहुड्स : वॉट कांट्रीब्यूशन केन वी मेक? डी.एफ.आई.डी. नेशनल एडवाइज़र्स कांफ्रेंस, 1998.

[59] कारनी, डायना; एम. ड्रिंक वाटर, टी. रूसीनोफ, के. नीफजेस, एस. वनमाली एवं एन. सिंह : लाइवलीहुड्स एप्रोचेज़ कम्पेयर्ड ए ब्रीफ कम्पेरिजन ऑफ दि लाइवलीहुड्स एप्रोचेज़ ऑफ यू.के. डिपार्टमेंट फॉर इंस्टीट्यूशनल डिवेलपमेंट (डी.एफ.आई.डी.), केयर, ऑक्सफेम एवं यू.एन.डी.पी.। डी.एफ.आई.डी. 1999.

और मैक्रो संपर्कों पर कम ध्यान देती है। ऑक्सफेम ने एक टिकाऊ आजीविका के अधिकार को अपने कॉर्पोरेट उद्देश्यों के रूप में मान्यता दी है और टिकाऊ आजीविका की पद्धति को नब्बे के दशक में ही अपना लिया था। चेम्बर और कॉनवे की परिभाषा को लेते हुए ऑक्सपे+म ने टिकाऊ आजीविका के बारे में अपनी पद्धति में कई दृष्टिकोणों/कसौटियों के इस्तेमाल पर ज़ोर दिया है। ऑक्सफेम के फ्रेमवर्क का मुख्य ज़ोर सुधारक व्यवहारों और प्रक्रियाओं (डी.एफ.आई.डी.)[60] के सीमित दृष्टिकोण की बजाय रूपांतरकारी परिणामों पर या केयर की तरह[61] सुरक्षा पर रहा है। ऑक्सफेम के फ्रेमवर्क में मैक्रो–माइक्रो संबंध कायम करने की संभावना दिखायी देती है और संरचनागत परिवर्तन को एक समग्रतावादी रणनीति में संबोधित करने की संभावना दिखायी देती है।[62]

आजीविका पद्धतियों का विश्लेषण करने पर जनसहभागिता, समावेशी एजेंडा और संरचनागत मुद्दों के साथ जुड़ाव के स्तर पर पहले की पद्धतियों के मुकाबले भारी सुधार दिखायी देता है। इसमें रूपांतरकारी परिवर्तनों की संभावना दिखायी देती है जबकि मुद्दों के साथ जुड़ाव का तरीका काफी लचीला अपनाया जाता है। दूसरी तरफ अपने विश्लेषण के आधार पर हम इस बात को रेखांकित करना चाहते हैं कि वर्तमान में जिन आजीविका पद्धतियों को अभिव्यक्त किया जा रहा है वे भी अकसर गरीबी को जन्म देने वाले कारकों, जैसे संसाधनों पर नियंत्रण और पहुंच आदि, को संबोधित करने में विफल हो जाती हैं और उनका फोकस भी घर के भीतर पायी जाने वाली असमानताओं की बजाय एक इकाई के रूप में परिवार पर ही रहता है। आजीविका के बारे में इस तरह की सोच का खतरा यह है कि उनमें गरीबों को ही गरीबी का स्रोत मानने की प्रवृत्ति दिखायी देती है इसलिए गरीबी को संबोधित करने की ज़िम्मेदारी भी उन्हीं पर डाल दी जाती है। इसे एक जनकेंद्रित पद्धति के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और इसके साथ खतरा यह है कि सरकार और जिन अन्य निकायों को गरीबी उन्मूलन उपायों में निवेश के ज़रिए गरीबी को नियंत्रित करने का प्रयास करना चाहिए वे इस ज़िम्मेदारी से बच निकलते हैं।

हमारे देश में असंख्य अन्य अनुभवों और पद्धतियों को भी आज़माया गया है जिनमें से कुछ का दस्तावेज़ीकरण हुआ है लेकिन जिनके लिए तुलनात्मक विश्लेषणपरक सामग्री बहुत कम है। इनमें से कुछ प्रयोग अपने व्यापक आकार के लिए तथा समुदायों का टिकाऊ आजीविकाओं की दिशा में सशक्तीकरण करने के लिए रचनात्मक रणनीतियां अपनाने के लिहाज़ से औरों से अलग दिखायी देते हैं। इनमें से कुछ का नीचे उल्लेख किया गया है। यह सूची टिकाऊ आजीविकाओं की चिंताओं को संबोधित करने वाले दृष्टिकोणों और रणनीतियों को समझने की प्रक्रिया की शुरुआत है। इस क्रम में प्रदान, डी.डी.एस., माइराडा, सी.सी.डी., धन फाउंडेशन, जी.डी.एस. और बहुत सारे अन्य प्रयोगों के दस्तावेज़ उपलब्ध हैं जो देश के विभिन्न भागों और क्षेत्रों में आजीविका सुनिश्चित करने के प्रयासों को समर्पित रहे हैं। "लाइवलीहुड एंड जेंडर इक्विटी इन कम्युनिटी रिसोर्स मैनेजमेंट"[63] पुस्तक में जेंडर और आजीविका के क्षेत्र में चली बहसों के अवधारणात्मक खाके के बाद

[60] डी.एफ.आई.डी. सस्टेनेबल लाइवलीहुड्स गाइडेंसशीट्स 2001. www.livelihoods.org/info/info_guidance sheets.html
[61] ड्रिंकवॉटर एम. एवं टी. रूसीनोफ : एप्लीकेशंस ऑफ केयर्स ykboyhgqM~l ,izksp www.livelihoods.org
[62] ऑक्सफेम जी.बी. : एक्चेंजिंग लाइवलीहुड्स पाइलेट एडीशन, फूड सिक्योरिटी एडीशन, नेचुरल रिसोर्स एडीशन (अप्रकाशित) ऑक्सफेम नीति विभाग, 1994, 1995, 1997.
[63] सूमी कृष्णा (सं.) : लाइवलीहुड्स एंड जेंडर इक्विटी इन कम्युनिटी रिसोर्स मैनेजमेंट, सेज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।

केस स्टडीज़ का संकलन लैंगिक नज़रिए से इस विषय पर उपलब्ध अनुभवों को इकट्ठा करने का एक ऐतिहासिक प्रयास है।

मई 2005 में निरंतर[64] की अपनी कार्यशाला में भी टिकाऊ आजीविका के लिए जेंडर और/या समता आधारित रणनीतियों पर काम करने वाले बहुत सारे लोगों के बीच अनुभवों और विचारों का आदान–प्रदान किया गया था। कार्यशाला में इस बात पर ज़ोर दिया गया कि आय संवर्द्धन या परंपरागत ग्रामीण विकास पद्धतियों की बजाय आजीविका पद्धतियों के ज़्यादा ठोस विश्लेषण और समझदारी पर ध्यान दिया जाना चाहिए। हमारा मानना है कि समता आधारित आजीविका पद्धति में इस आधार पर गरीबी पर फोकस किया जाता है कि समाज के आर्थिक रूप से कमज़ोर तबकों को संसाधनों/संपदाओं तक पहुंच अनिवार्य रूप से मिलनी चाहिए। लेकिन यह पर्याप्त नहीं है। उनकी बहुत सारी दुर्बलताओं का मतलब यह होता है कि पहुंच के अलावा भी कई अन्य कारक होते हैं जिन्हें संबोधित किए बिना गरीबी पर अंकुश नहीं लगाया जा सकता। यदि हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि गरीबों को कई तरह की कमज़ोरियों का सामना करना पड़ता तो स्वाभाविक है कि उन्हें कई तरह की क्षमताएं भी उपलब्ध करायी जानी चाहिएं जिससे वे अपने अधिकारों और दावों को साकार करने की ओर बढ़ सकें। हाशियाई तबकों को मध्य में रखते हुए समता आधारित आजीविका पद्धति गरीबी और संबंधित कजोरियों से निबटने की ज़िम्मेदारी सरकार तथा अन्य विकास एजेंसियों के ऊपर डालती है जिससे नागरिकों के जीवन और स्वतंत्रता के मूलभूत अधिकारों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को पूरा किया जा सके।

आगा खान फाउंडेशन प्रकाशन[65] में प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन के क्षेत्र में केस स्टडीज़ को संकलित किया गया है और उसके लैंगिक आयामों का विश्लेषण किया गया है। बीना अग्रवाल की पुस्तक[66] में ज़मीन पर महिलाओं के पैतृक अधिकार का एक परिस्थितिगत विश्लेषण किया गया है और उससे महिलाओं की हैसियत व सशक्तीकरण पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया गया है। इस पुस्तक में जेंडर के नज़रिए से उत्तराधिकार केंद्रित बहसों पर प्रकाश डाला गया है और यह समझाने का प्रयास किया गया है कि सशक्तीकरण की प्रक्रिया में परिवर्तन का क्या महत्त्व होता है। काहन मिरांडा[67] ने अपने शोध पत्र में फडिंग एजेन्सी द्वारा अपनायी जा रही आजीविका पद्धतियों के मुख्य आयामों का विश्लेषण किया है। फर्नांडीज़[68] ने आजीविका के लिए एक मूलभूत संसाधन के रूप में ज़मीन के लिए महिलाओं और हाशियाई समुदायों के संघर्षों का विवरण दिया है। झाबवाला[69] ने ढांचागत समायोजन कार्यक्रम के संदर्भ में मज़दूर के तौर पर कायम रहने के लिए महिलाओं के पास उपलब्ध विकल्पों का विश्लेषण किया है और कच्चे माल तक पहुंच के लिए लाइसेंसिंग जैसे संरचनागत मुद्दों का अध्ययन किया है। उन्होंने स्वास्थ्य व्यय में कटौती के निहितार्थों की पड़ताल करते हुए महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करने

[64] निरंतर : लर्निंग फॉर लाइवलीहुड्स; नई दिल्ली में आयोजित परामर्श गोष्ठी की रिपोर्ट, मई 2005 तथा एस.एच.जी. एवं महिला सशक्तीकरण राष्ट्रीय परामर्श कार्यक्रम, नई दिल्ली, दिसंबर 2004 की रिपोर्ट।

[65] अंडरस्टेंडिंग वीमेंस एक्पीरिएंसेज़ इन नेचुरल रिसोर्स मैनेजमेंट, आनंदी टीम, भारत, 2001.

[66] अग्रवाल, बीना : ए फील्ड ऑफ वन्स ओन : जेंडर एंड लैंड राइट्स इन साउथ एशिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1994.

[67] सस्टेनेबल लाइवलीहुड्स एप्रोच : कॉन्सेप्ट्स एंड प्रैक्टिस, मैस्सी यूनिवर्सिटी, 1994.

[68] फर्नांडीज़, ज्योति : आंध्र प्रदेश : दि लैंड इज़ आवर्स www.opendemocracy.net/debates/article-4-64-1391.jsp

[69] झाबवाला, रेनाना : वीमेन वर्कर्स अंडर स्ट्रक्चरल एडजस्टमेंटः सम इश्यूज एंड स्ट्रेटेजीज़ फॉर इंडिया, आई.एल.ओ./एन.सी.डब्ल्यू. कार्यशाला में प्रस्तुत किए गए पर्चे पर आधारित, 1993.

के लिए तथा महिलाओं के लिए सामाजिक एवं कार्यस्थल परिधियों को सुरक्षित बनाने के लिए सामाजिक सुरक्षा नीतियां तैयार करने का आह्वान किया है। कृष्णा द्वारा संपादित पुस्तक[70] में आजीविका तथा प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन के क्षेत्र में विकास से संबंधित अनुभवों पर उपयोगी लेखों को संकलित किया गया है। इस पुस्तक में कई अनुभवों तथा सरकारी प्रयासों का विश्लेषण किया गया है। पुस्तक के पहले भाग में संपादक ने ज़मीनी नज़रिए से मौजूदा रुझानों और सहभागी पद्धतियों को रेखांकित किया है। वयस्क शिक्षण प्रक्रियाओं तथा महिलाओं की स्वायत्तता के लिए एक संभावना के रूप में स्वयं सहायता समूहों के उदय के संदर्भ में पी.आर.ए. का विश्लेषण किया गया है। प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन में जेंडर और महिलाओं से संबंधित कृष्णा के विश्लेषण से हमें उपयोगी अंतर्दृष्टि मिलती है। इसमें जिन प्रयासों का वर्णन किया गया है वे जेंडर के समावेश तथा महिला अधिकारों के आश्वासन की संस्थागत रणनीतियों का आधार रहे हैं। पुस्तक के भाग 3 में महिला अधिकारों पर कुठाराघात करने वाले सामुदायिक संस्थानों तथा राज्य की भूमिका का गंभीर विश्लेषण किया गया है। वह सामूहिक लैंगिक अधिकारों की सुरक्षा व प्रोत्साहन के लिए परंपरागत ज्ञान प्रणाली को मान्यता देने की ज़रूरत पर ज़ोर देती हैं। पटनायक[71] ने आजीविका और उत्तरजीविता रणनीति के रूप में श्रम के महत्त्व पर ज़ोर दिया है और देश में सुधारों के मौजूदा प्रभावों के संदर्भ में रोज़गार गारंटी योजना के फायदों को प्रस्तुत किया है तथा खाद्य सुरक्षा के लिहाज़ से गंभीर होती जा रही स्थित को चिन्हित किया है। सरीन[72] ने समुदायों, खासतौर से महिलाओं, के जीवन पर संयुक्त वन प्रबंधन के प्रभावों का विश्लेषण किया है। संयुक्त वन प्रबंधन को सामुदायिक वनों में लागू किया गया है और वहां प्रबंधकीय संरचनाओं में नकारात्मक बदलावों के ज़रिए प्राकृतिक संसाधनों पर महिलाओं के अधिकारों को खत्म कर दिया गया है। स्कून्स[73] के पर्चे में आजीविका टिकाऊपन प्रक्रिया से निकलने वाले सबकों पर विचार किया गया है जबकि दत्ता[74] ने ग्रामीण विकास परिदृश्य में मौजूदा आजीविका पद्धतियों के परिणामों तथा समता संबंधी चिंताओं का विश्लेषण किया है। गिरिजा एवं नाथन[75] ने भू–संसाधनों तक पहुंच सुनिश्चित करने और लैंगिक संबंधों तथा आर्थिक सत्ता संबंधों में बदलावों का मार्ग प्रशस्त करने के लिए पट्टेदारी रणनीतियों में निहित संभावनाओं की पड़ताल है। इन सारे पर्चों तथा असंख्य अन्य रिपोर्टों व पुस्तकों से गरीबी को संबोधित करने और आजीविका टिकाऊपन की दिशा में बदलावों का सूत्रपात करने के लिए आवश्यक फ्रेमवर्क को विस्तार मिलता है। भोजन अधिकार, रोज़गार अधिकार तथा जेंडर एवं आजीविका ई–नेटवर्क जैसे विभिन्न नेटवर्कों तथा संघर्षों से संबंधी बहसों ने भी हमारे विश्लेषण में विभिन्न प्रकार से योगदान दिया है।

[70] सूमी कृष्णा (सं.) : लाइवलीहुड्स एंड जेंडर इक्विटी इन कम्युनिटी रिसोर्स मैनेजमेंट, सेज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।
[71] पटनायक, प्रभात : ऑन दि नीड फॉर प्रोवाइडिंग एम्प्लॉयमेंट गारंटी, ई.पी.डब्ल्यू.।
[72] सरीन, मधु : एम्पावरमेंट एंड डिसएम्पावरमेंट ऑफ वीमेन इन उत्तराखंड, जेंडर टेक्नॉलॉजी एंड डिवेलपमेंट में, सेज पब्लिकेशंस, खंड 5, संख्या 3, सितम्बर, दिसम्बर 2001.
[73] स्कून्स : सस्टेनेबल रूरल लाइवलीहुड्स ए फ्रेमवर्क फॉर एनालिसिस, आई.डी.एस. वर्किंग पेपर संख्या 72.
[74] शंकर दत्ता : थ्रू दि फील्ड्स ऑफ रूरल लाइवलीहुड्स, न्यूज़रीच, खंड 3, संख्या 5, नई दिल्ली, मई 2003.
[75] गिरिजा एवं देवनाथन : लीज़होल्ड फॉरेस्ट्री इन नेपाल : क्राफ़्टिंग एन ऑलटर्नेटिव फॉर दि पूअर ई.पी.डब्ल्यू. विशेष आलेख, अक्टूबर 2004.

परिशिष्ट 2

स्वयं सहायता समूहों और माइक्रो क्रेडिट के बारे में निरंतर द्वारा आयोजित किए गए कार्यक्रम :

'डाइलेमाज़ एंड क्वेश्चंस : माइक्रोक्रेडिट एंड वीमेंस एम्पावरमेंट' वर्ल्ड सोशन फोरम, मुंबई, 2004, में अस्मिता एवं ए.एस.पी.बी.ए.ई. के साथ मिलकर सेमिनार का आयोजन।

'माइक्रोक्रेडिट बेस्ड सेल्फ हैल्प ग्रुप एप्रोच एंड वीमेंस एम्पावरमेंट' स्वाति के साथ राज्य स्तरीय कार्यशाला का संयुक्त आयोजन, गुजरात, 2004.

'एस.एच.जी., वीमेंस एम्पावरमेंट एंड पावर्टी रिडक्शन', नेशनल कंसल्टेशन, नई दिल्ली, 2004.

'वीमेन, एस.एच.जी. एवं माइक्रोक्रेडिट इश्यूज फॉर दि वीमेंस मूवमेंट', इंडिया एसोसिएशन ऑफ वीमेंस स्टडीज़ (आई.ए.डब्ल्यू.एस.) सम्मेलन में कार्यशाला, गोवा, 2005

'चैलेंजेज़ एंड डाइलेमाज़ रिलेटेड टू सेल्फ हैल्प ग्रुप्स एंड माइक्रोक्रेडिट', विविधा के साथ राज्य स्तरीय कार्यशाला का संयुक्त आयोजन, राजस्थान, 2005.

'डाइलेमाज़ ऑफ जेंडर एंड माइक्रोक्रेडिट', एसोसिएशन फॉर वीमेंस राइट्स इन डिवेलपमेंट (ए.डब्ल्यू.आई.डी.) इंटरनेशन फोरम ऑफ वीमेंस राइट्स एंड डिवेलपमेंट में सत्र का आयोजन, बैंकॉक, 2005.

परिशिष्ट 3

साक्षरता कार्यक्रम

वेलुगु

आंध्र प्रदेश में स्वयं सहायता समूह सदस्याओं को साक्षरता प्रदान करने के लिए राज्य सरकार के प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को वेलुगु के साथ मिलकर चलाने के प्रयास किए गए हैं। इस योजना का मकसद यह था कि जो महिलाएं प्रौढ़ शिक्षा अभियान में छूट गईं हैं उन्हें भी साक्षरता कार्यक्रम से जोड़ा जाए। लेकिन हमारे फील्ड वर्क से पता चलता है कि समूहों की बहुत सारी महिलाएं अभी भी असाक्षर हैं और फिर भी उन्हें इन गतिविधियों में शामिल नहीं किया जा रहा है। हमने जिस टोले को अध्ययन के लिए चुना था वहां तैनात संपूर्ण साक्षरता अभियान (टी.एल.सी.) की वॉलेंटियर ही वेलुगु की ग्राम स्तरीय कार्यकर्त्ता (वी.ए.) भी थी। महिलाओं ने बताया की टी.एल.सी. चरण के दौरान उनकी कक्षाएं नियमित रूप से नहीं चलती थीं। केवल 3–4 कक्षाएं हुईं थीं। महिलाओं ने बताया कि उन्हें कोई शैक्षणिक सामग्री भी मुहैया नहीं करायी गई। "हमने बस दस्तखत करना सीख लिया था, और कुछ नहीं।" दूसरी तरफ वी.ए. का कहना था कि सीखने वाली महिलाओं की संख्या 'बहुत ज़्यादा' थी और वह सबको नहीं संभाल सकती थी। उसका ये भी कहना था कि चार समूहों में से केवल एक ऐसी महिला थी जिसने साक्षरता के लिए लगातार प्रयास किया।

वेलुगु और प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को जोड़कर चलाए जा रहे मौजूदा अभियान के बारे में मंडल साक्षरता अधिकारी ने हमें बताया कि इसमें केवल ऐसी महिलाओं को ही शामिल किया जा सकता है जो अपना दस्तखत भी नहीं कर सकतीं। इसका मतलब है कि अगर किसी ने टी.एल.सी. में दाखिला लेने के बाद दस्तखत करना भी सीख लिया है तो उसे भी इस अभियान में शामिल नहीं किया जाएगा। समूहों की महिलाएं इस स्पष्टीकरण से काफी आहत थीं और उन्हें इस बात पर अफसोस हो रहा था कि उन्होंने दस्तखत करना भी क्यों सीख लिया। एक सदस्या ने कहा कि "हमें तो इस बात की सज़ा दी जा रही है कि हमने अपना नाम लिखना सीख लिया है। बिना किसी गलती के हमें इस मौके से वंचित किया जा रहा है।"

विडंबना यह है कि टी.एल.सी. के ज़रिए महिलाओं को केवल अपना नाम लिखना सिखा दिया गया था इसलिए अब उन्हें सीखने का मौका नहीं दिया जा रहा है। यह विडंबना इस बात के संदर्भ में और भी तीखी हो जाती है कि अन्य सरकारी कार्यक्रमों की तरह ये वेलुगू प्रतिनिधि ही थे जिन्होंने औरतों पर इस बात का दबाव डाला था कि वे दस्तखत करना सीखें। कार्यक्रम के प्रतिनिधियों ने एस.एच.जी. सदस्याओं को नाम लिखना सीखने के लिए 'प्रेरित' किया था। इसके लिए उन्होंने स्पष्ट कहा था अगर वे ऐसा नहीं करेंगी तो

उन्हें बैंक में खाते खोलने की 'इजाज़त' नहीं मिलेगी। गंगावरम ब्लॉक कार्यालय में जी.एम. ने सबके सामने कहा था कि "कोई भी 'वेलुगु महिला' बैंक में अंगूठे का निशान नहीं लगाएगी।" और अब इसी आधार पर महिलाओं को साक्षरता के अवसर से वंचित किया जा रहा है, मानो साक्षरता के रूप में इतना ही काफी हो।

एस.जी.एस.वाई.

अपने अध्ययन के दौरान साबरकांठा में फील्ड वर्क के लिए हम तिंतोई तथा दो अन्य गांवों में गए थे। इन गांवों में एस.जी.एस.वाई. समूह की महिलाओं को ये तो पता था कि सरकार ने वयस्क साक्षरता कार्यक्रम शुरू किया हुआ है लेकिन इसके बारे में उन्हें और कोई जानकारी नहीं थी। तिंतोई में हमने जिन एस.एच.जी. की महिलाओं के साथ सघन साक्षात्कार किए वे जानती थीं कि उनके गांव में साक्षरता कक्षाएं चल रही हैं। उनका कहना था कि वे भी साक्षरता हासिल करना चाहती हैं लेकिन उनके लिए यह कठिन काम था क्योंकि सतत शिक्षा (सी.ई.) प्रेरक (गांव स्तर की काडर) उनकी सुविधा के समय पर आने को तैयार नहीं थी। प्रेरक ने रात के समय गांव में उनके मौहल्ले में आने से भी इनकार कर दिया था जबकि महिलाओं के पास रात में ही समय उपलब्ध था। महिलाओं को इस बात का पता नहीं था कि उनके गांव में तीन साक्षरता कर्मचारियों को नियुक्त किया गया था। जब हमने इन कर्मचारियों से बात की तो उन्होंने कहा कि उनकी भूमिका तो स्कूली बच्चों के लिए पुस्तकालय और रेमेडियल कक्षाएं आयोजित करने तक ही सीमित है। यह काम उनके लिए आसान भी था क्योंकि यह कार्यक्रम गांव के पटेल खंड में स्कूल की इमारत के भीतर ही स्थित था।

ऊपर जिस प्रेरक का ज़िक्र किया गया है उसने अपने घर के पास ही दो समूह बना लिए थे। इनमें से एक मुस्लिम महिलाओं का और दूसरा ओबीसी महिलाओं का समूह था। ओबीसी समूह की महिलाएं अब कैटरिंग व्यवसाय और पापड़ बड़ी उत्पादन जैसे आयवर्द्धक कार्य करने लगी हैं। हम इस समूह की महिलाओं से बात नहीं कर पाए लेकिन प्रेरक के साथ बातचीत से पता चला कि यह समूह लगभग दो साल पुराना है। हालांकि उसने महिलाओं को लिखना–पढ़ना सिखाना शुरू किया था लेकिन अब समूह का फोकस आयवर्द्धक गतिविधियों और उनको टिकाए रखने पर ही केंद्रित हो गया है। समूह के खाते प्रेरक ही संभालती थी और समूह के लिए वही ऑर्डर लाती थी। पहले चार महीने के बाद साक्षरता कक्षाएं बंद कर दी गईं। प्रेरक के मुताबिक, साक्षरता/सतत शिक्षा का कार्यक्रम आर्थिक गतिविधियों में विलीन हो गया है। प्रेरक ने बताया कि सतत शिक्षा कार्यक्रम में अब पढ़ने और लिखने की योग्यता की बजाय बचत व ऋण के लिए एस.एच.जी. के गठन पर ज़्यादा ज़ोर

दिया जाने लगा है। समूह के इस व्यावसायिक उद्यम में प्रेरक भी हिस्सेदार थी और वह समूह की गतिविधियों की स्वनियुक्त प्रबंधक बनी हुई थी।

स्वशक्ति

हालांकि स्वशक्ति कार्यक्रम में साक्षरता की आवश्यकता को औपचारिक स्तर पर गंभीरता से लिया जाता है और जिन छः राज्यों में इस कार्यक्रम को लागू किया जा रहा है उनमें परियोजना प्रस्ताव में साक्षरता को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है लेकिन गुजरात में ऐसा नहीं है। यहां साक्षरता का मतलब केवल कामचलाऊ और कानूनी साक्षरता तक सीमित है। गुजरात में मुहैया कराए जा रहे साक्षरता इनपुट्स परियोजना निदेशक की पहल पर एक राज्य स्तरीय कार्यक्रम के रूप में शुरू किए गए थे। यह परियोजना निदेशक इससे पहले महिला सामाख्या से जुड़ी हुई थी जिसके अनुभवों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने कार्यक्रम के तीसरे चरण में सामाजिक विकास प्रयासों के अंतर्गत साक्षरता को शामिल करने पर ज़ोर दिया था। परियोजना निदेशक की राय में साक्षरता के ज़रिए महिलाएं सूचनाओं तक पहुंच हासिल कर सकती हैं और आर्थिक सशक्तीकरण के लिए संसाधनों तक पैठ बना सकती हैं।

गुजरात के नर्मदा ज़िले में स्वशक्ति कार्यक्रम को लागू करने वाली स्वयंसेवी संस्था इनरेका (I.N.R.E.C.A.) अपने जन्मकाल से ही शैक्षणिक कार्यक्रमों से जुड़ी रही है और आदिवासी लड़के–लड़कियों के लिए आश्रमशाला विद्यालय तथा बालवाड़ी व आंगनवाड़ी चलाती है। लेकिन प्रौढ़ शिक्षा व साक्षरता पर उसने स्वशक्ति कार्यक्रम से जुड़ने के बाद ही ध्यान दिया था। इस कार्यक्रम में सक्रिय शिक्षक मुख्य रूप से इसलिए साक्षरता कक्षाएं चलाते हैं क्योंकि वे अपने जैसी सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि से आने वालों को साक्षरता के ज़रिए गरीबी और शोषण के हालात से निपटने की योग्यता प्रदान करना चाहते हैं।

लेकिन साक्षरता पाठ्यक्रम की विषयवस्तु में इन चिंताओं को व्यक्त नहीं किया गया था। साक्षरता कक्षाओं के लिए गुजरात विद्यापीठ द्वारा तैयार की गई सामग्री का इस्तेमाल किया जा रहा था। गुजरात विद्यापीठ शिक्षा के क्षेत्र में एक प्रतिष्ठित संस्थान है और उसके पास गरीबी या लैंगिक चिंताओं के बारे में कोई विशेष सामग्री नहीं थी। गुजरात विद्यापीठ के कर्मचारियों ने बताया कि स्वशक्ति कार्यक्रम के लिए पाठ्यक्रम में कोई बदलाव नहीं किए गए थे और न ही कोई अतिरिक्त सामग्री तैयार की गई थी या कार्यक्रम की ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए कोई शिक्षाशास्त्रीय बदलाव या महिला सशक्तीकरण की आवश्यकताओं पर ध्यान दिया गया था। स्वशक्ति को भी यह ज़रूरी नहीं लगा कि कोई खास तरह की सामग्री तैयार की जाए या जिस सामग्री का इस्तेमाल किया जा रहा था उसमें कोई सुधार किया जाए।

लेकिन इस कार्यक्रम में साक्षरता को एक उल्लेखनीय सामाजिक एजेंडा के रूप में अपनाया गया है और इसके लिए ज़िला स्तर पर लोगों को प्रेरित करने, प्रक्रिया पर निगरानी रखने और इनपुट्स के बीच समन्वय स्थापित करने हेतु कर्मचारियों के लिए संसाधन आबंटित किए गए हैं। लेकिन इस ज़िम्मेदारी का निर्वाह करने के लिए जिन कर्मचारियों का चयन किया गया है वे ज़िला स्तरीय शासन संरचना में निचले स्तर के कार्यकर्त्ता हैं और उन्हें टीम सदस्यों से कोई खास मदद नहीं मिलती। स्वयंसेवी संस्था के स्तर पर भी साक्षरता कक्षाओं के दौरान समय और संसाधन मुख्य रूप से गांवों में शिक्षकों के चयन, प्रशिक्षण और तैयारी पर तथा उनके लिए मानदेय के भुगतान पर खर्च किए जा रहे थे। लेकिन इसके बाद यह प्रक्रिया

धीरे–धीरे शिथिल पड़ गयी क्योंकि शिक्षकों को मानदेय देने के लिए भी संसाधन नहीं बचे थे।

स्वशक्ति कार्यक्रम का मानना है कि यह गतिविधि सहभागी स्वयंसेवी संस्थाएं चलाएंगी और अपने स्थायी कार्यक्रमों में शैक्षणिक गतिविधियों के टिकाऊपन पर नज़र रखेंगी। दूसरी तरफ स्वयंसेवी संस्थाओं ने ऐसा करने में अपनी अक्षमता व्यक्त की और कहा कि एक समग्र साक्षरता कार्यक्रम विकसित करने के लिए अलग से परियोजना शुरू करनी होगी। फंडिंग एजेंसियों की योजना में महिलाओं की साक्षरता को जितनी कम प्राथमिकता दी जाती है, उसे देखते हुए ऐसा करना मुश्किल प्रतीत होता है।

उपलब्धियों पर नज़र रखने के लिए, यानि स्वयं सहायता समूहों में साक्षरता कक्षाओं में दाखिला लेने वाली प्रतिभागियों में साक्षरता के प्रसार का पैमाना अंक ज्ञान पर आकर रुक जाता है और स्वशक्ति कार्यक्रम के प्रदर्शन संकेतकों में उसका उल्लेख नहीं किया जाता। इसीलिए साक्षरता संकेतांकों की मॉनिटरिंग को प्रतिभागियों द्वारा प्रवेशिकाओं को पढ़ लेने की क्षमता के स्तर तक सीमित रखा गया था और उन्हें लिखने–पढ़ने की कोई और सामग्री नहीं दी गई थी। इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है कि इन क्षमताओं का फिलहाल किस तरह उपयोग किया जा रहा है या उन्हें टिकाए रखने के लिए क्या किया जाना चाहिए। आई. एन.आर.ई.सी.ए. (इनरेका) फील्ड एरिया के जिन तीन गांवों की असाक्षर महिलाओं से हमने बातचीत की वे इस बारे में चिंतित थीं कि लिखने–पढ़ने के अवसरों के अभाव में कहीं वे दोबारा असाक्षर न हो जाएं।

आनंदी

आनंदी के पास विभिन्न समितियों की महिला नेताओं और सदस्याओं के लिए एक साक्षरता शिविर चलाने का सफल अनुभव मौजूद है। इस संगठन की राय में इन महिलाओं के सशक्तीकरण की प्रक्रिया में असाक्षरता से निजात पाना एक महत्त्वपूर्ण आयाम था। इस शिविर के लिए साक्षरता सामग्री पहले से मौजूद सामग्री तथा काम के दौरान महिलाओं द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले आम शब्दों पर आधारित थी। हमने जिन महिलाओं से बातचीत की उन्हें याद था कि साक्षरता शिविर में न्याय, अधिकार, ज़मीन, पानी और जंगल जैसे शब्दों का इस्तेमाल किया जा रहा था। इस शिक्षा में गीतों और गानों के साथ–साथ महिलाओं के कामों को भी शामिल किया गया था। इस प्रयास की सफलता जितनी साक्षरता कक्षाओं में निहित है उतनी ही इस बात पर भी आधारित है कि महिलाओं को अपनी हाल ही में प्राप्त दक्षता का इस्तेमाल करने के लिए अभी भी अवसर उपलब्ध कराए जा रहे हैं। उन्हें बैठक के मिनट्स, रिपोर्ट्स, बैनर्स और अभियान सामग्री लिखने का मौका दिया जाता है। न्याय समिति से जुड़ी महिलाओं ने बताया कि उन्होंने प्रशिक्षणों के दौरान, खासतौर से अपराधों और उपयोगी कानूनों से संबंधित प्रशिक्षण कार्यशालाओं में मिली जानकारियों को कागज पर लिख लिया था। नाटक टोली की कुछ सदस्याओं ने बताया कि अब वे अपनी साक्षरता का इस्तेमाल नाटकों की स्क्रिप्ट लिखने के लिए भी करने लगी हैं। साक्षरता शिविर में हिस्सा लेने वाली सभी सहभागियों का कहना था कि अब वे अपने बच्चों के स्कूली कामों में मदद दे पाती हैं।

आनंदी ने हाल ही में अपने एक और फील्ड एरिया में महिला साक्षरता के प्रयासों को दोबारा शुरू किया है। इस कार्यक्रम को एक सेंटर–आधारित शैक्षणिक पद्धति पर चलाया जा रहा है और फिलहाल उसकी बागडोर कम अनुभव प्राप्त एक युवा वॉलंटियर के हाथों में है। जब हमने इस इलाके में शुरू किए गए पिछले

प्रयास के बारे में जानना चाहा तो महिलाओं ने इस बात पर काफी गुस्सा व्यक्त किया कि पिछले अनुभव को जारी नहीं रखा गया था। उन्होंने कहा कि साक्षरता कार्यक्रमों को लंबे समय तक चलाया जाना चाहिए। "हम सीखना तो चाहते हैं लेकिन ऐसी प्रक्रिया से नहीं जुड़ना चाहते जो ऐसे टूट–टूटकर चलती हैं।" पिछली कोशिश बीच में बंद हो जाने के कारण अब महिलाएं यह आश्वासन चाहती हैं कि इस बार उनके समय और उर्जा को अचानक कार्यक्रम बंद करके इस तरह बर्बाद नहीं किया जाएगा।

आनंदी ऐसी रणनीति को जारी रखने या विकसित करने में विफल रहा है जिससे नवसाक्षरों की साक्षरता स्तर में सुधार लाया जा सके हालांकि संगठन के लोग इस ज़रूरत को स्वीकार करते हैं। संगठन के पास जो ज़िम्मेदारियां हैं उनको देखते हुए संगठन साक्षरता के लिए आवश्यक संसाधन मुहैया कराने की स्थिति में नहीं है। नेतृत्त्व को ऐसा भी नहीं लगता कि इस कोशिश से होने वाले फायदे इतने महत्त्वपूर्ण होंगे कि उनके आधार पर साक्षरता के प्रति समर्पण को सही ठहराया जा सके क्योंकि इस इलाके में महिलाओं और उनके समुदायों की आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय है।

पीस / वेल्ड

WELLD (वेल्ड–वीमेंस एम्पावरमेंट थ्रू लिटरेसी एंड लाइवलीहुड डिवेलपमेंट) कार्यक्रम में साक्षरता को बचत और ऋण, समूह निर्माण व प्रबंधन, सशक्तीकरण व आजीविका विकास की अवधारणाओं के साथ जोड़कर देखा जाता है। वेल्ड को वर्ल्ड एजूकेशन द्वारा सोसायटी फॉर पार्टिसिपेटरी रिसर्च इन एशिया (प्रिया) के साथ मिलकर एक प्रायोगिक परियोजना के रूप में शुरू किया गया था। इसके लिए फ़ोर्ड फ़ाउंडेशन से पैसा मिला था और उसे आंध्र प्रदेश व मध्य प्रदेश में लागू किया गया था। वर्ल्ड एजूकेशन भारत में ऐसे संगठनों को तकनीकी सहायता प्रदान करता है जो माइक्रो फाईनेन्स कार्यक्रमों में हिस्सा लेने वाली महिलाओं की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए वेल्ड पैकेज को अपनाने के लिए तैयार हैं।

इस कार्यक्रम के ज़रिए पीस सहित विभिन्न सहभागी स्वयंसेवी संस्थाओं को इस बात के लिए राज़ी किया गया कि वे साक्षरता के एजेंडा को भी साथ लेकर चलें। वेल्ड की ओर से उन कार्यकर्त्ताओं को भी उल्लेखनीय इनपुट्स उपलब्ध कराए गए हैं जो वेल्ड क्रियान्वयन प्रक्रिया से जुड़े हुए थे और उनमें हिस्सा लेने वाले कर्मचारियों ने इन इनपुट्स की प्रशंसा भी की।

स्वयं सहायता समूहों की सदस्यताओं के लिए वेल्ड ने साक्षरता क्षमता हासिल करने, सूचनाएं हासिल करने तथा समता व न्याय के मुद्दों पर चर्चा की परिधि मुहैया कराने के लिए अवसर और माध्यम उपलब्ध कराए हैं। क्योंकि पीस वेल्ड कार्यक्रम में हिस्सा लेने को तैयार था और उसने संजीदगी व उत्साह से यह काम किया है, इसलिए यह बात एस. एच.जी. सदस्याओं को शैक्षणिक अवसर मुहैया कराने के बारे में संगठन की चाह में प्रतिबिंबित होती थी। पीस ने साक्षरता के लिए महिलाओं को गोलबंद करने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता सिद्ध कर दी है। कार्यक्रम के दौरान पीस का नेतृत्त्व तथा अन्य सदस्य अपने कामों में साक्षरता के मूल्य को लेकर संतुष्ट थे। जब हमने पीस की ओर से स्वयं सहायता समूहों में सक्रिय टीम से पूछा कि स्वयं सहायता समूहों के बारे में उनका सपना क्या है तो उनकी कल्पना में दूसरा स्थान यही था कि इनके ज़रिए साक्षरता का प्रसार होता रहे।

साक्षरता केंद्र/सेंटर एक ऐसी परिधि है जहां महिलाएं सामाजिक मुद्दों पर काम कर सकती हैं। वेल्ड कार्यक्रम में हिस्सा लेने वाली एक महिला ने हमें बताया कि उसे सामाजिक मुद्दों से निपटने में सेंटर से कैसे मदद मिली : "सेंटर में एक औरत अपने पति के हाथों बुरी तरह पिटकर आयी थी। उसके पति ने उसके सिर पर पत्थर दे मारा था जिससे सिर में गहरी चोट आ गई थी। सिर में खूब गहरा गड्ढा बना हुआ था। उसको खून बह रहा था। हम उसे लेकर अस्पताल गए और उसे दवाई दिलायी। अगले दिन पंचायत की सभा बुलायी गयी। पंचायत में हर किसी ने उसके आदमी को भला–बुरा कहा। लोगों ने दोनों के बीच समझौते के लिए भी प्रयास किया लेकिन उसका आदमी तो झगड़ा बंद करने का नाम ही नहीं लेता था। वह साक्षरता कक्षाओं में आती रही क्योंकि इस बहाने उसे कम से कम कुछ देर के लिए अपने आदमी से छुटकारा पाने का समय मिल जाता था। आखिरकार उसने अपने पति को छोड़कर किसी और से शादी कर ली। इसके बाद पति ने भी दूसरी शादी कर ली। आदमी से पहले औरत ने ही दूसरी शादी कर डाली थी। जो औरतें सेंटर में नहीं आती थीं उन्होंने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। लेकिन हम तो रोज़ कक्षा में आते थे इसलिए हमने यह मुद्दा उठा लिया।"

वेल्ड कार्यक्रम अनुदानों के अभाव की वजह से बंद हो चुका है हालांकि संगठन साक्षरता के काम को जारी रखना चाहता था। पीस के प्रतिनिधियों ने इस बात पर गहरा असंतोष व्यक्त किया कि इस कार्यक्रम को अचानक बंद कर दिया गया था। औरतों को गोलबंद करने और कार्यात्मक विलंबों के कारण परियोजना के लिए समय वैसे भी समय बहुत कम ही मिला था। पीस के निदेशक ने कहा कि "जब औरतें पढ़ने को तैयार थीं और नई बातें सीखना चाहती थीं तभी उन्होंने कार्यक्रम बंद कर दिया। हमने उनसे काफी आग्रह किया कि कार्यक्रम को बढ़ा दिया जाए। लेकिन उन्होंने कहा कि वे इसके लिए और पैसा नहीं दे सकते। थोड़ा–सा पैसा बचा हुआ था इसलिए मैंने परियोजना को छह माह का विस्तार दे दिया। अगर कुछ और सेंटर तथा कुछ और समय मिल जाता तो परियोजना और कामयाब हो जाती।"

प्रतिभागियों को भी यही लगता है कि कक्षाओं के लिए खुद को तैयार करने और पढ़ाई में अपनी दिलचस्पी पैदा करने में उन्हें जितना समय और मेहनत करनी पड़ी, उसको देखते हुए कार्यक्रम का इस तरह अचानक बंद हो जाना बहुत बुरी बात थी। वेल्ड कार्यक्रम में हिस्सा लेने वाली एक सहभागी ने कहा कि "वे लोग पढ़ाते थे, मैं जैसे–तैसे सीखने लगी थी। आमदनी वाला पाठ बड़ा मज़ेदार था। फिर हमने थोड़ा–सा गणित सीखा। फिर मुझे अंकों में मज़ा आने लगा, जोड़ने–घटाने में। और फिर सेंटर बंद हो गया।"

कर्मचारियों और इस कार्यक्रम में प्रतिभागियों के तौर पर हिस्सा लेने वाली महिलाओं से हमने एक सवाल यह पूछा था कि क्या वे परियोजना खत्म होने के बाद साक्षरता कायम नहीं रख सकते थे। उनके जवाबों से यह स्पष्ट था कि ऐसा संभव नहीं था।

पश्चिमी गोदावरी

पश्चिमी गोदावरी एक ऐसा ज़िला है जहां प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में सफल वयस्क साक्षरता कार्यक्रम चलाया गया है। ज़िला प्रौढ़ शिक्षा एसोसिएशन द्वारा वर्ष 2000 में अक्षर महिला कार्यक्रम के नाम से यह अभियान शुरू किया गया था। इस कार्यक्रम को बेहद रचनात्मक माना आता है और स्वयं सहायता समूहों को 'निशाना बनाने' की उसकी रणनीति काफी असरदार रही थी। यह 'समूह आधारित पद्धति' थी जो

समूचे असाक्षर समुदाय को समेटने की कोशिश वाले संपूर्ण साक्षरता अभियान की पद्धति से भिन्न थी। अक्षर महिला कार्यक्रम के तहत स्वयं सहायता समूहों ने साक्षरता को एक सामूहिक गतिविधि के रूप में लिया था। प्रतिभागियों को समूह के भीतर से ही चुना जाता था। वॉलंटियरों के प्रशिक्षण, शिक्षा सामग्री आदि की लागत भी समूह को ही वहन करनी होती थी। वॉलंटियर्स का चुनाव भी समूह ही करता था। वे आम तौर पर समूह की ही सदस्या या किसी सदस्या की बेटियां होती थीं। साक्षरता के लिए स्वयं सहायता समूहों के इस्तेमाल की रणनीति सरकार के लिए बहुत उपयोगी साबित हुई। इस रणनीति में प्रतिभागियों और वॉलंटियरों को जुटाने का ही नहीं बल्कि वित्तीय संसाधनों का ज़िम्मा भी प्रतिभागियों के ऊपर छोड़ दिया गया था।

अध्ययन के दौरान किए गए साक्षात्कारों तथा द्वितीयक स्रोतों से पता चलता है कि इस कार्यक्रम में अभियान वाली भावना से काम किया जा रहा था। आंध्र प्रदेश के पश्चिमी गोदावरी ज़िले में सतत शिक्षा कार्यक्रम पिछले चार साल से बिना अनुदान के चल रहा है क्योंकि राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की ओर से अनुदान जारी होने में बार–बार विलंब हुआ है। यहां इस बात का उल्लेख करना ज़रूरी है कि पश्चिमी गोदावरी का अनुभव देश के अन्य बहुत सारे ज़िलों जैसा ही है जहां केंद्र या राज्य सरकारों की ओर से अनुदान जारी होने में इस तरह का विलंब हुआ है। लेकिन इस ज़िले की खास बात यह है कि यहां सामुदायिक सहभागिता और स्वामित्व की व्यापक रणनीति के तहत सरकार पर निर्भरता कम करने के लिए समुदाय से ही अनुदानों की व्यवस्था करने पर ज़ोर लगाया गया है। माना जाता है कि पश्चिमी गोदावरी में पहले ही बिना अनुदानों के कार्यक्रम चलाया जा चुका है क्योंकि यहां इस कार्यक्रम को अभियान वाले ढर्रे पर ही चलाया जाता रहा है।

लेकिन इसमें कुछ बुनियादी समस्याएं भी थीं। सतत शिक्षा कार्यक्रम की ग्राम स्तरीय कार्यकारी समिति के सदस्यों से बातचीत के दौरान जब यह पूछा गया कि नवसाक्षर महिलाएं अपनी साक्षरता क्षमता का किस तरह प्रयोग कर रही हैं तो सिर्फ एक सदस्य ने यह कहते हुए जवाब दिया था कि उसने "नहीं देखा कि नवसाक्षर महिलाएं अपनी साक्षरता का क्या करती हैं।" समिति के सदस्यों का यह भी कहना था कि उन्होंने एस.एच.जी. सदस्याओं के बीच साक्षरता के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए कोई कदम नहीं उठाया है। कार्यकारी समिति के सदस्यों की नज़र में उनकी प्राथमिक भूमिका नए प्रतिभागियों को प्रेरित करने तक ही सीमित थी।

हालांकि कम से कम नियोजन के स्तर पर ऐसी कुछ गतिविधियां ज़रूर दिखायी देती हैं जिनमें प्रतिभागियों द्वारा हासिल की गई साक्षरता के इस्तेमाल की संभावना निहित है लेकिन यह सुनिश्चित करने के लिए कोई व्यापक रणनीति प्रतीत नहीं होती कि नियोजित साक्षरता लक्ष्यों को कैसे टिकाए रखा जाएगा। मिसाल के तौर पर, पश्चिमी गोदावरी में अक्षर संक्रान्ति कार्यक्रम चरण 6, 2003 की कार्ययोजना में इस बात का कहीं उल्लेख नहीं है कि अब तक जो साक्षरता प्राप्त की गई है उसको टिकाए रखनें के लिए क्या किया जाएगा। एक समस्या यह थी कि यद्यपि अक्षर महिला कार्यक्रम स्वयं सहायता समूहों और साक्षरता के बीच संपर्कों पर आधारित है लेकिन फिलहाल डी.डी.ए.ई. और डी.आर.डी.ए. (जिस विभाग के ज़रिए एस.एच.जी. कार्यक्रम को लागू किया जा रहा है) के बीच कोई पारस्परिक, संस्थागत संपर्क तक नहीं है।